देवनागरी लिपि

स्वरूप, विकास और समस्याएँ

[द्वितीय-परिष्कृत संस्करण]

सम्पादक

डॉ० न० चि० जोगलेकर

एम्०ए०, पी-एच्०डी०

रीडर, हिन्दी विभाग

पुणें विद्यापीठ, पुणें

●

साहित्यमहोपाध्याय, तत्त्वभूषण,

डॉ० भगवानदास तिवारी

एम्०ए०, पी-एच्०डी०

प्रोफेसर व अध्यक्ष,

हिन्दी-विभाग, शोलापुर कॉलेज,

शोलापुर-२

प्राप्ति स्थान

विद्या मंदिर

५८८, एवेन्यू रोड, बंगलौर—२.

प्रकाशक :
हिंदी साहित्य भंडार
५५, चौपटियाँ रोड, चौक,
लखनऊ—३

द्वितीय संस्करण
जनवरी, १९७४
मूल्य बीस रुपए

मुद्रक :
हरिमोहन साहु
रचना आर्ट प्रिंटर्स
९१, चौपटियाँ रोड,
लखनऊ—३

आशीर्वचन

आपकी पुस्तक मैं आद्यन्त पढ़ गया हूँ। सामग्री का संचय बड़े परिश्रम और विवेक से किया गया है। पचास वर्ष से ऊपर से राष्ट्रभाषा की चर्चा चल रही है। इसके प्रमुख उन्नायकों की सम्मतियाँ और विचार आपने बड़े ढंग से एकत्रित किये हैं।

देननागरी लिपि के सम्बन्ध में तो अब शंकायें नहीं रह गई हैं, पर राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार की गति अब भी मन्द है। आपकी पुस्तक से लोगों को सोचने-समझने का अवसर मिलेगा। राजनीतिज्ञ लोग इससे कितना लाभ उठायेंगे, यही देखना है।

शुभकामनाओं सहित

नन्ददुलारे वाजपेयी
उपकुलपति
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

आमुख

आचार्य दण्डी का कथन है कि—**वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते।** वाणी के प्रसाद से ही संसार का जीवन चलता है। वाणी भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने के विभिन्न प्रतीकों के रूप में प्रकट होती है। यह वाणी का स्वरूप तथा ध्वनि-प्रतीक सर्वाधिक रूप में मानव को प्राप्त हुआ है, और इससे स्पष्ट है कि अन्य प्राणियों की अपेक्षा जो सभ्यता का बहुमुखी एवम् सर्वांगीण विकास मानव जाति कर सकी है वह वाणी के प्रसाद से ही। मानव-वाणी संसार के अन्तर्गत विभिन्न भाषाओं के रूप में व्यवहृत और व्यवस्थित हुई। किन्तु, इन भाषाओं का समुचित विकास तभी संभव हुआ जब भाषा को नाद-स्वरूप के साथ-साथ दृश्य स्वरूप भी प्राप्त हुआ। इस नाद-स्वरूप का दृश्य स्वरूप में अवतरण जब भी हुआ तब वैचारिक और भावगत सूक्ष्म विकास-मार्ग का उद्घाटन हुआ। वाणी का यह दृश्य रूप ही लिपि है।

लिपिगत स्वरूप प्राप्तकर विभिन्न भाषाओं को सूक्ष्म विकास के साथ-साथ व्यापकता का वरदान भी मिल गया। जो भाषा एक व्यक्ति दूसरे से सुनकर ही ग्रहण कर सकता था और परिधि में गिरी हुई थी वह भाषा, लिपि का वरदान पाकर दूर-दूर तक प्रचलित होने लगी, और विभिन्न लिपियों और भाषाओं में विकास की दिशा में एक होड़ सी लग गयी—यह होड़ भले ही प्रतिस्पर्धा के रूप में दिखलाई देती रही हो। लिपि का स्वरूप प्राप्त कर भाषा में एक और विशेषता आई, और वह है स्थायित्व। यदि लिपि न होती तो शायद हमारे समक्ष प्राचीन साहित्य और भाषा का कोई भी स्वरूप सुरक्षित न रह सकता

था। अतएव भाषा के प्रसंग में लिपि की विशेषता अत्यधिक महत्त्व रखती है।

प्रश्न उठता है कि भाषा-वैभिन्य के साथ-साथ लिपि-वैभिन्य संसार में व्याप्त है, और प्रत्येक जाति और देश तथा प्रान्त के व्यक्तियों में अपनी लिपि के संबंध में एक मोह होना स्वाभाविक है। परन्तु विभिन्न भाषाओं और लिपियों का उद्भव और विकास केवल मोह की भूमि में ही नहीं हुआ, वरन् वे आवश्यकता-वश उत्पन्न और अंकुरित हुईं। इतिहास हमें बताता है कि प्राचीन काल में विभिन्न प्रदेशों, जातियों और राष्ट्रों के व्यक्ति एक दूसरे से बहुत कम संपर्क रख पाते थे, और एक दूसरे को समझने का उन्हें बहुत कम अवसर और सुविधायें प्राप्त हुई थीं। ऐसी दशा में अपने समुदाय, जाति, प्रदेश और राष्ट्र के लोगों के बीच आवश्यकता और सुविधा के अनुसार विभिन्न लिपियों का विकास होना एक स्वाभाविक बात थी। यह लिपि का विकास किसी भी जाति और राष्ट्र के लिए सांस्कृतिक दृष्टि से उसकी प्राचीनता का द्योतक है। जिन जातियों की संस्कृतियों का विकास प्राचीन काल में नहीं हुआ उनकी अपनी लिपियाँ भाषा होते हुए भी नहीं हैं, और उनको अपनी भाषा की विशेषताओं को स्थायी रखने के लिये पास पड़ोस के देशों या विजेता जाति की लिपि को स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार प्राचीन समय में लिपि-भिन्नता संपर्क की कमी के कारण उद्भूत हुई।

यदि हम देश और विदेश की विभिन्न लिपियों को एक स्थान पर रखें तो एक बड़ी रोचक प्रदर्शनी जैसी दिखाई देगी। ये लिपियाँ ध्वनि, भाव या वस्तुओं के संकेत-चिह्नों के रूप में विकसित हुईं। इनमें से जो लिपियाँ ध्वनि-संकेत-चिन्हों को अपनाकर चली हैं वे अधिक उपयोगी और व्यापक प्रचार को प्राप्त कर सकीं, क्योंकि उनमें कई विशेषतायें हमें प्राप्त होती हैं। एक विशेषता तो यह है कि उनके द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म ध्वनि-अंग को प्रकट किया जा सकता है। दूसरे, वे ध्वनि के आधार पर किसी व्यवस्था का पालन करती हैं। तीसरे, उनमें विभिन्न

ध्वनि-समूहों के अपने सजातीय वर्ग हैं जिन्हें स्पष्ट करने के एक-सरीखे चिह्न हैं। इन विशेषताओं के कारण विश्व की कुछ लिपियों का प्रचार सहज रूप में ही विशेष ढंग से हुआ।

लिपि-प्रचार का एकमात्र कारण उसकी सुविधा ही नहीं है, वरन् अन्य कारण भी हैं। जो जातियाँ अन्य जातियों पर विजय प्राप्त कर सकीं और अपना साम्राज्य विस्तार कर सकीं, उनकी लिपियों का भी विजेता और शासक जाति होने के कारण प्रचार और प्रसार हुआ। इस प्रचार और प्रसार का कारण कोई सुविधा नहीं थी, वरन् विवशता थी। इसी प्रकार व्यापारिक सुविधाओं के कारण भी कतिपय लिपियों का दूसरी लिपियों से अधिक विकास हुआ। इस विकास का एक और कारण भाषा की साहित्यिक समृद्धि भी है। जिस भाषा में अधिक साहित्यिक समृद्धि रही उस भाषा और लिपि को सीखने को लिए अन्य जातियों और देशों के लोग भी उत्सुक और लालायित रहे। इन विभिन्न कारणों से विश्व की अनेक लिपियों का विकास, प्रचार और प्रसार हुआ।

विश्व की विभिन्न लिपियों पर दृष्टिपात करने से हमारे सामने तीन चार लिपियाँ ऐसी मिलती हैं कि जो संसार के अनेक देशों में प्रचलित हुईं। इन लिपियों में रोमन, अरबी, देवनागरी, चीनी और रूसी लिपियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। चीनी लिपि का व्यापक जनसंख्या के द्वारा व्यवहार उसकी सुविधा और गुणों के कारण नहीं, वरन् उस देश की विस्तृत जनसंख्या के कारण है। विदेशों में थोड़ा बहुत जो उसका प्रचार हुआ वह राजनीतिक और साहित्यिक कारणों से हुआ। परंतु अपने देश के बाहर चीनी लिपि का प्रचार बहुत कम है। इसका मुख्य कारण उसकी कठिनता और चित्रात्मकता है। अरबी, फारसी लिपियाँ धर्म और राज्य-प्रसार के साथ फैलीं। यदि धर्म-प्रचार और राज्य-विस्तार ये कारण न होते, तो शायद सुविधाजनक विशेषताओं के कारण इनका प्रचार अधिक न होता। रूसी लिपि, रोमन लिपि का ही एक स्वरूप है, और उसका प्रचार राजनीतिक दृष्टिकोण से ही बढ़ा। रोमन

लिपि सर्वाधिक प्रचलित लिपि है, और उसके अतिव्यापक प्रचार के कई कारण हैं। पहला कारण तो अंग्रेजी राज्य का विस्तार है। एक समय था जब अंग्रेजी राज्य सारे विश्व में फैला था, और उसमें कभी सूर्य का अस्त नहीं होता था। स्वभावतः जहाँ-जहाँ शासन था वहाँ इस लिपि का प्रचार हुआ और इस विस्तृत विस्तार के कारण यह संसार में बहु प्रचलित लिपि हो गई। परन्तु, इसके प्रचार के और भी इस लिपि में अन्तर्भूत कारण हैं। ध्वनि की दृष्टि से यह लिपि पूर्ण नहीं है और वर्तनी की दृष्टि से भी इसमें काफी अव्यवस्था है। परन्तु, इन दोनों त्रुटियों का यथासंभव मार्जन करने का प्रयत्न बड़े वैज्ञानिक ढंग से किया गया है। इसका विकास आधुनिक युग में इस प्रकार हुआ है कि यह विश्व की सभी भाषाओं को लिपिबद्ध करने में समर्थ हो गयी है और अन्तरराष्ट्रीय-लिपि का स्वरूप भी इसने विकसित किया है। इस रोमन लिपि में यंत्रगत व्यवहार की सुविधा इसके प्रसार का एक प्रधान कारण रहा है। इस लिपि का प्रचार इस कारण भी हुआ कि अंग्रेज जाति का व्यापार विश्व के सभी देशों में फैला और यह एक व्यापारिक आदान-प्रदान की लिपि रही। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा का साहित्य भी बहुविध और समृद्ध है। ललित और वैज्ञानिक दोनों ही प्रकार के साहित्यों में यह भाषा अति संपन्न होने के कारण इसकी लिपि के साथ एक व्यवहारगत उपयोगिता का प्रलोभन भी लगा हुआ है।

पर यहाँ एक बात विचारणीय यह है कि अंग्रेजी-भाषियों ने अपनी रोमन लिपि को व्यावहारिक आवश्यकताओं के अनुसार तुरंत विकसित करने में बराबर तत्परता दिखाई। यह विकास उसके मूल रूप को नष्ट-भ्रष्ट किये बिना ही हुआ। इस प्रकार के विकास में अनेक भाषा-विज्ञानियों ने भी योग दिया। अतः हम कह सकते हैं कि पारस्परिक योग और विकास की तात्कालिक तत्परता के कारण एक अपरिपूर्ण लिपि सर्वाधिक अन्तरराष्ट्रीय व्यवहारोपयोगी लिपि के रूप में विकसित हो सकी है।

देवनागरी लिपि की कहानी ठीक इसके विपरीत है। यह विश्व के विद्वानों को मान्य है कि देवनागरी लिपि भाषान्तर्गत प्रयोगों में आने वाले अधिक से अधिक ध्वनि-चिह्नों से समृद्ध है। लगभग प्रत्येक ध्वनि के लिए इसके अन्तर्गत अलग-अलग चिह्न हैं और इसको सीखने पर फिर वर्तनी-संबंधी झंझटें मिट जाती हैं। स्पेलिंग याद करने की आवश्यकता नहीं रहती और इसके लिए शुद्ध उच्चारण ही पर्याप्त हैं। इसकी ध्वनियों का वर्गीकरण भी स्वर-व्यंजन तथा उच्चारण-स्थानों के आधार पर बड़े वैज्ञानिक ढंग पर किया गया है। विभिन्न ध्वनियों के चिह्न भी लगभग सभी ऐसे हैं कि जिससे दूसरे ध्वनि-चिह्नों का भ्रम उत्पन्न न हो। कहने का तात्पर्य यह है कि ध्वनि-संबंधी जितनी भी सुविधायें परिकल्पनीय हैं उनमें से अधिकांश देवनागरी लिपि में प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त देवनागरी लिपि का वर्तमान स्वरूप युगों के प्रयोगों पर आधारित विकास का प्रतिफल है। इसी कारण से उसके पीछे काफी दीर्घ-प्रयोग की परंपरा है। इसके साथ-साथ इस लिपि के द्वारा ही जिस साहित्य-भण्डार के भीतर प्रवेश किया जा सकता है वह संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, मराठी आदि भाषाओं का साहित्य-भण्डार बहुविध एवम् संपन्न है। यह सब होते हुए भी इसे आधुनिकतम कार्यों में प्रयुक्त करने में कुछ लोग हिच-किचाहट का अनुभव करते हैं। अधिकांशतः इसके दो कारण हैं। प्रथम तो किसी अन्य भाषा और विशेष रूप से रोमन लिपि के प्रति मोह और उसकी सुविधाओं का अभ्यास है और दूसरा देवनागरी लिपि को आधु-निकतम कार्यकलापों के लिए उपयोगी बनाने के व्यवस्थित वैज्ञानिक एवम् सामूहिक प्रयत्नों का अभाव है। विश्व के और अधिकांश भारतीय विद्वान् दे नागरी की सर्वाधिक सुविधापूर्णता और ध्वनि-संबंधी व्यवस्था की विशेषताओं को स्वीकार करते हैं। लेकिन फिर भी इस लिपि को व्यवहारोपयोगी बनाने का उत्तरदायित्व हमारा है और हमें इस दिशा में निश्चित कदम बढ़ाने चाहिये। अपेक्षाकृत कम वैज्ञानिक रोमन लिपि को समग्र आधुनिक व्यवहारों के लिए उपयुक्त लिपि का रूप दे दिया

गया और हमारे बहुत से भारतीय भी उसके व्यामोह में फँसे हुए हैं। परन्तु एक अत्यन्त वैज्ञानिक लिपि को कुछ परिमार्जित और विकसित करके विश्व की सर्वश्रेष्ठ लिपि के रूप में प्रतिष्ठित करने में हम प्रयत्न-शील नहीं है यह एक लज्जा की बात है।

इस प्रसंग में हमारी देवनागरी लिपि के सामने जो समस्याएँ हैं उनमें से प्रमुख का संकेत कर देना आवश्यक है। पहली बात है कि देवनागरी लिपि को समस्त यांत्रिक व्यवहार के अनुकूल बनाना। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि हम बहुत व्यापक और गहरे परिवर्तन उसमें करें। परन्तु उपयुक्त यंत्रों के निर्माण और उनके अनुरूप थोड़ा-बहुत परिवर्तन इस दिशा में अपेक्षित है। दूसरी बात, भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं में जितनी आधुनिक ध्वनियाँ हैं उन सबके लिए उपयुक्त लिपि-चिह्नों को निश्चित करना। इस प्रसंग में हमारी द्रविड़ भाषाओं में कतिपय ऐसी ध्वनियाँ हैं, जिनको वर्तमान देवनागरी लिपि-चिह्नों में प्रकट करना कठिन है। अत: उनके लिए सर्वमान्य चिह्नों की व्यवस्था करना, एक तात्कालिक आवश्यकता है। तभी हम देवनागरी लिपि को समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य के लिये प्रयुक्त कर सकेंगे। तीसरी बात, देवनागरी लिपि का कोई ऐसा स्वरूप तैयार करना कि जो संक्षिप्त स्वरूपों और सांकेतिक शब्दों या "कोड-वर्ड्स" के लिए व्यवहृत हो सके। चौथी बात, इस देव-नागरी लिपि पर आधारित अपनी स्वतंत्र आशु-लिपि का विकास करना। पाँचवीं बात, हस्तलिखित सामग्री के आधार पर देवनागरी लिपि की लेखन-लिपि का स्वरूप भी निश्चित करना। छठी बात, देव-नागरी लिपि के विभिन्न युगों के हस्तलेखों के आधार पर देवनागरी लिपि के प्रत्येक वर्ण का विकासात्मक स्वरूप स्पष्ट करना—आदि। इन समस्याओं पर विचार करना और व्यवस्थित रीति से कार्य करना हमारे लिए परमावश्यक है और इस प्रकार का कार्य हमारे आधुनिक युग और राष्ट्र की एक तात्कालिक माँग है।

इस दिशा में कार्य करने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे सामने अब तक जो भी कार्य देवनागरी लिपि के संबंध में हुआ हो, उसकी जानकारी हम प्राप्त करें और इस लिपि के संबंध में विभिन्न विद्वानों, मनीषियों और कार्यकर्ताओं के द्वारा जो भी विचार प्रकट किये गये हों उनको हम एकत्र कर सबके समक्ष प्रस्तुत करें। इसी प्राथमिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए तथा इस लिपि से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं तथा उनके समाधानों को स्पष्ट करने के लिए प्रस्तुत ग्रंथ का संपादन किया गया है। इस ग्रंथ की सामग्री को एकत्र करने में संपादकद्वय ने बड़ा परिश्रम किया है और अपना बहुमूल्य समय लगाया है। लगभग दस-बारह वर्षों के सामग्री-चयन और परिश्रम के उपरान्त प्राध्यापक डॉ० न० चि० जोगळेकर और डॉ० भगवानदास तिवारी ने इस ग्रंथ के अन्तर्गत लगभग समग्र प्राप्य सामग्री को एकत्र कर उसे समुचित रीति से व्यवस्थित किया है। अतः हमारी आज की समस्या के समाधान के निमित्त यह ग्रंथ एक आवश्यक ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत हो रहा है। निश्चय है कि यह सामग्री न केवल हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के विद्यार्थियों, पाठकों और विद्वानों के लिये उपयोगी होगी, वरन् पूर्वोल्लिखित संदर्भ में इसका तात्कालिक राष्ट्रीय महत्व भी है। इसी महत्व की ओर अधिक से अधिक ध्यान आकृष्ट करता हुआ मैं इस ग्रंथ को प्रस्तुत करने में एक आन्तरिक संतोष का अनुभव कर रहा हूँ और आशा करता हूँ कि अनेक दृष्टियों से यह ग्रंथ उपादेय सिद्ध होगा।

सागर विश्वविद्यालय, सागर

भगीरथ मिश्र

द्वितीय संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत रचना के संशोधित द्वितीय संस्करण को पाठकों के समक्ष रखने में हम बड़े हर्ष और गौरव का अनुभव करते हैं।

इस ग्रंथ की लोकप्रियता का रहस्य इसका प्रतिपाद्य विषय और इसमें निरूपित तथ्य ही हैं, जिनसे प्रेरित हो भारत के अनेक विश्वविद्यालयों ने इस पुस्तक को उच्चस्तरीय परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में निर्धारित किया है। एतदर्थ हम सम्बन्धित विश्वविद्यालयों की पाठ्यक्रम-समितियों के सदस्यों के कृतज्ञ हैं।

शासकीय रिपोर्टों में भी इस रचना का मुक्त उपयोग[1] हुआ है, जो इस रचना के शैक्षणिक व साहित्यिक मूल्यों के अतिरिक्त तकनीकी महत्व का प्रमाण है।

इसके प्रथम संस्करण में मोडी लिपि पर कोई लेख नहीं था अत: इस संस्करण में उस अभाव की पूर्ति कर दी गई है, फलत: डॉ० कृ० गं० दिवाकर, एम्० ए०, पीएच्० डी० हिन्दी-विभाग, पूना विश्वविद्यालय, पूना–७, द्वारा लिखित "मोड़ी लिपि और उसका स्वरूप" लेख प्रस्तुत संस्करण में जोड़ दिया गया है। सुहृद होने के नाते डॉ० दिवाकरजी को औपचारिक 'धन्यवाद' देना हम अपने स्नेह की प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते हैं।

अन्तर्भारतीय परिशिष्ट में 'बन्धना पलिकडे' के स्थान पर मराठी-संत ज्ञानेश्वर की रचना 'पसायदान' ले ली गई है। शेष रचनाओं का क्रम प्रायः यथावत् है।

आशा है, यह संशोधित संस्करण पाठकों को लाभप्रद होगा।

१० मई, १९६७। —न० चिं० जोगळेकर.

—भगवानदास तिवारी.

---

1. 'I have made liberal use of the work of N. C. Joglekar and Bhagwandas Tiwari on the Devanagari Script"—Typography of Devanagari : Report of the Directorate of languages Government of Maharashtra, Bombay, 1965. Acknowledgements. Page ix.

प्रथम संस्करण की भूमिका

भारतवर्ष में धर्म-जाति, आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-नीति तथा भाषा एवम् लिपि की अनेकता विद्यमान है, फिर भी युग-युगों के संघर्ष में इस देश की सांस्कृतिक एकता अविच्छिन्न और अक्षुण्ण बनी हुई है। हमारे राष्ट्रीय उत्थान-पतन की विविध विधाओं में जो भाव-जगत की सूक्ष्म अंतश्चेतना और आन्तरिक सामंजस्य पाये जाते हैं, उससे हमारे मन्तव्य की पुष्टि हो जाती है। हमारी भावना, अनुभूति, कल्पना और विचारसरणी के उद्भव की मानसिक प्रक्रिया वैयक्तिकता और जातीयता से चाहे कितनी ही अनुप्राणित क्यों न हो, किन्तु मानवीय दृष्टि से अभिव्यंजना के क्षेत्र में भाषा अपनी संपूर्ण विविधता के साथ केवल हमारी भावभूमि की उपज और मानसिक चेतना की उद्भावना मात्र है। वह हमारे लिये वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम है, मानवीय ज्ञान-गरिमा की महिमा का अभिव्यंजक साध्य नहीं, साधन है, अतः आधुनिक संघर्षशील युग में, भारतीय मनीषियों द्वारा किये गये राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि विषयक चिन्तन-क्षेत्र का चित्रण, और भारतीय संस्कृति के स्वानुभूत शाश्वत सत्य की अभिव्यंजना हमारा राष्ट्रीय दायित्व और सांस्कृतिक कर्त्तव्य है।

भारतीय संविधान के अनुसार स्वीकृत की गयी सभी भाषाओं में आजकल जो प्रान्तीयता अथच संकीर्णता का आविर्भाव हुआ है, उसे हम भारत की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता के लिए भारी खतरा मानते हैं। सच तो यह है कि भारतीय भाषाओं के सांकेतिक, लिखित और मौखिक स्वरूपों में देश, काल और वातावरण-सापेक्ष अनेक अंतर हैं, इसीलिये एक ही भाव या विचार को विविध भाषा-भाषी जनों द्वारा विविध रूपों में व्यक्त किया जाता है। भाषावाद की यह संकीर्ण परिधि हमारी जातीय चिंतन धारा, राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक एकता के

बीच भारी व्यवधान बन गयी है, किन्तु हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकारते ही राष्ट्र लिपि की एकता का प्रश्न सारे देश की जनता और विद्वत्समाज के समक्ष आ उपस्थित हुआ है और उसके निराकरणार्थ विद्वान् विचारकों, भाषाशास्त्रियों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, राजनैतिक नेताओं, हिन्दी-प्रचार-संस्थाओं और देशी तथा विदेशी विद्वानों ने एक मत से राष्ट्रलिपि देवनागरी की शास्त्रीयता, व्यावहारिकता, व्यापकता एवम् श्रेष्ठता को स्वीकार किया है ।

अब हमें अपना कर्तव्य निश्चित करना है और यह समझ लेना है कि राष्ट्रलिपि देवनागरी की समस्या साम्प्रदायिकता या वर्गभेद की समस्या नहीं है । लिपि के प्रश्न को राजनैतिक समस्या की हलचल बनाना भी अनुचित है, क्योंकि राजनीतिक दलदल में भाषा और लिपि का प्रश्न पक्षपातपूर्ण दृष्टि से देखे जाने के कारण विभाजक अधिक और संयोजक कम हो जायगा । वास्तव में यह प्रश्न विशुद्ध, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक प्रश्न है, जिसका सारे भारतवासियों से सीधा संबंध है ।

भारतवर्ष के गौरवशाली अतीत को स्वर्णिम भविष्य की कड़िमों से जोड़ने के लिये लड़खड़ाते हुए वर्तमान में हम सम्पूर्ण देशवासियों के समक्ष यह सम्पादित ग्रंथ प्रस्तुत कर रहे हैं । इसमें देश के विभिन्न अंचलों के विविध भाषा-भाषी विद्वानों के लेख संगृहीत हैं, जिनमें नेता, विद्वान् और साहित्यकार सभी सम्मिलित हैं ।

दिवंगत विद्वानों में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, बाबू शारदाचरण मित्र, श्री रमेशचन्द्र दत्त, श्री बाबूराव विष्णु पराडकर, आचार्य नरेन्द्रदेव, पं० रविशंकर शुक्ल, पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पं० केशवप्रसाद मिश्र, आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल, बाबू श्यामसुन्दरदास, श्री० बा० गं० खेर, श्री० शं० दा० चितले, श्री० न० चिं० केलकर आदि के लेख यहाँ संगृहीत हैं । हम इन महान् व्यक्तियों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, जिनके विचार आज भी हमें प्रकाश दे रहे हैं ।

वर्तमान विचारकों और विद्वानों में विशेष रूप से महामहिम डॉ. राजेंद्रप्रसाद, डॉ० राधाकृष्णन, आचार्य विनोबा भावे, श्री० न० वि० गाडगील, स्वातंत्र्यवीर वि. दा. सावरकर, श्री. काकासाहेब कालेलकर आदि के प्रति हम आभारी हैं, जिनके बहुमूल्य विचारोंसे इस पुस्तक की प्राण-प्रतिष्ठा हुई है। इसके अतिरिक्त डा. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. रघुवीर, श्री. के. का. शास्त्री, पद्मभूषण डॉ. रा. ना. दांडेकर, डॉ. ए. एम्. घाटगे, डॉ. ना. गो. कालेलकर, डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. कृष्णदत्त बाजपेयी, डॉ. रा. प्र. पारनेकर, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, श्री. जेठालाल जोशी, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. चन्द्रभान रावत, डॉ. म. त्र्यं. सहस्रबुद्धे, श्री. मो. क. सत्यनारायण, श्रीमती अंबु जम्माल, पं० हृषिकेश शर्मा, श्री सुरेशचन्द्र त्रिवेदी, श्री दशरथ चे. आसनानी, श्री राजनारायण मौर्य, श्री. शं. रा. दाते आदि के हम विशेष कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं से प्रस्तुत पुस्तक को बहुमूल्य बनाया है। मेजर एन. बी. गद्रे के "चीनी लिपि का देवनागरी में रूपान्तरण" लेख का हिन्दी में अनुवाद कर डॉ. म. सी. करमरकर हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी ने हमें उपकृत किया है, जिनके हम बड़े आभारी हैं।

साथ ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग के अधिकारियों के प्रति हम विशेष कृतज्ञ हैं, जिन्होंने "वर्तमान अक्षरों की उत्पत्ति और देवनागरी लिपि" नामक स्व. रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा और स्वर्गीय पं० केशवप्रसाद मिश्र के लेखों को प्रकाशित करने की स्वीकृत प्रदान की। इसके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, केसरी संस्था एवं महाराष्ट्र साहित्य परिषद पूना, भारतीय हिन्दी परिषद्, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा आदि संस्थाओं के भी हम अत्यन्त ऋणी हैं, जिनका सामयिक सहयोग इस ग्रंथ के लिए उपादेय सिद्ध हुआ है। इस ग्रंथ के गुणों का श्रेय विद्वान् लेखकों को ही है। यदि इसमें कोई त्रुटियाँ रह गयी हैं तो हमारी हैं। हम अपने सुधी पाठकों से उनके लिए क्षमा-याचना करते हैं। श्रद्धेय

गुरुवर आचार्य नंददुलारेजी वाजपेयी एवम् डॉ. भगीरथजी मिश्र के प्रति हम अपनी कृतज्ञता कैसे प्रकट करें ? यदि श्री वाजपेयी जी ने अपना आशीर्वचन न दिया होता तो पुस्तक की पूर्णता में और भी बाधायें उपस्थित होतीं। पुस्तक के लिए एक विशिष्ट लेख देकर तथा इसकी भूमिका लिखकर श्रद्धेय डॉ. मिश्रजी ने हमारे उत्साह को ही नहीं बढ़ाया, वरन् समय-समय पर पुस्तक को सर्वांगीण सुन्दर बनाने के लिए योग्य मार्गदर्शन भी किया है अतः इसके लिए उनके प्रति जितनी ही कृतज्ञता प्रकट की जाय, उतनी ही थोड़ी है।

हिंदी-साहित्य-भंडार, लखनऊ के संचालक श्री तेजनारायण जी टंडन ने अनेक पारिवारिक और प्रकाशन-सम्बन्धी कठिनाइयों के होते हुए भी इस रचना को इतना सर्वांग सुन्दर बनाने का जो अथक परिश्रम किया है, उसके लिए उनको अनेक साधुवाद देते हैं।

हमें विश्वास है कि यह ग्रंथ राष्ट्रलिपि देवनागरी के साथ राष्ट्र-भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में संपूर्ण देशवासियों को सोचने-समझने और यथोचित आचरण के लिये सत्प्रेरणा देगा, जिसके फलस्वरूप हमारी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता को बल मिलेगा। यदि इस दिशा में हमारे इस अकिंचन प्रयास-द्वारा विविध भाषा-भाषी भारतीय जनों को एक साथ चलने और राष्ट्र-निर्माण में कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने की कुछ भी प्रेरणा मिली, तो हम अपने इस प्रयत्न को सफल समझेंगे।

अन्त में मुद्रण-सम्बन्धी त्रुटियों के लिए क्षमा चाहते हुए—

विनयावनत

शरद्-पूर्णिमा, संवत २०१९
दिनांक १३ अक्टूबर, १९६२

न० चि० जोगळेकर
भगवानदास तिवारी

विषयानुक्रम

अध्याय—१

देवनागरी लिपि का स्वरूप

अध्याय—२

देवनागरी लिपि का विकास

अध्याय—३

देवनागरी लिपि की भाषा-सम्बन्धी समस्याएं

अध्याय—४

देवनागरी लिपि की यान्त्रिक समस्याएं

अध्याय—५

देवनागरी लिपि : सुधार और समीक्षा

अध्याय—६

निष्कर्ष

परिशिष्ट

अध्याय १

देवनागरी लिपि का स्वरूप

१ : देवनागर अन्योक्ति[1]

होत सुगन्धित पवन स्वास्थ्यमय
अति हितकर मन भावत।
इतर पास-तरु करत सुवासित
सिगरी ताप - नसावत ।।
एकाकार कीन्ह बहु लिपि कहँ
त्यों सुरलिपि शुभ वन्दन।
'सुर नागर' साहित्य-सृष्टि में
भौ मलयागिरि - चन्दन ।।
ह्वै प्रफुल्ल लाली प्रसरावत
सरवर सुन्दर शोभित।
तिहि पराग ह्वै पवन दूतिका
अलिगन करत विमोहित ।।
त्यों गुनीन कहँ करत मुदित यह
भारत - हित अति सुखकर।
'सुरनागर' धौं साहित - सर में,
विकसो मनहर पुष्कर' ।।

—सैयद अमीर अली मीर

---

१. न्यायमूर्ति शारदाचरण मित्र द्वारा सम्पादित 'देवनागर' से उद्धृत।

२ : राष्ट्रलिपि देवनागरी

—लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

[भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि की आवश्यकता पर लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने श्री रमेशचन्द्रदत्त के सभापतित्व में दिसम्बर सन् १९०५ को काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित एक परिषद के समक्ष, जो भाषण दिया था, वह मद्रास की गणेश एण्ड कम्पनी द्वारा 'इण्डियन नेशन बिल्डर्स, भाग—२, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ क्रमांक १७५-१८२' पर "ए स्टेण्डर्ड केरेक्टर फॉर इण्डियन लैंग्वेजेज" शीर्षक के अन्तर्गत अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हुआ था। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने उसका हिन्दी अनुवाद 'सम्मेलन-पत्रिका' में प्रकाशित कराया था, जिसका कुछ अंश "राष्ट्रभाषा" पत्रिका में मई १९५३, वर्ष १२, अंक ७ में पृष्ठ क्रमांक २६५ से २६८ तक पुनर्मुद्रित किया गया था। वही अंश यहाँ दिया जा रहा है।]

भारतीय आर्य भाषाओं और देवनागरी लिपि की मूलभूत एकता

सबसे पहली और महत्वपूर्ण बात, जिसका हमें ध्यान रखना है, यह है कि यह आन्दोलन उत्तर भारत में केवल एक सर्वमान्य लिपि के प्रचार के लिए नहीं है। यह तो उस बृहद्तर आन्दोलन का एक अंग है, जिसे मैं राष्ट्रीय आन्दोलन कहूँगा और जिसका उद्देश्य समस्त भारतवर्ष के लिये एक राष्ट्रीय भाषा की स्थापना करना है, क्योंकि सबके लिये समान भाषा राष्ट्रीयता का महत्वपूर्ण अंग है। समान भाषा के द्वारा ही हम अपने विचार दूसरों पर प्रकट करते हैं। मनु ने ठीक ही कहा है कि संसार की हर एक वस्तु वाक्य के अन्तर्गत है, और वाक्य से ही उत्पन्न होती है। अतएव यदि आप किसी राष्ट्र के लोगों को एक-दूसरे के निकट लाना चाहें तो सबके लिये समान भाषा से बढ़-

कर सशक्त अन्य कोई बल नहीं है और वही लक्ष्य है जो सभा ने अपने सम्मुख रखा है ।

हमने संकल्प किया है—एक-एक सीढ़ी बढ़ें और जैसा कि सभापति महोदय बता चुके हैं, हमने पहले संस्कृत से निकली आर्य भाषाओं को हाथ में लिया है । ये भाषाएँ हिन्दी, बँगला, गुजराती, मराठी और गुरुमुखी हैं और भी कई उपभाषाएँ हैं, पर मैंने, जो मुख्य हैं, उन्हीं का नाम लिया है। ये भाषाएँ संस्कृत से उद्भूत हैं और जिन लिपियों में वे लिखी जाती हैं वे भी भारत की प्राचीन लिपि से निकली हैं । समय पाकर इनमें से प्रत्येक भाषा ने व्याकरण, उच्चारण और लिपि-सम्बन्धी अपनी विशेषताओं का विकास कर लिया, यद्यपि हर एक की वर्णमाला लगभग वही है ।

केवल प्राचीनता ही किसी लिपि की श्रेष्ठता का आधार नहीं होती

नागरी प्रचारिणी सभा का उद्देश्य है कि इन सब आर्य भाषाओं के लिए एक लिपि हो । यदि कोई पुस्तक उस लिपि में छापी जाय तो वह समस्त आर्य भाषा-भाषी जनता के लिए सुगम हो । मेरे विचार में हम सभी इस विचार से सहमत हैं और इसकी उपयोगिता स्वीकार करते हैं, किन्तु जब हम सबके लिए किसी एक लिपि का सुझाव करने लगते हैं तो कठिनाई उत्पन्न होती है । उदाहरण के लिये बंगाली कह सकते हैं कि बँगला लिपि गुजराती या मराठी से अधिक प्राचीन है और वही सबके लिये बरती जानी चाहिए । दूसरे लोगों का कहना है कि देवनागरी लिपि, जिसमें प्रायः पुस्तकें छपती हैं, सबसे प्राचीन लिपि है और आर्य भाषाओं के लिये वही समान लिपि होने योग्य है ।

मेरे विचार में केवल इतिहासगत कारणों से इस प्रश्न का निपटारा नहीं होगा । अशोक के समय से भिन्न-भिन्न युगों में प्रमुख प्राचीन अभिलेखों में कम से कम १० प्रकार की लिपियाँ मिलती हैं, जिनमें खरोष्ठी और ब्राह्मी सबसे प्राचीन हैं, क्योंकि सभी अक्षरों के रूपों में अब बहुत अधिक परिवर्तन हो चुका है और हमारी सभी लिपियों का प्राचीन वर्णों से उद्गम हुआ है, अतएव मेरे मत से समान लिपि के प्रश्नों को केवल प्राचीनता के आधार पर हल करना ठीक न होगा ।

सामान्य लिपि के स्वरूप की रूपरेखा

इस झंझट से बचने के लिये कुछ लोगों ने यह सुझाया कि हम सब रोमन लिपि अपना लें और उसके समर्थन में यह भी कहा गया कि इस प्रकार सारे योरप और एशिया के लिए एक ही लिपि चल जायगी।

सज्जनो ! मेरी दृष्टि में यह सुझाव बिलकुल शेखचिल्ली का-सा है। रोमन वर्णमाला और रोमन लिपि भी अत्यन्त दोषपूर्ण है और जिन ध्वनियों का हम प्रयोग करते हैं, उन्हें लिखने में नितान्त असमर्थ है। रोमन लिपि में वर्ण और उनकी ध्वनियाँ सुनिश्चित नहीं हैं।[1] व्यावहारिकता और वैज्ञानिक दृष्टि से राष्ट्रलिपि एक होना चाहिये। जैसे लॉर्ड कर्जन ने सारे देश के लिये प्रमाणित समय (Standard time) प्रचलित किया है, वैसे ही हम एक प्रमाणित लिपि चाहते हैं। यदि कहीं लॉर्ड कर्जन ने राष्ट्रीय दृष्टि से हमारे लिये प्रमाणित लिपि देने का प्रयत्न किया होता तो वे हमारे धन्यवाद के कितने अधिक भागी होते, किन्तु ऐसा नहीं किया गया और अब हमें स्वयं अपनी प्रान्तीय संकीर्णताओं को त्यागकर ऐसा करना होगा। बंगालियों को अपनी लिपि पर स्वाभाविक गर्व है, मैं इसके लिये उन्हें बुरा नहीं कहता। दूसरी ओर गुजरात के लोग अपनी लिपि को सरल बताते हैं क्योंकि उसमें शिरोरेखा नहीं होती। महाराष्ट्र के लोग कहते हैं कि मराठी ही वह लिपि है, जिसमें संस्कृत लिखी जाती है, अतएव समस्त भारत के लिये वही समान लिपि होनी चाहिए।

मैं इन कथनों के सार को पूरी तरह समझता हूँ, परन्तु हमें तो प्रश्न के हल पर पहुँचना है और इसलिये व्यावहारिक और क्रियात्मक ढंग से उस पर विचार करना है। जो भी लिपि हम अपनायें वह लिखने में सरल, देखने में सुन्दर तथा शीघ्रता से लिखी जाने योग्य होनी चाहिये। विभिन्न आर्य भाषाओं की जितनी ध्वनियाँ हैं, वे सब आपकी वर्णमाला में व्यक्त होनी चाहिये और उससे भी आगे द्रविड़ भाषाओं की ध्वनियाँ भी अतिरिक्त चिह्नों के बिना प्रगट होनी चाहिये। एक ध्वनि के लिये एक वर्ण होना आवश्यक है और वैसे ही एक

---

१. विशेष जानकारी के लिये देखिये—"भारतीय लिपियों का प्रमाणीकरण" सप्तम अनुच्छेद, विश्व की सर्वश्रेष्ठ शास्त्रीय लिपि देव-नागरी। पृष्ठ ......

वर्ण के लिये एक ध्वनि। समर्थ और परिपूर्ण लिपि से मेरा तात्पर्य यही है; और यदि हम मिलकर विचार करें तो अपनी वर्तमान लिपियों के आधार पर ऐसी लिपि तैयार करना कठिन न होगा। इस प्रकार की लिपि तैयार करते समय यह तथ्य सामने रखना होगा कि कौन से वर्ण कितने अधिक क्षेत्र में प्रचलित हैं, क्योंकि स्वभावतः वह वर्ण जो अधिक क्षेत्र में व्यापक है, यदि अन्य दृष्टियों से उपयुक्त है तो समान लिपि में स्वीकार करने योग्य होगा।

सामान्य लिपि के स्वरूप-निर्धारण और प्रयोग की विधि

जब आप इसके लिये समिति नियुक्त कर दें और वह समान लिपि का निश्चय कर दे, तब मैं समझता हूँ—हमें सरकार से यह आग्रह करना होगा कि वह प्रत्येक प्रान्त की पाठ्य पुस्तकों में समान लिपि में कुछ पाठ छापना आरम्भ कर दे, जिससे आनेवाली पीढ़ी आरम्भ से ही उससे परिचित हो जाय। नयी लिपि सीखना कुछ कठिन नहीं होता किन्तु अध्ययन समाप्त कर लेने के बाद नयी लिपि के विरुद्ध एक प्रकार की अनिच्छा उत्पन्न हो जाती है। इसका उपाय मैंने ऊपर सुझाया है और इस काम में सरकार हमारी मदद कर सकती है। यह कोई राजनीतिक प्रश्न नहीं है, यद्यपि अन्ततः प्रत्येक बात राजनीति का ही अंग कही जा सकती है। जिस शासन ने देश-भर के लिये नाप-तौल की एक पद्धति प्रचलित की, मेरे विचार में वह सब आर्य भाषाओं के लिये एक प्रमाणित लिपि चालू करने में सहायक होने में आपत्ति न करेगी।

३

रोमन और देवनागरी लिपि

यूरोप में कई देश और कई भाषायें हैं पर उन सबकी एकमात्र रोमन लिपि होने से सारे सुशिक्षित लोगों के विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान, तथा विभिन्न भाषाओं का अध्ययन सहज और सुलभ हो सका है। उसी प्रकार यदि भारत में भी सभी आर्य एवम् अनार्य परिवार की भाषाओं के लिए एक लिपि हो तो भारतीय जनता की एकता और ज्ञान का अन्तरप्रान्तीय आदान-प्रदान सुगम हो जावेगा।

तिलक

४ : देवनागरी लिपि-सम्बन्धी ऐतिहासिक वार्तालाप

—न० चिं० केलकर

[नागरी प्रचारिणी सभा के भूतपूर्व मंत्री डॉ० श्यामसुन्दर दास, लोकमान्य तिलक और मराठी के साहित्य-सम्राट न० चिं० केलकर जी के बीच देवनागरी लिपि के सम्बन्ध में दिनांक १३-५-१९०५ को जो विचार-विमर्श हुआ था, उसका उल्लेख श्री न० चिं० केलकर ने अपने सुविख्यात ग्रंथ 'तिलक चरित्र' खण्ड २ में पृ० ४४ पर अंकित किया है। यह संस्मरणीय संवाद श्री न० चिं० केलकर जी के निवासस्थान पर हुआ था। मूल संवाद का हिन्दी रूपान्तर यहाँ अवतरित किया गया है।]

लोकमान्य तिलक—देवनागरी लिपि के द्वारा मराठी की तरह गुजराती, बंगाली आदि भाषाएँ लिखना संभव होगा तो देश के विषय का बहुत कुछ कार्य सुलभ हो जावेगा। यदि एक भाषा न हो, एक लिपि भी यदि हो जाय तो कम लाभ न होंगे। एक भाषा का होना राष्ट्रीयत्व का निदर्शक है। इस विषय में जैसा आप (डा० श्यामसुन्दर दास जी की ओर इंगित करते हुए) कहते हैं, लोगों के प्रयत्न से अधिक लाभ नहीं होगा। सरकार से सहायता मिलनी चाहिये। पाठ्य-क्रम की पुस्तकों में इस लिपि को चलाये जाने पर बचपन से ही बच्चों को गुजराती, बंगला, हिन्दी आदि भाषाओं का ज्ञान होगा और आगे चलकर उन भाषाओं को सीखने की उनकी प्रवृत्ति अपने आप हो जायगी।

डॉ० श्यामसुन्दर दास—(कुछ सोचते हुए) मराठी, गुजराती, हिन्दी, बंगाली आदि भाषाओं की यदि एक मासिक पत्रिका या कोई समाचार-पत्र प्रकाशित किया जाय, जो देवनागरी लिपि में छपे, तो भी बहुत लाभ होगा।

न० चिं० केलकर—(सहमति सूचक सिर हिलाकर चिंतक की मुद्रा में सुझाव देते हुए)—उपयोग होगा! किन्तु यदि इसके बदले एक ही लेख

देवनागरी लिपि में अनेक भाषाओं का छापा जाय तो और भी अधिक लाभ होगा। (कुछ रुककर) देखिए ! मैं भी थोड़ी-थोड़ी बंगला जानता हूँ, पर अब उसे भूल भी रहा हूँ। अब यदि यही भाषा देवनागरी में प्रचलित होती तो बंगाली पढ़ने की ओर अधिक प्रवृत्ति हो गई होती।

लोकमान्य तिलक—(दुविधा में उलझते हुए) हाँ, हाँ, यह भी सच है। सरकार तो कोई प्रयत्न करती नहीं, इसलिए कम से कम जनता को चाहिए कि वह इस बात को करे। (आश्चर्य से) किन्तु लोगों का ऐक्य इस बात पर हो तब न ? और उन पर भरोसा किया जाय तो किस बूते पर ? (डॉ० श्यामसुन्दर दास, और न० चिं० केलकर विचार-मग्न हो एक दूसरे की ओर देखने लगते हैं।)

लोकमान्य तिलक—(समस्या की गंभीरता पर प्रकाश डालते हुए) बंगालियों का कहना है कि हमारी (मराठी की) देवनागरी लिपि अपभ्रष्ट लिपि है, और उनकी लिपि ही असली देवनागरी लिपि है। उनका यह कथन एकमात्र असत्य नहीं है क्योंकि पुराने शिलालेखों के अक्षरों की आकृति देखने पर इस बात का पता चलता है कि शिलालेखों की पुरानी लिपि बंगाली लिपि से बिलकुल मिलती-जुलती है। चाहे जो भी कारण क्यों न हो, देवनागरी का आज प्रचार एवम् प्रसार होना चाहिये। सार्वभौम सरकार यदि इस ओर ध्यान नहीं देती तो कोई बात नहीं। कम से कम बहुभाषी बड़ौदा जैसे संस्थानों (रियासतों) में तो जहाँ गुजराती, मराठी आदि दो-तीन भाषाएँ चलती हैं, वहाँ के संस्थानिकों को चाहिए कि वे उनके राज्य में कम से कम देवनागरी लिपि चलाने का प्रयत्न करें।

---

५ : देवनागरी लिपि के संबंध में यह स्मरण रखें

—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

[डॉ० धीरेन्द्र, देश-विख्यात साहित्य-मनीषी, महान विचारक और सुपरिचित भाषा-विद् हैं। हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के स्वरूप, विकास और शास्त्रीय पक्ष के सम्बन्ध में उनके विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । उन्होंने भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में जो कार्य किया है, उससे भारतीय और पाश्चात्य भाषा-शास्त्र की चिन्तन-परम्परा को बड़ा बल मिला है। 'देवनागरी लिपि : स्वरूप, विकास और समस्याएँ' ग्रंथ के लिए उन्होंने प्रस्तुत निबंध में अपने स्फुट विचार संकलित किये हैं। यह विशेष लेख इसी ग्रंथ के लिए लिखा गया है। वर्मा जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष थे और अब काशी नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में 'हिन्दी विश्वकोष' का संपादन कर रहे हैं।]

१—देवनागरी आधुनिक भारतवर्ष की प्रधान लिपि है जिसमें हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत तथा मराठी भाषाएँ भी साधारणतया लिखी जाती हैं।

२—यह निश्चित है कि अपने देश में निकट भविष्य में शतप्रतिशत साक्षरता हो जावेगी। ऐसी स्थिति में ४० करोड़ भारतवासियों में से लगभग २० करोड़ देवनागरी लिपि का निरंतर प्रयोग करेंगे।

३—भारतवर्ष की प्राचीनतम राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी से समस्त आधुनिक भारतीय लिपियाँ विकसित हुई हैं। देवनागरी लिपि, गुप्त तथा कुटिल लिपियों के माध्यम से, ब्राह्मी लिपि की निकटतम उत्तराधिकारिणी है।

४—उपर्युक्त कारण से समस्त आधुनिक भारतीय लिपियाँ देवनागरी से कम या अधिक मिलती-जुलती हैं। गुजराती, बंगाली, असमी, तथा गुरुमुखी लिपियों और देवनागरी में बहुत अधिक साम्य है। उड़िया तथा दक्षिण

भारत की लिपियों का उदगम भी ब्राह्मी है, किंतु दूरी तथा ताड़पत्र पर लिखने के कारण इसकी लिखावट में कुछ अधिक भेद हो गया। तो भी इनमें और देवनागरी लिपि में वर्णमालाक्रम और अक्षरों के रूप में बहुत कुछ साम्य है।

५—प्राचीन भारत की खरोष्ठी लिपि के समान आधुनिक भारत में विदेशी शासन के साथ दो विदेशी लिपियों का चलन हुआ—१. उर्दू लिपि तथा २. रोमन लिपि। उर्दू लिपि वास्तव में अरबी लिपि का संशोधित रूप है। अँग्रेजी भाषा के कारण देश में प्रधान यूरोपीय लिपि रोमन का प्रचार हुआ। सुल्तानों, मुगलों तथा अँग्रेजों के साम्राज्य समाप्त हो जाने के कारण इन विदेशी लिपियों का अब पहले जैसा महत्व देश में नहीं रह गया है।

भारतीय भाषाओं में उर्दू तथा काश्मीरी, उर्दू लिपि का प्रयोग करती हैं। भारतीय राष्ट्रीयता को पुष्ट करने की दृष्टि से अच्छा यह होता कि ये दोनों भाषाएँ भी अब विदेशी लिपि छोड़कर देवनागरी अथवा किसी अन्य भारतीय लिपि को अपना लेतीं। ऐसा करने से ये शेष १२ प्रधान भारतीय भाषाओं के निकट आ जातीं।

अँग्रेजी भाषा उसी तरह देवनागरी लिपि में लिखी जा सकती है जैसे अँग्रेजी के यूरोपीय अथवा भारतीय विद्वान् संस्कृत, पाली अथवा हिंदुस्तानी आदि के लिये रोमन लिपि का प्रयोग करते रहे हैं। यों एक-दो भिन्न विदेशी लिपियों का सीख लेना हितकर ही होता है।

६—भारतवर्ष की समस्त भाषाएँ एकमात्र देवनागरी लिपि में लिखी जायँ यह संभव और उचित नहीं मालूम होता है। किन्तु अन्य भारतीय लिपियों का प्रयोग करने वाली नई पीढ़ी के बच्चों को देश की प्रधान लिपि देवनागरी भी सिखला दी जावे, यह हर तरह से हितकर होगा।

७—इस बात का भी प्रयत्न होना चाहिए कि भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं, जैसे तमिल, उड़िया, बंगाली, गुजराती, उर्दू आदि के प्रमुख ग्रंथों के देवनागरी संस्करण भी उपलब्ध हों। इस प्रकार देवनागरी लिपि के माध्यम

से समस्त भाषाओं की महत्वपूर्ण रचनाओं का अन्य भाषा-क्षेत्रों में आसानी से प्रचार हो सकेगा ।

८—सबसे अधिक आवश्यक यह है कि अँग्रेजी लिपि का अनावश्यक मोह छोड़कर अँग्रेजी पढ़े-लिखे भारतवासी नित्य प्रति के व्यवहार में देवनागरी अथवा अन्य भारतीय लिपियों का प्रयोग करने की आदत डालें । भारतीय रेल, तारघर, डाकखानों, कार्यालयों, बाजारों, स्कूलों, कालिजों, युनिवर्सिटियों में अँग्रेजी लिपि के प्रयोग की अब कोई आवश्यकता नहीं रह गई है । अँग्रेजी लिपि के स्थान पर अब देवनागरी लिपि अथवा अन्य भारतीय लिपियाँ दिखलायी पड़नी चाहिये ।

६ :

देवनागरी लिपि

—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

[प्रस्तुत लेख आचार्य विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र के विचारों पर आधारित है। आप हिन्दी-साहित्य के मूर्धन्य चिन्तकों और विद्वानों में से एक हैं। मिश्रजी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, घनानन्द-ग्रंथावली, बिहारी की वाग्विभूति, वाङ्मय विमर्श, आदि कई पुस्तकों के सुविख्यात संपादक तथा नागरी प्रचारिणी सभा काशी के उद्भट विद्वान, अनुसंधायक तथा हिन्दी और देवनागरी के कट्टर समर्थक हैं।]

देवनागरी नाम कैसे पड़ा ?

"नागरी" शब्द देवनागरी लिपि के लिए कैसे रूढ़ हुआ ? इस विषय में कई मत प्रचलित हैं। नगरों में चलने वाली लिपि 'नागरी' कहलाई। नागर ब्राह्मणों से भी उसका सम्बन्ध जोड़कर उसे 'नागरी' कहते हैं। नागर ब्राह्मण गुजरात में रहते हैं। वस्तुतः नागरी लिपि का क्षेत्र उत्तरापथ है। कुछ लोगों के मतानुसार प्राचीन काल में देव मूर्तियों की पूजा चलने के पूर्व देवताओं की पूजा 'यंत्रों' में सांकेतिक प्रतीकों (चिह्नों) द्वारा होती थी। ये यंत्र त्रिकोण, चक्र आदि के रूप में होते थे, जिन्हें देवनगर कहते थे। इनमें वे प्रतीक मध्य में लिखे जाते थे। कालान्तर से 'देवनगर' में लिखे हुए प्रतीक उनके नामों के पहले अक्षर माने जाने लगे। इस प्रकार देवनागरी नाम चल पड़ा। फिर "देव-नागरी" से 'देव' हट जाने पर वह केवल "नागरी" रह गया। नागरी का उल्लेख जैन ग्रंथ, नन्दिसूत्र में सबसे पहले मिलता है, जो जैनों के अनुसार ईसा पूर्व ४५३ का लिखा माना जाता है। तांत्रिक काल में तो यह नाम अवश्य प्रसिद्ध था। नित्य षोडशिकार्णव की 'सेतुबंध' टीका के कर्त्ता भास्करानन्द ने 'नागर लिपि' पद का व्यवहार किया है। देखिये:—

"कोणत्रय वदुद्भवो लेखो यस्य तत्। नागर लिप्या
सांप्रदायि कैरेकारस्य त्रिकोणा कारतयैव लेखनात्।"

इसी प्रकार 'वातुलागम' की टीका में भी 'नागरलिपि' 'शब्द व्यवहृत हुआ है। बहुत प्राचीन काल में यही "नागरी" ब्राह्मी कहलाती थी।

नागरी की विशेषता :—

नागरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है। इसमें वर्णों का विभाजन ऐसे ढंग से किया गया है कि उनके नाम और उच्चरित ध्वनि दोनों में अन्तर नहीं है। एक वर्ण से एक ही ध्वनि निकलती है। जैसे अंग्रेजी में किसी रोमी स्वरवर्ण द्वारा कभी एक ध्वनि निकाली जाती है और कभी दूसरी, ऐसी बात नागरी में नहीं है। फारसी लिपि में रोमी वर्णों की भाँति ही वर्णों के नाम और ध्वनि में एकता नहीं है। वर्ण का नाम 'बी' या 'बे' है पर ध्वनि उससे 'ब्' होती है। लिखें कुछ और पढ़ें कुछ—ऐसा नागरी में नहीं है, अन्यत्र चाहे जहाँ हो। यही क्यों, मात्राओं के विधान के कारण थोड़े में ही बहुत कुछ लिखा जा सकता है। यह विधान भी ध्यान देने के योग्य है। व्यंजन के चारों ओर मात्राएँ लगती हैं। इनमें ह्रस्व 'इ' की मात्रा (ि) ही व्यंजन के पहले लगती है, शेष मात्राएँ ऊपर नीचे या आगे ही लगाई जाती हैं।

लिपि-सुधरा :—

नागरी में परिवर्त्तन करने का घोर आन्दोलन चल पड़ा है। व्यंजनों की भाँति स्वर की भी 'बारहखड़ी' चलाने का प्रयास हो रहा है, यथा इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ के स्थान पर भी अि, अी, अु, अू, अे, अै। बाल-बुद्धि वालों के लिए चाहे यह सुगम हो, पर है यह अत्यंत अवैज्ञानिक विधान। अ, इ, उ तीनों स्वर भिन्न-भिन्न हैं, अतः उनका स्वरूप भी भिन्न-भिन्न रहना ही ठीक है। मात्रा वस्तुतः स्वर की प्रतीक या प्रतिनिधि होती है; क + इ = क + ि = कि। स्पष्ट है कि 'ि' वस्तुतः 'इ' है। अतः अि = अ + ि = अ + इ = अइ या ए। यदि कहिए कि 'ओ' में 'ो' की मात्रा क्यों लगी है, तो कहा जायगा कि 'ओ' संयुक्त स्वर या संध्यक्षर है, यह 'अ + उ' से मिलकर बना है। अच्छा तो यही

होता कि 'ओ' को व्यक्त करने के लिए कोई पृथक चिह्न होता, जैसा ब्राह्मी के आरम्भिक काल में था, पर ऐसा न करके संध्यक्षर के दोनों स्वरों (अ, उ) में से किसी एक का रूप लेकर 'ो' की मात्रा उसमें लगाई गई। जैसे अब अ में 'ो' लगाकर 'ओ' लिखते हैं वैसे ही पुराने हस्तलिखित ग्रंथों में 'उ' में 'ो' लगाकर 'उो' भी लिखते थे। 'ए' के भी दो रूप पाये जाते हैं; 'अ' में 'े', लगाकर 'अे'। 'ए' में अ और इ का मेल है। 'ए' का वर्तमान रूप ब्राह्मी के उस प्राचीन रूप से विकसित हुआ है जो त्रिकोण ( ) था। 'ए' का प्रतिनिधि 'ै' है। कुछ सुभीता हो सकता था यदि 'ए' लिखा जाता 'ऐ' और ऐ 'ऐ'; क्योंकि जैसे 'ओ' में की मात्रा 'ो' को निकालकर व्यंजन में लगाते हैं उसी प्रकार 'ऐ' से 'े' और 'ऐ' से 'ै' मान लेते। ऐसा न होने पर 'ओ' और 'औ' की पद्धति पर 'ए' और 'ऐ' लिखा जा सकता है, जैसा हस्तलिखित ग्रंथों में हुआ है। 'ए' का वर्तमान रूप जिलाये रखने की आवश्यकता है, नहीं तो तन्त्र आदि के ग्रंथों के त्रिकोण रूप से उसकी एकता न रहेगी।

व्यंजन

व्यंजनों पर आइए। सुधारकों का कहना है कि 'नागरी' में बहुत से वर्ण हो गए हैं, इसलिए मुद्रायंत्र (प्रेस) और छापयंत्र [टाइप राइटर] के सुभीते के लिए इन्हें कम करना चाहिए। उनकी दृष्टि में कुछ वर्ण भ्रामक भी हैं और कई संयुक्ताक्षरों के व्यर्थ ही स्वच्छन्द रूप हो गए हैं। रोमी या अरबी-फारसी लिपि की भद्दी नकल पर जो 'ख' 'को' 'क्ह', घ को 'ग्ह' लिखना चाहते हैं उनकी बुद्धि तो अवश्य विलायती हो गई है। किसी परिवर्तन में परंपरा का विचार रखना ही बुद्धिमानी या वैज्ञानिकता हो सकती है, मनमानी नहीं। एक ही आँख से किसी का काम चल जाय तो क्या दो आँख वाले अपनी एक आँख फोड़ लें। अतः ऐसों की बात पर विचार करना भी अविचार है। भ्रामक वर्णों में 'ख' और 'र' का नाम आता है। 'ख' का रूप 'र' और 'व' का मिला रूप हो गया है। हिन्दी में तद्भव या संस्कृत के शब्दों में 'ख' के 'र', 'व' समझे जाने या र, व के 'ख' समझे जाने की गुंजाइश नहीं है। अरबी-फारसी के शब्दों में ऐसा अवश्य हो सकता है। 'खाना' को 'रवाना' पढ़ा जा सकता

है। पर प्रत्येक शब्द वाक्य में प्रयुक्त होकर कोई अर्थ भी व्यक्त करता है। आज तक हिन्दी में 'ख' और 'र, व' की भ्रांति से कहाँ कठिनाई हुई ? 'र' का रूप 'ण' में भी दिखाई पड़ता है। अतः 'ण' को परिवर्तित करने की भी राय दी जा रही है। वस्तुतः सारे झगड़े की जड़ 'र' है। 'र' का व्यंजन रूप 'र' रेफ (ँ) होकर वर्णों के मस्तक पर बैठता है। इसे भी भ्रामक कहा जाता है। वास्तविकता यह है कि 'र' के रूप हिन्दी में दो हैं। उसका एक रूप कोणवत् होता है, जो प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में मिलता है और कैथी, महाजनी में चलता है। नागरी में वह रेफ और नीचे लगने वाले 'र' के रूप में बना है। संयुक्ताक्षरों में र ऊपर रहकर रेफ होता है, जो पहले कोणवत् था, पर अब गोल हो गया है। वर्णों के नीचे लगने पर उसकी दो रेखाओं में से एक व्यक्त रहती है और दूसरी वर्ण की खड़ी पाई में मिल जाती है। जहाँ मिलने का अवसर नहीं होता वहाँ वह अपने पूरे रूप में व्यक्त होता है। 'क्' में 'र' मिलकर क्र होता है। उसमें वस्तुतः क् के नीचे 'र' का रूप कोणवत् (‸) है केवल एक रेखा ' ⁄ ' मात्र नहीं। 'क' की खड़ी मध्यम रेखा में 'र' की दूसरी रेखा मिल गई है, 'ट' में किसी खड़ी रेखा के न होने से 'र' अपने पूरे रूप में आता है—ट्र। अब यदि 'र' के स्थान पर उसका कोणवत् रूप ' ‸ ' हो जाय तो अन्यत्र 'र' रूप भ्रामक न माना जा सकेगा।

नागरी और संयुक्त वर्ण

नागरी में संयुक्त वर्णों में पहला वर्ण ऊपर और दूसरा नीचे लगता रहा है। छपाई के कारण उन्हें आगे पीछे छापने गेल हैं। संयुक्त व्यंजनों में 'क्ष, त्र, ज्ञ' ही विशेष ध्यान देने योग्य हैं। पहले वर्णमाला में अन्य व्यंजनों की तरह ये पढ़ाये भी जाते थे। 'क्ष' क् + ष से बना है। इसे क्ष लिखा तो जा सकता है पर तंत्रों में इसके इस रूप का विशेष महत्व है, इसे भी ध्यान में रखना चाहिए। त्र को त्र भी लिख सकते हैं। मिलते समय 'त' का रूप टेढ़ी रेखा मात्र रह जाता है, जैसा क्त या दुहरे त (त्त) में होता है। 'ज्ञ' में 'ज्' और 'ञ' का योग है। पर हिंदी के उच्चारण के अनुसार उसे 'ज्ञ' लिखना ठीक न होगा। समष्टि लिपि में बड़े सुधार करना अवैज्ञानिक और अविचारित है। यह तो

यंत्र विशारदों का काम है कि वे इस लिपि के छापने का सरल मार्ग निकालने का प्रयत्न करें।

नागरी के मुद्रण की विभिन्न पद्धतियाँ

बंबई में "खंड" और 'अखंड' अक्षर पद्धति द्वारा काम लिया जाता है। 'खंड' में बहुत थोड़े खानों से काम निकल जाता है। उनके जोड़ने में अपेक्षाकृत समय अवश्य अधिक लगता है। स्मरण रखना चाहिए कि नागरी में थोड़े में ही बहुत लिखा भी जा सकता है। जहाँ किसी विदेशी शब्द को लिखने में कई वर्णों का उपयोग करना पड़ता है, वहाँ नागरी में, मात्राओं की योजना के कारण थोड़े में ही काम हो जाता है। अंगरेजी 'थ्रू' में सात वर्ण लिखने पड़ते हैं, नागरी में दो वर्ण और एक मात्रा ही। यह कहना ठीक नहीं है कि नागरी में लिखने में देर होती है। अन्य लिपियों में लेखनी को उठाये बिना लिखने से शीघ्रता होती है। नागरी में थोड़े में ही बहुत लिखा भी तो जा सकता है? जो लिखा जायगा वही पढ़ा भी तो जायगा। फारसी लिपि की भाँति अटकलबाजी तो नहीं करनी होगी।

लिपि में सुधार हो जाने से पुराने छपे ग्रंथों के लिए अलग लिपि जाननी पड़ेगी और नये ग्रंथों के लिए अलग। 'नागरी' का व्यवहार संस्कृत के ग्रंथों में भी होता है, उन ग्रंथों को पढ़ने में कठिनाई उत्पन्न होगी। छात्रों के सिर पर बोझ बढ़ेगा। इस प्रकार अनेक गौण उपद्रव भी खड़े होंगे, जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। छापे के लिए देवनागरी वर्णों का जो माथा काटना चाहते हैं उन्हें गुजराती की ओर भी दृष्टि डालनी चाहिए, जिसमें वर्णों में शिरोरेखा नहीं लगती। वहाँ इससे कौन बहुत बड़ा अन्तर पड़ गया है?

हिन्दी और मराठी नागराक्षरों की भिन्नता

यह सभी जानते हैं कि नागरी का व्यवहार हिन्दी और संस्कृत के अतिरिक्त मराठी में भी होता है। पर मराठी के कई वर्णों का स्वच्छन्द विकास हुआ है। उत्तर में जो नागरी चलती है उसके कई वर्णों से मराठी के उन्हीं वर्णों के रूप में भिन्नता है। उत्तर भारत में भी मराठी के संसर्ग और छापेखानों में बम्बई से अक्षर (टाइप) मँगाने से नागरी के कई अक्षरों के स्थान

की सभी ध्वनियाँ दूसरी भाषा की लिपि में मिल ही जायेंगी, ऐसी बात नहीं है। अत: लिपि-दोषों के कारण अनेक बार भाषा के उच्चारणों में भी उसके अनुकूल अन्तर आ जाता है। इसी से भाषा और लिपि का नाम प्राय: कई बार एक ही रहता है। कम से कम सामान्य लोगों को तो वह ऐसा ही प्रतिभासित होता रहता है।

समन्वय के कारण वाद उत्पन्न हुआ :—

"राष्ट्रभाषा कौन सी हो ?" इसके लिये जैसे चर्चा या वाद उत्पन्न हुए उसी प्रकार "राष्ट्र लिपि कौन सी हो ?" इस बात को लेकर भी अनेक वाद उत्पन्न हुए। वस्तुत: एक बार राष्ट्रभाषा निश्चित हो जाने पर उस भाषा की लिपि ही राष्ट्रलिपि मान्य होनी चाहिए। हिन्दी राष्ट्रभाषा है, यह मान लेने पर स्वाभाविक रूप से राष्ट्रलिपि देवनागरी निश्चित हो जाती है। किन्तु दस-बारह वर्षों पूर्व हिन्दी और उर्दू के समन्वय से राष्ट्रभाषा निश्चित करने की कल्पना जिस विचित्रता से सामने लाई गई थी उसी विचित्रता से राष्ट्रभाषा के मत्थे उर्दू भाषा की फारसी लिपि को भी मढ़ा गया। यदि इन दो लिपियों का समन्वय सम्भव होता तो इनके समर्थकों द्वारा एक खिचड़ी लिपि को भी वे मान्यता दे देते। पर ऐसा न हो सका अत: उन्होंने राष्ट्रभाषा की दो लिपियाँ मान कर उन्हें अनिवार्य कर दिया है। इसके समर्थक तो यहाँ तक कहने लग गए थे कि स्वराज्य-प्राप्ति के लिए उर्दू लिपि सीखना आवश्यक है। पर स्वराज्य की प्राप्ति तो उसके बिना भी हो गई है। भाषा-शास्त्र की वैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार की धारणा गलत है। राष्ट्रलिपि समन्वय रूप से वही होगी जो अनेक भाषाओं के लिए उपयुक्त और सर्वमान्य लिपि हो रही हो। इस दृष्टि से यहाँ पर राष्ट्रलिपि का विचार किया गया है।

राष्ट्रलिपि की आवश्यकता :—

समराष्ट्रीयता का चिह्न जैसे राष्ट्रभाषा होती है, वैसे ही एक समान लिपि का होना भी राष्ट्रीयत्व की पहचान है। प्रादेशिक भाषाओं की लिपि एक होने पर सभी प्रान्तीय भाषा-भाषियों को अन्य भाषाएँ सीखना आसान होगा; क्योंकि नयी लिपि न सीखते हुए वे नई भाषा सीख सकते हैं। मराठी-

भाषी के लिये लिपि का झंझट न होने से हिन्दी सीखना सरल कार्य हो जाता हैं और भाषा ज्ञान में वह एकदम प्रगति कर सकता है। अनुभव-सिद्ध बात यह बतलाती है कि शब्द-साम्य के साथ यदि लिपि-साम्य भी हो तो दूसरी प्रादेशिक भाषाएँ न सीखते हुए भी अन्य प्रान्तीय लोग उसे समझ सकते हैं। बंगाली और गुजराती हौले-हौले बोलने से बहुत कुछ समझ में आ जाती हैं। जो भाषा बोली जाने पर समझी जा सकती है वही यदि ज्ञात लिपि में ही लिखी जाय तो वह सहज ही हमें समझ में आ सकती है, यह निस्संदेह कहा जा सकता है। करीब-करीब ५० वर्षों पूर्व न्यायमूर्ति श्री शारदाचरण मित्र के द्वारा इस तरह देवनागरी लिपि में बंगाली, हिन्दी, गुजराती और मराठी इन चार भाषाओं की बातें छापने की योजना बनायी गयी थी। यदि इस कल्पना का अधिक प्रचार हुआ होता तो राष्ट्रलिपि का प्रश्न बहुत अंशों में हल हो गया होता। कुछ वर्षों पहले खँडवा से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी स्वराज्य' में इसी पद्धति के अनुसार नागरी लिपि में अनेक भाषाओं की बातें एवं समाचार प्रकाशित किए जाते थे। इलाहाबाद से निकलने वाले "भूगोल" मासिक में भी यह प्रयत्न किया गया है।

मुद्रण में क्रान्ति :—

सब प्रान्तीय भाषाएँ यदि एक ही लिपि में छपने लगें तो मुद्रण-व्यवसाय की दृष्टि से अपने देश की प्रगति शीघ्र हो सकती है। मुद्रण की दृष्टि से लिपि सुधार करना व उस लिपि को मोनो टाइप, लायनो टाइप, टेली प्रिंटर आदि यंत्रों में बैठाना, उसकी माँग अधिक हो जाने से उस यंत्र की कीमत भी कम रहे, इस प्रकार की व्यवस्था की जा सकती है। आज तो मोनो टाइप, नागरी टाइप रायटर की कीमत अत्यधिक है। यदि देवनागरी के यंत्रों की यह गाथा है तो कन्नड़, तमिल, मलयालम् के लिपि-यंत्रों की क्या दशा हो सकती है? अधिक व्यवहार्य यही होगा कि हम नागरी लिपि को मान्यता दे दें।

एक ही लिपि समीचीन होगी :—

जिस राष्ट्र में एक ही भाषा व्यवहृत होती है वहाँ लिपि एक ही रहती

ьर मराठी के अक्षर व्यवहृत होने लगे हैं। कलकत्ता बम्बई से दूर पड़ता है, अतः वहाँ नागरी के अक्षर ज्यों के त्यों हैं, पर युक्तप्रान्त और बिहार के छापेखानों में अब हिन्दी-नागरी और मराठी-नागरी के अक्षरों में विलक्षण मेल हो गया है। आरंभ में वह बात नहीं थी। मराठी-नागरी या दक्षिणी-नागरी के कुछ अक्षर अवश्य ऐसे हैं जिनके लिखने में हिन्दी-नागरी या उत्तरी-नागरी के अक्षरों की अपेक्षा लाघव होता है। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि उत्तरी-नागरी में जिस रूप का विकास हुआ है वह मार ही डाला जाय। छपाई में और बच्चों को बारहखड़ी सिखाने में तो कोई बाधा नहीं है ? जब एक ही पंक्ति में उत्तरी और दक्षिणी-नागरी, दोनों के अक्षर छपाई में दिखाई पड़ते हैं तो एकरूपता न होने से आलस्य और अनवधानता का डंका पिटने लगता है। वैकल्पिक रूप में चाहे दक्षिणी-नागरी (मराठी) के कुछ अक्षर भी हिन्दी में स्वीकार कर लिये जायँ, पर कम से कम छापने में तो उनका व्यवहार न हो। जिन अक्षरों में स्पष्ट भिन्नता है वे ये हैं :—

नागरी—अ ऋ छ झ ण ल श क्ष

मराठी—अ ऋ छ झ ण ळ श क्ष

इनमें से अधिक व्यवहार अ, ण, ल, और क्ष का होता है। कुछ लोग यह भूल गए हैं कि नागरी (हिन्दी) का—'क्ष' मराठी के 'क्ष' से भिन्न होता है। वे मराठी वाले रूप को नागरी का और नागरी वाले रूप को मराठी का समझने लगे हैं। मिलावट में भी 'श' का जैसा रूप मराठी में होता है, हिन्दी में 'श्र' को छोड़कर अन्यत्र नहीं होता। हिन्दी के 'विश्व, प्रश्न' आदि मराठी में **'विश्व, प्रश्न'** आदि लिखे जाते हैं। अंकों में भी भेद है; विशेषतः ५, ८, ९ के के अंकों में। मराठी में इनके रूप ५, ८, ९ होते हैं।

७ : नागरी सर्व गुण आगरी

—स्व० शं० दा० चितले

["नागरी सर्व गुण आगरी" लेख श्री शं० दा० चितले जी ने "हिन्दी हीच आमची राष्ट्रभाषा" मराठी पुस्तक में लिखा था, जो २८-१२-१९४७ को मनोहर ग्रंथमाला प्रकाशन, तिलक रोड पुणे—२ से प्रकाशित हुई थी। श्री चितले जी हिन्दी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग हिन्दी प्रचार संघ व अनाथ विद्यार्थी गृह पूना आदि संस्थाओं के कर्मठ कार्यकर्त्ता थे तथा हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में संगठन तथा नेतृत्व करने की आप में बड़ी क्षमता थी।]

लिपि, ध्वनि और चिह्न :—

अक्षरों को लिखने की पद्धति या ध्वनियों को लिखकर बताने के चिह्न का नाम ही लिपि है। भाषा ऐसे अनेक चिह्नों की सहायता से लिखी जाती है। ध्वनि और वर्ण चिह्न के सम्बन्धों का नाम ही लिपि है। एक ही चिह्न से एक ध्वनि यदि ज्ञात हो जाय तो लिपि का उद्देश्य सफल माना जा सकता है। कुछ लिपियों में एक ही ध्वनि के अनेक चिह्न अथवा एक ही चिह्न के अनेक उच्चारण भी हो सकते हैं, पर इसे लिपि का दोष माना जायेगा। शास्त्र-शुद्ध लिपि वही है जो एक चिह्न व संकेत का एक ही उच्चारण प्रदर्शित करे, और एक उच्चारण के लिए एक ही चिह्न व्यवहृत हो। अक्षर का बाह्य रूप समान हो, पर उच्चारण भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न हो जाय तो वह भी लिपि-दोष माना जावेगा। फिर चाहे चिह्न एक ही क्यों न हो उसे भिन्न लिपि ही माना जायेगा। साधारणतः भाषा बोलने वालों के उच्चारणों को सुगमता से लिखा जा सके, ऐसी उच्चारण के अनुरूप लिपि प्रायः उस भाषा की रहा करती है। हर भाषा एक ही लिपि में लिखी जानी चाहिए। परन्तु एक भाषा

वही राष्ट्र के जीवन में स्वदेशी लिपि का और स्वदेशी चीज का है। चार पैसे अधिक देकर भी हम खुरदरा और मोटा खादी का स्वदेशी कपड़ा ही पहनते हैं। वही नियम लिपि के बारे में भी लागू है।

(१२) इस लिपि का प्रचार बहुसंख्यक लोगों में—कम से कम विद्वान पढ़े-लिखे लोगों में – पूरे भारत-भर में किया गया हो। ऐसी लिपि एक अर्थ से राष्ट्र-भर में फैली हुई लिपि होती है।

(१३) राष्ट्र का प्राचीन वैभवशाली साहित्य इसी लिपि में रहना उपयुक्त होगा, जिससे आधुनिक प्रसार की परंपरा को बल प्राप्त हो जाता है।

(१४) जिन प्रान्तीय भाषाओं के लिए इस लिपि का व्यवहार करना हो उनकी अपनी मूल लिपियों और राष्ट्रलिपि में जितना सादृश्य होगा, उतना अच्छा ही होगा। लिपि-चिह्न भले ही भिन्न-भिन्न हों पर वर्णमाला, स्वरों की संख्या आदि का राष्ट्रलिपि से यदि साम्य हो तो और भी अधिक अच्छा होगा।

(१५) बहुसंख्यकों की यदि यही लिपि हो तो अधिक अच्छा है।

ऊपर बतलाए गए पन्द्रह गुण अथवा इनमें से अधिक से अधिक गुण जिस लिपि में होंगे वही राष्ट्रभाषा की और प्रान्तीय भाषाओं की लिपि होगी। लिपि के सवाल को उठाकर उसमें धर्म, संप्रदाय, जाति की संकुचित दृष्टि ले आना उस सवाल का हल न ढूंढ़ना है। देश की राजनीति की तरह राष्ट्रलिपि के प्रश्न को ढील देना अनुचित होगा।

रोमन लिपि की अपूर्णता :—

रोमन लिपि में भी वर्णन किये गये पन्द्रह गुणों में से केवल निम्नलिखित पाँच गुण हैं। (१) सौन्दर्य है—पर यह योजक की इच्छा पर निर्भर है। (२) मुद्रण-सुलभता अवश्य रोमन लिपि में मिलती है। (३) त्वरालेखन भी इस लिपि में पाया जाता है। (४) अक्षरों के कम्पोज करने का काम भी रोमन लिपि में शीघ्रता से होता है तथा यांत्रिक सहायता भी उपलब्ध हो जाती है। (५) इस लिपि में लिखने से स्थान कम लगता है ऐसा बतलाया जाता है परन्तु यह कथन उतना सही नहीं जान पड़ता, जैसे देखिए :—

I shall not come tomorrow—(रोमन लिपि में)

आय् शॉल नॉट कम् टुमारो—(देवनागरी लिपि में)

संस्कृत शब्दों को रोमन लिपि में नहीं लिखा जा सकता। केवल राज्याश्रय अंगरेजी को मिला है इसलिए रोमन लिपिराष्ट्र लिपि नहीं बन सकती। सेना में सैनिकों को भी नागरी लिपि सीखने में अधिक समय नहीं लगेगा।

फारसी (उर्दू लिपि) की अपूर्णता :—

उर्दू भाषा के अतिरिक्त इस देश की अन्य प्रांतीय भाषाओं की लिपियाँ देवनागरी लिपि से साम्य रखती हैं। मराठी-हिन्दी-गुजराती और बंगला के लिपि-चिह्न और वर्णमाला बहुत अंशों में एक-सी है। उर्दू के उच्चारण अनिश्चित हैं। इसमें वर्ण का उच्चारण जैसे होता है वैसा ही नहीं लिखा जाता। शब्द लिख कर उसका कोई भी अक्षर अनुच्चरित नहीं रहता यह इस लिपि का गुण है। इस लिपि में संयुक्ताक्षर लिखना संभव नहीं है। एक ही ध्वनि के लिये कई लिपि-चिह्न होने से इसे लिखना और पढ़ना एक जटिल कार्य बन जाता है। मुद्रण-क्षेत्र में भी यह लिपि विकसित नहीं हो पाई है न इसका टाइपरायटर है, न मोनो टाइप और लायनोटाइप उपलब्ध है। यह लिपि राष्ट्रीय भी नहीं है। बहुत कम लोग सारे देश में इस लिपि के जानकार हैं।

देवनागरी लिपि भाषा की उच्चारणानुसारी लिपि है :—

लिपि और भाषा का सम्बन्ध एक अटूट सम्बन्ध है। सामान्यतः जो भाषा बोली जाती है उसके उच्चारण उसकी लिपि में लिखे जाने का प्रयोग प्रायः होता है। नागरी लिपि हिन्दी की लिपि होने से उसका राष्ट्रलिपि होना स्वाभाविक है। यह लिपि भाषा की उच्चारणानुसारी लिपि है, दिखने में सुन्दर, अक्षरों की निश्चिति संयुक्त, पठन-पाठन में सुलभ, एक ध्वनि के लिये एक ही चिह्न वाली, त्वरालेखन-सक्षम, मुद्रण-सुलभ आदि समूचे गुणों की आगरी नागरी लिपि ही हो सकती है।

है। सौभाग्य से इंगलैण्ड, जर्मनी, फ्रान्स आदि देशों में यह प्रश्न पैदा ही नहीं होता। वहाँ अँग्रेजी, जर्मन और फ्रेन्च उनकी मातृभाषा, राजभाषा, और राष्ट्रभाषाएँ हैं और वे सबकी सब रोमन लिपि में ही लिखी जाती हैं। भारत अनेक भाषाओं का देश है, अतः राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि का प्रश्न उत्पन्न हो गया है क्योंकि इन अनेक भाषाओं की अनेक लिपियाँ भी हैं। यहाँ अनेक भाषाओं की अनेक लिपियाँ प्रचलित होने से राष्ट्रभाषा के प्रश्न की तरह सब भाषाओं के लिए एक ही राष्ट्रलिपि का प्रश्न भी उपस्थित हो जाता है। प्रचार की दृष्टि से राष्ट्रभाषा के बदले राष्ट्रलिपि का प्रचार यदि प्रथम किया गया तो ४० करोड़ में से जो साक्षर हो जायँगे वे तो कम से कम राष्ट्रलिपि जान लेंगे।

यह लिपि कौन हो :—

हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान्य कर लेने पर देवनागरी ही राष्ट्रलिपि सिद्ध हो जाती है। किन्तु उसके ही साथ फारसी (उर्दू) और रोमन (अंग्रेजी) लिपि को राष्ट्रलिपि माननेवाले भी इस देश में विद्यमान हैं। अतः राष्ट्रलिपि की उपयुक्तता के दस गुण कौन से हैं इसका विचार करना आवश्यक हो जाता है। किसी भी लिपि में उपयुक्तता की दृष्टि से ये दस गुण आवश्यक होते हैं।

उपयुक्त लिपि के दस गुण :—

(१) निश्चितता—एक वर्ण की ध्वनि एक ही हो।

(२) जैसा लिखा जाय वही पढ़ा भी जा सके जिससे उच्चारण के बारे में कोई सन्देह पैदा न हो। जैसे—'कमल' यह देवनागरी में लिखा गया शब्द वैसे ही उच्चारित होता है और पढ़ा भी जाता है। पर RAM आर ए एम् का उच्चारण 'रेम्' या 'राम' हो सकता है Write में 'W' का उच्चारण ही नदारद है, इस तरह रोमन में अनिश्चितता है, जो देवनागरी में नहीं है।

(३) अतः तीसरा गुण हुआ प्रत्येक अक्षर का उच्चरित होना जो केवल देवनागरी में ही संभव है।

(४) उपयुक्तता—भाषा में आवश्यक ध्वनियों के लिपि-चिह्न विद्यमान हों।

(५) एक ही ध्वनि के अनेक लिपि-चिह्न न हों; अन्यथा किस समय कौन-सा लिपि-चिह्न प्रयोग में लाया जाय इसके नियम होने पर भी गड़बड़ी की संभावना हो जाती है। जैसे—फारसी में 'स' के उच्चारण के लिए 'स्वाद' 'सीन' और 'से' इस प्रकार के तीन वर्ण हैं। यही बात 'ज' के लिए भी है।

(६) लिपि पढ़ने में सरल और सहज हो—लिपि-चिह्नों का जो मूल उच्चारण होता हो उसी प्रकार पढ़ने की पद्धति न हो तो यह सौदर्य आ ही नहीं सकता। रोमन लिपि में या फारसी लिपि में लिखे गए अपरिचित शब्दों का सही उच्चारण कौन-सा है, इसके बारे में पाठक संदेह में रह जाता है। इसीलिए शब्दों के स्पेलिंग और उच्चारण भी याद करने पड़ते हैं।

(७) सौन्दर्य—यह प्रत्येक की रुचि-अरुचि का ख्याल है। इसके विषय में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि लिपि देखने पर आकर्षक प्रतीत हो। यह आकर्षण शक्ति होना जरूरी है। उदाहरण—देवनागरी और मोडी लिपि दोनों में लिखा हुआ किसी बालक के सामने रख दिया जाय तो वह तुरन्त देवनागरी की ओर आकृष्ट हो जाता है।

(८) त्वरालेखन :—द्रुतगति से यदि लिखना संभव हो जाय तो वक्ता का भाषण चलते रहने पर उसे लिखा जा सकता है और निजी लेखन भी शीघ्रता से लिखा जा सकता है।

(९) मुद्रण-सुलभता—आज के वैज्ञानिक युग में ज्ञानदान के साधन के रूप में वृत्तपत्र और ग्रंथ छापे जाते हैं। ये दोनों काम शीघ्र और किफायत से किए जायँ तो ज्ञानदान अधिक हो सकता है। अक्षरों का कम्पोजिंग करनेवाले यदि उनको यंत्र में शीघ्र न जुटा सकें तो उसे लिपि-दोष ही माना जावेगा।

(१०) इसी गुण का एक अन्य स्वरूप यह है कि अक्षरों की जुड़ाई यन्त्रों द्वारा की जा सके। रोमन लिपि में मोनो टाइप, लायनो टाइप, टाइप रायटर की व्यवस्था है उसी तरह वह देवनागरी में भी संभाव्य की जाय।

और अन्य पाँच गुण :—

(११) लिपि स्वदेशी हो। उसका जन्म भारतवर्ष में हुआ हो, तथा उसका विकास भी वहीं पर हुआ हो। स्वदेशी व्रत का जीवन में जो महत्व है

in motion. The material world is the pattern of a cosmic orchestral score in progress."[१]

मीमांसा-दर्शन में वैदिक शब्द और सृष्टि के सम्बन्ध में ऐसा ही कहा गया है। पद-पदार्थों का पारस्परिक सम्बन्ध औत्पत्तिक है, नित्य है (औत्पत्तिकस्तु शब्दस्य अर्थेन सम्बन्धः)। ऐसा नहीं है कि पहले पदार्थ उत्पन्न हुए और बाद में विशिष्ट पदार्थों का विशिष्ट शब्दों से सम्बन्ध जोड़ दिया गया (नोत्पन्नयोः पश्चात्), किन्तु शब्द और अर्थ वस्तुतः एक हैं, भेद है सो केवल आविष्कार का।

इस सिद्धान्त को स्थापित करने में मीमांसकों ने जिन युक्तियों का अवलम्ब किया है, उनमें योग, उपनिषद् आदि ग्रंथगत विचारों की अपेक्षा तर्क पर ही अधिक बल दिया गया है, किन्तु सिद्धान्त उन्हें मान्य था और उन्होंने उसका निर्देश किया ही है। शायद इसी सिद्धान्त को ध्यान में रख कर महा भाष्यकार भगवान पतंजलि ने पस्पशाह्निक में प्रतीत-पदार्थ को "लोक ध्वनिः शब्द इत्युच्यते" लिखा है, जिसका अर्थ है, "जिससे पदार्थ की प्रत्यक्ष प्रतीति होती है वैसी ध्वनि अर्थात् नाद को शब्द कहते हैं।"

वाणी का रहस्य :—

यहाँ पर एक संदेह हो सकता है और उसका निराकरण भी आवश्यक है। माना कि शब्द उत्पादन शक्ति है, शब्द और पदार्थ दोनों वास्तव में एक ही हैं, भेद है केवल स्थूल-सूक्ष्म भाव का, घनता-विरलता का अथवा आविष्कार का। अगर यह ठीक है, तो अनुभव ऐसा होना चाहिये कि "आग-आग" कहने से आग भड़क उठे और "पानी" कहने से पानी मिल जाय। तब तो पूछना ही क्या है, सब सुविधा हो जायगी! किन्तु ऐसा नहीं "आग" कहने से आग तो क्या, जरा-सी चिनगारी नहीं निकलती और "पानी-पानी" चिल्लाने से गला सूख जाता है। ऐसी दशा में इन बड़े-बड़े सिद्धान्तों पर विश्वास कैसे

१—"Science and War" Illustrated Weekly of India. Nov. 1st, 1942.

हो सकता है ? शंका बिल्कुल ठीक है, मूलभूत और भारतीय शास्त्रकारों ने उसका समाधान करने की चेष्टा भी की है।

सारे संसार का आदि ग्रंथ ऋग्वेद स्पष्ट शब्दों में घोषित करता है कि भाषा दो प्रकार की होती है अथवा यों कहना चाहिए कि वाणी का अग्र जो है 'अर्थात् मनुष्य जिसे ग्रहण करें ऐसा वाणी का जो प्रकट रूप है' उसकी प्रेरणा नाम रूप का सम्बन्ध जोड़कर होती है। (बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः।) वाणी का श्रेष्ठ रूप है, वह अप्रकट है, शुद्ध है अर्थात् नाम रूप के संकेतों से रहित है। (एषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः।) आगे कहा है कि सुनने की ताकत होते हुए भी आदमी इस वाणी को नहीं सुन सकता और देखने की शक्ति होते हुए भी इसको नहीं देख सकता। वाणी देखी जा सकती है और सुनी भी जा सकती है, किन्तु सामान्य मनुष्य के द्वारा नहीं। कोई बिरला ही ऐसा सिद्ध पुरुष होता है, जिसके सामने वाणी अपना पूरा स्वरूप खोल देती है, ठीक उसी प्रकार जैसे पति के सामने उसकी स्त्री। (उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचम्, उतत्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायाऽइव पत्ये उशती सुवासाः॥)

वेद, ब्राह्मण और स्मृति ग्रन्थों में कहा गया है कि मनुष्य के हाथ में वाणी का एक ही सिरा है, जो उसका प्रकट रूप है। इस रूप में शब्द और अर्थ का परस्पर सम्बन्ध संकेत-सिद्ध होता है, अर्थात संकेत से ठहराया जाता है कि किस शब्द से किस वस्तु को सम्बोधित किया जाय। वाणी का जो बचा हुआ हिस्सा है, वहाँ शब्द और अर्थ का परस्पर सम्बन्ध नित्य सिद्ध है, स्वयंभू है, औत्पत्तिक है, सांकेतिक नहीं। शब्द की उत्पादन-शक्ति के विषय में जो कहा गया है और विज्ञान-शास्त्रियों ने जिस सिद्धान्त का निर्देश किया, वह वाणी के सांकेतिक रूप के लिए लागू नहीं है। वेद-वाणी को इसी कारण छन्दस् कहा है, क्योंकि उसमें कुछ रहस्य आच्छादित है, छिपा हुआ है। सामान्य भाषा सांकेतिक भाषा है। उसमें शब्द और अर्थ का औत्पत्तिक नित्य सम्बन्ध दिखाई नहीं देता।

८ : भाषा का मूल-स्वरूप एवं उसके भिन्न आविष्कार

—डॉ० म० त्र्यं० सहस्रबुद्धे, एम० ए०, पी-एच० डी०

[डॉ० म० त्र्यं० सहस्रबुद्धे पूना विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में अनुसंधान सहयोगी हैं। वे "भारतवाणी" और "ओरियण्टल थॉट" के प्रधान सम्पादक हैं।]

भाषा के दृश्य और श्रव्य रूप :—

"Sir Chandrasekhar V. Raman of Calcutta has recently given Physicist a new way of listening to or really seeing the music of the atoms. The Raman Spectrum shows us that a molecule such as one unit of water is really a little musical instrument, much like a harp, playing its own characteristic tune."............

"Of course you do not hear it, if you hold a glass of water up to your ear, because the tune is pitched many millions of times higher than the highest note on a piano or a violin."............

' In fact it is light and not sound that is given off."[1]

ऊपर लिखे हुए अंग्रेजी अवतरण में यह बताया गया है कि श्री चन्द्रशेखर रमण जैसे विज्ञानवेत्ताओं ने ध्वनि के सम्बन्ध में अनेक आश्चर्यजनक बातें दुनिया के सामने रखीं। सृष्टि में जिन अनेक वस्तुओं का हम उपयोग करते हैं, उनका असली रूप क्या है, इसका हमें पता नहीं है। पानी के एक परमाणु को हम जिस रूप में देखते हैं, वैसा वह नहीं है, अपितु वह सितार या वीणा की

---

[1] Modern Review. August 1931, P. P. 218.

भाँति स्वर-संगीत सुनाने वाला वाद्य है, जो अपना विशिष्ट स्वर नित्य सुनाता रहता है। इसका यह मतलब नहीं है कि पानी का लोटा उठा कर हम अपने कानों के पास ले जायें तो उससे रेडियो द्वारा प्रसारित स्वर-संगीत का-सा आनन्द मिलने लगेगा, किन्तु प्रयोग करने पर रमण स्पेक्ट्रम द्वारा पता चलता है कि पानी, किसी पदार्थ का मद्यार्क (grain alchohel), क्लोरोफॉर्म आदि पदार्थों का हम संगीत सुन सकते हैं। अल्कोहल का संगीत-नाद मधुर होता है और क्लोरोफॉर्म का कर्कश। हॉपकिन्स विद्यापीठ के डॉ० एन्ड्रूज महोदय ने १७ अप्रैल १९३१ को साइन्स सर्विस रेडियो में प्रयोग करके यह संगीत सुनाया था। उन्होंने कहा कि यह वस्तुतः ध्वनि ही नहीं, अपितु दृष्टिगोचर होने वाला प्रकाश है।

श्रवणगोचर ध्वनि और दृष्टिगोचर प्रकाश-रूप दो अलग-अलग बातें नहीं, प्रत्युत एक ही पदार्थ के दो आविष्कार हैं, जैसे कि भाषा के आविष्कार : एक श्रवणगोचर शब्द-रूप और दूसरा दृष्टिगोचर लिपि-रूप।

वाणी, उसका मूल रूप, उसके आविष्कार के भिन्न-भिन्न प्रकार होते हैं। मनुष्य की वाणी भाषा के रूप में ही प्रचलित है। भाषा में प्रयुक्त शब्द, और उनके द्वारा निर्दिष्ट पदार्थों का सम्बन्ध पद-पदार्थ सम्बन्ध कहलाता है। इस विषय पर भारतीय वाङ्मय में बहुत चर्चा हो चुकी है। उसे यहाँ फिर से दोहराना आवश्यक प्रतीत नहीं होता, किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखना जरूरी है कि भारतीय तत्वचिन्तकों का इस विषय में जो निर्णय है, वह ऊपर दिये गये विज्ञान-शास्त्र के निर्णय से बहुत मेल रखता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। हमने अभी देखा है कि विज्ञान की सम्मति में शब्द और वस्तु दो भिन्न आविष्कार हैं, अर्थात् कोई भी पदार्थ मूलतः शब्द अर्थात् ध्वनि ही है, हमें जिस रूप में वह दिखाई देता है, वह रूप उसे शब्द के घनीभवन से, सान्द्रीभवन से अथवा गति से प्राप्त हुआ है।

डॉ० फ्रेडरिक ब्लैंकनेर कहती हैं—"Since all visible things that we see are the mode of acoustical vibrations, not only architecture but every thing else is music, either frozen or

किन्तु किसी अँग्रेजी पत्र में एक विनोदपूर्ण छोटा-सा परिहास पढ़ा था। परिहास-प्रणेता ने एक शब्द "Ghoti" दिया था और यह सिद्ध किया था कि शब्द का उच्चारण होगा फिश्। देखिये 'Enough' में 'Gh' का उच्चारण होता है 'फ्', 'Women' में 'O' का उच्चारण होता है 'इ' और 'Examination' शब्द में 'Ti' का उच्चारण होता है 'श्', अर्थात् सब मिलाकर "Ghoti" का उच्चारण होता है फिश्। यों लेखक को अँग्रेजी या किसी भी भाषा से द्वेष नहीं है। यदि लिखित अक्षर और उच्चारण शब्द में सामंजस्य न हो तो कितनी विपरीत बात हो जाती है, यह दिखाने के लिये ही उक्त उदाहरण दिया गया है और वह भी लेखक का अपना नहीं है। शास्त्रीयता के निकष पर नागरी लिपि की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध है।

---

९ :

नागरी लिपि की उपयोगिता

—ले० बा० वि० पराडकर

संवत् १९९५ याने सन् १९३८ के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के २७वें अधिवेशन के अध्यक्ष के नाते स्वर्गीय बाबूराव विष्णु पराडकर जी ने 'नागरी लिपि तथा उसका सुधार' प्रश्न पर जो विचार प्रदर्शित किए थे उनको यहाँ पर दिया गया है। श्री पराडकर जी हिन्दी पत्रकारों के अग्रणी और हिन्दी पत्रिकारिता के गुरु माने जाते हैं। 'आज' और 'संसार' दैनिकों का संपादन आपने बड़ी कुशलता से किया था। उनकी संपादकीय टिप्पणियाँ हिन्दी-भाषी-संसार में विशेष प्रसिद्ध हुई थीं।]

नागरी का पुरानापनः—

भारत में नागरी लिपि पढ़ने वाले जितने लोग हैं उनके आधे भी उसे जानने वाले हैं अथवा नहीं, इसमें संदेह है। वस्तुतः भारत की राष्ट्रलिपि नागरी ही है। हमारी संस्कृति की मंजूषा सांस्कृत भाषा नागरी में ही लिखी जाती है। इसलिये हम इसे भारत की संस्कृतिक लिपि भी कह सकते हैं। आज कल की भाषाओं में हिन्दी और मराठी की लिपि भी नागरी है। सन् १०१७ में महमूदपुर या लाहौर से महमूद गजनवी ने एक चाँदी का सिक्का चलाया था जिसके एक पृष्ठ पर नागरी लिपि में संस्कृत भाषा में यह वाक्य खुदा हुआ है—"अव्यक्त मेव्यं मुहम्मद अवतार नृपति महमूद।" और दूसरे पृष्ठ पर "अयम् टंकम् महमदपुर घटिले हिजरि येन संवति ४१८।" अनेक मुसलिम सुलतानों और बादशाहों के सोने-चाँदी के सिक्कों पर नागरी अक्षरों में संस्कृत हिन्दी के वाक्य हैं।

नागरी लिपि के गुण :—

नागरी वर्णमाला के समान सर्वांगपूर्ण और वैज्ञानिक किसी दूसरी

सांकेतिक भाषा :—

किन्तु क्या यह कहा जा सकता है कि सांकेतिक भाषा से सर्वथा भिन्न है ? वेद की सम्मति में तो संकेत-भाषा भी दिव्य वाणी का ही अग्र है, एक सिरा है, एक आविष्कार है । दिव्य वाणी में शब्द और पदार्थ का जो सम्बन्ध है, साधर्म्य और सामंजस्य है, वह सांकेतिक वाणी में पूर्ण रूप से भले ही न हो, पर जितने भी अंश में वह दिखाई देगा, उतने ही अंश में वह वाणी अधिक प्रभावशाली और शास्त्रपूत होगी—यह स्पष्ट है । आज मानव समाज में कई सांकेतिक भाषाएँ प्रचलित हैं । एक भाषा जानने वाला दूसरी भाषा जानने में असमर्थ होता है, यह अनुभव-सिद्ध है, लेकिन योगदर्शन के अनुसार, एक ही विचार के लिये विभिन्न सांकेतिक भाषाओं में भिन्न-भिन्न सकेत पाये जाते हैं, फिर भी मानव मन में एक ही विचार का स्वरूप एक-सा ही होना चाहिये । इसलिये यदि मनुष्य की प्रत्यय-शक्ति पर संयम किया जाय तो किसी भी सांकेतिक उच्चारण का अभिप्राय समझ में आ सकता है[1] अर्थात् सांकेतिक भाषा में भी शब्द और अर्थ के दिव्य सम्बन्ध की झलक कुछ अंश में मिलती है । वह जितनी अधिक मिले उतनी ही वह सांकेतिक भाषा अधिक परिणामशील होना स्वाभाविक है ।

सांकेतिक भाषा के श्रव्य और दृश्य भेद :—

सृष्टि के किसी भी प्रदेश में मानव का मूलभूत स्वभाव प्रायः एक-सा ही है अर्थात् उसके मन में जो विचार आते हैं, उनका भी मूल रूप एक ही होना चाहिये, स्थूल रूप चाहे जितना भिन्न क्यों न हो । इस मूल रूप और स्थूल रूप का परस्पर सम्बन्ध जितना अधिक हो उतनी ही वह सांकेतिक भाषा मानव के मूल विचारों का स्पष्टीकरण अधिक मात्रा में करने में समर्थ होगी । मनुष्य द्वारा सांकेतिक भाषा के ग्राह्य दो रूप हैं—(१) बोले जाने वाले सुनने योग्य शब्द और (२) पढ़े जाने वाले लिखे हुये शब्द, जिनका बोध लिपि द्वारा होता है ।

१—देखिए योगसूत्र ३-१७ ।

लिपि-रूप अक्षर विचार-रूप मानसिक क्रिया का ही एक बोध-चिह्न है :—

लिपि-रूप अक्षर भी विचार-रूप मानसिक क्रिया का ही एक बोध-चिह्न से विचार क्रिया का यथार्थ बोध हो, वह चिह्न अधिक प्रभावी और अधिक ग्राह्य समझा जाना चाहिये। हम देख चुके हैं कि स्वयंभू भाषा का संकेत-भाषा से जितना घनिष्ठ सम्बन्ध और तादात्म्य रहता है, वह भाषा उतनी ही अधिक व्यापक होती है। यही बात अक्षर-रूप बोध-चिह्न के लिये भी लागू है। स्वयंभू भाषा के अक्षर-रूप लिखित चिह्न हैं, जिनमें से प्रधान चिह्न प्रसिद्ध प्रणव है, जो "ॐ"—इस तरह लिखा जाता है। इस प्रणव से अति निकट सम्बन्ध रखने वाली नागरी लिपि सांकेतिक संस्कृतादि वाणी से भी सम्बन्ध रखती है।

तन्त्रशास्त्र वेदशास्त्र से ही निकला हुआ एक प्रयोग शास्त्र है और उसमें बीज मंत्रों का लिपि द्वारा निर्देश करने के लिये नागरी लिपि का ही प्रयोग किया गया है। निम्नलिखित उद्धरण से यह बात स्पष्ट होगी।

शिवमन्त्रान्मूर्त्युद्धारकृतिः नागरलिपिभिरुद्धारयितुं युज्यते
व्यतिक्तिलिपिभिर्नोद्धारयितुं युज्यते।

—वातुलागम टीका।

नागरलिप्या साम्प्रदायिकरेकारस्य त्रिकोणाकारतयैव लेखनात्।

—सेतुबन्धटीका[1]

शास्त्रपूत नागरी और रोमन लिपि का भेद :—

अतः स्वयंभू भाषा के लिखित चिह्नों से अधिक सम्बन्ध रखने वाली नागरी लिपि सबसे अधिक शास्त्रपूत हो, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। इसकी शास्त्रीयता का सबसे प्रबल प्रमाण तो यह है कि इस लिपि में एक उच्चारण का एक ही लिखित रूप है। 'अ' का उच्चारण 'अ' ही होगा, 'अ', 'आ' अथवा 'ए' नहीं होगा।

रोमन लिपि के बारे में यह बात नहीं है। 'पत्र' का नाम तो स्मरण नहीं,

---

१—देखिए वाङ्मय विमर्श—श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

वर्णमाला का आविष्कार अभी तक नहीं हुआ है। यह सर्वमान्य बात है। "सर्वमान्य", से मेरा मतलब उन लिपियों से है, जो निर्विकार चित्त से इस विषय पर विचार कर सकते हैं। वैसे तो अपनी-अपनी वस्तु सभी को अच्छी लगती है। पर यदि वर्णों का उद्देश्य ध्वनि का शुद्ध उच्चारण हो तो संसार की कोई वर्णमाला नागरी का हाथ नहीं पकड़ सकती। इस वर्णमाला में प्रत्येक ध्वनि के लिये अलग वर्ण है और प्रत्येक वर्ण की एक ही ध्वनि है। जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है और जो पढ़ा जाता है वही लिखा हुआ होता है—यदि पढ़ने वाला नागरी वर्णों से सुपरिचित हो। अवश्य ही रोमन के भक्तों ने उसमें बहुत कुछ सुधार कर लिया है, फिर भी उसमें वर्णमाला का प्रधान गुण नहीं आता है और न आ सकता है। उसमें लिखा एक होता है और पढ़ा दूसरा जाता है। उसमें लिखा जायगा 'आर–ए–एम' और पढ़ना होगा 'राम', पर नागरी में 'राम' और कुछ पढ़ा ही नहीं जा सकता। हमारी ऐसी सुन्दर लिपि के होते हुए भी कुछ सज्जन हमें रोमन लिपि ग्रहण करने का उपदेश देते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य और खेद का विषय क्या हो सकता है? देश-गौरव सुभाष बाबू जी ने भी रोमन लिपि की उपादेयता की ओर हमारा ध्यान यह कह कर दिलाया था कि वह लिपि प्रायः सब यूरोपियन भाषाओं ने अपनाई है और कुछ पूर्वी देश भी अपना रहे हैं, अतः यदि हम भी उसे अपना लें तो लिपि-साम्य हो जायगा तथा भिन्न-भिन्न भाषाओं के सीखने में सरलता होगी। लिपि-साम्य की उपयोगिता हम अस्वीकार नहीं कर सकते और इसीलिए हम चाहते हैं कि भारत की सब भाषाएँ नागरी लिपि में लिखी और पढ़ी जायँ। पर इस साम्य के लिये नागरी जैसी सर्वांगपूर्ण और पूर्ण-वैज्ञानिक लिपि का त्याग करके एक अपूर्ण और अवैज्ञानिक लिपि का ग्रहण करना सर्वथा अनुचित है। इस साम्य से होने वाली थोड़ी सुविधा के लिये यदि हम इस लिपि को विस्मृति के गर्भ में डाल दें तो केवल भारत ही नहीं वरन् समस्त मानव जाति एक ऐसी वर्णमाला से वंचित होगी जैसी अब तक भारत के बाहर न कहीं आविष्कृत हुई है, न हो सकती है, और भावी पीढ़ियाँ हमारी इस मूर्खता पर हँसेंगी और धिक्कार देंगी।

रोमन और अरबी, फारसी लिपियाँ :—

रोमन लिपि में जो दोष हैं वे बढ़-चढ़ कर अरबी फारसी लिपियों में पाये जाते हैं। इस लिपि की अपूर्णता और सदोषता स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्मा ने अपनी "हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी" शीर्षक व्याख्यानमाला में बड़ी खूबी के साथ दिखाई है। एक ही शब्द जेर, जबर, पेश और नुकतों के भेद से कितने रूप ग्रहण करता है इसका आपने यह उदाहरण दिया है:—

मलक (सार्थक)	मौन
मलिक	बादशाह
मुल्क	देश
मिलक	धन
मलुक	(निरर्थक)
मुलिक	"
मिलुक	"
मिल्क (अं०)	दूध

लिखने या छापने के समय साधारणतया जेर, जबर, पेश की उपेक्षा की जाती है। परिणाम यह होता है कि इस लिपि में लिखा मजमून वही पढ़ सकता है जो शब्दों के अर्थ की कल्पना करके उनका ठीक उच्चारण कर सके। जो शब्दों का अर्थ नहीं जानते उनके लिये उनका उच्चारण करना सम्भव नहीं। अरबी-फारसी के अच्छे विद्वानों के लिये भी उक्त लिपि में लिखे हुए प्राचीन लेख को शुद्ध पढ़ लेना कठिन हो जाता है। प्राचीन अप्रचलित शब्दों का शुद्ध उच्चारण, यदि वे इस लिपि में ही लिखे गये हों तो करना सम्भव नहीं है।

सदोष लिपि : गलत उच्चारण—

यही कारण है कि केवल उर्दू लिपि जानने वाले सज्जन अन्य भाषाओं के शब्दों का ठीक उच्चारण कर ही नहीं सकते—कुछ का कुछ हो जाता है। जिन भाषाओं के पढ़ने का साधन ऐसी सदोष लिपि है उनके शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना तब असंभव हो जायगा जब वे शब्द अप्रचलित होंगे और उनका अर्थ विस्मृत होगा। लिपि का प्रयोजन यदि शब्दों का उच्चारण हो

तो अरबी, फारसी, रोमन जैसी लिपियों का त्याग करना ही पड़ेगा। यही कारण है कि तुर्की ने अरबी लिपि को त्याग कर रोमन लिपि को स्वीकारा है। फारस में भी लिपि-सुधार या लिपि-परिवर्तन की चर्चा होने लगी है। यह इसलिये नहीं कि रोमन लिपि सर्वांगपूर्ण या वैज्ञानिक है बल्कि इसलिये कि सेमेटिक और चीन-जापान की लिपियों से वह अच्छी है और छापने या टाइप करने के काम में वह अपना सानी नहीं रखती। एक कारण यह भी है कि रोमन जिनकी लिपि है वे आज दिग्विजयी हैं और जहाँ इनका झंडा नहीं गया है वहाँ इनके व्यापारी पहुँच गये हैं। इसलिये रोमन लिपि का ज्ञान प्रायः सब देशों के शिक्षित लोगों को हुआ है और जिनकी लिपि रोमन से भी गयी गुजरी है, वे रोमन को ग्रहण कर रहे हैं, पर हमारी स्वाधीनता के इस युग में भी नागरी सर्व गुण आगरी होने पर भी अपने ही देश में उपेक्षित हो रही है। नागरी लिपि उर्दू की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता के साथ पढ़ी जा सकती है। मुसलमानों के स्थलों और संस्कृति की रक्षा करना प्रत्येक राष्ट्राभिमानी का प्रथम कर्तव्य है इसमें संदेश नहीं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि मुस्लिम संप्रदाय-वादियों के असंतुष्ट होने के भय से अपनी भाषा और अपनी लिपि की उपेक्षा करके अपनी संस्कृति की जड़ खोदें। हिन्दी का कोई भी अभिमानी यह नहीं चाहता कि उर्दू के भक्तों पर जबरदस्ती नागरी लादी जाय। यदि हमारे मुस्लिम भाई उसी लिपि के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं तो वह उन्हें मुबारक हो। हम केवल यही कहते हैं कि जो अधिकार जीने का और अपनी संस्कृति की रक्षा करने का वे चाहते हैं और उन्हें प्राप्त भी है वही हम हिन्दीभाषियों को भी लेने दें, यह जिद न करें कि औरों को भी उर्दू लिपि से काम चलाते रहना पड़ेगा।

लिपि-सुधार का प्रश्न :—

नागरी लिपि के साथ उसके सुधार के प्रश्न का गहरा सम्बन्ध है। सुधार से मेरा मतलब वर्णमाला के सुधार का नहीं बल्कि उसके अक्षरों के रूप का सुधार है। वर्णमाला हमारी सर्वांगपूर्ण है और उसका क्रम भी वैज्ञानिक है। सुधार की दो दृष्टियाँ हैं (१) उच्चारण सम्बन्धी (२) मुद्रण के सम्बन्ध की।

उच्चारण सम्बन्धी प्रश्न का विचार दो दृष्टियों से करना चाहिए, हिन्दी की दृष्टि से तथा अन्य भाषाओं की दृष्टि से। हमारी भाषा की सब ध्वनियों के प्रतीक वर्ण हमारी नागरी में हैं और हिन्दी की दृष्टि से विशेष सुधारों की आवश्यकता नहीं है। केवल 'ज़' 'फ़' आदि दो-तीन ध्वनियाँ शिक्षित लोगों की बोलचाल में आ गई हैं जिनके लिए 'ज' 'फ' आदि व्यंजनों के नीचे बिन्दी लगायी जाने लगी है और भविष्य में भी यह क्रम जारी रखा जा सकता है। अन्य भाषाओं से आने वाले शब्दों में तरह-तरह की ध्वनियाँ हैं जिनको व्यक्त करने वाले अक्षर नागरी में नहीं होते हैं और न होने की आवश्यकता है। जो उच्चारण हमारे लिए अस्वाभाविक है, बहुत अभ्यास के बाद भी हम जिनमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकते, उनके लिये नये चिह्न गढ़ना नागरी को बिगाड़ना है। सजीव भाषा अन्य भाषाओं से सदा लेन-देन किया करती है। विदेशी भाषाओं के शब्दों का उच्चारण हमारी भाषा की प्रकृति के अनुसार होना चाहिए, जैसे अँग्रेजी Lantern से लालटेन और Lamp से लम्प हो गया। विदेशी भाषाओं के शब्दों को हम अपने वाङ्मय में डालकर अपना सा बना लें तो हिन्दी में विदेशी और हमारे लिए अस्वाभाविक, ध्वनियों के लिये असंख्य चिह्न बनाने की आवश्यकता न होगी।

नागरी के दोष-निवारणार्थ संशोधन आवश्यक है :—

संस्कृत की दृष्टि से तो यह वर्णमाला बनी ही है—रह गयी अन्य भाषाओं की बात। हम चाहते हैं कि भारत की सब भाषाएँ नागरी लिपि में लिखी और छापी जायँ। इस कार्य के लिए अवश्य नागरी में अक्षर और उनके चिह्न नये गढ़ने पड़ेंगे। आर्य भाषाओं की सब ध्वनियाँ नागरी में हैं। मराठी तो नागरी में लिखी जाती है, गुजराती और बँगला की वर्णमालाएँ भी कुछ परिवर्तित नागरी वर्णमाला हैं जिनके लिये शायद ही कोई नये चिह्न बनाने पड़ें। अवश्य ही द्राविड़ी भाषाओं में ऐसी ध्वनियाँ और ऐसे स्वर हैं जिनके चिह्न नागरी में बनाने पड़ेंगे। विदेशी भाषाएँ नागरी में लिखने के लिये भी अनेक नये अक्षर और चिह्नों की आवश्यकता होगी। रोमन लिपि में अनेक चिह्न बनाये गये हैं वैसे ही नागरी में बनाये जा सकते हैं। केवल एक बात का ध्यान

रहे कि जैसे केवल अंग्रेजी सीखने वाले बालकों को अन्य भाषाओं की ध्वनियाँ व्यक्त करने के लिये रोमन अक्षरों में लगाये गये चिह्न सिखाये नहीं जाते उसी प्रकार केवल हिन्दी-संस्कृत सीखने वाले बालकों के लिये सारे चिह्नों का जानना आवश्यक करके उनका बोझ बढ़ाना उचित न होगा। जो हिन्दी-भाषी अन्य भाषा सीखना चाहेगा वह उस भाषा के लिये प्रयुक्त होने वाले नागरी के विशेष चिह्नों को अनायास वा अल्पायास में ही जान सकेगा।

मात्रा : देवनागरी-मुद्रण की कठिनाई—

अब छपाई की दृष्टि से नागरी में जो सुधार आवश्यक हैं उन पर भी एक दृष्टि डालना है। इस पर पर्याप्त विचार हो चुका है और कुछ कार्यान्वित भी किया गया है। छपाई की दृष्टि से नागरी-प्रचार में सबसे बड़ी बाधा अक्षरों के ऊपर और नीचे लगने वाली मात्राएँ हैं। इसके कारण हमें एक अक्षर के लिये तीन-तीन अक्षर बनाने पड़ते हैं। एक अक्षर ऊपर से नीचे तक तीन भागों में बाँटा जाता है। उसके बीच के स्थान में मूल अक्षर होता है तथा ऊपर और नीचे मात्राओं के लिये स्थान छोड़ दिये जाते हैं। जिस अक्षर में ऊपर या नीचे मात्रा लगाने की आवश्यकता नहीं होती वह पूरा ढाला जाता है अर्थात् ऊपर और नीचे मात्राओं के लिये स्थान छोड़ दिया जाता है पर नीचे की मात्रा का स्थान भरा रहता है। तीसरा प्रकार नीचे 'करन' का है। इसमें ऊपर का स्थान तो भर दिया जाता है। पर नीचे रिक्त ही ढाले जाते हैं। और 'कम्पोज' के समय यथावश्यक मात्राएँ बैठाकर बीच के स्थान 'डिगरियों' से भरे जाते हैं। ये डिगरियाँ छोटी-मोटी के हिसाब से अनेक आकारों की होती हैं और जिन्हें यथास्थान बैठाने में बहुत अधिक समय लगता है। इस पर भी यदि कम्पोजिटर से कुछ असावधानी हो गयी और कहीं कुछ ढिलाई रह गयी तो छापने के समय अक्षर तो अक्षर, पंक्तियाँ भी टूट जाती हैं। यह प्रकार बम्बई में ही प्रचलित हुआ है। पहला प्रकार अखंड टाइप का है और उसका आविष्कार भी बम्बई में ही हुआ है। दूसरा प्रकार 'कलकतिया' कहलाता है। इसमें डिगरियों से बचने के लिये सारी बारहखड़ी ढाल ली जाती है। उसके भी दो भेद और होते हैं, रेफयुक्त, अनुस्वारयुक्त,

और रेफ अनुस्वार-युक्त। इसके सिवाय संयुक्ताक्षर भी अलग-अलग ढाले जाते हैं। इससे टाइपों अर्थात् छपाई के अक्षरों की संख्या एक हजार से भी अधिक हो जाती है। इसी कारण से नागरी के नये-नये प्रकार के अक्षर बहुत कम बनते हैं। कम्पोजिटरों का काम अंग्रेजी कम्पोजिटरों की तुलना में बहुत कठिन व जटिल होता है और यह सब इसलिए कि नागरी में कुछ स्वरों की मात्राएँ अक्षरों के नीचे ऊपर लगायी जाती हैं।

नागरी लिपि-सुधार के अध्यक्षीय सुझाव—

नागरी लिपि में ये सुधार हों—(१) स्वरों की जो मात्राएँ ऊपर और नीचे लगायी जाती हैं वे व्यंजनों के बाद उसी तरह लगाई जायँ, जैसे आकार और विसर्ग लगाया जाता है। सब स्वर व्यंजन के बाद ही लगाये जायँ तो छपाई के कार्य की दो तिहाई कठिनाई दूर हो जाय और खर्च में भी एक चौथाई की बचत हो।

(२) सुधार के सम्बन्ध में दूसरा विचारणीय प्रश्न संयुक्ताक्षरों का है। इसके लिए हम नागरी अक्षरों को चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—(१) वह अक्षर जिनके अन्त में खड़ी पाई होती है जैसे 'म, न, स' आदि। (२) वह अक्षर जिनके अन्त में अधोमुख अंकुश होता है जैसे 'क, झ, फ'। (३) वह अक्षर जो टेढ़े होते हैं जैसे 'ङ, र, ड़, ढ़, द'। और (४) 'र'। इनमें सबसे सहज है—इसके अक्षरों की अन्त की खड़ी पाई निकाल देने से ही वे आधे हो जाते हैं और जिनके बाद कोई व्यंजन रखकर संयुक्ताक्षर बनाया जाता है जैसे 'म्य, न्य, स्य' आदि। अंकुश वा अकुसावाले अक्षर का अर्थ अंकुश के नीचे का भाग काटकर बनाया जाता है। जैसे 'क, का क, झ का झ, और फ का फ'। इन अक्षरों के बाद कोई भी व्यंजन बैठाकर संयुक्ताक्षर बनाया जा सकता जैसे 'क्या, झ्या, और फ्दा'। तीसरे वर्ग के टेढ़े अक्षरों का अद्धा बनाना कठिन है। मैं समझता हूँ कि उनके नीचे हलन्त का चिह्न देकर संयुक्ताक्षर बनाना चाहिए जैसे ट्य, ठ्य, ड्य, द्य, ढ्य, ह्य। 'र' स्वयम् ही एक वर्ग है और बहुत ही कठिन है। यह जब दूसरे व्यंजन के पहले आता है तो रेफ बनकर उसके सिर पर सवार हो जाता है जैसे अर्क में

'क' पर जब अन्य व्यंजन के बाद आता है तो प्रथम और द्वितीय वर्गों के अक्षरों के नीचे एक छोटी लकीर के रूप में दिखाई देता है जैसे—म्र, क्र, आदि। 'द' को छोड़कर तृतीय वर्ग के बाकी अक्षरों के नीचे ' ‸ ' इस रूप में 'र' दिखाई देता है जैसे 'ट्र, ठ्र, ड्र, ढ्र और ह्र'। इसकी मनमानी में बाधा डालकर उसका आधा रूप नागरी में ले लें जो मराठी में प्रचलित है (ॅ) तो व्यंजनों के पूर्व इसका व्यवहार अर्द्ध के रूप में किया जा सकता है। जैसे—सर्व की जगह सऱ्व, मर्म की जगह मऱ्म आदि। अन्य व्यंजनों के बाद आने वाले 'र' कार में कोई परिवर्तन न करके अन्य व्यंजनों की तरह 'र' भी यदि अपने मूल रूप में लिखा जाय तो कोई आपत्ति नहीं हो सकती। जैसे 'क्र' न लिखकर 'क्र' लिखा जाय म्र की जगह म्र, ट्र की जगह ट्र अनायास लिखा जा सकता है।

(३) 'र' और 'व' के एक साथ लिखने से 'ख' होता है। अनेक विद्वानों का कहना है कि इसे निकालकर उसकी जगह गुजराती का 'ख' होना चाहिये। मैं स्वयं इस प्रस्ताव का समर्थक हूँ।

(४) पच्चीस स्पर्श वर्णों के दूसरे और चौथे अक्षर, पहले और तीसरे अक्षरों के महाप्राण रूप हैं। जो पहले और तीसरे अक्षरों के साथ 'ह' की ध्वनि मिला देने से बनते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इनके लिये स्वतंत्र अक्षर रखने की आवश्यकता ही क्या है? इस प्रकार पहले और तीसरे अक्षरों की संख्या में दस की कमी हो जायगी जो उपेक्षणीय नहीं है। प्राचीन वैयाकरणों और शिक्षा के लेखकों ने इन्हें स्वतंत्र अक्षर ही माना है तथा मात्रा, न्यास जैसे धार्मिक कार्यों में भी इनका प्रयोग स्वतंत्र अक्षरों के रूप में ही होता है। आज यदि हम इन्हें संयुक्ताक्षर कहेंगे तो बहुत विरोध होगा। और वस्तुतः यह है भी क्रान्तिकारी सुधार। इसलिये ऐसे मामलों में हमें सोच-विचार कर पैर धरने चाहिए। 'इ, ई, और उ, ऊ' की जगह 'अि, अी और अु, अू' लिखने का सुधार मुझे पसंद नहीं क्योंकि 'अ ई, उ, ऊ और ॡ' ये स्वतंत्र स्वर हैं। हाँ, 'ओ, औ' की तरह 'ए, ऐ' को 'अे, अै' लिखा जाना उचित होगा।

१८ सर्वसुलभ नागरी

नागरी लिपि सर्वसुलभ होने से उसे अपनाने में सबको सुविधा होगी, और सब भाषायें उसका अवलम्ब ले सकती हैं।

—श्री रमेशचन्द्र दत्त

(काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित एक लिपि विस्तार परिषद के अध्यक्षीय भाषण से)

११ : हिन्दी के अनुनासिक वर्ण : लिपि और उच्चारण

डॉ० बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान'

[डॉ० बच्चूलाल जी अवस्थी 'ज्ञान' युवराजदत्त कॉलेज, लखीमपुर खीरी के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक हैं। भाषाविज्ञान के विचारक होने के नाते इस निबन्ध में उन्होंने हिन्दी के अनुनासिक वर्णों के शास्त्रीय और व्यावहारिक पक्ष पर शोधपूर्ण समीक्षा प्रस्तुत की है।]

लिपि और उच्चारण :—

प्रत्येक भाषा की लिपि उसके उच्चारण का शत-प्रतिशत उच्चारण कर पाती हो, यह संभव नहीं। व्याकरण-दर्शन के अनुसार तो उच्चारित वाणी (वैखरी) भी वास्तविक वाणी न होकर हृदय-नाद से व्यक्त होने वाले स्फोट-रूप शब्द की प्रतिकृति मात्र है। इस दशा में तो लिपि प्रतिकृति की प्रतिकृति हुई, और सो भी ऐसी प्रतिकृति जो मनुष्य ने अपनी बुद्धि पर आरोपित भर कर ली है, तथा उसी लिपि में अपना सांस्कृतिक वैभव सुरक्षित देखकर फूल उठा है। हिन्दी भी एक भाषा है, जिसका उच्चारण यदि लिपि से एकाध स्थल पर वैषम्य रखता हो तो कोई अपवाद की बात नहीं। अनेक स्वर-संयोग, बलाघात, विराम आदि अब तक लिपि-बद्ध नहीं हुए, तो भी संसार की भाषाएँ अपनी पूर्णता अविकल समझे चल रही हैं, फिर हिन्दी को तो संस्कृत भाषा और देवनागरी लिपि का वह वैभव उपलब्ध है कि यथासंभव लिपि एवम् उच्चारण में सामंजस्य लाया जा सकता है।

हिन्दी की लिपि को जहाँ-जहाँ हम उच्चारण की अपेक्षा में विषम पाते हैं, उन स्थलों में अनुनासिक वर्णों की गणना सर्वप्रथम होनी चाहिये क्योंकि इन्हीं को लेकर बड़ी मनमानी प्रेस-सुविधा के नाम पर बरती जाने लगी है। 'सिङ्गार' और 'सिंगार' को एक रूप करके 'सिंगार' बना दिया जाता है और

निर्णय पाठक पर डाल दिया जाता है। वह भी अभ्यास-वश जहाँ जैसा उचित होता है, पढ़ता चला जाता है, परन्तु जब 'साँवलिया' को 'सांवलिया' और 'दिनाङ्क' को 'दिनांक' छापा जाता है, तब इसे क्या कहा जाय ?

हम इस लेख में देखना चाहते हैं—वस्तुतः हिन्दी में कितने अनुनासिक हैं ? उनका उच्चारण कैसा होता है ? उनमें परस्पर क्या अन्तर हैं ? लिपि में मनमाना व्यवहार कहाँ तक तर्कसम्मत है ? आदि। पाठक को भी सावधान होकर जाँचना पड़ेगा कि उच्चारण और लिपि का वैषम्य किस सीमा तक मान्य होना चाहिए तथा कहाँ रोक-थाम की आवश्यकता है ?

अनुनासिक वर्णों का विभाजन :—

यहाँ हम निम्नलिखित भागों में अनुनासिक वर्णों को बाँटे लेते हैं :—

१. स्वर—कँवल, साँप, सिंगार, ईंधन, पुँछना, ऊँघना रेंगना, रैंझा, पोंछना, औंधाना में १० प्रकार के अनुनासिक स्वर व्यवहृत हैं। इनकी सूचना के लिए चन्द्र बिन्दु का उपयोग होता है। वह स्वतन्त्र वर्ण नहीं।

२. स्पर्श वर्ण—ङ्, ञ्, ण्, न्, म्, वर्गीय पञ्चम हैं, जिन्हें स्पर्श अनुनासिक भी कह सकते हैं क्योंकि इनके उच्चारण में उच्चारण स्थान पर स्पर्श अनुभव होता है। इसमें अन्तिम तीन का सस्वर व्यवहार भी होता है, जैसे—बाण, मान, शाम आदि ; परन्तु प्रथम दो केवल संयुक्ताक्षरों में आते हैं, अङ्ग, अञ्चल आदि।

३. अन्तस्थ—यँ्, वँ्, लँ् ये तीन अन्तस्थ अनुनासिक हैं, जिनका उल्लेख संभवतः हिन्दी के लिये नया ही हो, पर संस्कृत में इनकी स्पष्ट मान्यता है। इनका इस प्रसंग में सर्वात्मना उल्लेख आवश्यक है।

४. अनुस्वार—इसका स्वतन्त्र उल्लेख भी नहीं हो सकता, उच्चारण की बात ही दूर है, अतएव वर्णमाला में 'अं' के रूप में इनका निर्देश कर दिया जाता है, इसका अ भाग वर्णमाला में गिना नहीं जाता, पर बिन्दु भाग गिना जाता है। इसका आगमन स्वर के बाद और व्यञ्जन के पूर्व ही हो सकता है। संस्कृत-व्याकरण में इसको आयोगवाह भी कहते हैं, क्योंकि

यह स्वर या व्यञ्जन में योग नहीं पाता, फिर भी कार्य वहन करता है। सुविधा के लिये इसे व्यञ्जन ही मान लें तो ठीक है।

इस प्रकार प्रथम वर्ग के अनुनासिक स्वर हैं, परन्तु शेष तीन वर्गों के व्यञ्जन हैं। इसका क्रमश: विवेचन किया जायगा—

अनुनासिक स्वर—इनके उच्चारण में कोई गड़बड़ी नहीं है। केवल लिपि में उनका आना अव्यवस्थित हो चला है, विशेषत: प्रेस की असावधानियों के कारण। इन पंक्तियों के लेखक ने रामचन्द्र शुक्ल का हस्तलेख देखा तो पाया कि वे 'मैं' आदि लिखने में बिन्दी नहीं लाते थे, प्रत्युत ठीक चन्द्रबिन्दु लिखते थे ; यही विशेषता पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के हस्तलेख में मिलती है। मिश्र जी के सम्पादित ग्रंथों में प्रेस की भी यह गड़बड़ी नहीं होने पाई है। यहाँ हम अनुनासिक स्वर-लिपियों के दो विभाग कर सकते हैं :—

(क) ऊपर पाई वाले अनुनासिक स्वर :—इनके लिए हिन्दी का ही प्रयोग लिखने और छापने में चल पड़ा है। ऊपर शुक्ल तथा मिश्र जी के अपवाद ही उपलब्ध हैं। पाई के साथ चन्द्रबिन्दु का टाइप आता ही नहीं, अत: प्रेस की असुविधा बतलाई जाती है। इससे कोई बड़ी अव्यवस्था नहीं होती, क्योंकि अधिकतर दीर्घ स्वरों की ही पाइयाँ ऊपर छपती हैं, जिनके साथ अनुनासिक उच्चारण ही होता है। हिन्दी में प्राय: अनुस्वार नहीं आता। केवल ह्रस्व इकार की पाई को लेकर गड़बड़ी हो सकती है—'सिंगार' छपने पर 'सिंगार' और 'सिंगार' दोनों पढ़ा जा सकता है, परन्तु इतने के लिए सुविधा को मान्यता मिल जानी चाहिए। इसे 'चतुर दुभाखी' कहना कठिन है।

(ख) वे अनुनासिक स्वर, जिनमें ऊपर पाई नहीं होती—इनकी लिपि में अनुस्वार को चन्द्रबिन्दु से पृथक रहना अनिवार्य है, अन्यथा भाषा कुछ दिनों में ही कहाँ से कहाँ जा पहुँचेगी। शिष्ट भाषा का इतनी जल्दी परिवर्तन वांछित नहीं।

अनुनासिक स्पर्श—इनकी संख्या पाँच है, पर 'न' और 'म' ही मूलत: ठहरते हैं। शेष तीन इन्हीं के स्थान पर अनुस्वार के माध्यम से आते हैं। यही कारण है कि आचार्य पाणिनि ने अपने सूत्रों में संयुक्त स्पर्शों के लिए 'न' का

ही उल्लेख किया है, जिससे 'अञ्च', 'स्तम्भ' के 'ञ' और 'म' भी गृहीत होते हैं। 'न' या 'म' जब व्यंजन के पूर्व आता है, तो अनुस्वार बन जाता है (पा० सू० ८। ३। २४.) और अनुस्वार ही फिर (१) क वर्ग के पूर्व 'ङ' (२) च वर्ग के पूर्व 'ञ' (३) ट वर्ग के पूर्व 'ण', (४) त वर्ग के पूर्व 'न' और (५) प वर्ग के पूर्व 'म' हो जाता है (पा० सू० ८। ४। ५८.)।

पाँचों की तुलना में साम्य-वैषम्य भी देखना आवश्यक है—

१. साम्य—पाँचों नाद कोमल, स्पर्श वर्ण हैं। पाँचों वर्गीय अन्तिम के रूप में मान्य हैं। पाँचों का स्थान कृत साम्य भी है कि वे सभी नासिका से भी उच्चरित होते हैं।

२. वैषम्य—पाँचों में उच्चारण-स्थान का वैषम्य भी है—'ङ' कण्ठ से, 'ञ्' तालु से, 'ण' मूर्धा या कोमल तालु से, 'न्' दन्त या वर्त्स से और 'म्' ओष्ठ से उच्चरित होते हैं। 'कण्ठ' ओर 'अञ्चल' में नकार सदृश उच्चारण इसलिए प्रतीत होता है कि 'ण' और 'ञ्' के उच्चारण-स्थान दन्त के समीप हैं, परन्तु यदि बोलकर, रुककर, विचार कर देखें तो 'मन्द' आदि शब्दों में जहाँ से 'न्' का उच्चारण होता है, वहीं से उक्त णकार और ञकार उच्चारित नहीं होते, प्रत्युत अपने बाद वाले व्यंजन के उच्चारण स्थान से उनका उच्चारण होता है। इतने अन्तर पर ही संस्कृत में भी इनका पृथक् अस्तित्व है। 'ङ' का पृथक् अस्तित्व सिद्ध है, पर संयुक्ताक्षर में ही इसका अस्तित्व होने से प्रेस लिपि में कभी-कभी वह दुर्लभ हो जाता है। पूरा ङ तो अप्राप्य ही रहता है यही दशा 'ञ्' की भी है।

इन पाँचों की अनुस्वार से बाद में तुलना की जायगी।

अनुनासिक अन्तस्थ—यँ, वँ, और लँ अनुनासिक अन्तस्थ हैं, जिनका प्रयोग अनुस्वार के स्थान पर मान्य ठहराया गया है, जैसे—संयम = सँय्यम, संवत् = सँव्वत, संलग्न = सल्ँलग्न। यों तो हिन्दी के लिए इनके परिचय की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, क्योंकि संस्कृत व्याकरण में ही इनका विरल तथा वैकल्पिक प्रयोग हुआ है, फिर अन्यत्र की तो बात ही क्या? परन्तु देखना तो यह है कि उक्त उदाहरणों में जब हम अनुस्वार के बोलने के लिये साव-

धान नहीं रहते, तो उसके स्थान पर यँ, वँ, और लँ ही उच्चारित हो चलते हैं। शुद्ध नासिक्य उच्चारण करना अन्तस्थों के पूर्व भी उतना ही कठिन है, जितना कि स्पर्शों के पूर्व। स्पर्शों के पूर्व तो अनुस्वार असंभव ही हो जाता है, क्योंकि 'स्पष्ट' ऐसा प्रयत्न है जो अनुस्वार को अपनी लपेट में लेकर ही रहता है—अं+क, अं+चल, कं+टक, सं+त, और कं+प के अनुस्वार तभी तक बोले जा सकते हैं, जब तक सानुस्वार अक्षर को अलग रखते हैं, परन्तु जहाँ 'संहिता' की दशा हुई, कि परवर्ती स्पर्श वर्ण अनुस्वार को अपना सजातीय या 'सवर्ण' बना कर ही रहता है, यह सर्वात्मना स्वाभाविक है, अतएव पाणिनि-सूत्र स्पष्ट कहता है, "श ष स ह को छोड़कर किसी भी व्यंजन का पूर्ववर्ती अनुस्वार न प्रयुक्त होकर परवर्ती व्यंजन का सजातीय वर्गीय पंचम प्रयुक्त होता है।

अनुस्वारस्य यपि परसवर्णः (पा० सू० ८। ४। ५८)

यह संस्कृत के लिये विशेष नियम नहीं कहा जा सकता, यह तो भाषा-वैज्ञानिक सत्य पर अवलम्बित विधान है।

संहिता पर आगे विचार किया जायगा।

अनुस्वार—इस वर्ण का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। इसके दो भेद हैं—

(क) पदान्त-स्थ अनुस्वार—यह केवल 'म्' का स्थानापन्न होता है, जैसे—शम्+कर=शंकर। इस अवस्था में उक्त पर-सवर्ण ऐच्छिक होता है—'शङ्कर' और 'शंकर' दोनों प्रयुक्त हो सकते हैं, परन्तु हिन्दी में 'शंकर' ही लिखा जाता है, किन्तु उच्चारण 'शङ्कर' का ही हो पाता है, क्योंकि इस दशा में 'शं+कर' जैसा शुद्ध नासिक्य उच्चारण विशेष यत्न-साध्य है। सम्+चय= संचय या सञ्चय, सम्+तरण=संतरण या सन्तरण, सम्+भव=संभव या सम्भव, इसी प्रकार के प्रयोग हैं। हिन्दी में 'शम्' या 'सम्' को पृथक पद नहीं माना जा सकता क्योंकि संस्कृत के ये तत्सम ज्यों के त्यों ले लिये गये हैं, अतः अखण्ड सहित उच्चारण में पर-सवर्ण ही स्वाभाविक हैं; यह दूसरी बात है कि हिन्दी में सानुस्वर प्रयोगों की लेख में भरमार हो चली है।

(ख) पद मध्यस्थ अनुस्वार—इसे अपदान्तस्थ भी कह सकते हैं। यह

अनुस्वार य, र, ल, व, और वर्गीय पञ्चम को छोड़कर शेष व्यंजनों के पूर्व आता है और इसके दो भाग हैं—

१. मकार स्थानीय; जैसे—रिरंसा। यह रम् धातु से निष्पन्न शब्द है।

२. नकर-स्थानीय; जैसे—हिंसा।

यह अनुस्वार चूँकि अखण्ड पद के मध्य में घटित होता है, अतः 'संहिता' के नित्य होने से अनिवार्यतया दो रूप लेता है—

१. स्वरूप स्थिति—यह दशा 'श, ष, स, ह और र' के पूर्व होती है, क्योंकि वहीं स्वभावतः शुद्ध नासिक्य उच्चारण संभव है। जैसे—वंश, हंस, सिंह आदि।

२. पर-सवर्ण दशा—इसमें अनुस्वार वर्गीय पंचम का रूप लेता है :—

(अ) क वर्गीय व्यंजनों के पूर्व 'ङ्' बन जाता है—अङ्क, पुङ्ख, अङ्ग, लङ्घन आदि इसके उदाहरण हैं।

(आ) च वर्गीय व्यंजनों के पूर्व 'ञ' हो जाता है—चञ्चल, उञ्छ, अञ्जलि, जञ्झा इसके उदाहरण हैं।

(इ) ट वर्गीय व्यंजनों के पूर्व 'ण' होता है। जैसे कण्टक, कण्ठ, दण्ड, षण्ढ आदि।

(ई) त वर्गीय व्यंजनों के पूर्व 'न्' बन जाता है। जैसे कान्त, कन्या, मन्द, सन्ध्या उदाहरण हैं।

(उ) प वर्गीयों के पूर्व 'म्' का रूप लेता है—शम्पा, गुम्फ, स्तम्ब, स्तम्भ आदि।

हिन्दी में प्रायः सर्वत्र अनुस्वार का ही लिपि में ही प्रयोग होता है। हाँ, संहिता न रहने दें, तो दूसरी बात है।

संहिता क्या है ?

एक वर्ण से दूसरे वर्ण के उच्चारण तक बीच में स्वाभाविक अन्तर रहा करता है, जो आधी मात्रा के बराबर होता है। यह अन्तर ही वर्णों को परस्पर पृथक ज्ञेय रखता है। आधी मात्रा का समय ही एक व्यंजन के उच्चारण का माना गया है। इसी आधी मात्रा से अधिक समय लगाये बिना एक साथ

उच्चारण को संहिता कहते हैं। इसी को 'लघु शब्देन्दु शेखर' में—'स्वभाव-सिद्धार्थ-मात्रातिरिक्त-काल-व्यवाचेन रहितः'—कहा है।

यह संहिता एक अखण्ड पद में नित्य होती है, अन्यथा पद की अखण्डता ही समाप्त हो जाय। इसी अवसर पर अनुनासिक व्यंजन और अनुस्वार का अन्तर दे देना ठीक रहेगा—'सन्त' शब्द हिन्दी का अपना है, जो 'संत' भी लिखा जाता है। परन्तु 'संत' में यदि शुद्ध नासिक्य उच्चारण करना चाहें तो स्पष्ट ही संहिता तोड़कर 'सं—त' बोलना पड़ जायगा, या फिर 'न्' उच्चरित होगा। यही दशा किसी भी पद के भीतर आने वाले अनुस्वार की होगी, यदि उसके बाद कोई वर्गीय व्यंजन है, क्योंकि वह व्यंजन अनुस्वार को संहिता में अपने पास पाकर प्रभावित किये बिना न रहेगा, अन्यथा वह संहिता-दशा को तोड़कर ही उच्चारण करना होगा। (यहाँ पाठकों को उच्चारण करके स्वतः देख लेना चाहिए।)

'ङ' व्यंजन को अनुस्वार के अधिक समीप माना जाता है, परन्तु एक तो यह व्यंजन नासिक्य तथा कण्ठ्य है और दूसरे स्पर्श-युक्त उच्चारण वाला है। जबकि अनुस्वार शुद्ध नासिक्य है और कहीं भी स्पर्श नहीं होता। ऐसी दशा में अनुस्वार का उच्चारण र, श, ष, स और ह व्यंजनों के पूर्व ही हो पाता है—"अनुस्वरस्तु कर्तव्योनित्यं ह्रोः शषसेषु च।"—पाणिनीय शिक्षा।

संहिता के आधार पर उच्चारण—'अङ्क, चञ्चल, कण्ठ, दन्त, कम्प' ही हो सकता है, 'अंक, अंचल, कंठ, दंत, कंप' नहीं।

हिन्दी लिपि और उच्चारण में अन्तर :—

इस प्रकार देखा गया कि उच्चारण पर बिना ध्यान दिये ही हिन्दी में अनुस्वार-लिपि का प्रयोग किया जाता है। यहाँ यह तो माना जा सकता है जिस प्रकार अंग्रेजी और फारसी आदि में मकार के अतिरिक्त सभी अनुनासिकों के लिए नकार का प्रयोग कर लिया जाता है, उसी प्रकार हिन्दी में मान लिया गया है कि सुविधा के लिये हम अनुनासिक व्यंजनों के लिये अनुस्वार-लिपि का ही प्रयोग करें और प्रायः स्वरों की अनुनासिकता सूचित करने के लिए "मैं" आदि में भी अनुस्वार लिपि ही लिखकर या छाप कर काम चला लें।

यह केवल सुविधा है, जो लेखन और मुद्रण से सम्बन्ध रखती है, उच्चारण से नहीं। यह भ्रान्ति ही होगी, यदि समझ लेंगे कि 'मैं' में अनुस्वार बोला जाता है, जबकि यह अनुनासिक है। इसी प्रकार की भ्रान्ति अनुनासिक व्यंजनों और अनुस्वार को लेकर भी चल पड़ी है यह भ्रान्ति अब तक इन रूपों में आई

१. 'अङ्क' आदि में अब क वर्गीय नहीं होता, अनुस्वार बोला जाता

२. 'अञ्जलि', 'कण्टक' आदि में बतलाया जाता है कि 'न' ही बोला जाता है, अतः वहाँ भी अनुस्वार का प्रयोग कर लें तो अच्छा है। एक व्याकरणाचार्य ने तो यहाँ तक कह दिया कि संस्कृत के तत्समों में भले ही वर्गीय पंचम लाये जायँ, पर तद्भवों में उनकी आवश्यकता ही नहीं; कारण कि 'न' जैसा ही उच्चारण होता है।

अब इन भ्रान्तियों का क्रमशः निराकरण भी अपेक्षित है। प्रथम भ्रान्ति का उत्तर ऊपर आ ही चुका है। दूसरी के लिये भी कहा जा चुका है कि वर्गीय व्यंजन के पूर्व जब तक संहिता खण्डित न कर दें, अनुस्वार उच्चरित नहीं हो सकता, और जहाँ तक 'न' के समान 'ञ्' और 'ण्' के उच्चारण का प्रश्न है, वैज्ञानिक उत्तर की अपेक्षा रखता है। कहा जा चुका है कि जिस वर्ग का व्यंजन बाद में आकर जिस स्थान में उच्चरित होता है, उसी स्थान से वर्गीय पंचम भी उच्चरित होता है। नकारवत् बोले जाने से वह दन्त्य या वर्त्स्य नहीं हो जाता। इतनी ही वैज्ञानिक बात है, जो सदा से शास्त्र-सम्मत रही है।

लोग 'ञ' को 'यँ' की तरह बोलते हैं, तो भूल जाते हैं कि 'यँ' ईषत्स्पृष्ट है, जबकि 'ञ' पूर्ण स्पृष्ट है अतः 'न' की समानता में उसे स्पर्श युक्त होना ही है। 'अञ्चल' में अनुनासिक भाग के लिए 'दन्त' के पास आकर फिर 'च' बोलने के निमित्त 'तालु' तक दौड़-भाग हम कभी नहीं करते और न वैसा कर ही सकते हैं। यही बात 'ण' के लिए भी सत्य है।

जहाँ तक विद्वानों का यह कथन है कि संस्कृत-तत्सम शब्दों के लिए वर्गीय

पञ्चम रक्खे जायँ, परन्तु तद्‌भवों में उनकी आवश्यकता नहीं—यह स्थापना निराधार है। यदि तत्समों में पंचम का उच्चारण होता है, तो तद्‌भवों में क्यों नहीं? क्या 'पङ्ख' में अनुनासिक और प्रकार से बोला जायगा और 'पंख' में उसकी स्थिति बदल जायगी?

× ×

प्राकृत-परम्परा—

इस विषय पर ऐतिहासिक अध्ययन भी महत्व का रहेगा। प्राकृत और अपभ्रंश की परम्परा सरलता की ओर रही है। कम-से-कम वर्गीय संयुक्ताक्षरों को छोड़कर अन्य संयुक्ताक्षरों के बोलने और लिखने में उक्त भाषाओं ने बड़ी सरलता स्वीकृत की है। क्लान्त > किलन्त, म्लान > मिलान आदि इसके उदाहरण हैं।

प्राकृत वैयाकरणों के समक्ष भी वर्गीय पञ्चम अक्षरों को लेकर सन्देह उपस्थित हुआ, पर उनकी सत्ता सर्वात्मना अमान्य न हो सकी। हिन्दी में तत्समों की भरमार है, पर प्राकृत-भाषाएँ तत्समों की द्वेषिणी रही हैं, फिर भी पंचमाक्षरी के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग सर्वमान्य न हो सका।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण के सू० ८।१।१।। की प्रकाशिका में प्राकृत-वर्णमाला से 'ङ' और 'ञ' व्यंजनों का लोप घोषित किया, पर तुरन्त उन्हें कहना पड़ा कि अपने वर्गीय व्यंजनों से संयुक्त होकर वे दोनों भी आते ही हैं। अलबत्ता संस्कृत में जो वर्गीय पंचम के प्रयोग अनिवार्य कर दिये गये थे, उन्हें प्राकृतों में वैकल्पिक बना दिया गया।

"वर्गेऽन्त्यो वा ८।१।३०।।"—सिद्धहैमशब्दानुशासन।

परन्तु इस वैकल्पिक-विधान से आचार्य को सन्तोष न हो सका। उस भाषा-शास्त्री के समक्ष वैमत्य उपस्थित था, अतएव उक्त सूत्र की वृत्ति में कहना ही पड़ा कि—'नित्यमिच्छन्त्यन्ये'

अर्थात् अन्य विद्वान वर्गीय पंचम नित्य (अनिवार्य) मानते हैं। वे अन्य

विद्वान प्राकृत के ही रहे होंगे, संस्कृत के नहीं, अन्यथा प्राकृत व्याकरण में उनकी दुहाई व्यर्थ ही ठहरती। हेमचन्द्र ने 'सङ्खो' 'संखो' आदि उदाहरण तो दिये हैं, पर लेखक की समझ में नहीं आता कि 'संखो' का उच्चारण कैसे हो पाता होगा ? हो सकता है—'ठाअइ', झाअइ' के स्वरों के समान यह उच्चारण भी उस समय स्वाभाविक रहा हो, परन्तु आज वर्गीय वर्ण के पूर्व अनुस्वार का शुद्ध उच्चारण एक समस्या ही है। हाँ ! लिपि की वैकल्पिकता पूर्वतया मान्य

× ×

क्या कारण है कि 'न' और 'म' तो संयुक्ताक्षरों में स्पष्ट सुन पड़ते हैं, परन्तु (१) 'ङ' और अनुस्वार (२) 'ञ्—ण्' और नकार एक से जान पड़ते हैं ? उनका अन्तर स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ता।

इसका कारण यही जान पड़ता है, 'न्' और 'म्' क्रमशः दन्त और ओष्ठ से बोले जाते हैं। उनके स्थान प्रायः मुख के बहिर्भाग में पड़ते हैं। अन्य अनुनासिक व्यंजन मुख के भीतरी स्थानों से बोले जाते हैं, अतएव अन्तर स्पष्ट नहीं होता। नकार का उच्चारण दन्त से हटकर वर्त्स से होता है जो तालु के समीप ही पड़ता है, अतः 'ञ्' और 'ण्' से उसका अन्तर स्पष्ट नहीं सुन पड़ता।

'ङ्' और अनुस्वार का अन्तर स्पष्ट है। 'ङ्' के उच्चारण में मुखविवर और नासाविवर दोनों से गूँज निकलती है, जैसा कि यह घोष वर्ण है, परन्तु अनुस्वार में केवल नासाविवर ही प्रयुक्त होता है तथा 'ङ्' वाला स्पर्श अनुस्वार के उच्चारण में नहीं अनुभव होता। 'ङ्' के बोलने में स्वर-तन्त्री के दो पल्ले कण्ठ में जुड़ जाते हैं और जब खुलते हैं तब उसकी ध्वनि प्रकट होती है, परन्तु अनुस्वार में ऐसा नहीं होता है।

इतना अन्तर पर्याप्त है, अन्यथा अंग्रेजी के नकार से ही सारे काम चल जाते हैं, फिर अपने सूक्ष्म विभाजन पर हम गर्व ही छोड़ बैठें !

सारांश यह कि लिपि में वर्गीय व्यञ्जनों का तथा ऊपर पाई वाले अनुनासिक स्वरों का काम अनुस्वार-लिपि से चला लेना हिन्दी में मान्य हो सकता है परन्तु उच्चारण की वैज्ञानिकता से वह सर्वथा दूर है। इस विषय पर शुद्ध वैज्ञानिक एवम् ऐतिहासिक दृष्टि से शास्त्रीय विवेचन अपेक्षित है।

यों लिपि में भी वर्गीय पञ्चमों का संयुक्ताक्षरों में प्रयोग मान्य रखना हिन्दी के लिये अच्छा रहेगा, पर उसे वैकल्पिक ही किया जा सकता है।

---

१२ : रोमन और देवनागरी लिपि

यूरोप में कई देश और कई भाषाएँ हैं पर उन सबकी एकमात्र रोमन लिपि होने से सारे सुशिक्षित लोगों के विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान तथा विभिन्न भाषाओं का अध्ययन सहज और सुलभ हो सका है। उसी प्रकार भारत में भी सभी आर्य एवम् अनार्य परिवार की भाषाओं के लिए एक लिपि होने से भारतीय जनता की एकता और ज्ञान का अन्तरप्रान्तीय आदान-प्रदान सुगम हो जावेगा।

—श्री लोकमान्य तिलक

---

१३ : नागरी लिपि : एकमात्र हल

—स्व० श्री० न० वि० गाडगील

[संविधान के अनुसार नागरी लिपि तथा राष्ट्रभाषा और भारत गणराज्य के लोकतान्त्रिक व्यवस्था में अटूट विश्वास रखने वाले विचारकों में से महा-महिम श्री० न० वि० गाडगील जी एक हैं, अत: उनके विचारों का निश्चित महत्व है। प्रस्तुत विवेचन उनके विचारों पर आधारित है। यह अपने मूल रूप में 'पुस्तक जगत' अंक १२, अगस्त १९६१, पृष्ठ संख्या ७३-७४ में प्रकाशित है। यहाँ पर महत्वपूर्ण अंश लिया गया है।]

संविधान से संप्राप्त राष्ट्रीयता से भाषा और लिपि का अटूट सम्बन्ध है—

किसी भाषा के साहित्य को प्रगतिशील एवम् शक्तिशाली बनाना कोई आसान कार्य नहीं है। भारतीय संविधान के अनुसार हिन्दी, देश की राष्ट्रभाषा होगी और संविधान में दी गई चौदह भारतीय भाषाओं की शैली, रचना आदि के सहयोग से देवनागरी लिपि में लिखी जावेगी। हिन्दी को अपनी समृद्धि के लिए देश भर की सभी भाषाओं से शब्दों और मुहावरों को ग्रहण करना पड़ेगा। जिस प्रकार गंगा नदी की धारा में प्रवाह और बहाव उसमें मिलने वाली अनेक उपनदियों से आता है, उसी प्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रवाह उसी समय आ सकता है, जब वह अपने भंडार को अन्य भाषाओं के शब्दों और मुहावरों को अपना कर ग्रहण कर समृद्ध करे। इसके साथ ही यह कदापि उचित नहीं है कि तद्भव शब्दों को प्रयोग में लाने के लिए हम अ-संस्कृत शब्दों को छोड़ दें। मैं व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव करता हूँ कि संस्कृत शब्द भंडार इतना समृद्ध है कि दूसरी भाषाएँ उससे आसानी से शब्द ले सकती हैं।

हिन्दी को उदार दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए—

मराठी साहित्य सम्मेलन के दिल्ली अधिवेशन में भाषण देते हुए प्रधान

मंत्री पंडित नेहरू ने कहा था—"वस्तुत: भारत के चौदह राज्यों में बोली जानेवाली चौदह भाषाएँ देश की राष्ट्रभाषाएँ हैं।" उनका अभिप्राय यह है कि सभी भाषाएँ राष्ट्रभाषा की अधिकारिणी हो सकती हैं या हैसियत रखती हैं और हिन्दी को केन्द्र और आन्तरिक प्रशासन की भाषा माना गया है। इस प्रकार कुछ दिनों के बाद वह यथार्थ रूप में भारत की राष्ट्रभाषा का पद स्वत: ग्रहण कर लेगी। इतना ही नहीं, हम लोग इसका प्रयत्न करेंगे कि यह अन्तरराष्ट्रीय भाषा का स्थान प्राप्त कर ले। सचमुच यह समय का प्रश्न है। तब तक, जिनकी मातृभाषा हिन्दी है उनको और हिन्दी के लेखकों को चाहिए कि वे इसके साहित्य को इस प्रकार समृद्ध करें कि यह जीवन के विभिन्न पहलुओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता प्राप्त कर सके। जिस प्रकार समुद्र किसी भी नदी के जल को अपने में समाहित कर लेता है, उसी प्रकार अंग्रेजी भाषा दूसरी-दूसरी भाषाओं से समय-समय पर शब्दों को इकट्ठा करती रही है। अत: अंग्रेजी भाषा संसार में समझी जाती है और इसकी बनावट, शैली, और संपन्नता की ओर ध्यान दें तो यह अगाध समुद्र प्रतीत होती है। हिन्दी को भी इसी प्रकार उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

भाषा और लिपि का अटूट और अक्षुण्ण संबंध है—

प्रशासन की दृष्टि से भारत एक इकाई है। जब इसकी, मुहर एक, ध्वज एक और कानून एक है; तो यह उचित ही है कि उसकी राष्ट्रभाषा या राजभाषा एक हो। हम लोगों को प्रगति के मार्ग पर इस स्थिति को स्वीकार कर पाँव रखना चाहिए। जबकि हमने प्रजातांत्रिक तरीके को ग्रहण किया है, तो हमें इसे अवश्य स्वीकार करना चाहिए। हमारे संविधान के अनुसार, १९६५ के अन्त तक हिन्दी पूर्ण रूप से भारत की राष्ट्रभाषा हो जायगी। लेकिन, भाषा-आयोग के रिपोर्ट और भारतीय संसद के दोनों सदनों में हुए विवादों से ऐसा लगता है कि हिन्दी का भविष्य अन्धकारमय है। यह भी संकेत दिया गया है कि १९६५ के बाद भी अंग्रेजी, हिन्दी के समकक्ष, प्रशासन के कार्यों में प्रयुक्त होती रहेगी। इसका तात्पर्य यह है कि सारा भारत द्विभाषी राष्ट्र हो जाएगा। मैं व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव करता हूँ कि यह व्यवस्था ठीक

नहीं है । अगर १९६५ तक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पाती है, तो पाँच या दस वर्ष और समय बढ़ा देने में हानि नहीं है । लेकिन, यह उचित और आवश्यक है कि हम बिना हिचके इस बात की घोषणा कर दें कि हिन्दी एक निश्चित अवधि के भीतर प्रशासन और भारत गणराज्य की भाषा हो जायगी।

संविधान के इस सुझाव के साथ कि हिन्दी को दूसरी भाषाओं से शब्दों और मुहावरों को ग्रहण करना चाहिए, मैं समझता हूँ कि अन्तर राज्य प्रशासन और हिन्दी भाषा को सम्पन्न बनाने के लिए सभी भारतीय भाषाओं को अपनी लिपि के साथ ही नागरी लिपि में लिखा जाना चाहिए। भाषा और लिपि का सम्बन्ध अटल है । भाषा के लिए वर्णमाला की नितान्त आवश्यकता नहीं है । इसी प्रकार किसी विशेष भाषा के लिए किसी विशेष वर्णमाला की भी आवश्यकता नहीं है । देवनागरी एक सुन्दर लिपि है । इसकी उपयोगिता शब्दों के ठीक-ठीक उच्चरित किये जाने में है, तथा इस लिपि में लिखे गये दूसरी भाषाओं के शब्द भी पढ़े जा सकते हैं, इसलिए भाषावैज्ञानिकों ने इस लिपि को सबसे अच्छा और वैज्ञानिक माना है । वर्णमाला का सम्बन्ध कुछ दूर तक भाषा से है, लेकिन लिपि का तो बिलकुल नहीं है । एक आदमी धोती, पैंट, लुंगी कुछ भी पहन सकता है, लेकिन उसका शरीर एक ही रहता है, उसमें परिवर्तन नहीं आता । आप चाहे सोने की तश्तरी में मिठाई खाएँ या पत्ते नहीं आता । इसी प्रकार बंगाली, गुजराती, पंजाबी या दूसरी दक्खिनी भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाएँ तो उनकी आत्मा या अर्थ में कोई फर्क नहीं आवेगा । अतः अगर हम लोग भारत की भावनात्मक एकता और देश को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, तो देश की भाषाओं के साहित्य को नागरी लिपि में लिखा जाना चाहिये ।

लिपि एकता का साधन है, देवनागरी का ही व्यवहार हो—

हमारे संविधान में यह व्यवस्था है कि हिन्दी—देवनागरी लिपिवाली ही भारत की राष्ट्रभाषा होगी । आज भारत की प्रत्येक भाषा अलग-अलग लिपि में लिखी जाती है । फलस्वरूप उनका साहित्य उन्हीं व्यक्तियों तक

सीमित रह जाता है जो उनकी लिपि विशेष को जानते हैं। हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि किसी भाषा की लिपि को छोड़ दिया जाय या समाप्त कर दिया जाय और उसकी जगह देवनागरी लिपि ले लें। हमारा सुझाव मात्र यह है कि अपनी-अपनी लिपि सहित देवनागरी का भी व्यवहार किया जाए। अगर बंगाली, गुजराती या पंजाबी भाषाओं को देवनागरी लिपि में लिखा जाने लगे, तो मैं अनुभव करता हूँ कि दूसरे राज्यों के लाखों व्यक्ति उस भाषा-विशेष से परिचित हो जाएँगे। आखिर ये सभी भाषाएँ संस्कृत से ही उत्पन्न बेटियाँ हैं। यद्यपि शैली, व्याकरण और बनावट में थोड़ी भिन्नता हो सकती है पर थोड़े से परिश्रम से उनको समझा जा सकता है। सबसे बड़ी समस्या लिपि की है।[१] इसको हम देवनागरी लिपि के साधन से हल कर सकते हैं क्योंकि लिपि एकता का साधन है।

१—[आखिरी वाक्य हमारा है।—सम्पादक]

१४ : देवनागरी लिपि में तेलुगु

—डॉ० चन्द्रभान रावत

[प्रस्तुत निबन्ध में तेलुगु और देवनागरी लिपि के ऐतिहासिक संबंध और सामीप्य, दोनों की तुलना, समानता, और अन्तर, देवनागरी के तेलुगु लेखन में प्रयुक्त होने की कठिनाई और उपादेयता पर विचार किया गया है। डा० चन्द्रभान रावत श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय तिरुपति में हिन्दी के प्राध्यापक हैं।]

भारतीय लिपियों के भेद् :—

जोंन्स ने देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का मूल्यांकन किया था और अंग्रेजी लेख प्रणाली की अवैज्ञानिकता और अपूर्णता को स्वीकार किया था ।[१] देवनागरी लिपि के ज्ञान के साथ ही ध्वनियों का वैज्ञानिक विश्लेषण और वर्गीकरण आरम्भ हो जाता है।[२] तेलुगु लिपि की व्यवस्था और क्रम भी

१—**एशियाटिक सोसायटी के सभापति के रूप में 'आर्थोग्राफी ऑफ एशियाटिक वर्ड्स इन रोमन लैटर्स" पर बोलते हुए जोन्स ने कहा था :** Not a letter could be added or taken away without manifest inconvenience. The same way indubitably be said of the Devanagri system, which, as it is more naturally arranged than any other, shall here be the standard of my particular observations on Asiatic letters. Our English alphabet and orthography are disgracefully and almost ridiculouly imperfect."

२—**फर्थ, लैम्बर्ट की 'इन्ट्रोडक्शन टू दी देवनागरी स्क्रिप्ट' पुस्तक की भूमिका, पृ०** V

उतने ही वैज्ञानिक हैं।[३] जैसा लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है। थोड़े बहुत अन्तर के साथ दोनों लिपियों का क्रम और विवरण समान हैं। भौगोलिक रूप से भी दोनों लिपियों की सीमाएँ परस्पर संम्पृक्त हैं। अतः दोनों का ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन महत्वपूर्ण भी होगा और राष्ट्रीय मौलिक एकता स्थापित करने में भी व्यक्त-अव्यक्त योग दे सकता है।

देवनागरी और तेलुगु लिपियों का विस्तार-क्षेत्र और प्रयोक्ताओं की दृष्टि से भी बहुत महत्व है। देवनागरी लिपि का प्रयोग हिन्दी, मराठी और नैपाली भाषाओं द्वारा किया जाता है। गुजराती देवनागरी का ही थोड़ा परिवर्तित रूप है। यद्यपि पंजाबी और बंगाली के कुछ ही अक्षरों की समानता देवनागरी से है, तथापि दोनों देवनागरी से संबद्ध हैं। क्रम और विवरण में प्रायः सभी उत्तर-भारतीय लिपियाँ समान हैं; पर सभी की अपनी कुछ निजी विकसित रीतियाँ हैं। दक्षिण भारत में तेलुगु लिपि का भी विस्तार कुल मिलाकर सबसे अधिक है। यह विस्तार एक ऐतिहासिक दीर्घ परम्परा और पुष्ट पृष्ठभूमि का द्योतक है। अतः इन दोनों लिपियों का तुलनात्मक अध्ययन देश के एक बहुत बड़े भूभाग की लिपियों का अध्ययन है।

देवनागरी और तेलुगु :—

देवनागरी और तेलुगु लिपियों का संबन्ध स्थापित करने के लिए तेलुगु के विस्तार और उसकी उत्पत्ति पर एक विहंगम दृष्टि प्रासंगिक होगी।

विस्तार—दक्षिण में तीन लिपियाँ हैं : तमिल, मलयालम तथा तेलुगु-कन्नड़। तेलुगु और कन्नड़ लिपियाँ कुछ नगण्य अंतरों के होते हुए भी मौलिक रूप से समान हैं। इन दोनों को एक करने के प्रयत्न भी चल रहे हैं। इस ऐक्य के प्रयत्न में चाहे अन्य किसी प्रकार की बाधाएँ हों, पर निष्पक्ष वैज्ञानिक दृष्टि से दोनों की विभाजिक रेखा अलंघ्य नहीं है। तुकु पहले मलयालम में लिखी जाती थी। पीछे इसके लिखने में तेलुगु लिपि का प्रयोग होने लगा।

३—**ए० एच० आर्डन, ए प्रोग्रेसिव ग्रामर आफ दी तेलुगु लैंग्वेज,** "there is a distinct letter for each sound and therefore every sound is pronounced exactly as it is spelt."

ब्रिगेल (Brigel) का तुकु-व्याकरण भी तेलुगु में लिखा हुआ है। ऐतिहासिक प्राचीनता और सांस्कृतिक दृष्टि से चाहे तमिल का महत्व हो पर विस्तार और माधुर्य की दृष्टि से तेलुगु का स्थान उच्च है।

उत्पत्ति—काल्वेल ने सभी दक्षिण-भारतीय लिपियों का उद्‌गम देवनागरी के प्राचीन रूप अशोक के अभिलेखों की लिपि अथवा ब्राह्मी लिपि से माना है।[४] दक्षिण की लिपियों की गोलाकृति का कारण यह बताया जाता है कि इन भाषाओं के लेख पहले ताड़-पत्रों पर अंकित किये जाते थे। ताड़-पत्रों पर गोलाकृति अक्षर अधिक सुविधापूर्वक लिखे जा सकते थे।[५] उड़िया अक्षरों की आकृति भी गोल है। समुद्र-तटीय भागों में गोलाकृति अक्षरों के प्रचलन की परम्परा दीखती है। एलिस (Ellis) के अनुसार ब्राह्मणों के दक्षिण-प्रवेश से पूर्व तमिल प्रदेशों में जो लेख-प्रणाली प्रचलित थी, ब्राह्मणों ने उसमें अपनी आवश्यकतानुसार संस्कृत ध्वनियों का समावेश करके एक मिश्रित 'ग्रन्थ-लिपि' का आविष्कार किया। इसी 'ग्रन्थ-लिपि' से वर्तमान तमिल अक्षरों का विकास हुआ है। वर्तमान तमिलाक्षरों की ग्रन्थ-लिपि के कतिपय ध्वनि-चिन्हों से आंशिक समानता इसकी सूचक है।[६] कुछ विद्वान द्रविड़ स्रोत से संस्कृत लिपि के विकास की बात कहते हैं।[७] कुछ विद्वान तमिल लिपि का एक स्वतन्त्र विकास बताते हैं। एम० श्रीनिवास आयंगर के अनुसार तमिल-लिपि संस्कृत से नितांत असम्बद्ध है। पश्चिम एशिया से यह तमिल व्यापारियों द्वारा यहाँ लाई गई : स्वतन्त्र रूप से पनपी और विकसित हुई : पीछे १० वीं शती के

४—कम्परेटिव ग्रामर आफ दि द्रविडियन लैंग्वेजेज, पृ० १२३-१३४

५—बीम्स, कम्पैरेटिव ग्रामर आफ दि मॉडर्न एर्यन लैंग्वेज आफ इन्डिया, इन्ट्रोडक्शन, पृ० ६२-६६

६—काल्डवेल, पृ० १२५ पर उद्धृत।

७—एडवर्ड थॉमस, रिसेंट पहलवी डेसीफरमेंट्स, जर्नल आर० ए० एस० (१८७१)

लगभग ग्रन्थ-लिपि ने अंशतः इसका स्थान ले लिया।[८] पर, इनके कथनानुसार केवल तमिल-लिपि (Vatteluttu) का स्वतन्त्र स्रोत से विकास हुआ : तेलुगु कन्नड़ लिपि का विकास उत्तरी भारत की ब्राह्मी से हुआ है।[९] तमिल की संस्कृत लिपि से विकसित होने के सिद्धान्त पर चाहे जितना बड़ा प्रश्नवाचक चिन्ह लटक जाय, पर अब यह निर्विवाद है कि तेलुगु-कन्नड़ लिपि का विकास ब्राह्मी या देवनागरी के प्राचीन रूप से हुआ है। तमिल की उत्पत्ति का प्रश्न प्रस्तुत अध्ययन के लिए अप्रासंगिक है। तेलुगु ध्वनि-चिन्हों का विधान, वर्गीकरण और संगठन तमिल से नितान्त भिन्न और देवनागरी के प्रायः समान है। अत्यन्त प्राचीन काल से संस्कृत, बौद्धों के तथा शातवाहनों के माध्यम से प्राकृतों का प्रभाव आन्ध्र-कर्णाटक प्रदेशों पर अत्यधिक रहा। इसी प्रभावकाल में देवनागरी का पूर्व रूप लिपि के रूप में अपना लिया गया। ऐतिहासिक साम्य, दोनों लिपियों के बाह्य-संगठनात्मक साम्य से पुष्ट होता है।

तुलनात्मक अध्ययन—वर्णमाला-क्रम का साम्य, कुछ ध्वनि-चिन्हों अथवा अक्षरों की आकृति का साम्य तो मिलता ही है, कुछ ध्वनियों का अन्तर भी मिलता है, इन्हीं पर क्रमशः इस शीर्षक में विचार किया जायगा।

वर्णमाला के क्रम और वर्गीकरण का साम्य—तेलुगु का वर्ण-क्रम और विन्यास तमिल वर्ण-विधान से भिन्न है। इनकी व्यवस्था देवनागरी की शैली पर ही हुई है। अक्षरों का मूल्य-माप भी लगभग समान है। कुछ ध्वनियाँ ऐसी अवश्य हैं जो संस्कृत में अप्राप्य हैं और तेलुगु में प्राप्य हैं। इन पर आगे विचार किया गया है। इन ध्वनियों के अतिरिक्त समस्त ध्वनि-चिन्हों को

८—तमिल स्टडीज (१९१४, मद्रास) पृ० १२८

९—Among the Dravidian Races of South India the Tamils alone made use of the vatteluttu alphabet from immemorial, whilst their Telugu and Kanarese neighbour have ··· been using some alphabet which had its origin from the Brahmi of upper India." (**वही, पृष्ठ १२४**)

देवनागरी के रूपों में बदला जा सकता है। स्वरों की तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है—

संस्कृत स्वर—	a ā	i ī	u ū	ṛ ṝ	ḷ ḹ	• e ai	• o au
देवनागरी——	अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ •		• ए ऐ	• ओ औ
तेलुगु——	అ ఆ	ఇ ఈ	ఉ ఊ	ఋ ౠ •		ఎ ఏ ఐ	ఒ ఓ ఔ

अनुस्वार (ं) और विसर्ग (:) दोनों लिपियों में स्वर-सूची के साथ दिये गये हैं। दीर्घ ॠ तथा ॡ ध्वनियाँ परम्परायत तेलुगु लिपि में सम्मिलित की जाती हैं। पर प्रयोग की दृष्टि से वे छूट गई हैं। इस प्रकार दोनों लिपियों के स्वर-क्रम में कोई मौलिक भेद नहीं है। एक भेद दीर्घ और ह्रस्व ए, ओ का है। ह्रस्व ए, ओ का अस्तित्व देवनागरी में नहीं है। इस पर आगे विचार किया गया है। अब व्यंजनों का लिपिगत वर्गीकरण नीचे दिया जाता है—

			1		2		3		4		5	
व्यंजन			कंठ्य		तालव्य		मूर्द्धन्य		दन्त्य		ओष्ठ्य	
			देवनागरी	तेलुगु	देव०	तेलु०	देव०	तेलु०	देव०	तेलु०	देव०	तेलु०
स्पर्श	अघोष	अल्पप्राण	क क़	క •	च •	చ ౘ	ट	ట	त	త	प	ప
		महाप्राण	ख	ఖ	छ	ఛ	ठ	ఠ	थ	థ	फ	ఫ
	सघोष	अल्पप्राण	ग	గ	ज •	జ ౙ	ड	డ	द	ద	ब	బ
		महाप्राण	घ	ఘ	झ	ఝ	ढ	ఢ	ध	ధ	भ	భ
	नासिक्य		ङ	ఙ	ञ	ఞ	ण	ణ	न	న	म	మ
अर्द्धस्वर					य	య	र •	ర ఱ	ल	ల	व	వ
संघर्षी	अघोष		ख़	•	श	శ	ष	ష	स	స	फ़	•
	सघोष		ग़	•					ज़	•		
महाप्राण			ह	హ								
Lateral.							ळ	ళ				

उक्त तालिका से पंचवर्गीय वर्गीकरण तथा ध्वनियों की समानता स्पष्ट हो जाती है। तेलुगु लिपि में तीन ध्वनियाँ त्ज़् (ts) द्ज़ (dg) तथा ऱ (ˇ) ऐसी हैं जो देवनागरी में नहीं मिलतीं। इनके संबंध में आगे विचार किया गया है। हिन्दी में प्रयुक्त कुछ फारसी-अरबी आगत शब्दों में क़ तथा संघर्षी ख़ (x) ग़ फ़ (b) तथा ज़ (g) ध्वनियों का प्रयोग होता है। किन्तु इनके नीचे विन्दु रखकर इन ध्वनियों को व्यक्त करने के सम्बन्ध में मतभेद है। पर फारसी-अरबी तत्सम शब्दों में ये ध्वनियाँ प्रयुक्त और उच्चरित होती हैं। शेष

व्यंजनों की दोनों लिपियों में समानता मिलती है। क्त की ध्वनि नवीन देवनागरी लिपि में स्वीकृत कर ली गई है।[१०]

२ **अक्षराकृति-साम्य**—तेलुगु अक्षरों की गोलाकृति उन्हें देवनागरी लिपि से पृथक कर देती है। इस आकृति-गत अन्तर का कारण प्राकृतिक और स्थानीय परिस्थितियाँ हैं।[११] ताड़-पत्र पर लिखने की सुविधा के कारण सम्भवतः अक्षरों की गोलाकृति को प्राथमिकता दी गई है।[१२] शिरोरेखा तथा अन्य रेखांशों का प्रयोग देवनागरी के अक्षर-निर्माण में किया जाता है। इन रेखांशों का उपयोग तेलुगु में नहीं है। अधिकांश अक्षराकृति-गत अन्तर इसी कारण से उत्पन्न हुआ है। इस अंतर को हटा देने से अनेक अक्षराकृतियाँ समान हो जाती हैं। नीचे कुछ तुलनात्मक आकृतियाँ दी जाती हैं—

हिन्दी क की आकृति का परिवर्तित रूप गुजराती और तेलुगु से बहुत मिलती-जुलती है। हिन्दी क में दो रेखाएँ सम्मिलित हैं : मूल रूप के साथ एक शिरोरेखा तथा दूसरी आड़ी रेखा सम्मिलित होकर क रूप बन गया। अन्य अधिक समान आकृति यह है : ग। शेष में रेखाओं का अंतर है। देवनागरी अक्षराकृतियों में बहुधा दो रेखाओं का योग किया जाता है। एक तुलनात्मक तालिका यह हो सकती है—

सम्भावित मूलरूप	तेलुगु आकृति	आकृति
[illegible] या [illegible]	ఘ = [illegible] + [illegible]	[illegible] + ा = घ (गुज० ઘ)
[illegible] या [illegible]	చ = [illegible] + ఽ	[illegible] + ा = च (गुज० ચ)
[illegible]	ట = [illegible] + [illegible]	[illegible] + ा = ट (गुज० ટ)
[illegible] या ०	ఠ = O + ॰	O + ा = ठ (गुज० ઠ)
[illegible] या [illegible]	డ = [illegible] + ఽ	[illegible] + ा = द (गुज० દ)
[illegible] या [illegible]	న = [illegible] + ఽ	[illegible] + ा = न (गुज० ન)
O	వ = O + ఽ	O + ा = व

१०—'आज' (वाराणसी) २० फरवरी १९६० का अंक : संशोधित देवनागरी लिपि।

११—काल्डवेल, कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ दि ड्रविडियन लैंग्वेजेज, पृ० १२३-१२४

१२—बीम्स, कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ दि मॉडर्न एर्यन लैंग्वेजेज, पृ० ६२-६६

उक्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि तेलुगु की कुछ अक्षराकृतियों के साथ देवनागरी के रेखांशों को जोड़ने और गोलांशों को हटा देने से एक सामान्य आकृति बन जाती है। गुजराती में दो रेखांशों में से एक हटा दिया गया है। आड़ी रेखा (।) सम्भवतः व्यंजन में अन्तर्हित आकार की द्योतक है। तेलुगु के अधिकांश अक्षरों के साथ आकार का द्योतक चिन्ह (√) है। यह तत्व तो सभी लिपियों में समान है। शिरोरेखा देवनागरी की अपनी विशेषता है। कुछ ध्वनि-चिन्हों का रूप बहुत अधिक बदला हुआ है। उनका सादृश्य सिद्ध करना कठिन है। तेलुगु-भाषी लोगों के लिए कुछ आकृतियों का सीखना समानता के कारण अत्यन्त सरल है। कुछ का सीखना कुछ कठिन है। अक्षरों का मूल्य प्रायः एक-सा ही है। तेलुगु में महाप्राणत्व चिन्ह (।) अक्षर के नीचे लगाया जाता है। अकार को व्यक्त करने का देवनागरी लिपि में अलग चिन्ह है।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि आकृति की दृष्टि से भारतीय लिपियाँ तीन भागों में विभक्त की जा सकती हैं : दो रेखांशों (—शिरोरेखा तथा । अकार रेख) वाली लिपियाँ, जैसे देवनागरी, एक रेखा (। अकार रेख) वाली लिपियाँ, जैसे गुजराती तथा गोलांश वाली लिपियाँ, जैसे उड़िया, तेलुगु, कन्नड़ तथा दक्षिण की अन्य लिपियाँ। यदि तेलुगु-कन्नड़ लिपि के गोलांशों के स्थान पर रेखांशों को रख दिया जाय तो लिपियों में अधिकांश समानता आ जायगी। इससे सीखने की कठिनाई बहुत कुछ दूर हो जायगी।

देवनागरी और तेलुगु में अन्तर—

अन्तर—ऊपर तेलुगु और देवनागरी लिपि के आकृति-मूलक अन्तर पर संक्षिप्त विचार किया गया है। इस शीर्षक के अन्तर्गत दोनों लिपियों के ध्वनि और उच्चारण-सम्बंधी अन्तरों पर विचार अभिप्रेत है।

ध्वनिगत अन्तर—इस अन्तर का संबंध स्वर और व्यंजन दोनों से है।

स्वरगत अन्तर—देवनागरी लिपि में तेलुगु में प्राप्त और प्रयुक्त ह्रस्व ए और ओ के लिए कोई ध्वनि-चिन्ह नहीं है। इनका प्रयोग भी नहीं होता। तेलुगु में इनका प्रयोग महत्वपूर्ण है। इनके अन्तर से अर्थ-भेद हो जाता है।

स्वल्पान्तर युग्म (miniwal pair) इसको सिद्ध कर देते हैं nela 'महीना' तथा nel 'फर्श' 'floor'। odalu 'शरीर' odalu 'नाव'। ए, ओ के ये दोनों रूप प्राय: सभी दक्षिणी भाषाओं में मिलते हैं। संस्कृत में इन ध्वनियों का अभाव है और इन ध्वनियों के प्रतीकों का भी। इसके आधार पर काल्डवेल ने एक स्थान पर द्रविड़ भाषाओं के स्वतंत्र विकास की बात कही है।[१३] पर यह भी सम्भव है किसी ध्वनि-विकास के नियम का ही यह परिणाम हो। अपभ्रंश में भी ह्रस्व ऍ, और ऑ के रूप प्राप्त होते हैं।[१४] हिन्दी की बोलियों में भी इनके ह्रस्व रूप प्राप्त होते हैं। ए के ह्रस्व रूप ऍ के संबंध में डा० उदयनारायण तिवारी ने यह विवरण दिया है : ऍ : यह ह्रस्व स्वर है। इसका उच्चारण-स्थान प्रधान ए (अर्ध संवृत) तथा ऍ (अर्द्ध विवृत) के लगभग मध्य में पड़ता है।[१५] नीचे के पद्य को पढ़ने पर ह्रस्व ऍ पढ़ी जाती हैं : 'अवधेस कें द्वारें सकारें गई ...।' प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल के संयुक्त स्वर ऐ (ai) तथा औ (au) का विकास ऍ, ऑ के रूप में भी हुआ हो सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन ध्वनियों के ह्रस्व रूपों का विकास मभाआ काल में हुआ होगा जो दाक्षिणात्य भाषाओं में सुरक्षित हैं तथा हिन्दी की कुछ बोलियों में भी मिलती हैं। इन ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए ए, ओ में कोई भेदक चिह्न लगाना होगा। डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० तिवारी इसके ऊपर एक चिह्न, ऍ, ऑ लगाना या ऐ, ओ लिखना उपयुक्त समझते हैं। हिन्दी में इन ध्वनियों की संस्वनात्मक (allophonic) स्थिति है, तथा तेलुगु

१३—काल्डवेल, पृ० १३५

१४—तगारे, हिस्टारीकल ग्रामर ऑफ अपभ्रंश 'Devanagari Script has no separate signs to indicate the two values of e and o. The Northern seribes have a tendency to represent short e and o,...' p. 39.

१५—हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० ३२१

में ध्वनि ग्रामात्मक। अतः उक्त भेदक चिह्न आवश्यक होंगे। शेष स्वर ध्वनियाँ और उनके चिह्न देवनागरी और तेलुगु लिपि में समान हैं। अतः कोई कठिनाई नहीं है।

व्यंजनगत अन्तर—तेलुगु में च तथा ज के मृदु रूप त्ज़् (tg) तथा द्ज़् (dg) भी मिलते हैं। पर इन ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए पृथक् लिपि-चिह्न नहीं है : च, ज को व्यक्त करने वाले चिह्नों पर ही भेदक चिह्न लगा दिये जाते हैं। हो सकता है कि इन ध्वनियों का उच्चारण च् और श, तथा ज और श् के बीच का हो। वस्तुतः यह अन्तर महत्वपूर्ण नहीं है : इन मृदु ध्वनियों की स्थिति संस्वनात्मक है : इनका पूरक प्रयोग (Complementary distribution) मिलता है। इसलिए देवनागरी लिपि को किन्हीं पृथक् ध्वनि चिह्नों के आविष्कार की आवश्यकता नहीं है। केवल उच्चारण भेद चलता रह सकता है और प्रयोग केवल च और ज का रह सकता है। नीचे भेदक विन्दु लगाना भी कठिन नहीं है : च़, ज़। ये ध्वनियाँ मराठी में भी हैं। इनका स्थान वर्त्स्य और प्रयत्न संघर्ष या स्पर्श-संघर्ष रहता है। पर वहाँ भी इनकी स्थिति संस्वनात्मक ही है।

ळ ध्वनि-चिह्न को देवनागरी के नये क्रम में स्थान दिया गया है।

उच्चारण सबंधी अन्तर—तेलुगु लिपि के ह्रस्व एँ, ओँ तथा च के वर्त्स्य उच्चारण में हिन्दी वालों को कठिनाई पड़ती है। पर आवश्यकतानुसार इन कठिनाइयों को दूर किया जा सकता है। इनके लेखन में कोई विशेष असुविधा नहीं है। देवनागरी लिपि के ऐ, औ ध्वनि चिह्न पश्चिमी हिन्दी में, कुछ अपवादों को छोड़कर, तथा पूर्वी हिन्दी के कुछ शब्दों (खपरैल, ऐसा, औरत, सौ आदि) में मूल स्वरों के रूप में उच्चारित होते हैं। साहित्यिक हिन्दी में भी प्रायः यही उच्चारण प्रचलित है। पूर्वी हिन्दी में दोनों चिह्नों का उच्चारण संयुक्त स्वरों ai, au की भाँति होता है। तेलुगु में भी इन ध्वनियों के द्योतक चिह्न हैं, पर इनका उच्चारण निरपवाद रूप से संयुक्त स्वरों के रूप में ही होता है। इसमें भी कोई कठिनाई नहीं है। ये चिह्न इसी प्रकार लिखे जा सकते हैं और आवश्यकता और परम्परा के अनुसार इनका उच्चारण संयुक्त या मूल

स्वरों के रूप में चलता रह सकता है। इस प्रकार उच्चारण संबंधी कठिनाइयाँ अत्यन्त सामान्य हैं। अनुस्वार ं के उच्चारण में भी अन्तर मिलता है। देवनागरी लिपि में अनुस्वार के साथ अर्द्ध चन्द्र (ँ) का भी प्रयोग होता है। संस्कृत में ॐ के अतिरिक्त अर्द्ध चन्द्र विन्दु का प्रायः प्रयोग नहीं मिलता। हिन्दी में अर्द्ध चन्द्र विन्दु से स्वर का नासिक्यीकरण सिद्ध होता है। शिरोरेखा के ऊपर मात्रा-चिह्न रखने वालों स्वरों में अनुस्वार चिह्न का ही प्रयोग होता है : एं, ओं। तेलुगु में भी अर्द्ध चन्द्र विन्दु का प्रयोग नहीं मिलता। अनुस्वार का उच्चारण परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनीय है। संस्कृत, हिन्दी और तेलुगु उच्चारण की तुलनात्मक तालिका इस प्रकार है—

कवर्ग से पूर्व	(अनुस्वार) :	संस्कृत —	m̃	ŋ (ङ्)
		देवनागरी —	●	ŋ (ङ्)
		तेलुगु —	●	ŋ (ङ्)
चवर्ग से पूर्व	,, :	संस्कृत —	m̃	ɲ
	:	हिन्दी —	●	ɲ~n (ञ्~न्)
		तेलुगु —	●	ɲ~n (ञ्~न्)
टवर्ग से पूर्व	,, :	संस्कृत —	m̃	ɳ (ण्)
	:	हिन्दी —	●	ɳ (ण्)
	:	तेलुगु —	●	ɳ (,,)
तवर्ग से पूर्व	,, :	संस्कृत —	m̃	n (न्)
	:	हिन्दी —	●	n (,,)
	:	तेलुगु —	●	n (,,)
पवर्ग से पूर्व	,, :	संस्कृत —	m̃	m (म्)
	:	हिन्दी —	●	m (,,)
	:	तेलुगु —	●	m (,,)

इस प्रकार वर्णाक्षरों से पूर्व अनुस्वार के उच्चारण की पद्धति तीनों में समान है। m का एक विशिष्ट उच्चारण संस्कृत में मिलता है। पर हिन्दी और तेलुगु में यह उच्चारण नहीं है। वैसे तेलुगु बोलने वाले शुद्धतावादी पंडितों के उच्चारण में m भी सुना जाता है। हिन्दी में ऐसे प्रयोक्ता नगण्य हैं। पर अन्तस्थ और ऊष्म ध्वनियों से पूर्व अनुस्वार का उच्चारण संस्कृत में भी स्थान भेद से भिन्न-भिन्न रूप में प्रचलित था, ऐसा अनुमान होता है। इस दृष्टि से

तेलुगु उच्चारण संस्कृत के अधिक समान है। नीचे की तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा—

य से पूर्व अनुस्वार	: संस्कृत	-	ŋ	m	n	या	ỹ
	: हिन्दी	-	●	●	n	या	ỹ~ỹ
	: तेलुगु	-	●	m	●		●
र से पूर्व अनुस्वार	: संस्कृत	-	ŋ	m	n	या	ũ
	: हिन्दी	-	●	m	●	या	●
	: तेलुगु	-	●	m	●		●
ल से पूर्व अनुस्वार	: संस्कृत	-	ŋ	m	n	या	l̃
	: हिन्दी	-	●	●	m		●
	: तेलुगु	-	●	m	●		●
व से पूर्व अनुस्वार	: संस्कृत	-	ŋ	m	●		●ṽ
	: हिन्दी	-	●	m	●		●
	: तेलुगु	-	●	m	●		●
श से पूर्व अनुस्वार	: संस्कृत	-	ŋ	m	n		ṽ
	: हिन्दी	-	●	●	m		●
	: तेलुगु	-	●	m	●		●
ष से पूर्व अनुस्वार	: संस्कृत	-	ŋ	m	●		ṽ
	: हिन्दी						
	: तेलुगु						
स से पूर्व अनुस्वार	: संस्कृत	-	ŋ	m	m		ṽ
	: हिन्दी	-	●	●	m		●
	: तेलुगु	-	●	m	●		●
ह से पूर्व अनुस्वार	: संस्कृत	-	ŋ	m	n		ṽ
	: हिन्दी	-	ŋ	●	●		●
	: तेलुगु	-	●	m	●		●

उक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अनुस्वार का प्रयोग संस्कृत में ञ को छोड़कर सभी नासिक्यों के रूप में ऊष्म और अन्तस्थ से पूर्व होता था। हिन्दी की प्रवृत्ति अनुस्वार के न उच्चारण की ओर तथा तेलुगु की म् वँ की ओर है। तेलुगु वाले लोगों के लिए अनुस्वार का प्रयोग ही सुविधाजनक रहेगा, नासिक्य ध्वनियों का संयोग नहीं। उच्चारण अपनी सुविधा के अनुसार किया जा सकता है।

निष्कर्ष—तेलगु और देवनागरी दोनों ही महत्वपूर्ण लिपियाँ हैं। ऐतिहासिक स्रोत की दृष्टि से दोनों बहुत समीप ही नहीं, एक ही हैं। क्रम-

विधान दोनों का समान है । रेखाकृति और गोलाकृति होने के कारण आकृति-गत अन्तर हो गया है कुछ आकृतियों की समानता स्पष्ट है । कुछ ध्वनि चिह्नों का प्रयोग तेलुगु में है, और देवनागरी में उनका अभाव है । कुछ भेदक चिह्नों के संयोग से इस कठिनाई का निराकरण सम्भव है । उच्चारण सम्बन्धी अन्तर कोई बाधा उपस्थित नहीं करते ।

अध्याय २

देवनागरी लिपि का विकास

१ : ब्राह्मी लिपि

—रा० ना० दांडेकर

[प्रस्तुत लेख पुणें विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष श्री रा० ना० दांडेकर जी के द्वारा आकाशवाणी पूना से अंग्रेजी में दो वर्ष पूर्व प्रसारित हुआ था। इसमें ब्राह्मी लिपि के बारे में विशेष बातें बतलाई गयी हैं। श्री दांडेकर जी, श्री भांडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट के प्रधान डायरेक्टर हैं और और ओरिएन्टल कॉन्फ्रेंस (प्राच्य विद्या परिषदों के कई वर्षों से मंत्री भी रह चुके हैं। प्राचीन संस्कृत तथा वैदिक साहित्य पर विद्वतापूर्ण तथा अनुशीलनात्मक साहित्य भी आपने लिखा है। मूल अंग्रेजी भाषण का हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया गया है।]

भावों और विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम

मानव के व्यवहार की दो विशेष बातें होती हैं प्रथम उसकी अभिव्यक्ति और दूसरी उसके विचारों का आदान-प्रदान। इनमें से प्रथम उसके व्यक्तिगत शील तथा चारित्र्य पर प्रभाव डालती है तो दूसरी उसके सामाजिक व्यवहार पर प्रभाव डालती है। साधारणतया मानवी व्यवहार के ये दो अंग माने गये हैं। वैसे प्रायः देखा गया है कि मानव सामाजिक सम्बन्धों को पसंद करने वाला प्राणी होने से अपने विचारों का अभिव्यक्तीकरण तथा दूसरों से आदान-प्रदान ये दोनों उसके कृत्यों में परम्परावलंबी कार्य बन गये हैं और जब हम इनमें से एक के बारे में विचार करते हैं तो दूसरा उसमें अपने आप आ

जाता है। भावना और विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान के लिये ऐसी कोई रूढ़िबद्ध पद्धति चाहिये जिसमें संकेत और प्रतीक दोनों सम्मिलित हों तथा जिसके द्वारा एक व्यक्ति के द्वारा उसके व्यवहृत होने पर दूसरा उसे समझ लेता है। वस्तुतः यह सारा कार्य व्यापार और आदान-प्रदान मानवी इन्द्रियों के माध्यम से होता है। इसमें देखना, सुनना, स्पर्श करना आदि का प्रमुखता से अन्तर्भाव होता है। उदाहरणार्थ दृश्य आदान-प्रदान, हाव-भाव अनुकरण, और आग, धुआँ, प्रकाश और नेत्रों के इशारों से किया जा सकता है। सीटी बजाना, प्रशंसा करना अथवा उद्‌गारवाची ध्वनियों से बात प्रकट करना, तथा अन्य इसी प्रकार के साधनों से आपसी अभिव्यक्तीकरण करते हुए अपना अभिप्राय दूसरों पर प्रकट किया जाता है। इसी तरह ढोल पीटकर, तुरही फूँककर भी कोई बात सुनाई या जतलाई जाती रही है। परन्तु इन सबसे महत्वपूर्ण पारस्परिक भावों और विचारों का आदान-प्रदान का माध्यम बोली या भाषा है।

लिखने की पद्धति का मूल स्रोत :

भाषा सचमुच एक सार्वजनीन और बड़ी विलक्षण चीज है, क्योंकि सर्व साधारणतया यह कहा जा सकता है कि मानव के इतिहास में ऐसा एक भी समाज नहीं मिलेगा जिसने अपने लिए एक भाषा न चुन ली हो। इसके बाद कौशलपूर्ण लेन-देन तथा आपसी आदान-प्रदान का भी एक प्रकार उपलब्ध है जिसमें अपनी निजी भावना स्पर्श के द्वारा प्रकट की जाती है जैसे हाथ मिलाकर, पीठ पर जोर से ठोंककर या प्रेमपूर्ण व्यवहार कर स्पर्श कर अपनी भावना व्यक्त की जाती है। इन दृश्य, श्रव्य और स्पर्श-जन्य आदान-प्रदान के दो प्रमुख वैशिष्ट्य हैं—(१) इनका क्षणिक मूल्य है, तथा (२) आदान-प्रदान करने वाला और उसका स्वीकार करने वाला इन दोनों का निकट सम्बन्ध भी गृहीत मान लिया जाता है। अतः काल और स्थल के बन्धनों से मुक्त भावना और विचारों को अभिव्यक्त करने की प्रणाली खुलकर स्पष्ट कर देने की अनिवार्यता और आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इससे तुलना होने लगी और आपसी

अभिव्यक्तीकरण करने की स्थिर पद्धति का विकास हुआ। उनमें से (१) वस्तुओं का परस्पर आदान-प्रदान, तथा (२) वस्तुओं पर रहने वाले कुछ चिह्नों का आदान-प्रदान विशेष है। श्राव्य आदान-प्रदान के लिए फोनोग्राफ रेकार्ड Brille पद्धति इस प्रकार के कौशलपूर्ण आदान-प्रदान के प्रकारों के अन्तर्गत आते हैं। परन्तु इसके पूर्व ही मानव ने दृश्य आदान-प्रदान की स्थिर पद्धति की खोज कर ली थी जैसे—किसी मृत व्यक्ति के बारे में अपनी भावना प्रकट करने के लिये पत्थरों का ढेर उसकी कबर या समाधि पर लगा देना। अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति क्रास का चिह्न लगाकर कर देना या आशा व्यक्त करने के लिये हल का चित्र बना देना आदि पद्धतियों का भी इसी में समावेश हो जाता है। स्मृति के लिये चीजें रखकर अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान करने की इस दृश्य-पद्धति का मार्ग आगे चलकर लोगों को अव्यवहार्य तथा भिन्न ज्ञात होने लगा। उसके बाद चीजों पर विशेषतः ठोस चीजों पर कोई संकेत या चिह्न प्रकट करने की प्रणाली चल पड़ी। इस तरह लिखने की पद्धति का जन्म हुआ, ऐसा कहा जा सकता है। प्राचीन चित्र लिपि से अंक लिपि तथा ध्वनि लिपि तक जो उत्क्रान्ति मानव ने की है वह मानव की प्रगति के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना तथा पाठ है, ऐसा कहना ही समीचीन होगा।

भारत में प्राचीन लेखन कला का स्वरूप :

इस तरह लिखने की कला मानव संस्कृति के साथ अन्तर्गत रीति से अभिन्न रूप में जोड़ी गई है। इसी प्रकार 'भारत में लेखन कला का प्रारंभ कब हुआ यह प्रश्न बारम्बार पूछा जाता है। साधनों की कमी, और ऐतिहासिक रचनाओं के परिणामात्मक अंतरों से भारतवर्ष के इतिहास से संबद्ध अनेक प्रश्नों की तरह भारतवर्ष की लेखन कला के प्राचीनत्व का प्रश्न अभी भी अनिर्णयात्मक ही रहा है। बहुत थोड़े समय पूर्व यह माना जाता था कि तीसरी शताब्दी खिस्ताब्द पूर्व अशोक-कालीन शिलालेख ही भारत की प्राचीन लेखन कला का नमूना है। अनेक घटनाओं से दूरागत महत्वपूर्ण सम्बन्धों के कारण अशोक का काल संस्मरणीय माना गया है। लेखन कला अशोक-कालीन

अनेक स्मृतियों में से एक है। इसका विशेष प्रयोग अपने प्रिय तत्वों का प्रचार करने के हेतु अशोक ने किया था। अशोक के शिला-लेख दो लिपियों में लिखे गये उपलब्ध होते हैं। (१) खरोष्ट्री में तथा (२) कहीं-कहीं वे ब्राह्मी लिपि में लिखे हुये मिलते हैं। वैसे दो शिला-लेख अरेबिक लिपि में भी उपलब्ध हुए हैं। यह लिहि एक विदेशी लिपि है, अतः अरबी लिपि से निकली हुई खरोष्ट्री को भी विदेशी ही माना जाय। इस प्रकार से यह ज्ञात होता है कि सर्व प्रचलित या सब को विदित ब्राह्मी लिपि ही थी जिनके अक्षरों को लोग जानते हैं। ये अक्षर अति प्राचीन हैं, तथा जिनका अर्थ लगाया जा सकता है, ऐसे भारतीय मूलाक्षर भी हैं। अतः सहज ही में लेखन कला के प्राचीनत्व से ब्राह्मी लिपि का प्राचीनत्व जोड़ा गया है। परन्तु इससे भारतीय लेखनकला का प्रारंभ थोड़ा बाद के काल का माना जाता है जैसे :—मेकसमूलर का यह सुझाव है कि ब्राह्मी लिपि बहुत पूर्वकाल की नहीं है। अपने मत की पुष्टि करने के लिए उसने ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के व्याकरण का आधार लिया है। पाणिनि की परिभाषा में लेखनकला का अस्तित्व बताने वाला व मानने वाला एक भी शब्द नहीं मिलता, ऐसी अपने मत की प्रस्थापना वे करते हैं। किन्तु जिनके मतों पर इस विषय पर जितने भी मत मान्य किये गये हैं ऐसे बुलर साहब के मत से अशोक के शिलालेख की ब्राह्मी लिपि उस अवस्था की लिपि है जो उत्क्रान्तिमय विकास की फलश्रुति कही जा सकती है। विविधता और विभिन्न बनावटों एवम् घुमाव के अक्षर नजरों में समा सकते हैं। ऐसी विशेषता इन ब्राह्मी लिपि के अक्षरों में है जो यह सिद्ध करती है कि यह लिपि अशोक पूर्वकाल में प्रचलित थी। ईसापूर्व ९वीं शताब्दि की उत्तरी सेमेटिक (Phoe-nician) फोनेशियन विशेषताओं के साथ ब्राह्मी की विशेषताओं की निकट समानता है। इस सेमेटिक लिपि को भारतीय व्यापारियों ने मेसापोटेमिया से लिया और ४ सौ ईसापूर्व भारत में उसका प्रचार किया। काल के प्रवाह में आगे चल कर एक भारतीय लिपि चल निकली। वही बाद में ब्राह्मी कहलाई। फलतः लेखनकला के ज्ञान का प्रसार भारत में ८ या ९वीं शताब्दि ईसापूर्व हुआ होगा, यही कहा जा सकता है।

भारतीय लेखनकला की प्राचीनता

भारत की लेखन कला का प्राचीनत्व और उसका प्रश्न इसके विषय में दो बातें स्पष्ट करनी आवश्यक हैं। प्रथम यह बात ध्यान में रहे कि उपर्युक्त कहे गये मत १९वीं और २०वीं सदी के आरंभ में व्यक्त किये गये हैं। इसके बाद ऐतिहासिक मूल्य जिन्हें प्राप्त थे ऐसी कई बातें प्रकाश में लायी गयीं। अतः इस विषय को एक नया महत्वपूर्ण स्वरूप और दर्जा प्राप्त हुआ। द्वितीय अर्थात् लेखनकला के उद्‌गम एवम् प्राचीनत्व का और ब्राह्मी लिपि के उद्‌गम एवम् प्राचीनत्व से सम्बन्ध जोड़ना गलत और भ्रान्तिमूलक है। यह संभव है कि अशोक-कालीन ब्राह्मी लिपि का शिलालेख अर्थवाहक लेखनकला का ऐसा नमूना हो सकता है जो अब तक मिले अन्य नमूनों में प्राचीन सिद्ध हो रहा हो। किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि मौर्यकाल पूर्व लेखनकला ही अनुपलब्ध थी। इसके विपरीत वहाँ पर ऐसे परिस्थिति-जन्य और तर्कजन्य प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध हो सकता है व मानना पड़ता है कि भारत के प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास काल में लेखनकला अस्तित्व मे थी। भारतीय पद्धति से यह मान्य है कि लेखनकला ब्रह्मा ने स्वयम् खोज निकाली। उदाहरणार्थ—नारद स्मृति में यह बतलाया गया है कि यदि विधाता ने लेखनकला न निर्माण की होती तो यह संसार आज जिस सुस्थिति में पहुँच सका है वह न पहुँचा होता। बृहस्पति का इससे भी अधिक जोरदार समर्थन है। उनका कथन है कि, "किसी बात के स्मरण रखने में छह महीने की कालावधि में गड़बड़ी होने की संभावना रहती है अतः ब्रह्मा ने अत्यन्त प्राचीन काल में पत्रों पर रेखाङ्कित किये जा सकने वाले अक्षरों का निर्माण किया है।" इस आख्यापिका को बल देने वाला चित्रण बदामी में शिल्प के के माध्यम से किया गया है जो उपलब्ध हो गया है। उसमें ब्रह्मदेव के हाथों में पत्रों का एक गट्ठा दिखाया गया है। इस आख्यायिका को शब्दशः कोई भी न माने पर इतना तो निश्चित है कि लेखनकला की अति प्राचीनता इस शिल्प से अवश्य सूचित होती है।

वेद और ब्राह्मी लिपि की प्राचीनता

वेद मौखिक पद्धति से एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते गये। यह बात विल्कुल सत्य है परन्तु इससे कोई भी यह निष्कर्ष न निकाले कि प्राचीन वेद काल में लेखनकला ही अस्तित्व में न थी। कई बार तो गलती से ऐसा समझा जाता रहा है। वेदों का मौखिक पठन का कारण यह नहीं था कि उनकी लिखित प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हो पाती थीं, वरन् मौखिक परम्परा से उनको सिखाने में ही उसकी वैधिक शक्तियों का रक्षण होता है और वह इन पुस्तकों की पूर्णता के लिये उपयुक्त ही होता है। इस प्रकार की धारणा और प्रचलित विश्वास ही इसका प्रमुख कारण है। वेदों के समान अतिशय महत्व-पूर्ण और जटिल पद्धतियों और प्रमेयों से भरा हुआ वाङ्मय तथा ध्वनि शास्त्र, छन्द शास्त्र तथा खगोल शास्त्र से उनका गौण सम्बन्ध बतलाने वाली पुस्तकें—जो कि गद्य में हैं, वे बिना लेखन कला ज्ञान के कैसे उत्पन्न हुई होंगी ? उनको वैसा उत्पन्न मानना तथा उनका प्रसार हुआ ऐसा समझना सचमुच कल्पना शक्ति के बाहर की बात है। इसके अतिरिक्त वेदों में लेखन कला वेदकालीन लोगों को ज्ञात थी, यह बात बतलाने वाले कम अधिक मात्रा में स्पष्ट संकेत भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ—ऋग्वेद १०-६२-७ में कानों पर ८ अंक का चिह्न धारण करने वाली गाय का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में (७-५०-५) में एक हस्तलेख का निर्देश किया हुआ मिलता है। इस तरह के संदर्भ अनेक ब्राह्मी, बौद्ध, और जैन वाङ्मय में मिलते हैं। भारत की लेखन कला के अत्यन्त प्राचीन और परम्परागत और वाङ्मयीन साक्ष्यों के साथ अत्यन्त पुरातन प्रमाणों का भी उल्लेख करना होगा। उदाहरणार्थ :—हैदराबाद के बुर्ज पर पाये गये इतिहास पूर्वकालीन कबर पर खोदे गये मूलाक्षरात्मक चिह्नों का उल्लेख करना पड़ेगा। इसके साथ मोहनजदारों और हरप्पा के ईसा शताब्दी के करीब-करीब ४-५ हजार वर्ष पूर्व चित्रमय लेख भी हैं, जिनसे कुछ सम्बन्धों में तो इतिहास की सामग्री में क्रान्ति हो गई है। इस तरह अत्यन्त पुरातन प्रमाणों और साक्ष्यों के आधार पर तीन हजार वर्षों पूर्व लेखन कला का उद्गम बतलाना सम्भव हो गया है।

लिपि—अनुशीलन करनेवाले अनुसंधायक :—

अशोक शिला-लेख उपलब्ध हो जाने पर उसके अर्थों का रहस्योद्घाटन के साथ ही भारत में Paleeography—पुरानी लिपि के अर्थ बोधन के कार्य की शुरुवात हो गयी। लिपि—अर्थ बोध के लिये किये गये प्रयत्नों की गाथाएँ साहस-कथाओं की तरह पढ़ी जाती हैं। भारतीय लोगों को अपनी ही लिपि की विस्मृति हो गई थी, ऐसा सुनना जरा आश्चर्यान्वित कर देता है। इतना ही नहीं तो यह कुछ विचित्र-सा भी लगता है। ब्राह्मी और गुप्त लिपि में लिखे गये लेख भारतीयों को मालूम नहीं थे। १४ वीं शताब्दी ईसा में फिरोजशाह तुगलख To pra और मेरठ से अशोक-स्तंभ को दिल्ली ले आया। उसने कई संस्कृत पंडितों को उस पर लिखे गये विवेचन को पढ़ने के लिए कहा। परन्तु वे संस्कृत पंडित उन लेखों को न पढ़ सके। दो सदियों बाद सम्राट अकबर ने भी उन स्तंभों पर खोदे गये लेखों को पढ़कर उनको जानना चाहा पर उसे भी यश नहीं मिल सका। अन्य क्षेत्रों की तरह ब्राह्मी लिपि को पढ़कर लिपि-रहस्य का उद्घाटन करने का श्रेय १९वीं सदी में किये गये यूरोपीय विद्वानों को ही दिया जायगा। अर्थात् यूरोपीय पंडित ही इस क्षेत्र के मूल अनुसंधित्सु माने गये। एलोरा की गुफाओं के ब्राह्मी लिपि में लिखे गए लेखों का आकर्षण प्रथम इन्हें ही उत्पन्न हुआ। सन् १७९५ में मेलट ने उस गुफा के लेखों के छापों को विलियम जोन्स के पास भेजा। उसने उनको बाद में विलफोर्ड के पास भेजा। एक संस्कृत पंडित के गलत मार्ग-दर्शन में विलफोर्ड ने अत्यन्त काल्पनिक अर्थ उनका लगाकर प्रस्तुत किया।

पुराने लिपि—लेखों का सही अर्थ—लगाने के प्रयत्न :—

'लासेन' के द्वारा सर्वप्रथम इन लेखों को सही अर्थ में पढ़ने का प्रयत्न किया गया। बॅक्ट्रिया के ग्रीक राज्यकर्ताओं ने अपने सिक्कों पर अपनी छापों के साथ ग्रीक दंतकथाएँ भी छापीं थीं। दूसरी ओर ब्राह्मी लिपि में उनका अनुवाद भी छापा गया था। दो भाषाओं के ये सिक्के ही ब्राह्मी लिपि का रहस्य खोलने की विलक्षण कुँजियाँ सिद्ध हुए। लासेन ने इस प्रयत्न का सफल

हल भी निकाला है। १८३६ में उसने इंडो बकिट्रयन राजा Agathocles के सिक्कों पर खोदी गयी—आख्यायिका पढ़ीं। प्राय: ये आख्यायिकाएँ अत्यन्त छोटी थीं। अत: ब्राह्मी के कुछ ही अक्षरों का रहस्य समझ में आ सका। लासेन इसके आगे न जा सका। इसके बाद इस क्षेत्र में जेम्स प्रिन्सेप ने प्रयत्न किया। ब्राह्मी लिपि के संपूर्ण अक्षरों को जानने का श्रेय प्रिन्सेप को ही दिया जायगा। प्रिन्सेप ने सांची के द्वार के पास के स्तंभ पर खोदे गये छोटे शिक्षा-लेखों के छाप इकट्ठे कर उनका तुलनात्मक अध्ययन किया। इन सब गुफाओं में लिखे गये लेखों के अंत में दो अक्षर समान रूप के मिले। इन दोनों अक्षरों के पहले हमेशा 'स' अर्थवाले ब्राह्मी अक्षर आते थे। यह 'स' माने संस्कृत की षष्ठी कारक का 'स्य' विभक्ति प्रत्यय था जिसका प्राकृतीकरण हो गया था। 'स' के पहले आनेवाला शब्द-विशेष संज्ञा होनी चाहिए, ऐसा अनुमान प्रिन्सेप ने लगाया। इन दो शब्दों में से एक का अर्थ इनाम और दूसरे का अर्थ प्रदान या अर्पण किया गया, ऐसा संभाव्य है, यह उसने बतलाया। इन दो शब्दों में से प्रथम शब्द पर 'आ' के लिए बीच में चिह्न बनाया हुआ उसने देखा और दूसरे पर अनुस्वार का चिह्न देखा। अत: प्रिन्सेप ने उस शब्द को 'दानम्' पढ़ने का साहस किया। वह सही भी था। इस सौभाग्यपूर्ण सुअवसर से उत्तेजित व प्रोत्साहित होकर अधिक से अधिक लेखों का रहस्य जानने का प्रयास किया और अत्यन्त धैर्यपूर्वक और शास्त्र शुद्ध अनवरत अध्ययन कर बहुत से प्राचीन ब्राह्मी लिपि के अक्षरों को पढ़कर उनका अर्थ लगाने में सुयश संपादन किया। ग्रियर्सन और "बुलर" ने उसके विधानों को पुष्टि दी और उनको आगे बढ़ाया।

ब्राह्मी लिपि का मूल स्रोत और विकास :—

ऊपर वर्णन किये गये तत्वों के अनुसार कुछ सेमेटिक मूल अक्षरों से ब्राह्मी लिपि निकली—ऐसा आरम्भ में माना था। अभी-अभी किये गये अनुसंधानों, खोजों से ऐसा कहने की व सुझाने की प्रवृत्ति हो रही है कि ब्राह्मी के आद्या-क्षर सिंधु नदी की उपत्यका की चित्रलिपि से निकले होंगे। यह विकास किस प्रकार हुआ होगा, यह टेलिविजन जैसे साधनों के बिना प्रतिपादन करना दुर्दैव से असम्भव हो गया है। इसी मूल चित्रलिपि से निकलकर ब्राह्मी पूर्णता को

पहुँच गयी। प्राचीन ब्राह्मी से गुप्त, देवनागरी तथा अन्य भारतवर्ष की और सिंहली, सदायी बर्मी लिपियाँ किस प्रकार विकसित हुईं, यह प्रतिपादन करना असम्भव है। ब्राह्मी लिपि ध्वनि-लिपि होने से प्रायः बाँयीं ओर से दाहिनी ओर लिखी जाती है। Chrsive अक्षरों से भरी हुई होने के कारण एक विशिष्ट प्रकार की पद्धति से युक्त रहना ही उसका वैशिष्ट्य है। इसके अक्षर, मुख्यतः जहाँ तक सम्भव हो सके, सीधे होते हैं। उनमें से बहुत से अक्षर अन्त में सीधी रेखाओं से जुड़े हुए रहते हैं या प्रारम्भ में और अन्त में सीधी रखाओं से जुड़े हुए होते हैं। नियमित रेखाओं से संकेत चिह्न बनाने की इच्छा स्पष्ट दिखाई देती है। बीच के अक्षर कम जुड़े हुए रहते हैं और केवल आरम्भ में जुड़े हुए सीधी रेखाओं से युक्त अक्षर तो प्रायः होते ही नहीं हैं। आरम्भ में संकेत-चिह्न बनाने की प्रवृत्ति भी नहीं है। ब्राह्मी लिपि संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के लिए ३५० ईसापूर्व से ३५० ईसा बाद तक केवल भारतवर्ष में ही नहीं, अपितु भारत के बाहर उन स्थानों पर भी व्यवहृत होती थी, जिन स्थानों में हम भारत का शिल्प-साम्राज्य फैला हुआ पाते हैं। इस तरह ब्राह्मी लिपि का सांस्कृतिक व ऐतिहासिक महत्व बहुत बड़ा है। आज भी अशोक की राजाज्ञा द्वारा दिया गया शुभ सन्देश मानव को अत्यन्त स्फूर्तिमान और उच्च ध्येय की ओर ले जानेवाला ध्रुवतारा है। समूचे राष्ट्र को और लोगों को वह दिव्य सन्देश इसी ब्राह्मी लिपि के एकमात्र साधन से आज भी उपलब्ध है— यह पढ़कर कोई भी आश्चर्य से मुग्ध हो जायगा।

———

२ : देवनागरी लिपि का उद्भव और विकास

तत्वभूषण, शिक्षाविशारद डॉ० भगवानदास तिवारी
एम०ए०, पी-एच० डी०
प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सोलापुर कालेज, सोलापुर–२.

[यह लेख देवनागरी लिपि के उद्भव और विकास का संक्षिप्त इतिहास है। इसमें नागरी लिपि की उत्पत्ति, उसके अंक और अक्षरों के मूलरूप और उनमें होनेवाले स्वरूपगत ऐतिहासिक परिवर्तनों का विवेचन किया गया है। ध्वनि-शास्त्र और लिपि-विज्ञान की दृष्टि से देवनागरी लिपि का यह ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है।]

नागरी का मूल स्रोत :—

देवनागरी भारत की सबसे अधिक सम्पन्न, समृद्ध और शास्त्रीय लिपि है। अपौरुषेय वेदवाणी संस्कृत से लेकर आधुनिक मराठी और हिन्दी-जैसी सशक्त भाषाओं में उसका सतत अबाध प्रयोग, उसकी अक्षुण्ण-परम्परा और शास्त्रीय गौरव-गरिमा का द्योतक है। आज हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्रों में उर्दू, रोमन, कैथी, मुड़िया, मैथिली आदि अनेक लिपियाँ प्रचलित हैं, किन्तु टंकन, मुद्रण और लेखन में देवनागरी की लोकप्रियता और उसका वर्चस्व सर्वथा असन्दिग्ध है। वह भारतीय मनीषा की अपूर्व शोध और चिन्तन-परम्परा की प्रधान संरक्षिका है। अंक और अक्षरों का रूप-सौष्ठव, लेखन-शैली की सुगमता, वर्णमाला का ध्वनि-शास्त्रगत वैज्ञानिक विधान, लिपिबद्धता में त्वरा, लिखित वर्ण और उच्चारण की एकनिष्ठता तथा लिपि-विज्ञान की जितनी परिपक्वता और प्रामाणिकता नागरी लिपि में पायी जाती है, उतनी भारत तो क्या विश्व की किसी भी लिपि में नहीं पायी जाती।

भाषा और लिपि जैसे सांस्कृतिक प्रश्न को राजनैतिक दल-दल में घसीटनेवाले विद्वज्जन यदि भाषा और लिपि-विषयक आंचलिक संकीर्णता को छोड़, तटस्थ तर्कसम्मत बुद्धि से विचार करें, तो यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि भारत की राष्ट्रीय भावात्मक एकता और सांस्कृतिक समन्वय के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी की ही भाँति राष्ट्रलिपि देवनागरी का देशव्यापी प्रचार, प्रसार और प्रयोग आधुनिक समाज और भावी सन्तति के लिए नितान्त अनिवार्य है। परम्परा, वर्तमान और भविष्य की कड़ियों को जोड़ने के लिए नागरी का राष्ट्रलिपि-पद बहुत कुछ स्वयंसिद्ध और अविवादास्पद है।

नागरी भारत की प्राचीनतम राष्ट्रीय-लिपि ब्राह्मी की उत्तराधिकारिणी है :—

नागरी का मूलस्रोत भारत की प्राचीनतम राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी से सम्बद्ध है। इसके अनेक प्रमाण मध्य एशिया, जापान, तिब्बत आदि में प्राप्त प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ तथा भारत में काठियावाड़ से उड़ीसा तक और नैपाल की तराई से मैसूर तक शिलालेखों, ताम्र-पत्रों, सिक्कों, भूर्जपत्रों और हस्तलिखित ग्रन्थों में विद्यमान हैं। प्राचीन वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य की शोध से इस तथ्य के पर्याप्त आधार मिल गये हैं कि भारतवर्ष में लेखनकला का प्रादुर्भाव चौथी शताब्दी ईसापूर्व से भी पहले हो चुका था। आज उन विदेशी विद्वानों का मत नितान्त भ्रामक और निराधार सिद्ध हो गया है, जो यह मानते थे कि भारतीयों ने चौथी, आठवीं या दसवीं शताब्दी ईसापूर्व में किन्हीं विदेशियों से लेखन-कला सीखी थी। इस विषय में मैं अपने जिज्ञासु पाठकों से महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला (प्रथम संस्करण संवत् १९१८) और पाश्चात्य विद्वान श्री बूलहर की 'आन दि ओरिजिन ऑव दि इण्डियन ब्राह्म अलफ़ाबेट' (द्वितीय संस्करण, सं० १८९८)' ग्रन्थों के अध्ययन का आग्रह करता हूँ।

ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियाँ :—

प्राचीनकाल में भारत में ब्राह्मी (पाली बंभी) और खरोष्ठी नाम की दो लिपियाँ प्रचलित थीं। ब्राह्मी सार्वदेशिक (राष्ट्रीय-लिपि) थी। भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों को छोड़कर प्रायः सम्पूर्ण देश में इसी का प्रचार था। देव-

नागरी की ही तरह यह लिपि भी बाँयी ओर से दाहिनी ओर लिखी जाती थी। ब्राह्मी लिपि की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसमें प्रत्येक वर्ण के लिए एक विशिष्ट ध्वनि थी, और प्रत्येक ध्वनि के लिए एक विशिष्ट वर्ण। उच्चारण और लिपि के इस अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के कारण ब्राह्मी लिपि में स्वर, व्यंजन और मात्राओं के रूप प्रायः सुनिश्चित थे। देवनागरी लिपि को यह गुण ब्राह्मी से ही विरासत में मिले हैं।

ब्राह्मी लिपि आर्यों की ही खोज थी। अपने प्राप्य रूपों में वह पूर्णतः भारतीय लिपि थी, किन्तु खरोष्ठी, जिसका प्रयोग ब्राह्मी के ही समय में भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में होता था, निश्चित रूप से आर्य लिपि न थी। इसका सम्बन्ध विदेशी सेमिटिक अरमइक लिपि से है। लिपि सम्बन्धी खोज रिपोर्टों में खरोष्ठी को एकदेशिक-लिपि[1] कहा गया है। यह उर्दू की तरह दाहिनी ओर से बायीं ओर लिखी जाती थी। इसके सम्बन्ध में ओझाजी का मत दृष्टव्य है—उन्होंने लिखा है कि, "जैसे मुसलमानों के राज्य-समय में ईरान की फारसी लिपि का हिन्दुस्तान में प्रवेश हुआ और उसमें कुछ अक्षर और मिलाने से हिन्दी भाषा के मामूली पढ़े-लिखे लोगों के लिए कामचलाऊ उर्दू लिपि बनी, वैसे ही जब ईरानियों का अधिकार पंजाब के कुछ अंश पर हुआ तब उनकी राजकीय लिपि अरमइक् का वहाँ प्रवेश हुआ, परन्तु उसमें केवल २२ अक्षर, जो आर्य भाषाओं के केवल १८ उच्चारणों को व्यक्त कर सकते थे, तथा स्वरों में ह्रस्व-दीर्घ का भेद और स्वरों की मात्राओं के न होने के कारण यहाँ के विद्वानों में से खरोष्ट या किसी और नये अक्षरों तथा ह्रस्व-स्वर मात्राओं की योजना कर मामूली पढ़े हुए लोगों के लिए जिनको शुद्धाशुद्ध की विशेष आवश्यकता नहीं रहती थी, कामचलाऊ लिपि बना दी।"[2] इस लिपि का प्रचार भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में तीसरी शताब्दी ईसापूर्व से तीसरी शताब्दी ईसवी तक रहा।

१—रिफार्म आफ दि नागरी स्क्रिप्ट—गव्हर्नमेंट आफ मध्यप्रदेश, लैंग्वेज डिपार्टमेण्ट, पृष्ठ ४.

२—भारतीय प्राचीन लिपिमाला—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृष्ठ १७.

ब्राह्मी की शैलियाँ और उसकी उत्पत्ति-विषयक मत-मतान्तर :—

भारत की समस्त मध्यकालीन और आधुनिक लिपियों का उद्गम प्राचीन राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी से ही हुआ था। सुविधा के लिए हम इन्हें ब्राह्मी की उत्तरी और दक्षिणी शैलियाँ कह सकते हैं। ब्राह्मी की उत्तरी शैली से देवनागरी, गुजराती, बंगाली, आसामी, उड़िया, कश्मीरी और गुरुमुखी लिपियाँ निकली हैं और उसकी दक्षिणी शैली से तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ की लिपियाँ बनी हैं। यह एक ऐसा सत्य है, जिसके सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है, किन्तु ब्राह्मी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों में मतैक्य नहीं है। बूलहर और वेनर आदि विद्वानों का मत है कि ब्राह्मी लिपि के २२ अक्षर उत्तरी सेमेटिक लिपियों से लिये गये हैं और शेष अक्षर उन्हीं के आधार पर गढ़े गये हैं। इस तरह से ये विद्वान ब्राह्मी का सम्बन्ध पश्चिमी एशियाई लिपि की शाखा से जोड़ते हैं। इसके विपरीत कनिंघम, ओझा, आर० शामा शास्त्री आदि विद्वान ब्राह्मी को मूलतः भारतीय लिपि ही मानते हैं। ओझा जी का मत है कि, "यह (ब्राह्मी लिपि) भारतवर्ष के आर्यों का अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वांग सुन्दरता से चाहे इसका कर्त्ता ब्रह्मा देवता माना जाकर इसका नाम ब्राह्मी पड़ा हो, चाहे साक्षर समाज ब्राह्मणों की लिपि होने से यह ब्राह्मी कहलाई हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि इसका फ़िनीशिअन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।[१]

ब्राह्मी के प्राचीन प्रमाण और उसका परवर्ती विकास—

ब्राह्मी के उद्गम का स्वरूप और काल भले ही विवादास्पद हो, किन्तु प्रमाण इस बात के साक्षी हैं कि मौर्य काल में इसका प्रचार-प्रसार और प्रयोग लगभग समस्त भारत में होता था। ब्राह्मी लिपि में लिखित प्राचीनतम लेख पाँचवी शताब्दी ईसापूर्व तक के पाये गये हैं, किन्तु मौर्य वंश के प्रतापी सम्राट के समय के ऐसे अनेक शिलालेख और ताम्र-पत्र आज भी पाये जाते हैं, जिनकी

१—भारतीय प्राचीन लिपिमाला—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृष्ठ २८।

लिपि निस्सन्देह ब्राह्मी थी। अभी हाल ही में नैपाल की तराई में विप्रावा नामक स्थान में शाक्य जाति के लोगों द्वारा निर्मित एक बौद्ध स्तूप के भीतर एक छोटे से पत्थर के पात्र पर ब्राह्मी लिपि के १४ अक्षरों के प्राचीन रूप मिले हैं। उनमें और अशोक-कालीन लिपि में केवल इतना ही भेद है कि उनमें दीर्घ स्वर चिह्नों का अभाव है।

ब्राह्मी लिपि का प्रचार ३५० ईसवी तक रहा। इस काल तक ब्राह्मी की उत्तरी और दक्षिणी शैलियों में पर्याप्त अन्तर हो चुका था। चौथी शताब्दी की उत्तरी ब्राह्मी लिपि-शैली का नाम 'गुप्त लिपि' पाया जाता है। यह नाम काल्पनिक है। संभवतः उत्तर भारत में फैले हुये तात्कालिक विशाल गुप्त साम्राज्य के कारण यह नाम रख दिया गया हो। गुप्त लिपि के अक्षरों के तद्‌युगीन रूप अब भी प्राचीन शिलालेखों और ताम्र-पत्रों में पाये जाते हैं। ओझा जी का मत है कि, "गुप्तों के समय में कई अक्षरों की आकृतियाँ नागरी से कुछ-कुछ मिलती हुई होने लगीं। सिरों के चिह्न, जो पहले बहुत छोटे थे, बढ़कर कुछ लम्बे बनने लगे और स्वरों की मात्राओं के प्राचीन चिह्न लुप्त होकर नये रूपों में परिणत हो गये।"[1]

कालान्तर में गुप्त लिपि ही 'कुटिल लिपि' में रूपान्तरित हो गई, जिसका प्रचार छठी से नवीं शताब्दी ईसवी तक उत्तर भारत में रहा। सामान्यतः 'कुटिलाक्षर' शब्द कुटिल आकृतिवाले लिपिबद्ध अक्षर और स्वरों के लिये होता है, इसलिये यह लिपि कुटिल लिपि कहलाई। कुटिल लिपि से ही नागरी तथा काश्मीर की प्राचीन लिपि शारदा विकसित हुई। शारदा से ही वर्तमान काश्मीरी, टाकरी और गुरुमुखी लिपियाँ निकली हैं।

प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से दसवीं शदाब्दी ईसवी के लगभग प्रचीन बँगला लिपि का विकास हुआ, जिसके आधुनिक परिवर्तित रूप बँगला, मैथिली उड़िया, तथा नेपाली लिपियों के रूप में व्यवहृत होते हैं। गुजराती, महाजनी आदि उत्तर भारती लिपियाँ भी प्राचीन नागरी से ही सम्बद्ध हैं।

१—भारतीय प्राचीन लिपिमाला—ओझा, पृष्ठ ६०।

देवनागरी की उत्पत्ति और स्वरूप विकास :—

'ब्राह्मी' की ही भाँति 'नागरी' (देवनागरी) लिपि के नामकरण का कारण अनिश्चित है। कुछ विद्वान इसका सम्बन्ध नागर ब्राह्मणों से लगाते हैं, अर्थात् नागर ब्राह्मणों में प्रचलित लिपि नागरी कहलाई। कुछ 'नगर' से नागरी का सम्बन्ध जोड़कर इसका अर्थ नगरों में प्रचलित लिपि लगाते हैं। एक मत यह भी है कि तान्त्रिक मन्त्रों में कुछ चिह्न बनते थे, जो 'देवनगर' कहलाते थे। इन चिह्नों से मिलते-जुलते अक्षर होने के कारण यही नाम इस लिपि से जुड़ गया। तान्त्रिक युग में 'नागर लिपि' नाम प्रचलित था। 'नित्याषोडषकार्णव' के भाष्य सेतुबन्धु में भास्करानन्द ने "नागरी लिपि में 'ए' का रूप त्रिकोण है" का उल्लेख करते हुये "कोणत्रयवदुद्भनो लेखा यस्त तत्। नागर लिपियाँ साम्प्रदायिकैरकारस्य त्रिकोणाकारतयैन लेखनात" लिखा है।

श्री आर० शामा शास्त्री का मत है कि, देवताओं की प्रतिमाओं के बनने के पूर्व उनकी उपासना सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोणादि यन्त्रों के मध्य में लिखे जाते थे, और वे यन्त्र 'देवनगर' कहलाते थे। उन देवनगरों के मध्य में लिखे जाने वाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालान्तर में अक्षर माने जाने लगे, इसी से उनका नाम 'देवनागरी' हुआ।[१]

उत्तर भारत में नागरी लिपि के प्रयोग की अटूट परम्परा दसवीं शताब्दी ईसवी से विधिवत पायी जाती है किन्तु दक्षिण भारत में आठवीं शताब्दी ईसवी तक के कुछ लेख पाये जाते हैं। दक्षिण में देवनागरी ही "नंदि नागरी" के नाम से प्रचलित है। दक्षिण में संस्कृत की पुस्तकें इसी 'नंदि नागरी' में लिखी जाती हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, विन्ध्य प्रदेश, मध्य प्रदेश, मध्य भारत, और राजस्थान में इस काल के सभी शिलालेख, ताम्र-पत्र, हस्त-लेख आदि में नागरी लिपि ही पायी जाती है। ओझा जी लिखते हैं कि, "ईसवी सन की दसवीं शताब्दी की उत्तरी भारतवर्ष की नागरी लिपि में कुटिल लिपि की नाईं अ, आ घ, प, म, य, ष, और स के सिर दो अंशों में विभक्त मिलते हैं, परन्तु ग्यारहवीं

१—नागरी अंक और अक्षर—ओझा और पंडित केशव प्रसाद मिश्र, पृष्ठ १०।

शताब्दी से ये दोनों अंश मिलकर सिर की एक लकीर बन जाती है और प्रत्येक अक्षर का सिर उतना लंबा रहता है, जितनी कि अक्षर की चौड़ाई होती है ग्यारहवीं शताब्दी की नागरी लिपि वर्तमान नागरी से मिलती-जुलती है और बारहवीं शताब्दी से वर्तमान नागरी बन गई है।...... ईसवी सन की १२वी शताब्दी से लगातार अब तक नागरी लिपि बहुधा एक ही रूप में चली आती है।"[१] इस प्रकार आधुनिक देवनागरी का मूल स्रोत प्राचीन राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी से सम्बद्ध है और उसके स्वरूप-विकास की एक सुनिश्चित परम्परा है। इस स्वरूप विकास में सामान्यतः अंकों और अक्षरों को सुन्दर बनाने का प्रयास और लिपि के धारावाहिक लेखन के प्रयास प्रमुख तत्व के रूप में क्रियाशील रहे हैं।

नागरी अंकों की उत्पत्ति—

अंक और अक्षर लिपि के दो अंग हैं। देवनागरी के उन दोनों अंगों का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ है। नागरी अंकों के प्राचीन और अर्वाचीन रूपों में पर्याप्त अन्तर है। प्राचीन अंकों में १ से ९ तक के अंक निश्चित थे। ईसा की छठवीं शताब्दी तक देवनागरी अंकों में ० (शून्य) का व्यवहार नहीं था। १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १००, १०००, १०,००० ; आदि के लिये भिन्न-भिन्न चिह्नों का प्रयोग होता था, जिसके फलस्वरूप प्राचीन अंक-क्रम वर्तमान अंक-क्रम की अपेक्षा बहुत जटिल था। नागरी की इन सम्पूर्ण संख्याओं का विवेचन बहुत विस्तीर्ण है, अतः इस छोटे से लेख में उनका इतिहास प्रस्तुत करना संभव नहीं है। इस विषय में विशेष जानकारी के लिये ओझा जी की 'प्राचीन लिपिमाला' पठनीय है। नागरी अंकों के उक्त रूपान्तर

१—भारतीय प्राचीन लिपिमाला ओझा, पृष्ठ ६९-७०।

का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

नागरी अंकों की उत्पत्ति का चित्र

१— — ~ ० १ १ १

२— = २ २ २

३— ≡ ३ ३ ३

४— + ४ ४ ४ ४

५— ५ ५ ५ ५

६— ६ ६ ६

७— ७ ७ ७ ७

८— ८ ८ ८ ८ ८ ८

९— ९ ९ ९ ९ ९ ९
९ ९ ९ ९

१—प्राचीन काल में इसका चिह्न एक आड़ी लकीर (—) थी जिसके प्रमाण पूना जिले के नानाघाट, दक्षिण की नासिक आदि की गुफाओं में खुदे हुये आंध्रभृत्य सातवाहन, क्षत्रिय राजाओं के शिलालेखों मथुरा और उसके आस-पास के प्रदेशों में प्राप्त क्षत्रिय और कुशन— (तुर्क) वंशी राजाओं के शिलालेखों तथा मालवा, गुजरात, राजपूताना आदि पर राज्य करने वाले क्षत्रियवंशी राजाओं के सिक्कों में मिलते हैं।[१] लगभग ईसवी सन की चौथी शताब्दी तक १ का अंक बहुधा प्राचीन रूप में ही लिखा जाता था। आजकल

१ प्राचीन लिपिमाला—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, लिपिपत्र ४१, कालम १ से ४।

भी व्यापारी लोग खाता बही में रुपयों के अंकों के बाद आने के अंक इसी रूप में लिखते हैं। चौअन्नी के लिये खड़ी लकीर और आने के लिये आड़ी लकीर अभी भी लिखी जाती है। एक का दूसरा रूप गुप्तवंशी राजाओं के शिलालेखों, ईसवी सन की आठवीं शताब्दी के आस-पास लिखे गये नैपाली शिलालेखों, तथा ईसवी सन की छठी से आठवीं शताब्दी तक के वल्लभी (काठियावाड़) के राजाओं के ताम्र-पत्रों में मिलता है।[१] इसमें जो थोड़ा-सा घुमाव पाया जाता है, वह वस्तुतः सुन्दर और सुगम बनाने का प्रयास है। तीसरा रूप दूसरे रूप का विकसित रूप है। इसमें आरम्भ के हिस्से में छोटी-सी गाँठ लगाकर घुमाव बढ़ाने का यत्न किया गया है। यह रूप 'बाबर मैनुस्क्रप्ट' से लिया गया है। तीसरे रूप को नीचे ओर अधिक बढ़ाने से चौथा रूप बना है जो ग्यारहवीं सताब्दी ईसवी तक के अनेक हस्तलिखित ग्रंथों में मिलता है। इसी से पाँचवा और छठवाँ रूप बना है, जो अब भी प्रचलित है।

२—एक की ही भाँति दो पहले दो आड़ी लकीरों (=) द्वारा लिखा जाता था। दूसरे रूपों में कुछ घुमाव सुन्दरता और सुगमता के विचार से डाला गया होगा। तीसरा रूप भी 'बाबर मैनुस्क्रप्ट' से लिया गया है, जिसमें लकीरों का नीचे की ओर झुकाव बढ़ गया है। इन दोनों लकीरों के मिल जाने से चौथा रूप बना है, जो आधुनिक २ के अंक से मिलता-जुलता है। दो का आधुनिक गुंडीदार रूप लेखनी को उठाये बिना दोनों लकीरों को लिखने की सुविधा से बना है, जो अनेक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों, ताम्र-पत्रों और शिलालेखों में मिलता है।

३—इसका चिह्न पहले तीन आड़ी लकीरें—थीं, जिनमें घुमाव डालने से दूसरा रूप तथा प्रारम्भ में छोटी-छोटी-सी गाँठ बनाने से तीसरा रूप बना है, जो वर्तमान ३ के अंक से मिलता-जुलता है। इन रूपान्तरों के विवरण अंक दो के रूपान्तरों की ही भाँति हैं। दो और तीन आनों के लिये अब भी व्यापारी क्रमशः दो और तीन आड़ी लकीरें (=, ≡) बनाते हैं, जो वास्तव में

१—वही—लिपिपत्र ४१, कालम ५ से ७.

इन अंकों के प्राचीनतम रूप हैं।

४--इसका पहिला रूप देहरादून जिले में कालसी के निकट मौर्यवंशी महाप्रतापी राजा अशोक के लेख की चट्टान पर खुदी हुई तेरहवीं धर्माज्ञा में मिलता है, जो अशोककालीन नागरी के क अक्षर से मिलता है। दूसरा रूप दक्षिण के नानाघाट आदि अनेक स्थानों के शिलालेखों में मिलता है।[१] तीसरा रूप क्षत्रियवंशी राजाओं के सिक्कों में मिलता है, जिसमें नीचे की तरह की खड़ी कलीर के अन्त में घुमाव डाला गया है। जल्दी लिखने में उसी घुमाव की गाँठ का रूप देने तथा बीच की आड़ी लकीर के साथ उसको मिला देने से चौथा रूप बना है, जो वर्तमान ४ के अंक से बहुत ही मिलता हुआ है। यह रूप दसवीं शताब्दी ईसवी के आसपास की हस्तलिखित पुस्तकों में पाया जाता है।[२]

५—इसका पहिला रूप आंध्र-भृत्यों तथा क्षत्रियों के लेखों में मिलता है।[३] दूसरा रूप गुप्तों के शिलालेखों में मिलता है, जिसमें खड़ी लकीर को कुछ टेढ़ी बनाकर सुन्दरता लाने का प्रयत्न किया गया है। तीसरा रूप नैपाल के शिलालेखों तथा प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। चौथा और पाँचवाँ रूप–दोनों नवीं तथा दसवीं शताब्दी ईसवी के लेखों में मिलते हैं।[४] ये रूप नागरी के वर्तमान ५ के रूप से मिलते हैं। पाँचवें और छठवें दोनों रूप इस समय लिखे जाते हैं।

६—इसका पहला रूप बिहार के शाहाबाद जिले के सहसराम, जबलपुर जिले के रूपनाथ के लेखों में पाया जाता है, जो वर्तमान ६ के अंक से बहुत मिलता हुआ है। पहले रूप से दूसरा रूप मिलता है, जो मथुरा और उसके

१—वही. लिपिपत्र ४१, कालम १-२.

२—प्राचीन लिपिमाला—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, लिपिपत्र ४१. कालम ९.

३—वही—लिपिपत्र ४१. कालम १-२.

४—वही—लिपिपत्र ४१. कालम ९.

आसपास के शिलालेखों में मिलता है।[१] तीसरा रूप दूसरे रूप से वर्तमान ७ के रूप से विशेष मिलता है। यह काठियावाड़ के हड़ाला से मिले हुये कन्नौज के पड़िहार-वंशी राजा महिपाल के समय (शक संवत् ८३६ = विक्रम संवत् ९७१ = ईसवी सन ९४१) के ताम्रपत्र से उद्धृत किया गया है।

७—इसका पहला रूप आन्ध्रभृत्य-वंशी राजाओं के शिलालेखों में मिलता है।[२] दूसरा रूप क्षत्रिय राजाओं के सिक्कों में पाया जाता है,[३] जिसमें लकीर के नीचे के हिस्से को बायें हाथ की ओर कुछ घुमा दिया है। इसी घुमाव को कुछ और बढ़ाने से तीसरा और चौथा रूप बना है। ये दोनों रूप क्षत्रियों के सिक्कों तथा वल्लभी राजाओं के ताम्रपत्रों में मिलते हैं। इसी से वर्तमान ७ के अंक की उत्पत्ति हुई।

८—इसका पहिला रूप आन्ध्रभृत्य-वंशी राजाओं के शिलालेखों में मिलता है।[४] दूसरा तथा तीसरा रूप गुप्तवंशी राजाओं के लेखों में मिलता है।[५] इन्हीं से वर्तमान ८ का अंक बना है।

९—इसका पहला तथा दूसरा रूप आन्ध्रभृत्यों के लेखों में मिलता है।[६] तीसरा रूप क्षत्रियों के सिक्कों में पाया जाता है। लिखने की शीघ्रता के कारण तीसरे रूप से चौथा रूप बना है। चौथा रूप गुप्तों के लेखों में पाया जाता है और नागरी के 'उ' अक्षर से मिलता है। चौथे से पाँचवा रूप बना है, जिसमें बाँयी ओर के नीचे के हिस्से की गोलाई बढ़ जाने से पाँचवें रूप की वर्तमान ९ के अंक से कुछ समानता आ जाती है। यह रूप दसवीं शताब्दी ईसवी के लेखों

१—वही—लिपिपत्र ४१. कालम ४.
२—वही—लिपिपत्र ४१. कालम १-२
३—वही—लिपिपत्र ४१. कालम ३.
४—वही—लिपिपत्र ४१. कालम २.
५—वही—लिपिपत्र ४१. कालम ४.
६—वही—लिपिपत्र ४१. कालम १-२.

में मिलता है। इसी से छठा रूप बना है, जो कहीं-कहीं अभी भी लिखा जाता है। इसी से ९ के वर्तमान रूप का विकास हुआ है।

९—नौ का यह रूप विशेषकर दक्षिण में प्रचलित है। इसका पहला और दूसरा रूप पूर्वलिखित ९ के रूप के समान है। तीसरा रूप दूसरे रूप से मिलता हुआ है। उसमें केवल ऊपर के हिस्से में गाँठ लगा दी गई है। इसी से शीघ्र लेखन के कारण चौथा रूप बन गया है।

१०—नागरी अंकों में शून्य का प्रयोग छठी शताब्दी ईसवी तक के हस्त-लेखों, सिक्कों, ताम्रपत्रों और शिलालेखों में नहीं पाया जाता। इसका हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं। छठी शताब्दी से शून्य का प्रयोग इस बात का साक्षी है कि उस समय तक नागरी के अंक प्राचीन पद्धति में ही लिखे जाते थे, उनमें शून्य की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि १०, २०, ३०, १००, १००० आदि के लिये भिन्न-भिन्न अंक-चिह्न प्रयोग में लाये जाते थे।

नागरी अक्षरों की उत्पत्ति :—

नागरी अंकों की ही भाँति नागरी अक्षरों की उत्पत्ति बड़ी रोचक है। नागरी का प्रत्येक अक्षर एक विशिष्ट ध्वनि का द्योतक है, और प्रत्येक ध्वनि के लिये नागरी में एक विशिष्ट वर्ण है। भारतीय भाषाओं की सभी ध्वनियाँ प्राय: देवनागरी में लिखी जा सकती हैं।[१] नागरी वर्णमाला के अक्षरों का उद्भव और विकास का संक्षिप्त विवेचन ही हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। नागरी के प्रत्येक अक्षर का स्वतन्त्र निम्न चित्र से स्पष्ट हो जाता है :—

१—विशेष जानकारी के लिये देखिये—हिन्दी भाषा का इतिहास—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ९१ से २२१।

नहीं था, किन्तु धीरे-धीरे उसमें अक्षरों को बिना कलम उठाये शीघ्रता में लिखने की चेष्टा की गई, जिसके साथ-साथ अक्षरों को सुन्दर और सुडौल बनाने की कामना और सम्पूर्ण अक्षर पर शिरोरेखा देने की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती गई है ।

नागरी के प्रत्येक अक्षर का उच्चारण क्या है ? और अशोक के समय से आज तक प्रत्येक अक्षर किन-किन रूपों में होता हुआ अपने वर्तमान रूप को प्राप्त हुआ है ? अब इसका शास्त्रीय ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है ।

अ—'अ' अर्धविवृत्त मध्य स्वर हैं। इसका पहिला रूप काठियावाड़ में गिरनार पर्वत के पास सम्राट अशोक के शिलालेख से लिया गया है।[1] दूसरा रूप मथुरा के आस-पास कुशनवंशी (तुरुष्क-तुर्क) राजाओं के लेखों (लिपिकाल ईसवी सन् की लगभग दूसरी शताब्दी) में, उच्छकल्प के महाराज शर्वनाथ के ताम्रपत्र (लिपिकाल कलचुरि संवत् २१४=विक्रम संवत् ५२०=ईसवी सन् ४६३) में, तथा मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा अपराजित के लेख (वि० सं० ७१८=ई० स० ६६१) में मिलता है। इसमें अपूर्ण शिरोरेखा को पूर्ण बनाने का प्रयास पाया जाता है। यह प्रयास सम्भवतः अक्षर को सुन्दर बनाने के लिये किया गया होगा। तीसरा रूप दूसरे से मिलता है, इसमें नीचे के बाँयीं ओर के हिस्से में सौन्दर्य वृद्धि की दृष्टि से घुमाव डाला गया है, यहाँ उसका सम्बन्ध मूल अक्षर से टूट गया है। चौथे-पाँचवें रूप में दाहिनी ओर की खड़ी लकीर सुन्दर बनाने का यत्न पाया जाता है, जिसके अक्षर की वर्तमान आकृति में पूर्व रूप से विशेष अन्तर हो गया है। ये रूप नवीं शताब्दी ईसवी से तेरहवीं शताब्दी तक की हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं। कई जैन लेखक तो अब तक खड़ी लकीर के अन्त को सुन्दर बनाने के लिये हलन्त के समान बना देते हैं।

अ—यह भी प्राचीन अ की तरह अर्धविवृत मध्य स्वर है। अ का यह रूप दक्षिण में लिखा जाता है। लिपि सुगमता के कारण अब इसका प्रचार-

---

१—नागरी अक्षरों के विकास में प्रायः सभी अक्षरों के प्रथम रूप अशोक-कालीन हैं, यह स्मरण रखें।

प्रसार बढ़ गया है। पूर्व वर्णित अ के तीसरे रूप से इसकी उत्पत्ति हुई है। अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों और हस्तलिखित पुस्तकों में इसके चौथे और पाँचवें रूप मिलते हैं।[१] 'आ' इसी 'अ' के दीर्घ उच्चारण से बना हुआ विवृत पश्च स्वर है। अंग्रेजी के तत्सम शब्दों को नागरी में लिखने के लिये 'ऑ' का भी स्वर और मात्रा के रूप में अब प्रयोग होने लगा है। 'आ' की मात्रा खड़ी पाई के समान है।

इ—'इ' संवृत ह्रस्व अग्रस्वर है। इसका तीसरा रूप गुप्तवंशी समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के लेख (लिपिकाल ई० स० की चौथी शताब्दी) तथा स्कन्द-गुप्त के समय (गुप्त संवत् १४१=विक्रम संवत् ५१७=ई० स० ४६०) के कुमाऊँ के लेख में मिलता है, जिसमें 'इ' की बिन्दियों पर सिर बनाने के यत्न किये गये हैं। छठवाँ रूप हैहय (कलचुरी) वंशी राजा जाजल्लदेव के (चेदी संवत ८६६=वि० सं० ११७१=ई० स० १११४) के लेख में[२] मिलता है। सातवाँ रूप १३वीं शताब्दी के आस-पास के शिलालेखों तथा हस्तलिखित ग्रंथों में मिलता है। वर्तमान 'इ' इससे बहुत मिलता है। 'इ' के दूसरे और पाँचवें रूप मध्य प्रदेश शासन के "लैंग्वेज डिपार्टमेंट" की "रिफॉर्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट" खोज रिपोर्ट से लिये गये हैं।[३]

नागरी लिपि सुधार आन्दोलन में 'इ' की मात्रा को लेकर पर्याप्त वितण्ड-वाद फैला हुआ है। वर्धा लिपि सुधार के अनुसार 'इ' को 'अि' लिखा जाता है, और लखनऊ लिपि सुधार के अनुसार 'इ' की मात्रा व्यंजन के बायीं ओर न लगाकर दाहिनी ओर लगाई गई थी, जैसे कि=की। 'इ' की मात्रा के ये प्रयोग 'इ' की मात्रा के प्राचीन रूपों से कहाँ तक मिलते हैं, इसके लिये हम

१—प्राचीन लिपिमाला—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, लिपिपत्र ५, १२, १६, १७, १८वाँ।

२—वही, लिपि पत्र १९वाँ।

३—रिफॉर्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट, लैंग्वेज डिपार्टमेंट, मध्य प्रदेश शासन, पृष्ठ २४, चार्ट १।

ईसापूर्व तीसरी शताब्दी से ईसा की ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी तक के 'इ' और 'ई' की मात्रा के प्राचीन प्रमाण और स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं :—

प्राचीन लिपि पत्रों में प्राप्त व्यंजनों में 'इ' की मात्रा का स्वरूप.

	लिपिपत्र क्रमांक तथा उसका वर्णन		वर्ण	'इ' की मात्रा का चिह्न		टिप्पणी
१.	लि.प.१. मौर्यवंशी राजा अशोक के गिरनार की चट्टान पर के लेख.	ई.स. पूर्व ३री	न ट ल			गिरनार से
२.	लि.प.२. राजा अशोक के अन्य लेख से उद्धृत.	,,	प			
३.	लि.प.३. रामगढ़, घोसुंडी आदि के लेखों से उद्धृत.	ई.स. पूर्व २री	थ व			भरहुत स्तूप के लेखों से
४.	लि.प.४. भट्टिप्रोलु के स्तूप के लेखों से उद्धृत.		ह क			
५.	लि.प.५. पभोसा और मथुरा के लेखों से उद्धृत	ई.स. पूर्व १ली	म द		मि कि शि दि	पभोसा से मथुरा के जैन लेखों से.
६.	लि.प.६. कुशानवंशी राजाओं के समय के मथुरा, सारनाथ आदि के लेखों से.	ई.स. की १ली व २री.	थ ण		थि णि णि दि	मथुरा के लेखों से सारनाथ के लेखों से
७.	लि.प.७. शक उषवदात और उसकी स्त्री दक्षमित्रा के नासिक के ५ लेखों से.	२री.	ल त		लि ति	
८.	लि.प.८. क्षत्रपवंशी राजा रुद्रदामा के गिरनार चट्टान पर के लेख से	,,	ध य		धि यि	
९.	लि.प.९. सातवाहन (आन्ध्र) वंशी राजाओं के नासिक के लेखों से.		ग स य		गि सि यि	वशिष्ठीपुत्र

१०	लि॰प॰११ दक्षिण की भिन्नभिन्न गुफाओं के कई लेखों से	२ से ४ तक	ल, स		लि, सि	
११	लि॰प॰१२ जगय्यपेठ के लेखों से	३री के आसपास	ध, स		धि, सि	
१२	लि॰प॰१३ मयिडवोलु से मिले हुए पल्लववंशी शिवस्कंदवर्म के दानपत्र से	४थी श॰ के प्रारंभ के आसपास	ग		गि	
१३.	लि॰प॰१६ गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त के अलाहाबाद के स्तम्भ के लेख से	ई॰स॰ की ४थी शती के मध्य के आसपास	न, ध		नि, धि	
१४.	लि॰प॰१७ गुप्तों के समय के भिन्नभिन्न लेख और दानपत्रों से	५वीं	थ		थि	कुमारगुप्त के समय के लेख से
१५.	लि॰प॰१८ राजा यशोधर्मन (विष्णुवर्धन) के समय के मंदसोर के लेख से	ई॰स॰ ५३२.	क, ग, ण, म		कि, गि, णि, मि	
१६.	लि॰प॰२० मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा अपराजित के समय के कुंडेश्वर के लेख से	ई॰स॰ ६६१	न, ह, क	मात्रा	नि, हि, की	
१७	लि॰प॰२२ चम्बा के राजा मेरुवर्मा के ५ लेखों से	ई॰स॰ की ८वीं	क, च		कि, चि	
१८.	लि॰प॰२५ जाइंकदेव के दानपत्र से	ई॰स॰ की १०वीं	क, व	बड़ी ई की मात्रा	की, वी	
१९.	लि॰प॰२६ चन्द्रदेव के दानपत्र से	ई॰स॰ की ११वीं और १२वीं	त	बड़ी ई की मात्रा	ति, ती	

इ—'इ' की मात्रा के लगभग डेढ़ हजार वर्षों के इतिहास को देखते हुये उसका बाँयी ओर लगाया जाना ही लिपि-सौन्दर्य और उस मात्रा के स्वतंत्र अस्तित्व के लिये हितकर होगा। 'इ' का दीर्घरूप 'ई' है, जो संवृत दीर्घ अग्र स्वर है। 'ई' की मात्रा व्यंजन के दाहिनी ओर लगती है, जाइंकदेव के १० वीं शताब्दी ईस्वी के दानपत्र तथा चन्द्रदेव के ११ वीं, बारहवीं शताब्दी के दानपत्रों में मिलते हैं।

उ—'उ' संवृत ह्रस्व पश्च स्वर है। इसके दूसरे रूप में शिरोरेखा है तथा सुन्दरता के विचार से इसके नीचे की आड़ी लकीर के अंतिम भाग को नीचे झुकाया गया है। यह रूप कुशनवंशी राजाओं के लेखों में मिलता है, इसी से तीसरे और चौथे रूपों का विकास हुआ है।[१] 'उ' की मात्रा वर्ण के नीचे 'ु' रूप में लगती है। 'उ' का दीर्घ रूप 'ऊ' है, जो संवृत दीर्घ पश्च स्वर है। इसकी मात्रा भी 'उ' की तरह वर्ण के नीचे लगती है। 'ऊ' की मात्रा का रूप

ए—'ए' अर्ध संवृत दीर्घ अग्र स्वर है, जो पहले त्रिभुज के रूप में लिखा जाता था। दूसरे रूप में त्रिकोण को उलट दिया है, जिससे ऊपरी आधार शिरोरेखा सा दिखता है। यह रूप समुद्रगुप्त तथा अन्य राजाओं के लेखों में मिलता है।[३] चौथे रूप में त्रिकोण की शक्ल पलट कर वर्तमान 'रा' का रूप

१—प्राचीन लिपिमाला—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, लिपिपत्र ५, १२ और १३ वाँ।

२—नागरी लिपि में अ + उ = ओ। तथा अ + ओ = औ संयुक्त स्वरों का प्रयोग भी होता है, इन संयुक्त स्वरों में अ के साथ क्रमशः ओ की मात्रा 'ो' और औ की मात्रा 'ौ' ही लिखी जाती हैं। ये मात्रायें 'ई' की मात्रा की तरह ऊपर और दाहिनी ओर लगाई जाती हैं। अ पर अनुस्वार 'ं' देने से 'अं' और अ के आगे विसर्ग चिह्न ':' लगाने से अः बने हैं। ये स्वतंत्र स्वर की तरह आजकल प्रयुक्त होते हैं।

३—प्राचीन लिपिमाला—ओझा, लिपिपत्र ३ रा, १२, १३ वाँ।

दिखाई देता है। यह रूप मंदसौर (मालवा) के राजा यशोधर्मं (मालव संवत् ५८९—ई० स० ५३२), मारवाड़ के पड़िहार राजा कक्कुक (वि० सं० ९१८—ई० स० ८६१) के तथा अन्य कई लेखों में मिलता है।[1] पाँचवाँ रूप वर्तमान 'ए' से मिलता है, जो राठौड़ राजा गोविन्ददास (तृतीय) (शक संवत ७३०—वि० स० ८६५—ई० सं० ८०७) के, परमार राजा वाकपति राज 'मुंज' (वि० सं० १०३१—ई० स० ९०७) के, तथा कलचुरी राजा कर्णदेव (कलचुरी संवत् ७९३—वि० स० १०९९—ई० स० १०४२) के ताम्रपत्रों, शिलालेखों और हस्तलिखित पुस्तकों में मिलता है। 'अ' और 'ए' से 'ऐ' संयुक्त स्वर बना है। 'ए' की मात्रा '◌े' तथा ऐ की मात्रा '◌ै' वर्णों के ऊपर लगती हैं।

क—यह अल्पप्राण अघोष स्पर्श है। इसके दूसरे रूप में शिरोरेखा बनाने का प्रयास है, एवं बीच की आड़ी लकीर को झुका दिया गया है।[2] तीसरा रूप मध्यप्रदेश सरकार की 'रिफॉर्म आॅव दि नागरी स्क्रिप्ट' खोज रिपोर्ट से लिया गया है। चौथे रूप में बीच की लकीर का झुकाव बढ़ा दिया है। यह रूप कलचुरी राजा कर्णदेव के ताम्रपत्र में मिलता है। पाँचवाँ रूप अनेक शिलालेखों और ताम्रपत्रों में पाया जाता है।[3] फ़ारसी और अरबी के तत्सम शब्दों के प्रयोग से 'क' के नीचे नुक्ता देकर 'क़' लिखा जाने लगा है। यह 'क़' अल्पप्राण, अघोष जिह्वामूलीय स्पर्श व्यंजन है।

ख—महाप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन है। इसका दूसरा रूप कुशनवंशी राजाओं के लेखों में गिरनार पर्वत के पास चट्टान पर खुदे हुये क्षत्रवंश के राजा रुद्रदामा के लेख (लिपिकाल ई० स० दूसरी शताब्दी) में मिलता है।[4] तीसरे रूप में सिर बनाने के कारण अक्षर के दो खण्ड हो गये हैं, जिसमें से पहली

१—वही, लिपिपत्र ५ वाँ और १६ वाँ।

२—वही, लिपिपत्र ३ रा, ५ वाँ, ९ वाँ।

३—वही, लिपिपत्र १३, १६, १७, १९ वाँ।

४—प्राचीन लिपिमाला—ओझा, लिपिपत्र २ रा।

खड़ी लकीर को सुन्दर बनाने का प्रयत्न दिखाई देता है। इससे उक्त अक्षर के चौथे रूप में विकसित होने वाले 'र' और 'व' दो रूप बन गये, जिन्हें मिलाकर लिखने से ही 'ख' बनता है।[२] लखनऊ लिपि सुधार में 'र' की रेखा को 'व' की पाई से मिलाकर 'ख' को 'ख' रूप दिया गया। अरबी-फारसी के तत्सम शब्दों को लिखते समय ख के नीचे नुक्ता लगाकर 'ख़' लिखा जाता है, जो जिह्वामूलीय अघोष संघर्षी ध्वनि है।

ग—अल्पप्राण सघोष स्पर्श व्यंजन है। 'ख' की तरह 'ग' के रूपान्तरों का कारण शिरोरेखा बनाना ही है। दूसरे रूप में ऊपर के कोग के स्थान में वक्रता पाई जाती है। यह रूप मथुरा के क्षत्रप राजा सोडास, तथा प्रसिद्ध क्षत्रत राजा नहपान के दामाद शक उषवदास के अन्य कई लेखों में मिलता है। दूसरे रूप के ऊपर सिर बनाने तथा पहली खड़ी लकीर को जरा बाईं तरफ मोड़ देने से तीसरा रूप, जो वर्तमान 'ग' से मिलता है, बना है।[३] 'ग' की जगह नागरी में लिखे जाने वाले अरबी फारसी के तत्सम शब्दों में 'ग़' का प्रयोग होता है, जो सघोष जिह्वामूलीय संघर्षी ध्वनि है।

घ—महाप्राण सघोष स्पर्श व्यंजन है। इसके दूसरे रूप में शिरोरेखा बनाई गई है और दाहिनी ओर की दोनों ऊर्ध्व रेखाओं की ऊँचाई बढ़ा दी है। यह रूप मालवा के राजा यशोधर्म के मन्दसौर के लेख[४] में मिलता है। इसी का सिरा पूरा बनाने तथा शीघ्रता से अक्षर को कुछ टेढ़ा लिखने से तीसरे, चौथे और पाँचवें रूप विकसित हुये हैं, जो वर्तमान 'घ' से मिलते हैं।

ङ—सघोष अल्पप्राण कंठ्य अनुनासिक ध्वनि है। यह अक्षर अशोक के किसी भी लेख में नहीं मिलना। इसका प्रथम प्रयोग कुशनवंशियों के लेखों में संयुक्ताक्षरों में पाया जाता है। इसका पहला रूप समुद्रगुप्त के एक लेख के

१—प्राचीन लिपिमाला—ओझा, लिपिपत्र २ रा।

२—वही—लिपिपत्र १२, १३, १६ वाँ।

३—वही—लि० प० ९, १२, १३, १६ वाँ।

४—वही—लि० प० ५ वाँ।

संयुक्ताक्षर से लिया गया है।[५] बाद में इसके नीचे के हिस्से की गोलाई बढ़ती रहने से इसकी आकृति 'ड' से मिलने लगी। इसके चौथे और पाँचवें रूप मध्यप्रदेश शासन के लैंग्वेज् डिपार्टमेन्ट की खोज रिपोर्ट 'दि रिफार्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिये गये हैं। ङ का अन्तिम छोर कहीं चतुरस्र, कहीं त्रिकोण और कहीं गोल सा मिलता है।[६] इसमें गाँठ का प्रादुर्भाव आठवीं शताब्दी ईसवी से हुआ है। पीछे से वह बिन्दी रूप में अक्षर के मध्य भाग में लगाई जाने लगी।

च—अल्पप्राण अघोष स्पर्श संघर्षी व्यंजन है। इसके दूसरे रूप में सिर के अतिरिक्त बाईं ओर नीचे के हिस्से पर नोक सी बनी है। तीसरे रूप में 'च' की आकृति लगभग बन गई है, जो चौथे रूप में पूर्णतः स्पष्ट बन गई है।[७]

[च के बाद प्रत्येक अक्षर के दूसरे रूप में शिरोरेखा देने की प्रवृत्ति पाई जाती है अतः इस सम्बन्ध में आगामी अक्षरों में जहाँ विशेष आवश्यकता होगी वहीं विवरण दिया जायगा।]

छ—महाप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन है। इसके दूसरे रूप में खड़ी लकीर वृत्त को पार कर बाहर निकल गई है।[१] तीसरा रूप कन्नौज के गहरवार (राठौर) वंशी राजा जयचंद के ताम्रपत्र (लिपि काल वि० सं० १२३२—ई० स० ११७५) और मालवा के परमारवंशी महाकुमार उदय वर्मा के ताम्रपत्र (लिपिकाल वि० सं० १२५६—ई० स० ११९९) में मिलता है।

ज—अल्पप्राण सघोष स्पर्श संघर्षी व्यंजन है। इसके पहले, दूसरे, चौथे और छठे रूप मध्यप्रदेश शासन के लैंग्वेज डिपार्टमेंट की खोज रिपोर्ट 'रिफार्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिये गये हैं। दूसरे रूप के नीचे के हिस्से को कुछ आगे

५—वही—लिपिपत्र ३ रा।

६—वही लिपिपत्र ९, १३, २१, २३, २४ वाँ।

७—वही—लिपिपत्र २ रा, ४ था, ८, ९, १६, १७, १९, २० वाँ।

१—प्राचीन लिपिमाल—ओझा, लिपिपत्र १६ वाँ।

बढ़ाने से झुकाव आ गया है।[२] उसी भाग को बाँयी ओर घुमाने से तीसरे चौथे रूप बने हैं।[३] पाँचवें[४] और छठे रूपों का विकास सातवें रूप में हुआ है। जो वर्तमान ज से मिलता जुलता है। छठवाँ रूप तो अभी भी हस्तलिखित ग्रंथों में लिखा जाता है। अरबी-फारसी तत्सम ज के नीचे नुक्ता 'ज़' लिखा जाता है, जो सघोष ध्वनि है।

झ—यह 'भ' की आकृति से कुछ-कुछ समानता रखने वाला 'झ' है, जो महाप्राण सघोष स्पर्श संघर्षी व्यंजन है। प्राचीन लेखों में इसका प्रयोग कम मिलता है। इसका दूसरा रूप ब्राह्मण राजा शिवगण के कनसवाँ (कोटा के पास) के लेख (लिपिकाल वि० सं० ७९५—ई० स० ७३८) में मिलता है। तीसरा रूप 'रिफार्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' खोज रिपोर्ट से प्राप्त हुआ है। चौथा रूप राठौर राजा गोविन्दराज (तृतीय) के ताम्रपत्र (शक संवत ७३०—वि० सं० ८६४—ई० स० ८०७) में मिलता है। पाँचवाँ रूप 'भ' (झ) से मिलता हुआ है। यह रूप अनेक मुद्रित जैन पुस्तकों में मिलता है, तथा राजपूताने में बहुधा अभी भी लिखा जाता है।

झ—का यह रूप विशेषकर दक्षिण में प्रचलित है। इसके प्रथम तीन रूप उपरोक्त 'भ' के पहले दो रूपों के समान हैं। तीसरे रूप के नीचे के हिस्से में गाँठ लगाने से चौथा रूप बना है, जो प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में पाया जाता है।

'झ' का वर्तमान रूप जो आजकल नागरी लिपि में प्राय: लिखा जाता है, उसकी उत्पत्ति के प्राचीन प्रमाण नहीं मिलते, क्योंकि प्राचीन लेखों और ग्रंथों में वह अप्राप्य है।

ञ—सघोष अल्पप्राण तालव्य अनुनासिक ध्वनि है। यह वर्ण प्राकृत लेखों में मिलता है, और संस्कृत लेखों में प्राय: संयुक्ताक्षरों में मिलता है। इसका

२—वही—लिपिपत्र ५ वाँ, ९ वाँ।

३—वही—लिपिपत्र ११ वाँ, १२ वाँ।

४—वही—लिपिपत्र १३ वाँ।

दूसरा रूप मेवाड़ के गुहिल राजा अपराजित के लेख (लिपिकाल वि०सं० ७१८ —ई० स०६६१) में[5] मिलता है। तीसरे, चौथे और पाँचवें रूप 'रिफार्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिये गये हैं। पाँचवाँ रूप कुमारगुप्त के समय के मंदसौर के लेख (वि० स० ५२९ ई० स० ४७२) से[6] लिया गया है। पाँचवें रूप से छठा रूप बना है।

ट—अल्पप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन है। इसका दूसरा रूप पहले से मिलता-जुलता है, शिरोरखा देने के प्रयास में इसके ऊपरी हिस्से में कुछ परिवर्तन मालूम होता है।[1] तीसरे, चौथे और पाँचवें रूप इसीसे विकसित हुए हैं।[2] चित्र में दिया गया चौथा रूप 'रिफॉर्म ऑव दी नागरी स्क्रिप्ट' से लिया गया है। अल्पप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन होते हुये भी प्राचीन परिभाषा के अनुसार आदि मूर्धन्य व्यंजन माने जाते थे।

ठ—महाप्राण अघोष मूर्धन्य स्पर्श व्यंजन है। इसका दूसरा रूप 'रिफॉर्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिया गया है। तीसरे रूप में शिरोरेखा देने का प्रयास है।[3] चौथे रूप के सिर तथा नीचे के वृत्ताकार हिस्से के बीच में छोटी सी खड़ी लकीर रहने के कारण वर्तमान 'ठ' बना है।[4]

ड़—प्राचीन जैन पुस्तकों तथा राजपूताने के आधुनिक हस्तलेखों में 'ड' इसी प्रकार लिखा जाता है। यह अल्पप्राण सघोष स्पर्श मूर्धन्य व्यंजन है। इसके दूसरे रूप में नीचे का हिस्सा कुछ दाहिनी ओर बढ़ाया गया है, जो कदाचित त्वरा लेखन से हुआ है। इससे मिलता हुआ रूप उड़ीसा में कटक से कुछ दूर हाथी गुफा में खुदे जैन राजा खारवेल के लेख (लिपिकाल दूसरी

५—वही—लिपिपत्र ११ वाँ।

६—वही—लिपिपत्र ४ था।

१—प्राचीन लिपिमाला—ओझा. लिपिपत्र ३, ४, ७, ८ वाँ।

२—वही, लिपिपत्र १ ला.

३—वही, लिपिपत्र ७वाँ।

४—वही, लिपिपत्र १३, १६, १९वाँ।

शताब्दी ईसापूर्व) में पाया जाता है। दूसरे रूप को शीघ्र लिखने और सुन्दर बनाने की दृष्टि से तीसरे और चौथे रूप बने हैं।[५] पाँचवाँ रूप 'रिफॉर्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिया गया है। छठवाँ रूप इसी से मिलता-जुलता है।[६]

ड—इसके पहले चार रूप उपरोक्त 'ड' के ही समान हैं। पाँचवें रूप में मध्यवर्ती घुमाव बढ़ा देने से 'ड' की वर्तमान आकृति बन गयी है।[७]

ढ—महाप्राण सघोष 'मूर्धन्य स्पर्श व्यंजन है। नागरी लिपि की सम्पूर्ण वर्णमाला में यह 'ढ' ही एक ऐसा अक्षर है, जो अपने प्राचीन रूप में वर्तमान है। केवल उस पर शिरोरेखा ही बढ़ाई गई है।

ण—अल्पप्राण सघोष मूर्धन्य अनुनासिक व्यंजन है। इसके दूसरे और चौथे रूप कुशनवंशी राजाओं के लेखों में मिलते हैं। तीसरे और सातवें रूप 'रिफॉर्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिये गये हैं। शेष रूप अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों और हस्तलिखित ग्रन्थों में पाये जाते है। सातवें रूप पर सिर बना देने से बर्तमान ण बना है।[८]

ण—'ण' का यह रूप दक्षिण में प्रचलित है इसके पाँचवें रूप तक का विकास पूर्व वर्णित 'ण' के रूपों के अनुरूप है। पाँचवें रूप में शिरोरेखा जोड़ देने से वर्तमान 'ण' बना है।

त—अल्पप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन है। इसका वर्तमान रूप दूसरे रूप से मिलता-जुलता है।[९]

थ—महाप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन है। इसका दूसरा रूप समुद्रगुप्त के लेख में मिलता है।[१] तीसरे से छठवें तक के रूप अनेकों शिलालेखों और ताम्रपत्रों

५—वही, लिपिपत्र ९वाँ।

६—वही, लिपिपत्र ११वाँ।

७—वही, लिपिपत्र १८, १९वाँ।

८—वही, लिपिपत्र ३, ५, ९, १०, ११, १२, १३, १६, १७, १८वाँ।

९—वही, लिपिपत्र ११वाँ।

१—प्राचीन लिपिमाला—ओझा, लिपिपत्र ३रा।

तथा ग्रंथों में मिलते हैं।[२] चौथा रूप 'रिफॉर्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिया गया है।

द—अल्पप्राण सघोष स्पर्श व्यंजन है। इसका दूसरा रूप सम्राट अशोक के आंध्र इलाके के गंजाम जिले के जोगड़ के लेख तथा पभोसा (प्रभास इलाहाबाद से ३२ मील यमुना तट पर) के लेखों (लिपिकाल ईसापूर्व दूसरी शताब्दी) में मिलता है। तीसरा कुशनवंशी राजाओं के तथा चौथा अन्य अनेक लेखों में मिलता है।[३] छठवाँ रूप वर्तमान 'द' से मिलता है। पाँचवें और सातवें रूप 'रिफॉर्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिये गये हैं। छठवें रूपों में बहुत थोड़ा अन्तर है।

ध—महाप्राण सघोष स्पर्श व्यंजन है। इसका दूसरा रूप कन्नौज के पड़िहार राजा भोजदेव के ग्वालियर के लेख (लिपिकाल वि० सं० ९३३—ई०स० ८७६) तथा पीलीभीत से २० मील पर देवल गाँव की प्रशस्ति (लिपिकाल वि० सं० १०४९—ई० स० ९९२) में पाया जाता है। तीसरा रूप कन्नौज के गहरवार (राठौड़) राजा जयचन्द के ताम्रपत्र (लिपिकाल वि० सं० १२३२ ई० स० ११७५) में मिलता है। चौथा रूप वर्तमान ध से मिलता है।[४] लखनऊ लिपि सुधार में घ और ध के रूपों को अधिक स्पष्ट करने के लिये 'ध' रूप दे दिया गया है।

न—अल्पप्राण सघोष वर्त्स्य अनुनासिक व्यंजन है। इसका दूसरा रूप क्षत्रप राजा रुद्रदामा के लेख[५] और तीसरा रूप राजानक लक्ष्मणचन्द्र के समय वैद्यनाथ के लेख (लिपिकाल शक संवत ७२६—वि० सं० ८६१ ई० स०

२—वही, लिपिपत्र ४, ५, ९, १२, १३, १६, १८, १९, २०वाँ।
३—वही, लिपिपत्र ३, ९, १३वाँ।
४—वही, लिपिपत्र २०वाँ।
५—वही, लिपिपत्र २रा।

८०४) में मिलता है। चौथा रूप 'रिफॉर्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिया गया है। पाँचवाँ रूप चौथे का ही रूपान्तर है।

प—अल्पप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन है। इसका दूसरा रूप पहले रूप से मिलता है। तीसरा रूप अनेक लेखों में पाया जाता है।[६]

फ—महाप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन हैं। इसके पहले और दूसरे रूप लगभग समान ही हैं। तीसरा रूप समुद्रगुप्त के लेख में पाया जाता है। चौथे, पाँचवें और छठवें रूप त्वरा और अक्षर सौंदर्य की दृष्टि से विकसित हुए हैं जो अनेक प्राचीन पुस्तकों में मिलते हैं। अरबी, फारसी के तत्सम शब्दों के कारण 'फ' को नुक्ते सहित 'फ़' लिखा जाने लगा है, जो दन्त्योष्ठ्य संघर्षी अघोष ध्वनि

ब—अल्पप्राण सघोष स्पर्श व्यंजन है, जिसका दूसरा रूप राजा यशोधर्म के लेख[७] तथा अन्य कई लेखों[८] में मिलता है। तीसरा रूप 'प' से मिलता हुआ है।[९] यह रूप कहीं-कहीं 'व' के समान भी पाया जाता है, इसलिये 'प' और 'व' से भिन्न बनाने के लिये इसके बीच में एक बिन्दी लगाने लगे, जिससे चौथा रूप बना। पाँचवाँ रूप चौथे रूप से बना है, जो गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के ताम्रपत्र (लिपिकाल वि० सं० १०८६—ई० स० १०२९) से लिया गया है।

भ—महाप्राण सघोष ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजन है। इसका दूसरा रूप कुशन-वंशी राजाओं के लेखों में और तीसरा गुप्तवंश के राजा स्कन्दगुप्त के इन्दौर से मिले हुये ताम्रपत्र (लिपिकाल गुप्त संवत् १४६—वि० सं० ५२२—ई०

६—वही, लिपिपत्र ३, ११, १२, १७, १८वाँ।

७—वही, लिपिपत्र ५वाँ।

८—वही, लिपिपत्र ११, १३वाँ।

९—वही, लिपिपत्र १८वाँ।

स० ४६४) में मिलता है। चौथा रूप तीसरे रूप से मिलता है। 'म' और 'भ' के भेद को स्पष्ट करने के लिये लखनऊ लिपि सुधार द्वारा प्राचीन 'भ' को 'भ' रूप दिया गया है।

म—अल्पप्राण सघोष ओष्ठ्य अनुनासिक व्यंजन है। इसके प्रारम्भिक तीन रूप एक दूसरे से मिलते हैं, चौथे, पाँचवें और छठवें रूप में इसका विकास हुआ है, जो 'म' के सदृश ही हैं।

य—तालव्य सघोष अर्ध स्वर है। इसके पहले दो रूप अशोक के लेखों में मिलते हैं। दूसरे रूप को बिना कलम उठाये लिखने से तीसरा रूप बना है। चौथा रूप उसी का भेद है, जो वर्तमान 'य' से मिलता है।

र—लुंठित अल्पप्राण वर्त्स्य सघोष ध्वनि है। इसका दूसरा रूप पहले रूप की खड़ी लकीर के अन्त को सौन्दर्य की दृष्टि से दाहिनी ओर कुछ नीचे की तरफ झुकाने से बना है। यह रूप बौद्ध श्रमण महानामन् के लेख (गुप्त संवत् २६९=वि० सं० ६४५=ई० स० ५०८) में पाया जाता है। तीसरा रूप वर्तमान 'र' से मिलता है। नागरी लिपि में 'र' कई रूपों में लिखा जाता है। मात्रा के रूपों में यह रेफ (ॅ) बन जाता है। व्यंजन के साथ क वर्ग, च वर्ग (छ को छोड़कर), त, प वर्गों के व्यंजनों में खड़ी पाई के साथ नीचे तिरछी रेखा, यथा 'क्र' की भाँति प्रयुक्त होता है, ट वर्ग तथा छ और अन्य खड़ी पाई रहित व्यंजनों में नीचे, जैसे 'ट्र' लिखा जाता है। त से मिलाकर लिखते समय 'त्र' न लिखकर 'त्र' लिखा जाता है, जिसमें त की बायीं ओर का शेष आधा भाग नहीं लिखा जाता। 'र' के साथ 'उ' और 'ऊ' की मात्रायें भी 'रु' और 'रू' न लिखी जाकर 'रु' और 'रू' लिखा जाता है। 'इ' की मात्रा की तरह 'र' और उसके संयुक्ताक्षरों का रूप विवादास्पद है। अतः हम ईसापूर्व तीसरी शताब्दी से १०वीं शताब्दी ई० तक के १३०० वर्षों के 'र' के संयुक्ताक्षरों के रूप-विकास के चित्र यहाँ दे रहे हैं, जिनसे इसके विभिन्न प्रयोगों का पता चल जाता है :—

प्राचीन लिपि-पत्रों में प्रयुक्त 'र' से बने संयुक्ताक्षरों का स्वरूप

क्रमांक	लिपिपत्र क्रमांक व उसका वर्णन	शताब्दी	व्यंजन	'र' मात्रा	संयुक्ताक्षर
	लि-प-१ अशोक के गिरनार की चट्टान पर के लेख	ई. स. पूर्व ३ री	क		क्र
			त		त्र
			व		व्र
२.	लि-प-३ रामगढ़ घोसुंडी आदि के लेख	ई. स. पूर्व २ री	प		प्र
			ग		ग्र
			व		व्र
			द		द्र
	लि-प-५ मथुरा के चार जैन लेखों से	ई. स. पूर्व १ ली	त	र	त्र
४.	लि-प-५ मथुरा के लेखों से	ई. स. पूर्व १ ली	ध		ध्र
५.	लि-प-६ मथुरा सारनाथ आदि के लेखों से पाये गये अक्षर	ई. स. १ ली से २ री	ग		ग्र
			त		त्र
६.	लि-प-७ शक उषवदात और उस की स्त्री दक्षमित्रा के नासिक के लेखों से.	ई. स. २ री	बा		ब्रा
	लि-प-८ राजा रुद्रदामा के गिरनार के लेख से	,,	ष		ष्र
			ट		
			द		द्र
			ज		जि
	लि-प-४३ पल्लववंशी राजा विष्णु गोपवर्मन् के दान पत्र से	५ वीं	ब		ब्र
			द		

	स्रोत	काल	अक्षर		संयुक्ताक्षर
	लि॰ प॰ ४५, चालुक्य वंशी राजाओं के लेखों तथा दान-पत्रों से	६ और ७वीं	च, छ		चन्द्रे
	लि॰ प॰ ४७ कड़व से मिले हुये राष्ट्रकूट वंशी राजा प्रभूतवर्ष के दान-पत्र से	ई॰ स॰ ८१३	स, थ		स्त्र, र्ष
११.	लि॰ प॰ ४८॰ चालुक्यवंशी राजा भीम के दान पत्र से	१०वीं	म, त, थ		र्म्म, र्य्य

ल—पार्श्विक अल्पप्राण सघोष वर्त्स्य ध्वनि है। इसका दूसरा रूप हूण वंशी राजा तोरमाण के लेख (लिपिकाल लगभग वि॰ सं॰ ५००) में मिलता है। तीसरा रूप कई लेखों में पाया जाता है।[1] चौथा रूप 'रिफॉर्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिया गया है। पाँचवें और छठे रूप इसी से सुन्दर बनाने की दृष्टि से विकसित हुये हैं। इसका छठा रूप वर्तमान 'ल' से मिलता है।

व—दंत्योष्ठ्य संघर्षी सघोष ध्वनि है। इसके पहिले रूप को बिना कलम उठाये लिखने से दूसरा रूप बना है।[2] और उसके नीचे के हिस्से में सुन्दरता लाने के मूल में शेष रूपों का विकास हुआ है।[3] इसके छठवें और सातवें रूप 'रिफॉर्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिये गये हैं।

श—अघोष संघर्षी तालव्य ध्वनि है। इसका रूपान्तर पहिले रूप से

१—प्राचीन लिपिमाला—ओझा, लिपिपत्र ९, ११, १२वाँ।

२—वही, लिपिपत्र ४था।

३—वही, लिपिपत्र ११, १२, १३, १६वाँ।

मिलता है। तीसरे, चौथे, पाँचवें रूप, दूसरे रूप के ही विकसित रूप हैं।[४] चौथे और पाँचवें रूप 'रिफॉर्म दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिये गये हैं। छठवाँ रूप कई लेखों में मिलता है।[५] इसी से श बना है।

ष—अघोष संघर्षी मूर्धन्य व्यंजन है। यह अक्षर अशोक के लेखों में नहीं मिलता। इसका पहला रूप घोसुंडा (मेवाड़ में) के शिलालेखों (लिपिकाल ईसापूर्व दूसरी शताब्दी) का है। दूसरा रूप पहिले रूप से मिलता है और तीसरा रूप इसी से बना है।[१]

स—वर्त्स्य संघर्षी अघोष ध्वनि है। इसका दूसरा रूप पहिले के ही सदृश है। तीसरा रूप समुद्रगुप्त के लेखों में मिलता है।[२] चौथा रूप कई लेखों में मिलता है।[३]

ह—स्वरयंत्रमुखी अघोष संघर्षी ध्वनि है। इसके पहले और दूसरे लेख लगभग समान हैं। तीसरा रूप उच्छकल्प के महाराज शर्वनाथ के ताम्रपत्र (लिपिकाल वि० सं० ५२०=ई० स० ४६३) से लिया गया है। चौथा रूप इसी से विकसित हुआ है।[४] पाँचवाँ और छठवाँ रूप अनेक लेखों में मिलते हैं। छठा रूप 'रिफॉर्म ऑव् दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिया गया है।

ळ—पार्श्विक अल्पप्राण मूर्धन्य व्यंजन है। संस्कृत साहित्य में वेदों के अतिरिक्त इस अक्षर का प्रयोग नहीं मिलता। संस्कृत शिलालेखों में 'ल' या 'ड' के स्थान पर इसका प्रयोग हुआ है। दक्षिणी शिलालेखों में यह विशेष रूप से पाया जाता है। गुजरात से कन्याकुमारी तक लेखन और उच्चारण में इसका अभी भी उपयोग होता है। राजपूताने में इसका उच्चारण तो होता है, पर

४—वही, लिपिपत्र ३२रा।

५—वही, लिपिपत्र १३, १५वाँ।

१—प्राचीन लिपिमाला, ओझा, लिपिपत्र १६, १७, १८, १९वाँ।

२—वही, लिपिपत्र ३०वाँ।

३—वही, लिपिपत्र ५, ९, १२, १३वाँ।

४—वही, लिपिपत्र ४, ५, ९, १३, १६वाँ।

लिखित रूप में 'ळ' ही प्रचलित है, जो अशुद्ध है। 'ळ' का पहिला रूप रुद्रदामा के लेख से लिया गया है।[५] दूसरा रूप दक्षिण के सोलंकी राजाओं के ई० स० की नवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक के लेखों में पाया जाता है। तीसरा रूप इसी का परवर्ती विकास है। चौथा रूप 'रिफार्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिया है।

क्ष—'क' और 'ष' का संयुक्त वर्ण है। ईसा की दसवीं शताब्दी तक के ताम्रपत्रों, सिक्कों, शिलालेखों और ग्रंथों में दोनों वर्ण संयुक्त लिखे जाते थे। कालान्तर में सौन्दर्य की दृष्टि से इसका जो रूप परिवर्तन हुआ, तो उसमें मूल वर्णों का रूप लेशमात्र भी नहीं बच पाया है। इसका पहिला रूप क्षत्रप राजा सोडास के मथुरा के लेख से उद्धृत किया गया है। इसके दूसरे और तीसरे रूप प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं। चौथा रूप 'रिफार्म ऑव दि नागरी स्क्रिप्ट' से लिया गया है। शेष रूष इसी के विकास हैं।

'त्र' भी 'त' और 'र' का संयुक्त वर्ण है। इसका विवेचन पहिले किया जा चुका है।

ज्ञ—'ज' और 'ञ' का संयुक्त रूप है। इसका विकास भी 'क्ष' की ही तरह विलक्षण है। इसका पहिला रूप रुद्रदामा के लेख से लिया गया है।[६] दूसरे, तीसरे और चौथे रूप इसी से बने हैं।

क्ष, त्र, और ज्ञ संयुक्त वर्ण होते हुये भी नागरी वर्णमाला में अपने विलक्षण रूपों के कारण स्वतंत्र व्यंजन मान लिये गये हैं।

ड़—अल्पप्राण सघोष मूर्धन्य उत्क्षिप्त ध्वनि है, जो ड के नीचे बिन्दी लगाकर लिखा जाता है। यही स्थिति 'ढ़' की भी है, जो महाप्राण सघोष

५—वही, लिपिपत्र २रा।

६—वही, लिपिपत्र २रा।

१—हिन्दी भाषा का इतिहास—धीरेन्द्र वर्मा, अध्याय १, हिन्दी ध्वनि समूह पृष्ठ ९१ से १०० तक।

मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त ध्वनि है। 'ड़' और 'ढ़' दोनों नागरी वर्णमाला में स्वतन्त्र व्यंजन माने गये हैं।

ऋ, ॠ, और ऌ का प्रयोग संस्कृत तत्सम शब्दों में होता है। इसमें से केवल ऋ का प्रयोग अभी भी स्वर और मात्रा के रूप में होता है। 'ॠ' और 'ॡ' का प्रयोग आधुनिक भारतीय भाषाओं में नहीं होता। ये ध्वनियाँ धीरे-धीरे लोप हो गई हैं।

यदि देवनागरी लिपि का प्रयोग भारतीय भाषाओं में भी किया गया तो विभिन्न भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों को नागरी में अंकित करने के लिए नये लिपि चिह्नों का प्रयोग अनिवार्य होगा और देवनागरी लिपि का यह परिष्कार भी उनके विकास का अंग माना जायगा।

३ : देवनागर और देवनागरी लिपि

[अस्तङ्गत देवनागर का अभ्युदय भारतीय गणराज्य के महामहिम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के संरक्षकत्व में वैशाख, २०१० विक्रमाब्द तदनुसार सन् १९५३ में 'देवनागर' त्रैमासिक पत्र के रूप में हुआ, जो देवनागरी लिपि की श्रेष्ठता का एकमात्र परिचायक था। इससे भी ४६ वर्ष पूर्व अर्थात् १९६४ विक्रमाब्द (सन् १९०७) में न्यायमूर्ति शारदाचरण मित्र ने 'देवनागर' मासिक पत्रिका का प्रकाशन कर सबसे पहले सभी भारतीय भाषाओं में देवनागरी लिपि के प्रयोग द्वारा भारत की सांस्कृतिक एकता पर बल दिया था। अस्तङ्गत देवनागर की याद करते हुये अपने सम्पादकीय में उदीयमान 'देवनागर' में जो विचार व्यक्त किये थे, उन्हें यहाँ उद्धृत किया जाता है।]

देवनागर के प्रकाशन का श्रीगणेश

लगभग ४६ वर्ष पूर्व सन् १९०७ में न्यायमूर्ति शारदाचरण मित्र ने 'देवनागर' मासिक पत्रिका निकाली थी। मित्र महोदय का यह कार्य अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है। उस समय की भारत की सांस्कृतिक वातारण की अस्थिरता तथा भाषा-लिपि-विषयक मतभेदों और अराजकता के बीच पर्वत के समान अचल रहकर जिस ज्योति को दीपित करने का प्रयत्न किया था, वह भविष्य के लिये आलोक-स्तम्भ बन गई। आज देवनागरी राष्ट्रलिपि के पद पर आसीन हो गई है। सभी प्रान्तीय भाषाएँ यदि देवनागरी लिपि में लिखी जायँ तो "देवनागर" स्थापित करने वाले स्वर्गीय शारदाचरण मित्र का स्मरण बराबर बना रह सकेगा।

देवनागर का उदात्त संकल्प :—

"जगद्विख्यात भारतवर्ष ऐसे महा-प्रदेश में जहाँ जाति-पाँति, रीति-नीति-मत आदि के अनेक भेद दृष्टिगोचर हो रहे हैं ; भाव की एकता रहते हुए भी

भिन्न-भिन्न भाषाओं के कारण एक प्रान्तवासियों के विचारों से दूसरे प्रान्त वालों का उपकार नहीं होता। इसमें सन्देह नहीं कि भाषा का मुख्य उद्देश्य अपने भावों को दूसरों पर प्रकट करना है। इससे परमार्थ ही नहीं समझना चाहिये अर्थात् मनुष्य को अपना विचार दूसरों पर इसीलिये नहीं प्रकट करना पड़ता है कि उससे दूसरों का लाभ हो, किन्तु स्वार्थ-साधन के लिये भी भाषा की बड़ी आवश्यकता है। इस समय भारतवर्ष में अनेक भाषाओं का प्रचार होने के कारण प्रान्तीय भाषाओं से सर्वसाधारण का लाभ नहीं हो सकता। भाषाओं को शीघ्र एक कर देना तो परमावश्यक होने पर भी दुस्साध्य-सा प्रतीत होता है, परन्तु इस अवस्था में भी जब यह देखा जाता है कि अधिकांश लोग काश्मीर से कुमारिका अन्तरीप और ब्रह्मदेश से गान्धार पर्यन्त हिन्दी या इसके रूपान्तर का व्यवहार करते हैं, तब आशा है कि सबकी चेष्टा और अभिरुचि होने से कालान्तर में प्रान्तीय भाषाओं के सम्मिलन से एक सार्वजनिक नूतन भाषा का आविर्भाव हो जायगा।" इस गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिये लिपि की एकता को पहली सीढ़ी स्वीकार कर लिया गया है।

अनेक बोलियाँ : एक लिपि

"एक ऐसा वृक्ष भी रोपना चाहिये, जिसमें एक भाषारूपी सर्वप्रिय फल फलें। भारत में भिन्न-भिन्न प्रान्तों की भिन्न-भिन्न बोलियों को एक लिपि में लिखना ही उस आशानुरूप फल का देने का प्रधान अंकुर है, क्योंकि अनेक प्रान्तीय बोलियों को सरल करने की पहली सीढ़ी उन्हें एक सामान्य सर्वसुगम लिपि का वस्त्र पहनाना है, जिस रूप में वह अपने चित्र विचित्र लिपियों का परिच्छेद छोड़कर एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त के निवासियों के सम्मुख आने पर सहज में पढ़ी जा सके और थोड़े ही परिश्रम से समझी जा सके।"

अस्तङ्गत देवनागर जिस उद्देश्य को अपने समक्ष रखकर और जिस संकल्प से अनुप्रेरित होकर चला था, वह महान ही नहीं किन्तु अपने समय से बहुत आगे भी था।

(देवनागर में पहले हिन्दीतर भाषाओं के लेखों के अनुवाद नहीं दिये जाते थे, उनका अनुलेखन (Translitration) ही दिया जाता था। लिपि-

परिवर्तन मात्र से सांस्कृतिक आधार की एकता होने पर भी वे भाषायें सर्वसुगम नहीं बन सकती थीं, अत: पत्रिका के प्रबन्धकों ने मूल भाषा के लेख के साथ उसका हिन्दी में अनुवाद भी देना शुरू किया।)

देवनागर का आविर्भाव

अस्तंगत देवनागर के प्रथम अंक के सम्पादकीय शीर्षक में :—आविर्भाव "एक लिपि-विस्तार-परिषद" का उद्देश्य है—भारत की भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओं को यथासाध्य यत्नों द्वारा देवनागराक्षरों में लिखने और छापने का प्रचार बढ़ाना, जिससे कुछ समय के अनन्तर भारतीय भाषाओं के लिये एक सामान्य लिपि प्रचलित हो जाये। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये देवनागर का आविर्भाव हुआ है।

प्रान्तीय भाषा के व्याकरण-सम्बन्धी लेख तथा कुछ शब्दकोष भी कुछ अंकों में दिये गये थे, जिनसे अन्य भाषाओं के समझने में सरलता हो और इस पत्र के पढ़ने में पाठकों को सुविधा हो। पत्रिका के सातवें अंक में—

"सभी अनभिज्ञ महाशयों को देवनागराक्षर से विशेष परिचय उत्पन्न करा देने के लिये जगत की प्रसिद्ध भाषाओं की कठिन से कठिन २१ प्रकार की भिन्न-भिन्न वर्णमालाओं का एक स्वीकृत स्वरूप भी प्रस्तुत किया गया था। विभिन्न लिपियों के ज्ञान के लिये इसकी उपादेयता निर्विवाद है। देवनागर के संस्थापकों की दूरदर्शी कल्पना को देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

उदीयमान देवनागर का स्वरूप और उद्देश्य :—

आज की बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार देवनागर के उद्देश्य और विषय में यत्किंचित परिवर्तन, परिशोधन स्वाभाविक तथा अनिवार्य भी है। अस्तंगत देवनागर के संस्थापकों का भाषा लिपि-ऐक्य-आन्दोलन शुभ संकल्प-प्रसूत था किन्तु आज उसकी अनिवार्यता अतर्क्य है। विभिन्न भाषाओं के इस देश में विभिन्न प्रान्तवासियों को एक दूसरे के निकट लाने के लिये, जिससे कि वे अपने ही देश में अपरिचितों की तरह न रहें तथा समूचे देश का एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में विकास हो। भारतीय संविधान ने हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' के पद पर सुशोभित किया है। हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि

को प्राधान्य देने का यह अर्थ कदापि नहीं कि अन्य भाषाओं और लिपियों की उपेक्षा की जायगी बल्कि उनके बीच नैकट्य प्रस्थापित करना ही हमारा उद्देश्य है।

आज समय की सबसे बड़ी माँग है—राष्ट्रीय एकता। मित्र महोदय ने लिपि-भाषा-ऐक्य का मन्त्रोच्चार कर इस गन्तव्य की ओर प्रथम चरण रखा था। वह पहली सीढ़ी थी। उस पहली सीढ़ी का सहारा ले हमें आज और आगे कदम बढ़ाना है। हमारा अगला संस्थान है—साहित्य की एकता, जो राष्ट्र की एकता का दृढ़ आधार है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम पहली सीढ़ी की उपेक्षा करेंगे। यह तो साधन मात्र है, साध्य या चरम लक्ष्य तो राष्ट्रीय एकता की सिद्धि है। सभी प्रयत्न इसी साध्य की ओर उन्मुख होने चाहिये। भाषा-लिपि-साहित्य-ऐक्य की मूल भित्तियों पर देवनागर राष्ट्रीय एकता का भव्य प्रासाद निर्मित करने के लिये प्रयत्नशील रहेगा। अस्तंगत देवनागर ने भाषा और साहित्य में से भाषा पर अधिक बल दिया था, परन्तु उदीयमान 'देवनागर' दोनों पर समान बल देगा।

साहित्य आत्मा की विभूति है और आत्मा की अखण्डता से चिर-परिचित यह देश उसकी अखण्डता को सहज ही ग्रहण कर सकेगा—इसमें सन्देह नहीं, अतः हम भाषा की एकता के साथ साहित्य की एकता को भी वांछित महत्व देना चाहते हैं। इससे साहित्य की विशाल आत्मा में पैठ हो जाने पर भाषा-लिपि-विषयक संकीर्णता का स्वतः तिरोभाव हो जायगा। देवनागर विविध साहित्यों की मूलभूत एकता में अदम्य विश्वास रखते हुये व्यापक भारतीय आधार पर समन्वित राष्ट्रीय साहित्य के विकास में यथाशक्ति योगदान करेगा यही हमारी साधना है और साध्य। विषय सामग्री की रूप रेखा सामान्यतः इस प्रकार होगी।[1]

१—देवनागर प्रथम अंक सन् १९५३ के सम्पादकीय लेख पर आधारित।

४ : भारतीय लिपियों का प्रतिमानीकरण[1]

[डॉ० राधाकृष्णन युनिवर्सिटी कमीशन (दिसंबर १९४८-अगस्त ४९) द्वारा भारतीय लिपियों के प्रतिमानीकरण की जो विशद व्याख्या प्रस्तुत की गई थी, उसमें से देवनागरी लिपि सम्बन्धी अनुबन्धों का अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया गया है।]

भारतीय लिपियों के प्रतिमानीकरण की समस्या

इस अनुच्छेद में भारतीय लिपियों के प्रतिमानीकरण की समस्या पर विचार करना हमारा उद्देश्य है। इससे हमारा मन्तव्य एक ऐसी सर्वसाधारण लिपि की सम्भाव्यता देखना है, जो वर्तमान भारत की विभिन्न लिपियों में लिखी जानेवाली अन्यान्य भारतीय भाषाओं के लिये सर्व सामान्य सिद्ध हो सके। स्मरण रहे, कि देवनागरी लिपि का परिष्कार और हमारी यह समस्या दोनों अलग-अलग चीजें हैं। भारतीय गणराज्य की राज्यभाषा हिन्दी के लिये स्वीकृत देवनागरी लिपि के वर्णों में दूर मुद्रण, टंक लेखन और मुद्रण की दृष्टि से तथा अन्य आधुनिक यान्त्रिक साधनों की सहायता की दृष्टि से कुछ संशोधन आवश्यक हो जाते हैं। यह एक बिल्कुल भिन्न विषय है, जिसका विचार इसी अध्याय के दूसरे अनुच्छेद में होगा।

भारतीय लिपियों की बुनियादी एकता पर समय का प्रभाव

भारत की विभिन्न भाषाओं की एकात्मताएँ और समानताएँ जिस प्रकार कई सदियों के प्रभाव से ढँक दी गईं और अस्पष्ट एवम् धुँधली की गईं, उसी प्रकार से भारतीय विभिन्न भाषाओं की लिपियों के अक्षर अनेक शताब्दियों में जैसे-जैसे बदलते गये वैसे-वैसे भारतीय लिपियों की बुनियादी एकता दबती गई और धुँधली होती गई।

१—राधाकृष्णन युनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट, पृष्ठ २२१—२३३,

प्राचीन लिपियाँ

मानव के विकास के ऐतिहासिक विवेचन में एक बार ऐसा पता चला कि किसी भाषा के शब्दों को लिखने का सर्वोत्तम ढंग वह है कि जिसमें विशिष्ट सांकेतिक प्रणाली से युक्त संकेतों द्वारा विशिष्ट ध्वनियाँ विशिष्ट प्रकार के ध्वन्यात्मक मूल्यों का प्रदर्शन करती हैं। इसी शक्तिशाली और महत्वपूर्ण आविष्कार के कारण लिखने की कला, जिसका आरम्भ प्रथम भाव लिपि या चित्र लिपि के द्वारा हुआ था, अब नई ध्वनि लिपि में परिणत हुई। फिनीशियन लिपि में सर्वप्रथम वर्णात्मक अक्षरों का प्रयोग हुआ। ऐसा माना जाता है कि संसार भर की विभिन्न लिपियों का विकास तथा उनका उद्गम फिनीशियन लिपि से ही हुआ। चाहे जो कुछ भी हुआ हो, इतना तो सुनिश्चित है कि प्राचीन भारत में ब्राह्मी और खरोष्ठी नाम की दो लिपियाँ प्रचलित थीं। प्राय: खरोष्ठी लिपि का प्रचलन भारत के उत्तर पश्चिमी प्रदेशों तक ही सीमित थी। एक और तीसरी लिपि का पता चलता है जो दक्षिण भारत में स्वतन्त्र रूप से आरम्भ हुई और उसका विकास हुआ। ऐसा कुछ विद्वानों का मत है तथा जिसका नाम वट्टिलुट्टु (Vatteluttu) है।

लिपि परिवर्तन के कारण और उनका ऐतिहासिक क्रम

भारत की प्राय: सभी लिपियाँ सीधे ब्राह्मी से ही निकली हैं। सिन्धु नदी की उपत्यका में पाई गई लिपि का अब तक सन्तोषपूर्ण उद्वाचन नहीं हो सका है, इसलिये यह कहना कि वह लिपि फिनीशियन लिपि की समकालीन थी या पूर्व कालीन ? इसका निर्णय करना कठिन है और संसार में प्रसृत सभी लिपियाँ फिनीशियन लिपि से निकली हैं—ऐसा मानना भी अभी तक निश्चित नहीं हो सका है।

इसके बारे में चाहे जो कुछ भी निर्णय क्यों न हो, फिर भी हमारी इस धारणा में कोई अन्तर नहीं पड़ता कि भारत की सभी प्रादेशिक लिपियों का मूल स्रोत एक ही है। कोई भी इन लिपियों के पारस्परिक सम्बन्धों का पता लगा सकता है कि इन लिपियों के प्रचलित अन्यान्य स्वरूपों का विकास आज के रूप में कैसे हुआ। तमिल को छोड़ भारत की प्राय: सभी लिपियों की वर्णमाला

एक सी है । वर्णमाला याने स्वर और व्यञ्जन वे ही हैं, भले ही अक्षरों के लिखने की शैली व ढंग अपना-अपना रहा हो । वर्णमाला का क्रम प्रायः सबमें समान ही है । तमिल में भी वर्णों का क्रम वही है, यद्यपि उनमें महाप्राण ध्वनियाँ नहीं हैं । भारत की कुछ भाषाओं में अपनी-अपनी कुछ विशिष्ट ध्वनियों के लिये विभिन्न ध्वनि संकेतों का उपयोग किया जाता है, यद्यपि ऐसी ध्वनि संकेतों की संख्या बहुत कम है । भिन्न-भिन्न भाषाओं की वर्णमाला के अक्षरों में या ध्वनि-चिन्हों में कुछ पारस्परिक सम्बन्ध दिखाई देता है और प्रायः उनमें से बहुतों का परिवर्तन मूल स्रोत पर ही आधारित है । फलतः कुछ लिपियों के अक्षर वृत्ताकार हैं, तो कुछ लिपियों के अक्षरों की शैली सुलेखात्मक है । कुछ लिपियों के अक्षरों पर शिरोरेखा पाई जाती है तो कुछ लिपियों के अक्षरों पर से वह हटा दी गई है । शीघ्र लेखन में सुविधा-निर्माण करने की दृष्टि से कुछ लिपियों में वर्णमाला के अक्षरों में कुछ परिवर्तन किये गये । चर्म-पत्र, भूर्जपत्र और ताड़पत्र जैसे साधनों पर लिखने की अनिवार्यता के कारण ये परिवर्तन किये गये होंगे । कुछ परिवर्तन व्यापार और वाणिज्य व्यवसाय के सम्बन्धों के कारण से भी हुए होंगे । इसी तरह से अकस्मात् कुछ परिवर्तन राजनैतिक और ऐतिहासिक कारणों से भी संभाव्य हुए होंगे तो कुछ दैववशात् या किसी सनक के कारण भी हुए होंगे । ये सभी परिवर्तन समय के दौरान में भिन्न-भिन्न लिपियों में इस प्रकार परिवर्तित हुये कि अब प्रायः उनकी समानता ढूँढना भी बड़ा जटिल कार्य है । आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ मुद्रण-कला का आविष्कार हुआ । यान्त्रिक मुद्रण कला ने पूर्व मुद्रित वर्णमाला के अक्षरों का स्वरूप और ढाँचा बिल्कुल बदलकर उनका ठोस रूप निर्धारित कर दिया है । फलतः आज हमारे सामने बीसों लिपियाँ जो देश भर में प्रचलित हैं तथा इनमें से करीब-करीब १२ लिपियाँ तो भारतीय संविधान की अष्टम अनुसूची में उल्लिखित हैं और जो प्रादेशिक भाषाओं की लिपियाँ हैं और महत्वपूर्ण भी हैं ।

भारत की सर्वसाधारण लिपि के लिये सर्वश्रेष्ठ अधिकारिणी देवनागरी ही !

इन लिपियों में देवनागरी लिपि अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है ।

देवनागरी वर्णमाला सदियों से हिन्दी और संस्कृत भाषाओं के लिये प्रयुक्त होती रही है और अब वह भारत संघ की राजभाषा हिन्दी के लिये भी स्वीकृत हो गई है। हिन्दी के अतिरिक्त मराठी भाषा के लिये देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है। गुजराती लिपि भी केवल शिरोरेखा को छोड़कर अन्य सब बातों में देवनागरी लिपि से मिलती जुलती है। गुरुमुखी और बँगला लिपियाँ भी देवनागरी से बहुत अंशों में साम्य रखती हैं। इसके अलावा देवनागरी संस्कृत भाषा की लिपि है। सुदूर दक्षिण के अधिकांश प्रदेशों में संस्कृत के अध्ययन तथा लेखन के लिये स्थानीय लिपियों के स्थान पर देवनागरी लिपि का ही प्रयोग किया जाता है। भारत की जन संख्या में विभिन्न प्रादेशिक भाषा भाषियों की तुलना में हिन्दी बोलनेवालों की प्रचुरता है। उनकी तुलना में भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त विभिन्न लिपियों की अपेक्षा देवनागरी लिपि अधिक प्रयुक्त होती है। अतः यदि भारत की सभी भाषाओं को एक ही सर्व साधारण लिपि में लिखा जाय तो निस्सन्देह संख्या की दृष्टि से भारतीय लिपियों में देवनागरी लिपि ही इसकी एकमात्र सर्वश्रेष्ठ अधिकारिणी है।

देशव्यापी एक सामान्य लिपि की आवश्यकता पर न्यायमूर्ति श्रीकृष्णस्वामी अय्यर का अभिमत

बहुत से पुराने भारतीय नेताओं और विचारकों ने भारतीय भाषाओं के लिये एक लिपि की आवश्यकता अनुभव की थी तथा उसका प्रबल समर्थन किया था। भारत के स्वाधीन होने पर समूचे देश के लिये एक सर्वसामान्य भाषिक माध्यम के तौर पर एक लिपि के तत्व को पहचाना था तथा भारत की विभिन्न भाषाओं में पाई जानेवाली समानताओं और आत्मीयता को देखा था। उदाहरण के लिये वर्तमान शताब्दी में समस्त देश में एक ही लिपि के प्रयोग की महत्ता का सिद्धान्त न्यायमूर्ति शारदाचरण मित्र द्वारा 'एक लिपि विस्तार परिषद' में प्रतिपादित किया गया था। न्यायमूर्ति शारदाचरण मित्र द्वारा इलाहाबाद में आयोजित सामान्य लिपि परिषद के सन् १९१० के अधिवेशन में न्यायमूर्ति श्री व्ही० ही० कृष्णस्वामी अय्यर ने, जो अपने समय के अग्रगण्य विधिज्ञ, प्रतिभा सम्पन्न संस्कृतज्ञ और देश विख्यात साहित्यकार थे, अपने

अध्यक्षीय भाषण में देशव्यापी सामान्य भाषा और तत्सम्बन्धी आवश्यकता अर्थात् सामान्य लिपि की आवश्यकता पर जोर दिया था। हम यहाँ पर अपने मत प्रतिपादनार्थ उनके भाषण का कुछ अंश उद्धृत कर रहे हैं—

"जिस देश में बीस लिपियाँ प्रचलित हों वहाँ एक लिपि और जहाँ १४७ भाषायें बोली जाती हों वहाँ एक भाषा का विचार प्रथम दृष्टि में तो असम्भव स्वप्न प्रतीत होता है किन्तु कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जिन्होंने उक्त समस्या पर गहन चिन्तन और मनन कर यह निष्कर्ष निकाला है कि जो आज स्वप्न और केवल आशा मात्र है, वह कल नहीं तो परसों एक अनुभूत सत्य होगा। इसके अतिरिक्त हम सबको यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि परमात्मा के शब्द-कोष में 'असम्भव' नाम का कोई शब्द नहीं है। आज तो २ अरब १९ करोड़ १० लाख लोग भारतीय आर्य भाषायें बोलते हैं। ५ करोड़ ६० लाख लोग द्राविड़ परिवार की भाषाएँ जिनकी उत्पत्ति आर्येतर भाषा से मानी गई है, बोलते हैं और अपनी-अपनी लिपि में लिखते हैं। उनके लिये एक सामान्य भाषा द्वारा अभिव्यक्तीकरण भाषाओं की विविधता के विरोध में एक धर्म संकट नहीं सिद्ध होगा। मैं यह भी साहसपूर्ण सोचता हूँ कि उनके द्वारा प्रयुक्त लिपियों में एक ऐसी भी सामान्य लिपि हो सकती है जो सम्पूर्ण देशभर में समझी जा सके। एक क्षण के लिये मैं आपसे यह पूछता हूँ कि भिन्न लिपियों द्वारा एक समूह के लोगों को दूसरे समूह के लोगों से अलग कर हम अपना कितना अहित कर रहे हैं? यदि भाषा भिन्न हो और लिपि वही हो तो यह समझना सुगम हो जाता है कि अनेक भारतीय भाषाओं की उत्पत्ति का मूल उत्स आर्य भाषा से सम्बद्ध है, क्योंकि किसी विशिष्ट शब्द अथवा भावाभि-व्यक्ति का स्वरूप सामान्य लिपि द्वारा सहज, सुलभ और बोधगम्य हो जाता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि लिपियों की विभिन्नता के अभाव में लोगों को एक ऐसी भाषा समझना भी सुगम हो जाता है, जिसे वह अपने घर में नहीं बोलता है।

मैं आपसे यह पूछता हूँ कि क्या भारत की कुछ उन प्रादेशिक भाषाओं का, जो प्रतिभा-सम्पन्न लेखकों द्वारा परिपक्व की गई हैं, मूलतः उद्गम

प्राचीन भारतीय साहित्य से नहीं हैं ? भाषाओं की सम्पत्ति का एक दूसरे से आदान-प्रदान, यदि भाषाओं का माध्यम एक सामान्य लिपि हो, तो क्या वह अधिक सुगम नहीं होगा ? मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि जहाँ तक लिपि का सवाल है, उसका किसी भी जाति और धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है । मैं इस बात में भी विश्वास नहीं करता कि लिपि का किसी भी देश के लोगों के धर्म से कोई विशेष सम्बन्ध है ।"

विश्व की सर्वश्रेष्ठ शास्त्रीय लिपि देवनागरी :

लोकमान्य तिलक ने सन् १९०५ में बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा में दिये गये भाषण में भारत की सभी भाषाओं के लिए एक सर्व सामान्य लिपि के तौर पर देवनागरी लिपि का ही जोरों से समर्थन किया था । उसमें से महत्व-पूर्ण अंश यहाँ पर उद्धृत किये गए हैं :—

भारत भर में प्रचलित लिपियों का वैभिन्य दूर करने की दृष्टि से प्रथम यह सुझाया गया कि हमें रोमन वर्णमाला को अपनाना चाहिए । इससे यूरोप तथा एशिया की वर्णमाला एक हो जायगी, ऐसा प्रतिपादित किया गया । लोकमान्य ने इस दलील का विरोध करते हुये कहा कि मुझे यह सुझाव एकदम निरर्थक प्रतीत होता है । रोमन अक्षर और रोमन वर्णमाला हमारी वर्णमाला की प्रयुक्त ध्वनियों के लिए अनुपयुक्त तथा नितान्त दोषपूर्ण है । अँग्रेजी वैय्याकरणी भी इस वर्णमाला को दोषपूर्ण बतलाते हैं । रोमन वर्णमाला के एक अक्षर की तीन-तीन या चार-चार ध्वनियाँ कहीं-कहीं हैं तो कहीं-कहीं तीन-चार अक्षरों के लिये एक ही ध्वनि है । यदि हम रोमन अक्षरों में हमारी भाषा में प्रयुक्त-ध्वनियों के लिये उपयुक्त ध्वनि वाले अक्षर खोजने लगें तो इन आपत्तियों में एक और आपत्ति की मात्रा बढ़ जायगी । इन अक्षरों पर हमारी ध्वनियों के उपयुक्त उच्चारण बतलाने वाले सांकेतिक चिन्ह (Diacritical Marks) लगाये बिना पढ़ना असम्भव है । अतः उनका भद्दापन और अनुपयुक्तता सबको निश्चितता से प्रतीत हो जाता है ।

यदि हम सबको सर्वसाधारण अक्षरों की आवश्यकता है तो वह वर्णमाला अत्यंत परिपूर्ण होनी चाहिए, जो ऐसे अक्षरों को प्रदान कर सके जो अपने आप में

सर्वाङ्गपूर्ण हों। यूरोपीय संस्कृतज्ञों ने यह बात मुक्त कण्ठ से स्वीकार की है कि देवनागरी लिपि की वर्णमाला अत्यधिक पूर्ण है, तथा यूरोप की कोई भी अन्य लिपि उसकी समानता नहीं कर सकती। इसलिये भारत की सभी आर्य-परिवार की प्रादेशिक भाषाओं के लिये एक सर्वसाधारण लिपि के तौर पर देवनागरी को छोड़कर अन्य अक्षरों को ढूँढ़ना हमारे लिये आत्म-घातक सिद्ध होगा। पाणिनि के द्वारा लिखे गये ग्रन्थों में इस लिपि की वर्णमाला, उसका विभाजन तथा ध्वनियाँ और उनका उच्चारण जितना शास्त्रीय एवं ढंग से किया गया है, उतना दुनिया की किसी भी भाषा में नहीं है। सब प्रकार की ध्वनियों के लिये उपयुक्त देवनागरी के अक्षरों के अतिरिक्त और कोई लिपि हो ही नहीं सकती। हमारे द्वारा उपयुक्त सभी ध्वनियाँ इस लिपि में लिखी जा सकती हैं। पूर्व की छपी हुई धार्मिक पुस्तकों के अन्त में दिये गये अक्षरों को देख कर यह तुलना की जा सकती है, तब मेरी बात भली-भाँति समझ में आ जायगी। हमारे यहाँ एक ध्वनि युक्त एक ही अक्षर है तथा एक अक्षर की एक ही ध्वनि है इसलिये हम कौन सी लिपि के अक्षरों को अपनावें, इस विषय में दो मत नहीं हो सकते। देवनागरी लिपि ही इसके योग्य है। इसके भिन्न-भिन्न अक्षरों के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न प्रकार से लिखने की समस्या मात्र अब बच जाती है। मैंने पहले ही कहा है—यह समस्या केवल प्राचीन ढंग से लिख कर नहीं हल होगी।"

देवनागरी लिपि की तरह ध्वनि-विज्ञान की पूर्णता विश्व की किसी भी लिपि में नहीं है।

महात्मा गान्धी जी एक लिपि का समर्थन क्यों करते थे? यह सर्व विदित ही है। सन् १९४७ के पूर्व जो स्थिति रही है, जबकि भारत का विभाजन हुआ और पाकिस्तान तथा भारत—दो राष्ट्र अलग-अलग बन गये उस समय राष्ट्रपिता बापू हिन्दी-हिन्दुस्तानी के प्रचार का आग्रह करते थे। उस समय लिपि के नाते देवनागरी और उर्दू का वे समर्थन करते थे किन्तु देवनागरी लिपि भारत की सब भाषाओं के लिये एक लिपि हो सकती है—यह घोषणा भी की थी। मद्रास के भारतीय साहित्य परिषद् के अध्यक्ष के नाते महात्मा

जी ने इस प्रकार विवेचन किया :—

"हर एक का यह कर्तव्य है कि वह अपनी भाषा भली-भाँति जाने तथा वह भारत की अन्य भाषाओं का विस्तृत-साहित्य हिन्दी के द्वारा आत्मसात् करे। इस परिषद् का यह प्रमुख उद्देश्य है कि वह इस बात पर अधिक जोर दे और उसे बढ़ावा दे तथा हमारे लोगों में उसे प्रसारित करे कि वे अपनी प्रान्तीय भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा भी पढ़ें। जैसे—गुजराती तमिल पढ़ें और बंगाली गुजराती पढ़ें। इसी तरह सब अन्यान्य भाषाओं को पढ़ें। मैं अपने अनुभव से यह कहता हूँ कि किसी भारतीय को एक दूसरी भाषा सीखना कठिन नहीं है, किन्तु इसके लिये सर्वसाधारण माध्यम के तौर पर देवनागरी लिपि अत्यन्त आवश्यक है। इसे तमिलनाड में प्राप्त करना कठिन नहीं है। सीधी-सी बात यह है कि ९० प्रतिशत लोग निरक्षर हैं। उनके लिये हमें बिल्कुल नये सिरे से आरम्भ करना है। ऐसी परिस्थिति में हम उन्हें साक्षर करते समय देवनागरी जैसी साधारण लिपि के माध्यम से ही क्यों न आरम्भ करें ? यूरोप में एक लिपि के माध्यम से यह प्रयोग किया गया और वह पूर्ण सफल हुआ कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि यूरोप की तरह रोमन लिपि को अपनाना चाहिये। बहुत चर्चा और वितण्डावाद के पश्चात् सर्वसम्मति से यह एक मत से तय हुआ कि यदि कोई सर्वसाधारण लिपि हो सकती है तो वह देवनागरी ही है। उर्दू उसके लिये एक प्रतिस्पर्धी लिपि बतलाई गई है किन्तु मेरी धारणा यह है कि देवनागरी की तरह ध्वनि-विज्ञान की पूर्णता न तो उर्दू में है, न रोमन में।

इतना स्मरण रहे कि मैं आपकी भाषा के विरुद्ध कुछ नही कह रहा हूँ। तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ की अपनी लिपियाँ हैं और रहेंगी किन्तु निरक्षरों को देवनागरी लिपि के जरिये से ये भाषायें क्यों न सिखाई जायँ ? राष्ट्र की एकता की दृष्टि से हमारी यह इच्छा है कि देवनागरी लिपि को सर्वसाधारण रूप में अपनाना एक आवश्यक और अनिवार्य कार्य है। यहाँ पर यह समस्या हमारी प्रान्तीयता और संकीर्णता को छोड़कर चलने की है, अतः इसमें कठिनाइयाँ बिल्कुल नहीं हैं। मैं उर्दू और तमिल लिपि को नहीं चाहता, ऐसी

बात नहीं है। मैं दोनों जानता हूँ किन्तु राष्ट्र की सेवा मेरे समूचे जीवन का एक अंग रही है तथा जिसके बिना मेरा जीवन ही पंगु बन जायगा। उसने मुझे सिखाया है कि हमें अपने लोगों को अनावश्यक भारग्रस्त करना उचित नहीं है अनेक लिपियाँ जानने का बोझ व आग्रह अनावश्यक है तथा आसानी से छोड़ा जा सकता है। मैं सभी प्रान्तों के विद्वान लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस बात पर अपने भेदों को छोड़ने का निश्चय करें तथा इस परम महत्वपूर्ण विषय में एकमत होकर उसे अपनावें, तभी भारतीय साहित्य परिषद् वास्तविक रूप में यशस्वी होगी।"

भावना और विज्ञान रोमन लिपि के खिलाफ है

इसके बाद ११ फरवरी १९३९ में महात्मा जी ने 'हरिजन' में लिखा :—
"भावना और विज्ञान रोमन लिपि के खिलाफ है। उसका एकमात्र गुण यह है कि मुद्रण और टंक लेखन के लिये वह सरल तथा सुविधाजनक है, किन्तु उसके सीखने में जो खिचाव लाखों लोगों को अनुभव करना पड़ेगा, वह उसकी तुलना में कुछ भी नहीं है। जिन लाखों लोगों को अपना-अपना साहित्य अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषा की लिपि में सीखना है, उनको इसका कोई उपयोग नहीं है। देवनागरी सीखना लाखों हिन्दू तथा मुस्लिम भाइयों के लिये बहुत आसान है।··· ·······क्योंकि प्रान्तीय लिपियाँ बहुत अंशों में देवनागरी से ही निकली हैं। लाखों हिन्दू तथा मुस्लिम भाई ऐसे भी हैं, जिनको रोमन लिपि सीखना अनावश्यक है। जब उन्हें अंग्रेजी सीखनी होगी, तभी वे रोमन लिपि भी सीख लें। उसी तरह वे हिन्दू, जिन्हें अपने धर्मग्रन्थ उनके मूल रूप में पढ़ना है; अनिवार्यतः तथा स्वेच्छा से देवनागरी सीखते हैं। देवनागरी को सर्वव्यापी बनाने का यह अच्छा ढाँचा है। रोमन लिपि का ऊपर से लादा गया समर्थन कभी लोकप्रिय नहीं हो सकता। जब सच्ची लोक जागृति होगी और बहुत ही शीघ्र हमारे ज्ञात कारणों के बनिस्बत वह आ रही है, तब यह आरोपित रोमन लिपि का समर्थन समूल नष्ट हो जायगा।"

× × ×

रोमन लिपि से आकृष्ट होने पर भी स्व० पं० जवाहरलाल जी नेहरू ने अपने आत्मचरित्र में लिखा है कि :—

"रोमन लिपि को तुर्कस्थान और मध्य एशिया में जो महान यश मिला, तथा उसके पुष्ट्यर्थ जो दलीलें पेश की गईं, वे बड़ी जोरदार थीं; किन्तु फिर भी मैं उस पर विश्वास न कर सका। यदि मुझे विश्वास भी हो जाता तो मैं यह भली भाँति जानता हूँ कि आजकल के दिनों में भारतवर्ष में यह दलील कदापि नहीं चल सकती। रोमन लिपि का विरोध सभी समूहों द्वारा, हिन्दू-मुस्लिम, नये-पुराने राष्ट्रीय तथा धार्मिक आदि समूहों द्वारा बड़े जोरों से होगा। मैं यह अनुभव करता हूँ कि यह विरोध केवल भावना पर आधारित नहीं होगा।............

आज यह प्रश्न भारत में केवल विश्वविद्यालयीन ही नहीं है अपितु मुझे लिपि सुधार में एक आवश्यक नये कदम की दृष्टि से यह जान पड़ता है कि संस्कृति की बेटियों के नाते हिन्दी, बँगला, मराठी और गुजराती के लिये एक सर्वसाधारण लिपि को अपनाना है। इन भाषाओं की लिपियों का मूल स्रोत एक ही है तथा उनमें विविधता भी अधिक नहीं है, अतः इसके लिये एक सर्व साधारण लिपि[१] को अपनाना, सहज और सरल है। ऐसा करने से ये बड़ी चार भाषा भगिनियाँ एक दूसरे के अधिक निकट आ जायेंगी।"

१—यह सर्वसाधारण लिपि देवनागरी ही हो सकती है। —सम्पादक

५ : राधाकृष्णन युनिवर्सिटी कमीशन के अनुबन्ध क्रमांक ५३ व ५४

[राधाकृष्णन् युनिवर्सिटी कमीशन के अनुबन्ध क्रमांक ५३ और ५४ में देवनागरी लिपि की उपयुक्तता पर कमीशन द्वारा अधोलिखित मन्तव्य प्रकाशित हुआ था।]

युनिवर्सिटी कमीशन का अनुबन्ध क्रमांक ५३

देवनागरी लिपि—

लिपि का प्रश्न भाषा-विषयक विचार-नीति पर ही अवलम्बित है, तथा उसी से सम्बद्ध है, जिसमें सुविधा का विचार प्रमुख है, तथा संघ भाषा को व्यवहृत करने में योग्यता तथा मितव्ययता स्पष्ट रूप में उद्घोषित करती है कि राज्य में अनुशासनात्मक व्यवहार के लिए एक लिपि का रहना उपयुक्त होगा, अर्थात् एक ही लिपि का प्रयोग सर्वोत्तम रहेगा। देवनागरी लिपि का उपयोग भारत के बहुत से लोगों के द्वारा होता रहा है, अत: उसी का चुनाव योग्य माना जावेगा। बहुत से प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्रियों एवं नेताओं का यह अभिमत है कि देवनागरी में बहुत से दोष विद्यमान हैं। देवनागरी लिपि के अक्षरों का स्वरूप बहुत जटिल होने से लिखने में सुलभता व सौकर्य नहीं है। मुद्रण में अनेक प्रकार के टाइपों को तैयार करना पड़ता है, जिससे उनके टाइप बनाने में बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती है और उन्हें ठीक प्रकार से यन्त्र में बैठाने में भी अड़चनें आ उपस्थित होती हैं। लिनो टाइप में यह विशेषता से अनुभव की जाती है। टंकन में भी सरलता नहीं है अत: उनका मत है कि विश्व में प्रचलित रोमन लिपि का ही प्रयोग किया जाय। मई १९४८ में देहली में भारतीय विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों की एक परिषद हुई थी, उसमें बहुतायत से 'रोमन लिपि का ही संघ भाषा के लिए प्रयोग किया जाय', ऐसा कहा गया था, या परिषद का बहुमत इस मत को मानने वाला था। उसमें यह भी बतलाया गया था कि द्वितीय विश्वयुद्ध में भारत के

सभी प्रान्तों से सैनिक भरती किए गए थे और उन्हें रोमन लिपि के द्वारा ही सफलता पूर्वक आदेश दिए गए थे, तथा अब भी प्रचलित है।

युनिवर्सिटी कमीशन का अनुबन्ध क्रमांक ५४

अन्य लिपियाँ—

विश्व-मान्य लिपि को अपनाकर उससे मिलनेवाले लाभों पर विचार करने पर भी हम इन तर्कों को आसानी से दूर नहीं कर सकते, फिर भी भारत की सम्पूर्ण गतिविधि को तथा देश की समस्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हमारी यह धारणा है कि संघभाषा नागरी लिपि में लिखी जाय। इस लिपि को सुधारने के प्रयत्न हो रहे हैं, उनका भी हमें ध्यान है और ये प्रयत्न तब तक जारी रहेंगे, जब तक नागरी के प्रमुख दोष दूर न हो जायँ। अत: उसके स्थान पर सम्पूर्णत: एक दूसरी लिपि लाकर रख दी जाय—यह उचित नहीं होगा। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि कोई राज्य अपने संविधान-विषयक नियमों को या कानून को किसी प्रचलित दूसरी लिपि में जनता के सामने जाहिर नहीं कर सकते। नागरी लिपि प्रमुखता से जहाँ प्रयुक्त होगी, वहाँ सरकारी कानूनों, घोषणापत्रों, हुक्मनामों, और प्रस्तावों की विज्ञप्ति दूसरी लिपियों में भी की जा सकती है। उर्दू लिपि का प्रचलन देश भर में जारी है, जो विशेषत: हिन्दी (हिन्दुस्तानी व उर्दू) के लिए किया जाता है। लाखों लोग इस लिपि को जानते हैं। गौण रूप से इस लिपि का प्रयोग भी लाभदायक होगा। देश के कोने में पूर्ण रूप से सरकारी घोषणा या विज्ञप्ति पहुँचे, इसलिए इस देश की अन्य लिपियों का भी व्यवहार करना उपादेय होगा।

भारतीय विश्वविद्यालय के उपकुलपतियों की परिषद में संघभाषा के लिए बहुतायत से रोमन लिपियों के प्रयोग का समर्थक जो बहुमत था, उसके ही सन्दर्भ में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का देवनागरी लिपि विषयक अभिमत विशेष दृष्टव्य है।

देखिये—देवनागरी लिपि की उपयुक्तता पर राष्ट्रपिता गांधी जी के विचार।

—सम्पादक

६ : राष्ट्रलिपि देवनागरी के विस्तार का क्रमिक विवेचन

[राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की हिन्दी सेवाओं से सारा देश परिचित है। समिति के तत्वावधान में सुयोग सम्पादक श्री मोहनलाल जी भट्ट और श्री हृषीकेश जी शर्मा द्वारा भारतीय साहित्य और संस्कृति की मासिक पत्रिका—"राष्ट्रभारती"—का प्रकाशन होता है। श्रीयुत हृषीकेश जी शर्मा ने समय-समय पर देवनागरी लिपि के बारे में जो सम्पादकीय अभिमत दिये थे, उनमें से कतिपय अंश यहाँ दिये गये हैं।]

एक लिपि नागरी का विस्तार :

१९०५ की बात है। कलकत्ता हाईकोर्ट के न्यायाधीश जस्टिस स्व० शारदाचरण मित्र महोदय ने बड़ी सुन्दर युक्तियों और अपने निष्पक्ष अनुभव से देश के बड़े-बड़े विद्वानों के समक्ष स्पष्ट कर दिया था कि अब सारे भारत में एक लिपि के व्यवहार का, प्रचार का, समय आ गया है, और वह लिपि दूसरी कोई नहीं, देवनागरी ही है। स्वर्गीय जस्टिस शारदाचरण बाबू ने तो यहाँ तक हिम्मत कर ली थी कि भारतवर्ष ही नहीं ; लंका, ब्रह्मदेश चीन, जापान, जावा, सुमात्रा आदि देशों में भी एक नागरी लिपि का प्रचार होना चाहिए। इस संकल्प की पूर्ति के लिये शारदाचरण जी ने "देवनागर" नाम का एक मासिक पत्र भी निकाला था, जिसमें वे भारत की मुख्य-मुख्य भाषाओं के अच्छे अच्छे चुने हुए अवतरणों को नागरी अक्षरों में छापते थे और नीचे संक्षेप में अर्थ भी दे दिया करते थे। न्यायमूर्ति शारदाचरण ने बहस और विवाद छोड़कर यह राष्ट्रहित का कार्य बेधड़क शुरू कर दिया था। ४८ साल पहले की ये बातें हैं। उन्होंने तब प्रमाणित कर दिया था कि नागरी लिपि ही सबसे सरल, सुन्दर, शुद्ध और देश में अधिक प्रचलित। अपने उद्देश्य की सिद्धि में मित्र

बाबू को काफी सहायता मिली थी। उनके स्वर्गवास से वह काम आगे न बढ़ सका। दुर्भाग्य से 'देवनागर' पत्र ही बन्द हो गया। संस्कृत भाषा भारतीय संस्कृति की रीढ़ है। काश्मीर, पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बंगाल, आसाम, सिन्ध, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यभारत, मध्यप्रदेश और कन्याकुमारी पर्यन्त समूचा भारत संस्कृत भाषा से अनुप्राणित है। कलकत्ते के प्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक 'माडर्न रिव्यू' और बंगला 'प्रवासी' के यशस्वी सम्पादक स्वर्गीय बाबू रामानन्द चटर्जी ने भी एक बार "चतुर्भाषी" नाम का एक पत्र निकाला था, जिसमें वे हिन्दी, गुजराती, मराठी, बँगला, इन चारों भाषाओं के लेख देवनागरी में प्रकाशित करते थे, किन्तु एक राष्ट्रीय लिपि के प्रसार के वे प्रयत्न न्यायाधीश शारदाचरण बाबू के मरणोत्तर उन्हीं के साथ लुप्त हो गये।

राष्ट्रीय माँग—

आज हिन्दी राजभाषा-राष्ट्रभाषा जगजाहिर हो चुकी है। संविधान-स्वीकृत सभी प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य-सौरभ हिन्दी को मिले और वे भी हिन्दी के अति निकट आयें, हिन्दी उनके निकट सम्पर्क में आये, इसके लिये तो देवनागरी लिपि ही समर्थ, अत्युपयोगी और व्यावहारिक है। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हिन्दी का महत्व बढ़ रहा है—नागरी का प्रचार और प्रसार भी बढ़ रहा है। भारत के प्रान्तों की भाषाएँ भले ही जुदी-जुदी हों; किन्तु अगर लिपि एक नागरी ही हो तो हमारे अन्तर-प्रान्तीय व्यवहार में बड़ी मजबूत एकता आ जायगी। सारे यूरोप में रोमन लिपि का प्रचार है। उसी तरह सारे अन्तर्भारतीय व्यवहार में हम देवनागरी को लावें और भारत की संविधान-सम्मत भाषायें देवनागरी में चलें—यही राष्ट्र की माँग है। अब समय आ गया है कि सब बहस और विवादों से दूर रहकर, पूर्व और पश्चिम भारत की तथा उत्तर और दक्षिण भारत की भाषाओं को हम एक राष्ट्रलिपि नागरी के ऐक्य सूत्र में बाँधने का कार्य आरम्भ कर दें।[1]

१. राष्ट्रभारती : वर्ष ३, अंक २, फरवरी १९५३, पृष्ठ १५४-१५५।

लिपि का प्रश्न—

लिपि का प्रश्न भी बड़े महत्व का है। माना कि सबकी भाषायें—प्रान्तीय भाषायें—यहाँ अलग-अलग हैं—रहें, फूलें, फलें। परस्पर दो-तीन प्रान्तीय भाषायें सीखें, मेल-जोल बढ़ावें। भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक एकता को मजबूत बनावें। परन्तु अपने अक्षर अक्षुण्ण रखें।

यूरोपीय भाषायें और रोमन लिपि

समूचे यूरोप में कोई १६-१७ देश हैं, अलग-अलग हैं; किन्तु उनकी लिपि प्रायः एक है। अँग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, डच, इटालियन, रशियन भाषायें उसी एक लिपि में लिखी जाती हैं—रोमन लिपि में।

भारतीय भाषाएं और देवनागरी

यदि भारत में भी बँगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, पंजाबी, सिन्धी आदि की पुस्तकें राष्ट्रलिपि देवनागरी में भी प्रकाशित की जावें, तो ठीक होगा। देवनागरी अक्षर भारतवर्ष में सबसे श्रेष्ठ, स्वच्छ, सुवाच्य और उत्तम अक्षर हैं। इस देश की हमारी प्राचीन सांस्कृतिक भाषा संस्कृत प्रायः सर्वत्र इन्हीं अक्षरों में लिखी जाती है। समूचा महाराष्ट्र तो अपनी मराठी में देवनागरी लिपि को ही अपनाकर राष्ट्र की एकता को पुष्ट कर रहा है। मुसलमान नागरी को अपनायें, गुजराती और गुरुमुखी वाले नागरी को अमल में लायें, बंकिम, शरद और रवीन्द्र की बँगला नागरी में अवतीर्ण हो। दक्षिण की भाषायें भी संत नन्दनार और तिरुवल्लुवर और बल्लत्तोल की भाषायें नागरी अक्षरों में अपनी छटा दिखावें। इससे एक दूसरे के साहित्य को पढ़ने-समझने में बड़ी सुविधा होगी, हमारी राष्ट्रीय एकता बढ़ेगी और साहित्य तथा संस्कृति का भी सर्वतोन्मुखी विकास होगा।[२]

वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा नागरी में सुधार :

नागरी लिपि में आवश्यक सुधार और परिवर्तन कर लेने से नागरी लिपि, वर्णमाला तथा राष्ट्रभाषा सभी पूर्ण व श्रेष्ठ हो जायेंगी। भारतीय विद्वानों

---

२. राष्ट्रभारती : वर्ष ३, अंक १, जनवरी १९५३, पृष्ठ ७६।

की दृष्टि लिपि-सम्बन्धी त्रुटियों पर गई है। नागरी लिपि का वैज्ञानिक प्रक्रिया के अनुसार सुधार आवश्यक एवं अनिवार्य है, जिसमें दो मत हो नहीं सकते।

इन्दौर अधिवेशन में नागरी-सुधार

आज से १५-१६ वर्षों के पहले, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में, हिन्दी-हितकारी पूज्य गान्धीजी, जिसके अध्यक्ष थे, नागरी-सुधार सम्बन्धी एक मन्तव्य स्वीकृत हुआ था और उसके लिए एक उप-समिति भी बनी थी। उसमें सम्मेलन के प्राण टन्डन जी, सम्मेलन के उस समय के प्रधान-मंत्री डॉ० बाबूराम सक्सेना, महामहोपाध्याय द. वा. पोतदार, श्री. मश्रुवाला, श्री. कन्हैयालाल मा. मुन्शी आदि सप्त महारथी विद्वान् साहित्यकार सदस्य थे और श्री. काकासाहब कालेलकर संयोजक थे। बाकायदा पर्याप्त चर्चा, परामर्श, और अधिवेशन आदि के बाद नागरी लिपि का जो सुधरा हुआ रूप निश्चित हुआ, वर्धा-समिति उसे १९३६ से अमल में ला रही है। यह है उसका अमली रूप:—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, रि (ऋ), ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। क, ख, काका साहब ने 'ख' का 'ख' यह रूप रखा है (इसलिए कि यह 'ख' कभी-कभी धोखेबाज है, 'रव' का भ्रम पैदा कर देता है। रवैया कोई खैया पढ़ ले सकता है) ग, छ, च, छ, ज, झ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, ल, व, श, ष, स, ह। 'क्ष' का रूप "क्ष" बनाया गया, जो उच्चारण की दृष्टि से वैज्ञानिक हैं।

संशोधित लिपि का व्यापक प्रयोग

जिस लिपि के व्यवहार का आग्रह होते हुए भी दुराग्रह नहीं, मूढ़ाग्रह नहीं है। प्रचार के क्षेत्र में हाथ से, कलम-स्याही से लिखने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सबको है, विद्यार्थियों को और शिक्षकों को भी। किन्तु समिति की अपनी नीति है जिसका प्रयोग असम, बंगाल, उत्कल, सिन्ध, गुजरात, हैदराबाद, महाराष्ट्र, विदर्भ नागपुर, लंका, अंदमान, अफ्रीका प्रदेशों के हजारों केन्द्रों में सफलतापूर्वक हो रहा है लिपि में, भाषा में, संस्कृति में और विचारों में युगानुसार कुछ परिवर्तन होता है, सुधार होता है। यही जीवन के लक्षण हैं![३]

---

३. राष्ट्र भारती : वर्ष २, अंक ८, अगस्त १९५२, पृष्ठ ५४५।

७ : लिपियों का शास्त्रीय विवेचन व विकास-क्रम

[डा० नरहरि चिन्तामणि जोगलेकर एम्० ए०, पी एच्० डी० विगत १५ वर्षों से अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में हिन्दी का अध्यापन, प्रचार और प्रसार-कार्य कर रहे हैं। राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के सम्बन्ध में आपकी सेवायें और विचार उल्लेखनीय हैं। "राष्ट्रभाषा विचार संग्रह" आपकी अत्यन्त उपयोगी और बहु प्रशंसित रचना है। सम्प्रति आप पूना-विश्व विद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। "हिन्दी और मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन"।]

लिपि का स्वरूप विकास—

"लिपि" शब्द 'लिप्यते' से निकला है। लीपना, लिपन करना, लेप देना आदि अर्थ उसमें अभिप्रेत हैं और इस शब्द से संबद्ध हैं। जब मनुष्य बोलता है तब वह भाषा को मुख, नासिका, जिह्वा, होंठ, दाँत, मसूढ़े आदि अवयवों के सहारे ध्वनियों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। पर यह अभिव्यक्तीकरण जब तक किसी संकेत-चिह्न पर आरोपित या उसका अर्थ लिपन उस पर न किया जाय तब तक किस प्रकार संभव हो सकता है ? वाचाध्वनि मुँह से उच्चारित होती है। वर्ण या अक्षर इन ध्वनियों को बतलाने वाला ध्वनि-संकेत है। ध्वनिमात्रों का ध्वनिमूल्य भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार का हुआ करता है। कहीं वह वर्ण अक्षर कहलाते हैं। उनके स्वर और व्यंजन, ये भेद भाषा-शास्त्र में किए गए हैं। साधारणतया सभी syllabi cutor स्वर ही होते हैं। संसार भर की लिपियों का अनुशीलन कर यह घोषित किया गया है कि हमारी वर्णमाला syllabic है। मात्राओं का उपयोग देवनागरी वर्णमाला में ही है। बेद के मंत्रों का शुद्ध उच्चारण इसी लिपि में सुरक्षित रह सका, 'वीणा पुस्तक धारिणी सरस्वती' लिपि का प्रचलन यहाँ पर

अति प्राचीन काल से था इसके अनेक प्रमाण हैं। अकेली ध्वनि का प्रतिनिधि वर्ण कहलाता है। शब्दों की सभी ध्वनियाँ इकठ्ठी उच्चारण नहीं की जा सकतीं। प्रत्युत एक झटके में जिसका एक ही उच्चारण हो जाता है, उसे अक्षर कहते हैं। लिपि में अक्षर और वर्णों का प्राधान्य होता है। उच्चारण का आच्छद ध्वनि है। ध्वनि का लेपन या परिवेश लिपि बन जाती है।

मनुष्य के साथ लिपि का अविच्छेद्य संबंध है। सामाजिकता की दृष्टि से वह जानता है, इच्छा करता है और कृति करता है। पर इन सबको सुरक्षित रखने की दृष्टि से इन सबका एक स्मृति-चिह्न उसने खोज निकाला है, वही साधन या माध्यम लिपि कहलाया। भाषा के द्वारा भावों का अभिव्यक्तीकरण नेत्र और कर-संकेत से लिखित होकर रेखित होने लगा तथा आगे चलकर लिपि-बद्ध होकर सामने आया। भाषा में वक्ता और श्रोता अनिवार्य होते हैं। बोलना और सुनना उनका कार्य है। वैसे ही बोलना और लिखना, लिखना और पढ़ना, ये उसी प्रकार के परस्पर अन्योन्याश्रित कार्य हैं। बोलने के लिये साधन ध्वनियाँ और लिखकर प्रकट करने के लिये ध्वनियों के संकेत-चिह्न लिपि के वर्ण और अक्षर हैं।

लिपि की चार अवस्थाएँ—

इस तरह लिपि का स्वरूप किस प्रकार विकसित होता गया है, इसे देखना बड़ा रोचक और हृदयग्राही होगा। कुल चार प्रकार की अवस्थाओं से संसार भर की लिपियों को गुजरना पड़ता है। मानव जब अपने अनुभव विशेष का विस्तृत तथा बारीकी से विश्लेषण न करते हुए अपने विकास की प्राथमिक प्रक्रियायें देखता है तब उसे वैसे ही चित्रित करना चाहता है। फलतः लिपि का प्रथम स्वरूप चित्रमय होता है अतः इस अवस्था को चित्रलिपि कहते हैं। इसके बाद चित्रों से मनुष्य का ध्यान हटकर कुछ अन्य चीजों से वह अपना सम्बन्ध स्थापित कर देता है। इसे सांकेतिक रूप में अभिव्यक्त करने की लालसा उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। फलतः अपने विचारों के प्रतीकार्थ वह कीला-क्षरों में उनको अंकित करने लगता है अर्थात् उनको एक आकृति प्रदान कर

देता है। लिपि के विकास की यह दूसरी अवस्था है, यह लिपि Ideographic Script या कील-लिपि कहलाती है।

चित्रों से आकृतियों की प्रगति तक आकर मनुष्य ने धीरे-धीरे ध्वनियों को निश्चित किया और उनके स्थान और प्रयत्न की सफलता प्राप्त हो जाने पर उसने प्रत्येक ध्वनि के संकेत रूप, वर्ण निर्माण किए और लिपि में उनका प्रयोग किया। यह लिपि वर्णलिपि कहलाई। वर्ण लिपि के बाद की सीढ़ी ध्वनि लिपि की है और लिपियों की अब तक निर्धारित की गई अंतिम अवस्था है। इस तरह syllabic-script (वर्ण लिपि), और alphabetic or phonomic-script (ध्वनि लिपि), ये तृतीय और चतुर्थाबस्था लिपि के लिये मानी गई हैं। .

लिपि का महत्व और उसकी लेखन शैली—

साहित्य को स्थायित्व प्रदान करने के उद्देश्य से तथा उसकी परम्परागत शैली का व्यक्तीकरण हो, इसलिये लिपि की परमावश्यकता होती है। संसार में दो प्रकार की लिपियाँ पायी गयी हैं— (१) बायें से दाहिनी ओर चलने वाली (२) और दाहिनी ओर से बायीं ओर चलने वाली। प्रथम श्रेणी में हमारी जानी-पहचानी देवनागरी आती है तथा दूसरी में अरबी, फारसी एवं उर्दू लिपि आती है। भारत में जितनी आर्य भाषाएँ हैं, वे सीधी देवनागरी से सम्बन्धित हैं। सिंधी भाषा में दार्दिक प्रभाव अधिक पाया जाता है। मुसलमानों की प्रचुरता से उसमें उर्दू चलती है, पर सिखों के कारण गुरुमुखी और देवनागरी भी रूढ़ है।

अशोक के शिलालेख दो लिपियों में मिलते हैं—(१) ब्राह्मी में और (२) खरोष्ठी में। मैसूर से लेकर देहरादून तक के शिलालेख ब्राह्मी लिपि में मिलते है। अन्यत्र पाये गए शिलालेख खरोष्ठी लिपि में हैं। ब्राह्मी लिपि में करीब-करीब सब अक्षर विद्यमान हैं, वैसे कुछ अक्षर भले ही न मिलते हों। यही अशोक-कालीन ब्राह्मी विकसित होते-होते कुटिल लिपि बनी। गुप्तकाल में शिरोरेखा चली है। उस समय के अक्षरों को गोलाकार बनाने की प्रवृत्ति भी

हम देखते हैं। यही कुटिल लिपि आगे देवनागरी में परिणत हो गई। जब हम लिपि की प्रत्येक अवस्था की विशेषताओं को देखेंगे।

लिपि की अवस्थाएँ और विशेषताएँ :—

चित्रलिपि उस लिपि को कहते हैं जैसे कि किसी भाव या कथा को प्रकट करने के लिए चित्र बनाए जाते हैं। जातक कथाओं को प्रकट करने के लिये जैसे जातक कथाओं के चित्र बने हैं। छोटे बच्चों को समझाने के लिए Picture Composition चित्रों की सहायता से जिस प्रकार उपयोग किया जाता है। इसमें लाघव की कमी है तथा मनुष्य की सभी क्रियाएँ इस शैली में प्रकट नहीं हो पाती हैं। चित्र सभी भाव अभिव्यक्त नहीं कर सकेंगे। आन्तरिक भावचित्र भी नहीं बन सकते। चीन में व उत्तरी अमरीका में तथा मिस्र में जो लिपियाँ विद्यमान हैं, वे सभी चित्र लिपि से विकसित हुई हैं। आँखों से देखना भी कई प्रकार का होता है। ये सभी प्रकार की देखने की प्रवृत्तियाँ चित्रों में कैसे अभिव्यक्त होंगी? अमूर्त भावों को चित्र लिपि प्रकट करने में असर्थ है। इसी आवश्यकता ने एक दूसरे प्रकार की लिपि को जन्म दिया।

इसी द्वितीय अवस्था को Ideographic Script कहते हैं। इसमें एक-एक विचार या भाव प्रकट करने के लिये एक-एक संकेत हैं तथा उसका अभि-व्यक्तीकरण इस लिपि में हो सका। चित्र लिपि बारीकी को व्यक्त नहीं कर सकती थी, इसलिए खण्डित चित्रों के आधार पर कीलें तैयार की गईं। इस प्रकार की Cuneform में कीलें मिस्र में प्रचलित थीं। इसकी आकृति बनाना लिखने के रूप पर भी आधारित है। उड़िया अक्षरों में पगडी लगी रहती है। इसमें बहुत से अक्षर देवनागरी के मिलते हैं। पुराने जमाने में ताड़ पर लिखा जाता था। ये ताड़ दो प्रकार के होते थे। राज ताड़ और खर ताड़। राज ताड़ पर लोहे की एक कील के द्वारा अक्षर लिखे जाते थे। अर्थात् उनको उसमें खोदा जाता था, इसलिये उनकी Cursive बनाने की प्रवृत्ति चल पड़ी। जिस प्रकार की लेखन सामग्री होती है उस प्रकार की लिपि बनती है एवम् उसमें परिवर्तन होता है। ईंटों पर भी इस प्रकार कीलों से खोदकर लिखा जाता था।

यह Cuneform लिपि ideographic होता है, अतः वह अधूरी एवम् अपूर्ण प्रतीत हुई। इस तरह चित्र लिपि और आकृति लिपि से मानव का काम सुचारु रूपेण नहीं चल सका। तब और प्रगति हुई और अक्षर लिपि सामने आई।

जिस एक चीज का चित्र संकेत रूप में बन गया उसका आरम्भिक स्वरूप बतलाने वाला एक अक्षर ले लिया गया। इस तरह अक्षर लिपि बनी। एक ध्वनि के लिए एक वर्ण जब प्रयुक्त हो तब वह ध्वन्यात्मक अक्षर होगा और जब उसमें दो ध्वनियों का अर्थ होगा तब वह Syllabinc alphabate होगा। 'क, ख, ग, घ, ङ' ये सब अक्षर हैं। 'K' का 'क्' यह व्यंजन मात्र का प्रतिनिधि है। जैसे K M L से हम कमल नहीं लिख सकते, उसे लिखने के लिये वह 'Kamal' ऐसा लिखा जायगा। मात्रा लगाने की परिपाटी केवल देवनागरी में पायी जाती है इससे स्वर की अभिव्यक्ति हो जाती है। जैसे 'कुमार' में 'क' में 'उ' की मात्रा और 'आ' का भी बोधक मिलाकर 'कुमार' शब्द लिखा गया। नागरी लिपि Phonomic नहीं है। वह Syllabic है। अंग्रेजी में हरएक के लिये एक-एक Phonemic अलग-अलग है, अतः इसका विकास नहीं हुआ।

वर्णमाला के वर्ण [illegible] का अथ रंग का द्योतक है, ऐसी कल्पना की जाती है। पेरू में एक रज्जु लिपि भी थी। सफेद रेशमी सूत से शान्ति, लाल सूत से लड़ाई आदि का भाव प्रदर्शित किया जाता था। यहाँ भी वह इस तरह प्रचलित रही होगी—ऐसा अनुमान है। वर्ण, वर्णन, वर्णिका सब एक ही धातु से निकले हैं। वर्णिका माने कोई विशिष्ट स्वांग अदा करना है। वर्णिका का बानक रूप रह गया। बानक केवल वेष-विन्यास ही नहीं है, अपितु गति, बोली इत्यादि सब कुछ है। 'कायिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य', इन चार प्रकार के सम्पूर्ण अभिनय करनेवाला बानक कहलाता है। इसी प्रकार ध्वनि को संपूर्णतया अभिव्यक्त और प्रकट करनेवाला संकेत वर्ण है। 'क' वर्ण अपने से ही जो स्वयम् शोभित है, वह स्वर है। व्यंजन का रोमन लिपि में बुद्धिपूर्वक अध्ययन असम्भव है। स्वर के बिना किसी व्यंजन का उच्चारण नहीं हो सकता।

देवनागरी में सभी वर्णों में वह 'अ' को लेकर ही चला। "अक्षराणम् अकारोस्मि।" (गीता)

हमारे यहाँ भारतवर्षीय आर्य Phonemic Alphabates और Alphabatic Alphabates से परिचित थे, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो हलन्त करने की परिपाटी वे न जानते। समूचे अक्षरों की संख्या अधिक है। संयुक्त अक्षर भी अधिक हैं।

देवनागरी की वैज्ञानिकता :—

देवनागरी को अवैज्ञानिक बतलाने का प्रयत्न किया जाता है। इसके वर्ण एक-एक Syllable के प्रतिनिधि हैं और वे एक-एक ध्वनि के प्रतिनिधि हैं। वर्णमाला के वर्ण तो सभी के यहाँ परिगणित होते हैं। जितने प्रतिनिधि ध्वनि के होंगे उतने ही वर्ण हो जाते हैं। 'काला' में 'ल' का स्थान वर्त्स्य है। स्थान की दृष्टि से, प्रयत्न की दृष्टि से यह पार्श्विक ध्वनि है। 'उल्टा' में 'ल' पर 'ठ' की छाप होने से ऐसे ध्वनि में, Retro flexibility आ गई। इन संयोग स्थलों की वर्ण ध्वनियों में वर्णमाला में कोई वर्ण नहीं है। वर्णमाला में इन सब प्रकार के 'ल' की Series के लिए 'ल' एक ध्वनिमात्र Phoneme है। बोलने की शैली से 'ल' कई तरह का हो सकता है। As a speech sound, वाचध्वनि और ध्वनिमात्र में से बहुधा वर्णमाला में केवल ध्वनिमात्र के एक-एक प्रतिनिधि रखे जाते हैं। अंग्रेजी 'L' एल में 'ए' को छोड़ देना पड़ता है। ऐसा देवनागरी में नहीं है। जो बोलिये, वही लिखिये भी। एक पृष्ठ में प्रायः संयुक्त वर्ण कम मिलते हैं और असंयुक्त वर्णों की संख्या अधिक होती है। समूचे सस्वर और अस्वर व्यंजनों को व्यक्त करने की क्षमता इसमें है। देवनागरी में अक्षर विधान और लिपिकरण में अन्तर पड़ता है, जैसे धर्म, धर्-म। 'धर्' धातु है और 'म' प्रत्यय है। रोमन लिपि में Dhar/ma इस प्रकार over laping है। लिपि में उसका कोई तात्पर्य नहीं है। उच्चारण तो हम 'ध' और 'र्म' ऐसा नहीं करते। मात्राओं के प्रयोग की परिपाटी संसार भर की किसी भी लिपि में नहीं है, जैसी देवनागरी में है। ब्राह्मी

लिपि का प्रथम नमस्कार श्वेताम्बरों के भगवती चरित्र में 'नमो ब्राह्मी' के रूप में मिलता है। ब्राह्मी में अशोककालीन शिला-लेखों में मात्राएँ मिलती हैं। देवनागरी सब प्रकार की अवस्थाओं में और सौन्दर्य, सुन्दरता आदि सभी बातों से इसीलिए ग्राह्य है। अस्तु वह सम्पूर्णतया वैज्ञानिक लिपि है।

भारत के भीतर की लिपियाँ:-

ब्राह्मी लिपि (ई०स०५०० से ई०स०३०० तक)
गुप्त ब्राह्मी लिपि (ई०स०३०० से ई०स०५०० तक)

- उत्तरी शैली
  - कुटिल लिपि (छठवीं शताब्दी)
    - नागरी लिपि
      - पूर्वी शाखा
        - बिहारी
          - तिरहुती कैथी
          - भोजपुरी कैथी
          - मगही कैथी
        - मैथिली
      - मध्यदेशी
        - गुजराती
        - मालवी
        - महाजनी
        - मोड़ी
    - बंगला लिपि
      - असमिया
      - उड़िया
        - ब्राह्मनी
        - करनी
      - प्राचीन मनीपुरी
      - नेवारी
    - शारदा लिपि
      - टक्करी
        - सिरमौरी
        - कोछी
      - चम्बा
      - मण्डेआली
      - जौनसारी
      - कष्टवारी
      - कुल्लुई
      - डोग्री
      - लण्डा
        - मुल्तानी
        - सिन्धी
        - गुरुमुखी
- दक्षिणी शैली
  - पश्चिमी लि० (४थी शताब्दी)
  - मध्यप्रदेशी (५वीं शताब्दी)
  - तेलगु कन्नड (५वीं शताब्दी)
    - आधुनिक तेलगु
    - आधुनिक कन्नड
  - ग्रन्थ लिपि (छठवीं शता०)
    - प्राचीन ग्रन्थ लिपि (९वीं शताब्दी)
      - आधुनिक ग्रन्थ लि०
        - ब्राह्मनी (१६वीं शताब्दी)
        - जैन (१६वीं शताब्दी)
        - तुळु
      - मलयाळम (१२वीं शताब्दी)
  - कलिंग (७वीं शता०)
  - तमिळ (छठवीं शता०)
    - आधुनिक तमिळ
  - वट्टेळुत्तु (७वीं शता०)

भारत के बाहर की लिपियाँ :-
सिंहली (ई०पू० ३री)
माल्दिवियन (११वीं शताब्दी)
सीरोमलाबारी (१०वीं शताब्दी)
इन्डोनेशियाई (७वीं शताब्दी)
चम्पा (३री शती)
ख्मेरी (७वीं शती)
बर्मी (११वीं शती)
शान लिपियाँ (११वीं शताब्दी)
स्यामी (१३वीं शती)
फिलिपाइन लिपियाँ
तोगालॉग
ताम्बानुआ
पालीप्राकृत (३री शताब्दी)
एवेलाकुरूम (११वीं शताब्दी)
मांग्यान
कावि (८वीं शती)
बटक
लांपांग
रेज्जांग
अखरस्रींग
अक्षरमूल
पूर्वी सिंहली (५वीं शताब्दी)
दिवेसकुरूम (१५वीं शताब्दी)
दयाक्स
केलेबस
लाओ
लूऔरकुन
अहामी
खाम्ती
एतोनिआ
मध्यसिंहली (६वीं शताब्दी)
गाबुलीताना (१८वीं शताब्दी)
बुगी
मध्यकावि (१५वीं शती)
अखररिक
अखरआहुओ
अखरयौक
आधुनिक सिंहली (१३वीं शताब्दी)
क्रामा
इंगिल
बासाके
दातन
ङ्गोको
मानलिपि
प्युलिपि
बर्मी
करेन
तांग्थू
रेओ
किंउसा
पाली
चाल्हो
इलु
मिश्र

८ :

ब्राह्मी लिपि से विकसित होने वाली लिपियों का परिचय

—डॉ० राजनारायण मौर्य

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, पूना विश्वविद्यालय, पूना-७.

विभिन्न प्राचीन लिपियाँ

प्राचीन काल में भारत में तीन प्रकार की लिपियाँ प्रचलित थीं–सिंधु घाटी की लिपियाँ, ब्राह्मी-लिपि और खरोष्ठी लिपि। ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इस सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत बड़ा मतभेद है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वान ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति ५०० ई० पू० से पहले नहीं मानते हैं क्योंकि इस लिपि का प्राचीनतम लेख ५०० ई० पू० से पहले के नहीं प्राप्त होते हैं। ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लगभग १५-१६ मत प्रचलित हैं, जिनमें अधिकतर इसी बात पर बल दिया गया है कि ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति भारत में नहीं हुई बल्कि सेमेटिक लिपि से इसका विकास हुआ है।[१] जो वास्तविक तथ्य नहीं जान पड़ता। ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आलोचना-प्रत्यालोचना करना प्रस्तुत निबंध का विषय नहीं है; किन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'ब्राह्मी' की उत्पत्ति भारत में ही हुई है। संभव है, इस लिपि का 'ब्राह्मी' नाम कालांतर में पड़ा हो। इस सम्बन्ध में श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा लिखते हैं—'ब्राह्मी लिपि' के न तो अक्षर फिनीशियन या किसी अन्य लिपि से निकले हैं और न उसकी बायीं ओर से दाहिनी ओर लिखने की प्रणाली किसी और लिपि से बदल कर बनाई गई है। यह भारतवर्ष के आर्यों का अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वाङ्ग सुन्दरता से चाहे इसका कर्त्ता

१—डेविड रिंगर—अल्फाबेट, पृ० ३३६-३३७.

ब्रह्मा देवता माना जाकर इसका नाम ब्राह्मी पड़ा, चाहे साक्षर समाज ब्राह्मणों की लिपि होने से यह ब्राह्मी कहलाई हो।'[२] एडवर्ड थामस[३] प्रो० डासन[४] और जनरल कनिंगहम[५] के मत भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण हैं। बूलर[६] ब्राह्मी लिपि की व्याकरण सम्बन्धी तथा ध्वन्यात्मक महत्व को स्वीकार करते हुए उसे भारतीय उत्पत्ति बतलाते हैं। डॉ० उदयनारायण तिवारी[७] के अनुसार इसका निर्माण पवित्र वैदिक साहित्य को लिपिबद्ध करने के लिये ही हुआ था। इसका प्राचीनतम रूप सिन्धु घाटी लिपि में उपलब्ध है और वस्तुतः यही लिपि-चित्र भाव तथा ध्वन्यात्मक लिपि की विभिन्न अवस्थाओं से होती हुई ब्राह्मी लिपि में परिणत हुई थी।"

ब्राह्मी के नामों का विवेचन

जैन धर्म के प्रसिद्ध ग्रंथ 'पन्नवणा सूत्र' और 'समवायांग सूत्र' में अठारह

२—प्राचीन लिपिमाला पृ० २८।

३—"ब्राह्मी अक्षर भारतवासियों के ही बनाये हुये हैं और उनकी सरलता से उनके बनाने वालों की बुद्धिमानी प्रकट होती है।"

—न्यू सेमेटिक क्रॉनिकल, ई० सं० १८८२, नं० ३.

४—"ब्राह्मी लिपि की विशेषतायें सब तरह विदेशी उत्पत्ति से उसकी स्वतंत्रता प्रकट करती हैं और विश्वास के साथ आग्रहपूर्बक यह कहा जा सकता है कि सब तर्क और अनुमान उसके स्वतंत्र आविष्कार ही होने के पक्ष में हैं।"

—जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी, १८८१, पृ० १०२.

५—"ब्राह्मी लिपि भारतवासियों की निर्माण की हुई स्वतंत्र लिपि है।"

—क्वाइन्स लाफ एन्सियन्ट इण्डिया, जि० १, पृ० ५२.

6—"Never the less, the oldest known form of the Brahmi without a doubt was a script framed by learned. Brahmanas for writing Sanskrit."

—India Paleography, Page 33.

७—हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, पृष्ठ ५६३.

लिपियों के नाम मिलते हैं, जिनमें सर्वप्रथम नाम 'बंभी' (ब्राह्मी) का है। इसके अतिरिक्त 'भगवती सूत्र' में प्रारंभ में ही 'बंभी' (ब्राह्मी) लिपि को नमस्कार करके[1] सूत्र का प्रारंभ किया गया है। बौद्ध धर्म के 'ललित विस्तार' नामक संस्कृत ग्रंथ में चौंसठ लिपियों के नाम दिये गये हैं, जिनमें भी सर्वप्रथम 'ब्राह्मी' का नाम है और दूसरा खरोष्ठी का। 'ललित विस्तर' ग्रंथ का निर्माण किस शताब्दी में हुआ—यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु इसका चीनी भाषांतर स० ई० ३०८ में हुआ था। ई० स० ६६८ में रचित बौद्ध विश्वकोष 'फायुआन चुलिन' में भिन्न-भिन्न लिपियों के सम्बन्ध में लिखते हुए 'ब्राह्मी' की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा बताई गई है[2]। आधुनिक वैज्ञानिक युग में यदि 'ब्राह्मी लिपि' के देवलोक से प्राप्त होने की बात को तर्कसम्मत न माना जाय तब भी इतना तो स्पष्ट ही है कि जो लिपि बाईं ओर से दाहिनी ओर को लिखी जाती थी उसकी पुरातन संज्ञा ब्राह्मी थी और जो दाहिनी ओर से बाईं ओर की लिखी जाती थी उसकी खरोष्ठी। ब्राह्मी भारत की सार्वदेशिक और स्वतंत्र लिपि थी, इसलिए जैनों और बौद्धों ने उसी में अपने ग्रंथ लिखे और लिपियों की सूची में उसे प्रथम स्थान दिया।

१—'नमो बंभीए लिविए।'

२—लिखने की कला का शोध तीन दैवी शक्ति वाले आचार्यों ने किया। उनमें से सबसे प्रसिद्ध ब्रह्मा हैं, जिसकी लिपि (ब्राह्मी) बाईं ओर से दाईं ओर पढ़ी जाती है। उसके बाद कि अ लु (खरोष्ठ का संक्षिप्त रूप) है जिसकी लिपि (खरोष्ठी) दाहिनी ओर से बाईं ओर पढ़ी जाती है और सबसे कम महत्व का 'त्सं‌की' है जिसकी लिपि (चीनी) ऊपर से नीचे की ओर पढ़ी जाती है। 'ब्रह्मा' और 'खरोष्ठ' भारतवर्ष में हुए और 'त्सं‌की' चीन में। 'ब्रह्मा' और खरोष्ठ ने अपनी लिपियाँ देवलोक से पाईं और 'त्सांकी' ने अपनी लिपि पक्षी आदि के पैरों के चिह्नों पर से बनाई।'

—गौ० ही० ओझा, प्राचीन लिपि

ब्राह्मी के प्राचीन स्रोत :—

आधुनिकतम शोधों के अनुसार ब्राह्मी लिपि के प्राचीनतम उदाहरण ई० पू० पाँचवीं शताब्दी के प्राप्त हुए हैं। 'पिप्रावा' के स्तूप और 'बर्ली' गाँव से जो लेख मिले हैं, वे 'अशोक' के शिलालेखों से अधिक भिन्न नहीं हैं। पहले अशोक के शिलालेख ही 'ब्राह्मी' के प्राचीनतम उदाहरण माने जाते थे किन्तु उपरोक्त दोनों लेखों के प्राप्त होने से ई० पू० ५०० तक के उदाहरण मिलते हैं। इसके पूर्व के उदाहरण नहीं मिले हैं, किन्तु उसके पूर्व का साहित्य ब्राह्मी लिपि में ही लिखा जाता रहा होगा, भले ही उसका रूप 'ब्राह्मी' से कुछ भिन्न रहा हो। डा० चटर्जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं, दसवीं शताब्दी ईसा पूर्व की आद्य भारतीय आर्य लिपि, जो एक प्रकार की प्राथमिक 'ब्राह्मी' ही थी— तत्कालीन बोल-चाल की वैदिक ध्वनियों को व्यक्त स्थूल प्रयासमात्र प्रतीत होती है।[1]' अतः मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि 'ब्राह्मी लिपि' का इतिहास लगभग तीन हजार वर्ष प्राचीन प्रामाणिक रूप में प्राप्त है। आर्यों के वेद ब्राह्मी लिपि में ही लिखे गये थे, पर उसका स्वरूप क्या था यह कहा नहीं जा सकता। डा० चटर्जी भी इसी मत के पोषक हैं—

'ब्राह्मी लिपि जिसमें आर्य भाषा सर्वप्रथम लिखी गई थी, किस प्रकार की थी, हम कह नहीं सकते।[2]'

लगभग तीन हजार वर्ष सम्पूर्ण भारत में या तो 'ब्राह्मी लिपि' का प्रचार था या उसके किसी पूर्ववर्ती रूप का, जिसका आज हमें कोई ज्ञान नहीं है। यह भी संभव है कि भारत के भिन्न-भिन्न भागों में 'ब्राह्मी' से ही विकसित होने वाली भिन्न-भिन्न लिपियों का प्रचार रहा हो। प्रियदर्शी अशोक के पूर्व रचित जैन ग्रंथ 'समवायांग' और पश्चात रचित 'ललित विस्तर' में ब्राह्मी के अतिरिक्त भी कई लिपियों का नाम दिया हुआ है, परन्तु उनका कोई लेख अभी तक नहीं मिला है, संभव है वे लिपियाँ काल कवलित हो गई हों और उनका

१—भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृष्ठ ६५।

२—भारतीय आर्य भाषा और हिंदी, पृष्ठ ९८।

स्थान अशोक के समय तक तत्कालीन ब्राह्मी ने ले लिया हो।

ई० पू० की तीन-चार शताब्दियाँ पूर्व से तीन-चार शताब्दी पश्चात तक प्राप्त होने वाले लेखों में अधिक अन्तर नहीं है। परीक्षणों के पश्चात विद्वान लोग इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि ई० पू० ५०० के आस-पास से लेकर ई० स० ३५० तक भारतवर्ष की सभी लिपियों का नाम 'ब्राह्मी' था। कालांतर में 'ब्राह्मी लिपि' की दो शैलियाँ हो गईं। एक का प्रचार उत्तरी भारत में हुआ और दूसरी का दक्षिणी भारत में। यद्यपि विंध्य पर्वत को इसकी सीमा रेखा मानी गई है तथापि उत्तरी शैली के कुछ लेख दक्षिण में और दक्षिणी शैली के कुछ लेख उत्तर में प्राप्त हुए हैं।

उत्तरी शैली से विकसत होने वाली लिपियाँ—

(१) **गुप्त लिपि**—मौर्य युग की 'ब्राह्मी' से गुप्त युग की 'ब्राह्मी' में पर्याप्त अन्तर है। मौर्य युग एवं बाद के शुंग युग की 'ब्राह्मी' से चौथी शताब्दी में 'गुप्त ब्राह्मी' का विकास हुआ। समस्त उत्तरी भारत में इसका प्रचार पाँचवीं शताब्दी तक रहा। गुप्तकालीन राजाओं के लेखों और दान-पत्रों में इसके नमूने प्राप्त हुए हैं। भारतीय धर्म प्रचार के द्वारा यह 'गुप्त ब्राह्मी' मध्य एशिया में गई और वहाँ इसका इतना प्रभाव पड़ा कि वहाँ की भाषाएँ भी इसी लिपि में लिखी गईं। पुरानी खोतानी, इरानी और तोखारी आदि भाषाओं ने इसी लिपि को किंचित परिवर्तन के साथ अपनाया। आगे चल कर छठी शताब्दी में इसी लिपि की पश्चिमी-शाखा की एक उपशाखा से 'सिद्ध मात्रिका' लिपि का विकास हुआ। 'बूलर' ने इसका नाम 'न्यूनकोणीय लिपि' रक्खा है क्योंकि इसके अक्षरों के आकार न्यून कोण की तरह हैं। बोध गया में प्राप्त ई० सन् ५८८-८९ का प्रसिद्ध लेख इसी 'सिद्ध मात्रिका लिपि' में है।

(२) **कुटिल-लिपि**—'गुप्त लिपि' से विकसित होने वाली यह 'कुटिल-लिपि' ई० सन् की छठी शताब्दी से नौवीं शताब्दी तक समस्त उत्तरी भारत में प्रचलित थी। इसके वर्णों और मात्राओं के टेढ़े-मेढ़े होने के कारण ही इसे 'कुटिल' संज्ञा प्राप्त हुई। इसका एक प्राचीन नाम 'कुटिलाक्षर' भी मिलता है। इस लिपि के अक्षरों के शिरोभाग पर प्रायः त्रिभुज-जैसा होता था। इस लिपि

के नमूने यशोधर्मन, नेपाल के अंशुवर्मन के लेखों तथा मोखरियों के लेखों और मुद्राओं आदि में प्राप्त हुए हैं।

(३) **नागरी लिपि**—नागरी लिपि का प्रचलन ई० स० की दसवीं शताब्दी से लेकर आधुनिक काल तक उत्तर भारत, मध्य भारत, पंजाब, बिहार महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रदेशों में है। वैसे इस लिपि का प्रचार सम्पूर्ण भारत में पहले से भी था और आज भी है, क्योंकि संस्कृत के प्राचीन ग्रंथ, जैन और बौद्ध धर्म के ग्रंथ इसी लिपि में लिखे जाते थे। इसका विकास 'कुटिल लिपि' से ही हुआ है। इसका सबसे प्राचीन रूप कन्नौज के प्रतिहार वंशी राजा महेन्द्र पाल प्रथम के दिध्वा दबौली से प्राप्त वि० सं० ९५५ के दानपत्र में मिलता है। इसके बाद के नमूने सम्पूर्ण भारत में पाये जाते हैं। दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी की नागरी आधुनिक नागरी से कुछ भिन्न थी, आधुनिक रूप इसे बारहवीं शताब्दी में प्राप्त हुआ। श्री गौ० ही० ओझा नागरी का प्रारंभ आठवीं शताब्दी से मानते हैं। नागरी संज्ञा के संबंध में कई भिन्न मत हैं। कुछ विद्वान इसका संबंध गुजरात के नागर ब्राह्मणों से मानते हैं तो कुछ नगर से। देव-भाषा संस्कृत इस लिपि में लिखी जाती थी इसलिए इसका 'देवनागरी' नाम पड़ा। यह एक पूर्ण वैज्ञानिक लिपि है और वर्तमान काल में संस्कृत, हिन्दी और मराठी भाषा के लिये प्रयुक्त होती है।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में नागरी लिपि का विकास दो स्रोतों में विभाजित हो गया था—एक पूर्वी शाखा और दूसरी मध्य देशीय शाखा। संक्षेप में दोनों शाखाओं की लिपियों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

(अ) **पूर्वी शाखा**—

(क) **बिहारी लिपि**[१]—यह लिपि बिहार और उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में प्रचलित है। यद्यपि आजकल विद्यालयों और मुद्रण के लिये देवनागरी का व्यवहार होता है परन्तु कहीं-कहीं इन लिपियों का रूप हस्तलेखों में मिल

१—'बिहारी' नाम की स्वतंत्र कोई लिपि नहीं है। कैथी के तीनों भेदों का सामूहिक नाम ही बिहारी लिपि है।

जाता है। लगभग सौ डेढ़ सौ वर्ष पूर्व इन लिपियों का अधिक प्रचार था। कायस्थ जाति के लोग ही अधिकतर कार्यालयों और कचहरियों में लिखने-पढ़ने का काम करते थे इसलिये इसका नाम कैथी पड़ गया। इसके तीन स्थानीय रूप हैं—

(i) **तिरहुती कैथी लिपि**—इसका प्रयोग तिरहुत और आस-पास के कायस्थ लोग करते हैं। इसके अक्षर बहुत ही सुन्दर होते हैं।

(ii) **मगही कैथी लिपि**—पटना और गया जिले में इस लिपि का प्रचार है। यह बिहारी की एक बोली मगही लिखने के लिये प्रयुक्त होती है। कुछ समय पूर्व मुद्रण के लिये भी इसका प्रयोग होता था, अब इसके स्थान को देवनागरी ने ले लिया है।

(iii) **भोजपुरी कैथी लिपि**—भोजपुरी पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार की एक प्रमुख बोली है। भोजपुरी कैथी लिपि का प्रयोग इसी को लिखने के लिए होता है। यह लिपि देवनागरी से बहुत अधिक मिलती-जुलती है। इसके क्षेत्र में भी अब मुद्रण के लिये देवनागरी का प्रयोग होता है।

(ख) मैथिली लिपि—उत्तर बिहार में मैथिली बोली का प्रचार है जिसके लिखने में मैथिली लिपि का प्रयोग होता है। इसकी दूसरी संज्ञा 'तिरहुती लिपि' भी है। इस लिपि का प्रयोग केवल मैथिल ब्राह्मण ही करते हैं। यह 'बंगला लिपि' के अधिक समीप है।

(आ) मध्यदेशी शाखा—स्थान की दृष्टि से विचार किया जाय तो देवनागरी मध्य देश की ही लिपि है, किन्तु इस क्षेत्र में देवनागरी के अतिरिक्त जो अन्य लिपियाँ प्रचलित हैं उनका परिचय यहाँ दिया जा रहा है। वे निम्नलिखित हैं—

(च) गुजराती लिपि—यह सम्पूर्ण गुजरात के कार्यालयों और मुद्रण के लिये प्रयुक्त होती है। वास्तव में यह पूर्व देवनागरी का ही विकसित रूप है। गुजरात के व्यापारी (बनिया) लोग एक दूसरी लिपि का प्रयोग करते हैं जिसे **बोडिया या बोडी** कहते हैं। यह एक प्रकार की विशिष्ट लिपि है जिसका पढ़ना वणिकेतर लोगों के लिये बहुत कठिन है।

(छ) **महाजनी लिपि**—भारत में जहाँ कहीं भी मारवाड़ी हैं, वे अपना बहीखाता इसी 'महाजनी-लिपि' में लिखते हैं। राजस्थान के व्यवसायी लोगों में इसका सर्वाधिक प्रचार है। यह लिपि शीघ्र लेखन के लिये प्रयुक्त होती है क्योंकि इसमें मध्य स्वर प्रायः छोड़ दिये जाते हैं। यह लिपि मुद्रण के लिये नहीं प्रयुक्त होती।

(ज) **मालवी लिपि**—यह लिपि महाजनी लिपि का ही एक भेद है जो मालवा की बोली मालवी के लिखने में प्रयुक्त होती है।

(झ) **मोड़ी लिपि**—मोड़ी लिपि का प्रचार महाराष्ट्र में कुछ दिन पूर्व पर्याप्त संख्या में था किन्तु आजकल इसका प्रचार कम हो गया है। कुछ पुरानी पीढ़ी के लोग ही पत्र आदि लिखने में अब इसका उपयोग करते हैं। त्वरा लेखन के लिये ही शायद इसका उपयोग होता है क्योंकि बिना लेखनी उठाये ही कभी-कभी एक पंक्ति लिख सकते हैं।

(४) **शारदा लिपि**—यह लिपि भी कुटिल लिपि से विकसित हुई है। इसका प्रचार पंजाब, सिंध और काश्मीर में दसवीं शताब्दी से अब तक है किन्तु मध्य और आधुनिक काल के अधिक उदाहरण नहीं मिलते। चंबा राज्य के शिला-लेखों और दानपत्रों में इसके नमूने पाये गये हैं। इसका सबसे प्राचीन लेख 'सराहा की प्रशस्ति' में प्राप्त हुआ, जो ई० स० दसवीं शताब्दी के आस-पास का है। आगे चलकर इससे पंजाब, सिंध और काश्मीर की अनेक लिपियों का विकास हुआ जिनका परिचय नीचे दिया जा रहा है।

(ट) **टक्करी लिपि**—यह टक्क जाति की लिपि है। टक्क लोग किसी समय स्यालकोट के आस-पास रहते थे, उन्हीं से इस लिपि का प्रचार वहाँ हुआ। आजकल इसका प्रचालन वहाँ के निम्न श्रेणियों के व्यापारियों में है। इसका प्रचार कहीं-कहीं थोड़े से भिन्न रूप के साथ हिमालय के निचले प्रदेशों में भी है।

(ठ) **चम्बा लिपि**—इसका दूसरा नाम चमेआली भी है। चम्बा प्रदेश की अमेआली बोली के लिखने में यह व्यवहृत होती है।

(ड) **मंडेआली लिपि**—इस लिपि का प्रयोग मंडी और सुकेत के राज्य में होता है। यह देवनागरी के बहुत समीप है।

(ढ) **जौनसारी लिपि**—पश्चिमी पहाड़ी भाषाओं के अन्तर्गत जौनसारी नाम की बोली के लिखने में इस लिपि का प्रयोग होता है। इसका प्रचलन उत्तर-भारत के पहाड़ी प्रदेश जौनसार बावर में है।

(ण) **कश्टवारी लिपि**—यह काश्मीर के दक्षिण पूर्व में कश्टबार की घाटी में कश्टबार बोली के लिए व्यवहृत होती है। डा० ग्रियर्सन ने इसे टक्करी और शारदा के बीच की कड़ी कहा है।

(त) **कुल्लुई लिपि**—कुल्लुई बोली पश्चिमी पहाड़ी के अन्तर्गत आती है जिसके लिखने में यह कुल्लुई लिपि प्रयुक्त होती है। इसका प्रचलन पंजाब की कुल्लू घाटी में है।

(थ) **डोग्री लिपि**—पंजाबी भाषा की एक बोली डोग्री के लिखने में इस लिपि का प्रयोग होता है। जम्मू राज्य के आस-पास इसका अधिक प्रचार है।

(द) **सिरमौरी लिपि**—पश्चिमी पहाड़ी भाषाओं की बोली सिरमौरी के लिखने में इसका प्रयोग होता है। इसे कुछ लोग टक्करी की एक उपशाखा मानते हैं। यह जौनसारी लिपि से बहुत अधिक मिलती-जुलती है।

(ध) **कोछी लिपि**—यह लिपि भी टक्करी का एक भेद है। इसका प्रयोग पश्चिमी पहाड़ी भाषाओं की 'किउंठाली' की उपभाषा 'कोछी' के लिखने में होता है। शिमला के पश्चिमी प्रदेश में इसका अधिक प्रचलन है।

(न) **लण्डा लिपि**—लण्डा लिपि का प्रयोग सिंधी की बोलियों तथा लंहदा के लिखने में होता है। इसका प्रचलन पंजाब और सिंध में है। यद्यपि यह एक प्रकार से इस प्रदेश की राष्ट्रीय लिपि है किन्तु व्यापारियों और दूकानदारों के द्वारा ही यह अधिक प्रयुक्त होती है। इसके स्वरों का प्रयोग बहुत ही अव्यवस्थित है। इसके निम्नलिखित स्थानीय भेद हैं—

(१) **मुल्तानी लिपि**—मुल्तानी लंहदा की सर्वप्रथम बोली है। इसी को लिखने के लिए मुल्तानी-लिपि का प्रयोग होता है। मुल्तान इसका प्रमुख केन्द्र है।

(२) **गुरुमुखी लिपि**—आजकल पंजाबी लिखने में इस लिपि का प्रयोग होता है। यह लण्डा लिपि का ही एक रूप है जिसे सिक्खों के दूसरे गुरू श्री अंगद ने लण्डा लिपि में ही कुछ परिवर्तन करके निर्मित किया था। इसका प्रयोग करने वाले अधिकतर सिक्ख हैं। मुद्रण के लिए भी इसका प्रयोग होता है।

(३) **सिंधी लिपि**—इसका व्यवहार सिंधी की लण्डा बोली के लिखने के लिए होता था। सम्पूर्ण सिंध में हिन्दुओं द्वारा लिखने-पढ़ने में इसका प्रयोग होता रहा। पाठशालाओं की पुस्तकें भी इस लिपि में मुद्रित की गई थीं। पाकिस्तान के बन जाने के बाद अब यह केवल कुछ हिन्दुओं तक ही सीमित है।

५—बंगला लिपि—यह लिपि ग्याहरवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'नागरी लिपि' से विकसित हुई है। इसका क्षेत्रफल भारत का पूर्वी भाग, मगध, बंगाल आदि है। बंगाल, बिहार, नैपाल, आसाम आदि से प्राप्त दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के लेखों और दानपत्रों में नागरी के ही नमूने मिले हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के पालवंशी राजा विजयपाल के देवपारा के लेख में नागरी के कुछ अक्षरों में पृथकता दिखाई पड़ती है और उनका झुकाव बंगला की ओर हो गया है। श्री एस० एन० चक्रवर्ती[1] के मत से प्राचीन बंगला लिपि का विकास सातवीं शताब्दी की उत्तर-भारत की लिपि से हुआ। सातवीं से नौवीं शताब्दी तक इसका स्वतन्त्र विकास होता रहा। परन्तु दसवीं शताब्दी में 'नागरी लिपि का इस पर प्रभाव पड़ा।' पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत तक बंगला लिपि का पूर्णतया विकास हो चुका था। आगे चलकर इसी से वर्तमान मैथिली, उड़िया, असमिया आदि लिपियाँ विकसित हुईं।

(प) **असमिया लिपि**—यह लिपि आसाम की प्रमुख भाषा असमिया के लिखने में प्रयुक्त होती है। इसका विकास बंगला लिपि से सोलहवीं शताब्दी के आस-पास हुआ है। दोनों लिपियों में बहुत ही कम अन्तर है।

(फ) **उड़िया लिपि**—उड़ीसा की भाषा उड़िया के लिखने में यह व्यवहृत

१—रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल भाग ४ स० १९३८, पृ० ३५१.

होती है। इस लिपि का मूल स्रोत बंगला की तरह 'देवनागरी' ही है पर तमिल और तेलुगू आदि लिपियों का प्रभाव इस पर इतना अधिक पड़ा है कि इसके अक्षर वर्तुलाकार हो गये हैं। इसके दो स्थानीय भेद हैं—

(१) **ब्राह्मनी लिपि**—ताड़ पत्रों पर लिखने के लिए इस विशिष्ट लिपि का प्रयोग होता है। यह धार्मिक ग्रंथ लिखने वाले ब्राह्मणों तक ही सीमित है क्योंकि वे ही ताड़ पत्रों पर धार्मिक ग्रन्थों को लिखते हैं।

(ii) **करनी लिपि**—इस लिपि के आविष्कर्त्ता करण कायस्थ माने जाते हैं और उन्हीं के नाम से इसे करनी संज्ञा मिली है। इसका प्रचलन कचहरी के कागज पत्रों और दस्तावेजों तक ही सीमित है।

(ब) **प्राचीन मनीपुरी लिपि**—तिब्बती-बर्मी शाखा की बोली मनीपुरी को लिखने के लिये इसका प्रयोग पहले होता था। परन्तु अब यह बहुत कम प्रयुक्त होती है।

(भ) **नेवारी लिपि**—इस लिपि का दूसरा नाम 'प्राचीन नेपाली' भी है। हिमालय की एक उपभाषा नेवारी के लिखने में इसका प्रयोग होता है। इस लिपि में बौद्धों का साहित्य पर्याप्त-मात्रा में लिखा गया है।

दक्षिणी शैली से विकसित होने वाली लिपियाँ—

(१) **पश्चिमीलिपि**—'ब्राह्मी लिपि' का विकास दक्षिण भारत में कुछ भिन्न प्रकार से हुआ। इसका पश्चिमी रूप जिसके सम्बन्ध में हम चर्चा करने जा रहे हैं, गुजरात, काठियावाड़, पश्चिमी महाराष्ट्र, कोंकण और हैदराबाद के कुछ भागों में ई० स० की पाँचवीं शताब्दी से नौवीं शताब्दी तक प्रचलित था। उत्तरी शैली के अत्यन्त समीप की लिपि होने के कारण उसका प्रभाव इस लिपि पर पड़ा है। भड़ौच के गुर्जर-वंशियों, गुजरात के चालुक्यों और कलचुरियों के शिलालेखों तथा दान-पत्रों में इसके उदाहरण प्राप्त हुये हैं।

(२) **मध्य प्रदेशी लिपि**—यह लिपि अपनी कुछ विशिष्टताओं के साथ विकसित हुई। इसके अक्षरों के सिर पर चौकोर संदूक-जैसे आकार हैं। प्रायः अक्षरों की आकृति समकोण-जैसी है। इसमें और पश्चिमी लिपि में बहुत कुछ समानता है और पश्चिमी लिपि की तरह इस पर भी उत्तरी शैली का प्रभाव

पड़ा है। उसका प्रचार बुंदेलखण्ड मध्य प्रदेश, हैदराबाद के उत्तरी भाग और मैसूर राज्य के कुछ भागों में ई० स० की पाँचवीं शताब्दी से नौवीं शताब्दी तक रहा। इसके नमूने 'वाकाटक वंशियों' महाकोशल के 'सोमवंशी' राजाओं के शिलालेखों और दानपत्रों में मिलते हैं। आगे चलकर यह लिपि समाप्त हो गई या दूसरी लिपि में बदल गई।

(३) **तेलुगू कन्नड़ लिपि**—दक्षिणी शैली की लिपियों में इस लिपि का स्थान सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। प्राचीन बम्बई राज्य में, दक्षिण में हैदराबाद के दक्षिण में, मैसूर और मद्रास के उत्तर पूर्व में इस लिपि का प्रचार ई० स० की पाँचवी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक रहा। ग्यारहवीं शताब्दी में इसमें कुछ साधारण परिवर्तन हुए और आगे चल कर चौदहवीं शताब्दी तक आधुनिक 'तेलुगू' और 'कन्नड़' लिपियाँ विकसित हुईं। इसके प्राचीन शिलालेख और दानपत्र हजारों की संख्या में प्राप्त हैं। पूर्वी चालुक्यों और राष्ट्रकूटों के लेखों में इस लिपि के नमूने प्राप्त हैं। पूर्वी चालुक्यों और उत्तर के चालुक्यों की लिपि में थोड़ा-बहुत अन्तर पाया जाता है।

(क) **आधुनिक तेलुगू लिपि**—ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है कि प्राचीन 'तेलुगू कन्नड़' लिपि से इसका विकास हुआ है। ई० स० की पन्द्रहवीं शताब्दी तक आधुनिक रूपों का पूर्णतया विकास हो चुका था। वर्तमान आंध्र प्रदेश में इस लिपि का प्रचार है। 'तेलुगू' भाषा इसी लिपि में लिखी जाती है। इसमें 'ए' और 'ओ' के ह्रस्व तथा दीर्घ दो-दो और भेद हैं। 'तेलुगू' नाम शायद प्राचीन 'तिलंगांना' देश के नाम पर पड़ा है।

(ख) **आधुनिक कन्नड़ लिपि**—यह लिपि भी प्राचीन 'तेलुगू कन्नड़' लिपि से विकसित हुई है। तेलुगू से इसके अक्षर मिलते-जुलते हैं और उसकी तरह 'ए' और 'ओ' के ह्रस्व दीर्घ दो-दो और भेद हैं। इसका प्रचार सम्पूर्ण मैसूर राज्य में है। 'कन्नड़' भाषा इसी लिपि में लिखी जाती है। 'कन्नड़' नाम प्राचीन 'कर्णाट' स्थान के नाम पर पड़ा हुआ जान पड़ता है।

(४) **ग्रंथ लिपि**—ई० स० की सातवीं शताब्दी से इस लिपि का प्रचलन प्राचीन मद्रास के उत्तरी-दक्षिणी भाग में और प्राचीन ट्रावणकोर

राज्य में मिलता है। संस्कृत के ग्रंथ इस लिपि में लिखे जाते थे और आज भी लिखे जाते हैं। इसलिये इसका नाम ग्रंथों की लिपि अर्थात 'ग्रंथ लिपि' पड़ा। इसके नमूने पल्लव, पाण्ड्य, और चोल राजाओं के लेखों तथा दान-पत्रों में प्राप्त होते हैं। काल-क्रमानुसार इसका विभाजन (क) प्राचीन ग्रंथ लिपि, जिसमें संस्कृत के प्राचीन लेख लिखे गये हैं; (ख) मध्यकालीन ग्रंथ लिपि, जो सातवीं शताब्दी के अंत तक प्रचलित थी और (ग) उत्तर ग्रंथ लिपि; जो आठवीं, नौवीं शताब्दी में प्रचलित थी, इन तीन भागों में किया जा सकता है। आधुनिक ग्रंथ लिपि का विकास ई० स० की तेरहवीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। पंद्रहवीं शताब्दी के बाद 'ग्रंथ-लिपि' का विकास दो स्रोतों में विभक्त हो गया; प्रथम ब्राह्मनिक और द्वितीय जैन लिपि। आज भी ये दोनों लिपियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं।

(च) आधुनिक ग्रंथ लिपि—इसका विकास ऊपर बताये हुए क्रमानुसार प्राचीन 'ग्रंथ लिपि' से ई० स० की पन्द्रहवीं के आस-पास हुआ। आज भी तमिल लिपि के क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है, क्योंकि संस्कृत लिखने में 'ग्रंथ लिपि' ही उपयोगी है। आजकल संस्कृत पुस्तकें 'देवनागरी लिपि' में छपने लगी हैं और 'ग्रंथ लिपि' का प्रयोग कम हो गया है।

(छ) मलयालम लिपि—यह केरल प्रदेश की लिपि है और 'मलयालम भाषा' लिखने में प्रयुक्त होती है। इसका विकास ई० स० की बारहवीं शताब्दी में ग्रंथ लिपि से हुआ है। इसके अक्षर प्रायः गोलाकार होते हैं।

(ज) तुलु लिपि—इस लिपि का प्रचलन दक्षिण कन्नड़ प्रदेश के 'तुलू' बोलनेवाले लोगों में संस्कृत लिखने के लिये है। यह 'ग्रंथ लिपि' से विकसित मलयालम लिपि का ही कुछ परिवर्तित रूप है।

तमिल लिपि—इस लिपि का प्रचार मद्रास के आस-पास ई० स० की सातवीं शताब्दी से है। कुछ विद्वान इसे ब्राह्मी से विकसित होने में सन्देह प्रकट करते हैं, पर उसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। ब्राह्मी लिपि से ही इसकी उत्पत्ति पांचवीं-छठी शताब्दी में हुई, किन्तु इसके साथ-साथ 'ग्रंथ लिपि' का भी प्रचार वहाँ रहा। 'तमिल' में द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ व्यंजनों के न

होने से संस्कृत लिखने में 'ग्रन्थ लिपि' का ही प्रयोग होता था। एक साथ व्यवहार में आने के कारण ग्रन्थ लिपि का इस पर बहुत प्रभाव पड़ा है। दसवीं शताब्दी के आस-पास इसमें काफी परिवर्तन हुआ और चौदहवीं शताब्दी तक वर्तमान 'तमिल लिपि' का पूर्ण विकास हुआ।

आधुनिक तमिल लिपि—आधुनिक तमिल लिपि का प्रचार मद्रास राज्य में है। 'तमिल भाषा' इसी लिपि में लिखी जाती है। इसका विकास प्राचीन 'तमिल लिपि' से चौदहवीं शताब्दी में हुआ। इसके स्वरों में 'ए' और 'ओ' के दो और ह्रस्व रूप होते हैं। व्यंजन केवल अठारह होते हैं। कुछ ध्वनियों के लिये अक्षर नहीं हैं, वे प्रसंगानुसार उच्चरित होते हैं।

(६) **कलिंग लिपि**—यह लिपि पूर्व मद्रास राज्य के चिकाकोल और गंजाम के बीच में ई० स० की सातवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक प्रचलित थी। ऐसा लगता है कि इस लिपि में मध्य प्रदेशी लिपि का अनुकरण किया गया है। इसके अक्षरों के ऊपर भरे हुए चौकोर चिन्ह हैं और अक्षर समकोण-युक्त भी हैं। इसके नमूने पूर्वी गंगावंशी राजाओं के लेखों में प्राप्त होते हैं। इस लिपि पर तेलुगू कन्नड़ और ग्रन्थ लिपि का प्रभाव है। अब इसका प्रचार बिल्कुल नहीं है। इस लिपि से किसी ऐसी लिपि का विकास भी नहीं हुआ, जिसमें उसकी कुछ विशेषताएँ निहित हों।

(७) **बट्टेलुत्तु लिपि**—सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मद्रास राज्य के पश्चिमी तट पर तथा सुदूर दक्षिण में इसका प्रचार था। चोल, पाण्ड्य आदि राजाओं के लेखों और दानपत्रों में इसके नमूने प्राप्त हुए हैं। श्री बर्नेल[1] के अनुसार यह लिपि 'तमिल लिपि' का पूर्व रूप है। उन्होंने इसे 'किसी विदेशी लिपि का स्वतंत्र विकास' कहा है। श्री गौ० ही० ओझा[2] के मत से यह लिपि घसीट रूप है।

भारत के बाहर की लिपियाँ—यह पहले ही निर्दिष्ट किया जा चुका है कि बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ-साथ भारतीय लिपि 'ब्राह्मी' भी विदेशों में

१—अल्फाबेट—डा० दिरिंगरे, पृ० ३८७.

२—प्राचीन लिपिमाला, पृ० ९६.

गई और वहाँ स्थानीय विशेषताओं के साथ वह कुछ दूसरे रूप में विकसित हुई। भारत के बाहर की ऐसी लिपियों का संक्षेप में यहाँ परिचय दिया जा रहा है :—

[१] **सिंहली लिपि**—विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि 'ब्राह्मी लिपि' लंका में ई० पू० चौथी शताब्दी में पहुँची और ई० पू० तीसरी शताब्दी में उसी से सिंहली लिपि का विकास हुआ। डॉ० दिरिंगरे[1] ने सिंहली लिपि के इतिहास को चार भागों में विभाजित किया है—

(क) **पाली प्राकृत सिंहली**—ई० पू० की तीसरी शताब्दी से ई० स० की चौथी शताब्दी तक।

(ख) **पूर्व सिंहली**—ई० स० की पाँचवीं शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक।

(ग) **मध्य सिंहली**—ई० स० की नौवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक।

(घ) **आधुनिक सिंहली**—ई० स० की तेरहवीं शताब्दी से अब तक।

आधुनिक सिंहली लंका के अधिक भाग में प्रयुक्त होती है। इस पर 'ग्रंथ लिपि' का काफी प्रभाव पड़ा है। इसमें कुल ५४ अक्षर हैं। सिंहली लिपि के दो भेद हैं—

१—**इलु लिपि**—यह प्रायः कविता लिखने में प्रयुक्त होती है, क्योंकि इसके अक्षर प्राचीन ध्वनि संकेतों के लिए पर्याप्त हैं। आधुनिक ध्वनियों के लिए उसमें अक्षर नहीं हैं।

२—**सिंहली या मिश्र लिपि**—यह आधुनिक सिंहली भाषा विदेशी ध्वनियों से युक्त—के लिखने में प्रयुक्त होती है। चूँकि यह कविता और आधुनिक सिंहली भाषा के लिए भी प्रयुक्त होती है, इसलिये इसे 'मिश्र लिपि' भी कहते हैं।

[२] **माल्दिवियन लिपि**—इण्डियन सागर के 'माल्दिव' द्वीप में इस लिपि का प्रचार है। लंका से यहाँ के लोगों का पुराना सम्बन्ध था और बौद्ध

१—**अल्फाबेट**—पृ० ३८९.

शासक कई शताब्दियों तक यहाँ शासन कर चुके थे। इस लिपि के प्राचीनतम नमूने ई० स० की ग्यारहवीं शताब्दी तक के प्राप्त हुए हैं। इसका विकास 'ब्राह्मी लिपि' से हुआ है पर सिंहली लिपि से अधिक प्रभावित है। इसके प्राचीनतम रूप का नाम 'एवेला अकुरु' था जो तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी तक प्रचलित था। आगे चलकर यही 'दिवेस अकुरु' में विकसित हुई, जिसका प्रचार लगभग अठारहवीं शताब्दी तक था। इसके दो रूप थे। एक के प्रत्येक अक्षर अलग-अलग लिखे जाते थे और दूसरे के मिलाकर। अठारहवीं शताब्दी में इस लिपि से 'गाबुली ताना' लिपि का विकास हुआ जो आजकल समस्त द्वीप में व्यवहृत होती है। यह लिपि अरबी, प्राचीन माल्दिवियन और सिंहली के मिश्रण से बनी है। 'गाबुली ताना' के कई स्थानीय भेद भी हैं।

[३] **सीरो मलबारी लिपि**—इस लिपि का प्रचार सीरिया मलाबार में है। वहाँ बहुत पहले से ही क्रिश्चियन रहते हैं। ऐसा अनुमान है कि वर्तमान लिपि उन्हीं लोगों की बनाई है। पर कुछ नमूने दसवीं शताब्दी के प्राप्त हुए हैं जिनमें 'गुप्त ब्राह्मी' के आकार के अक्षर हैं। यह संभव है कि बाद में पुरानी लिपि में कुछ सुधार करके आधुनिकीकरण कर लिया गया है। डा० बर्नर के[१] अनुसार यह प्राचीन 'बहेलुत्तु' लिपि का एक विकसित रूप है।

[४] **इण्डोनेशियाई लिपियाँ**—इण्डोनेशिया में अधिकतर लोग साक्षर नहीं हैं। जो थोड़े से हैं वे अरबी किंवा रोमन लिपि का प्रयोग करते हैं। फिर भी वहाँ के कुछ लोग अपनी लिपि को ही व्यवहार में लाते हैं। यहाँ संक्षेप में कुछ लिपियों का परिचय दिया जा रहा है—

(क) **मांग्यान लिपि**—इस लिपि का प्रचलन 'बोर्नियो' में कई शताब्दी पूर्व था। वहाँ कुछ शिलालेख पाये गये हैं जो संस्कृत भाषा के हैं और 'मांग्यान लिपि' में लिखे गये हैं। यह लिपि निश्चित रूप से भारतीय लिपि की किसी शाखा का विकसित रूप थी। आजकल बोर्नियो में 'दयाक्स लिपि' का प्रचलन है।

१—अल्फाबेट—डा० दिरिंगरे

(ख) **प्राचीन जावानेजे या कावि लिपि**—यह लिपि जावा द्वीप में प्रचलित है और जावानेजे, संदानेजे, मदुरेज़े तथा बालिनेजे भाषाओं को लिखने के लिये प्रयुक्त होती है। इसका इतिहास काफी प्राचीन है। इसके प्राचीनतम उदाहरण ई० स० की आठवीं शताब्दी के प्राप्त हुए हैं। डॉ० ब्राण्ड्स[१] का मत है कि इस लिपि का विकास आठवीं शताब्दी में गुजरातियों के जावा में आने से हुआ। परन्तु अधिकतर विद्वान यह मानते हैं कि यह प्राचीन 'ग्रंथ लिपि' का विकसित रूप है। 'कावि लिपि' के अन्तिम उदाहरण पन्द्रहवीं शताब्दी तक के मिलते हैं। सोलहवीं शताब्दी से 'मध्य जावेनेज लिपि' का प्रारम्भ होता है। उसी का विकसित रूप अठारहवीं शताब्दी में 'आधुनिक जावानेज' के रूप में आता है। इसकी कई उपलिपियाँ भी हैं। जैसे क्रामाइंगोल, बासाकेदातन, ङ्गोको, आदि।

(ग) **बटक लिपि**—यह लिपि सुमात्रा में प्रचलित है। यह 'कावि' लिपि से निकली है। वैसे यहाँ के लोगों में 'अरबी और रोमन' लिपियों का प्रचार है पर यहाँ के मूल निवासी, जो बटक जाति के हैं, 'बटक लिपि' का प्रयोग करते हैं। यह लिपि बड़ी ही विचित्र है। इसे पृष्ठ के नीचे से प्रारम्भ करके ऊपर सिरे तक बायें से दायें लिखते हैं।

(घ) **लाम्पांग और रेज्जांग लिपियाँ**—ये लिपियाँ दक्षिण-पश्चिम सुमात्रा में 'लाम्पांग' और 'बटक' बोलियों के लिखने के लिये प्रयुक्त होती हैं। इनका प्रचार अधिकतर वहाँ के हिन्दुओं में ही है। इनका भी विकास 'प्राचीन कावि लिपि' से हुआ है। दोनों लिपियाँ एक-दूसरे से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं।

(ङ) **केलेबस लिपि**—'ईस्ट इण्डीज' के केलेबस दीप में यह लिपि 'बुगी' भाषा की एक बोली के लिखने में प्रयुक्त होती है। यह बहुत प्राचीन नहीं है। इसका प्रचार कावि-लिपि से 'बटक' के माध्यम से हुआ।

(च) **बुगी लिपि**—यह भी 'केलेबस' में 'बुगी' भाषा के लिये प्रयुक्त होती

१—अल्फाबेट—डा० दिरिंगरे, पृष्ठ ४२१.

है। यह पूर्ण और बहुत हद तक वैज्ञानिक लिपि है। इस लिपि का विकास भी 'कावि-लिपि' से हुआ।

[५] **चम्पा लिपि**—इस लिपि का प्रयोग 'चम्पा द्वीप' और 'कम्बोडिया' में होता है। इसका प्राचीनतम रूप ई० स० की तीसरी शताब्दी का प्राप्त हुआ है। दक्षिणी भारत की लिपियों का इस पर पर्याप्त प्रभाव है। आठवीं शताब्दी में 'चम्पा लिपि' का पूर्णतया विकास हो चुका था। भारत की 'मध्य प्रदेशी लिपि' से यह मिलती है। 'चम्पा लिपि' पहले बाईं से दाहिनी ओर लिखी जाती थी पर इस समय मुसलिम प्रभाव के कारण कुछ लोगों द्वारा यह दाहिने से बाईं ओर लिखी जाती है। आजकल इस लिपि को 'अखर स्राह' कहते हैं। इसके दो भेद हैं। एक का प्रचलन 'अन्नाम' में है और दूसरे का कम्बोडिया में। अन्नाम में 'चम्पा लिपि' के अन्य भेद 'अखररिक', 'अखर अतुओ' और 'अखर योक' नाम की लिपियाँ भी प्रचलित हैं।

[६] **ख्मेर लिपि**—यह लिपि भी 'चम्पा' कम्बोडिया में प्रचलित है। इसका प्राचीनतम उदाहरण सातवीं शताब्दी का है। यह लिपि दक्षिण भारत की 'ग्रंथ लिपि' से बहुत कुछ मिलती है। धीरे-धीरे इसका विकास होता रहा और आधुनिक युग में 'अखर स्रींग' संज्ञा से यह प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'अक्षरमूल' नाम की एक और लिपि भी प्रचलित है।

[७] **बर्मी लिपियाँ**—बर्मा एक ऐसी जगह है जहाँ कई जातियों और भाषाओं के लोग आकर रहते हैं। इसीलिये वहाँ कई लिपियों का प्रयोग होता है। कुछ का परिचय नीचे दिया जा रहा है—

(ढ) **मान लिपि**—इसका प्रचलन बर्मा में है। इसका प्राचीनतम लेख बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का है। इस लिपि पर दक्षिण भारत के 'पल्लवों' की 'ग्रन्थ लिपि' का अधिक प्रभाव है। इसके अक्षर गोल आकार के होते हैं। इसका प्रयोग बर्मा के वे निवासी करते हैं जो चम्पा या कम्बोडिया से आये हैं।

(ठ) **प्यू लिपि**—यह 'प्यू' जाति की लिपि है। इस समय इस लिपि का

प्रचार बहुत कम हो गया है। 'तिब्बती-बर्मी' शाखा की एक भाषा को लिखने में इसका प्रयोग होता है।

(ड) **बर्मी लिपि**—बर्मा के अधिकांश निवासी इस लिपि का प्रयोग करते हैं। बर्मी लिपि में केवल 'पाली' अक्षर हैं, इसके दो भेद हैं—

(i) **किउसा लिपि**—इसका उपयोग केवल पत्थरों पर लिखने के लिये होता है।

(ii) **पाली लिपि**—इसका उपयोग धार्मिक बौद्ध पुस्तकों को लिखने के लिये होता है।

'किउसा लिपि' से 'चाल्हो लिपि' का विकास हुआ, जो आजकल बर्मा में प्रचलित है, यही मुद्रण के लिये भी प्रयुक्त होती है।

(ढ) **करेन लिपि**—'करेन' जाति के लोग, जो बर्मा में रहते हैं, 'करेन लिपि' का प्रयोग करते हैं। यह ई० स० १८३२ में मिशनरियों द्वारा आविष्कृत हुई। वैसे करेन लोगों की मूल लिपि भी थी, जो 'चम्पा' पर आधारित थी, पर वह अब लुप्त हो गई है।

इसके अतिरिक्त 'शान' स्टेट के दक्षिण-पश्चिम और थाटन जिले में रहने वाले 'तांग्थू' और 'येन्नो' लिपि का प्रयोग करते हैं जो 'बर्मी लिपि' की ही शाखाएँ हैं।

[८] **शान लिपियाँ**—स्याम की भाषा 'थाई' और उसकी बोलियों को लिखने के लिये कई लिपियाँ है। उनमें से सर्वप्रमुख 'लाओ' है।

(त) **लाओ लिपि**—'शान' शाखा की प्राचीनतम लिपि 'लाओ' है। स्थानीय परम्परा के अनुसार ई० स० की ग्यारहवीं शताब्दी में 'लाओ लिपि', 'मान लिपि' से विकसित हुई है। आधुनिक 'लाओ लिपि' ठीक पुरानी जैसी है पर उस पर 'बर्मी लिपि' का थोड़ा-सा प्रभाव अवश्य पड़ा है। 'लाओ लिपि' दक्षिणी चीन की 'मीक्यांग' नदी की पहाड़ी घाटियों में रहने वाले 'मो सो' जाति द्वारा भी अपनाई गई है।

(थ) **लू और कुन लिपियाँ**—ब्रिटिश शान स्टेट में थाई लोगों के अतिरिक्त जो रहते हैं वे 'लू और कुन' बोली बोलते हैं। और उसे लिखने के लिये

'लू और कुन' लिपि का प्रयोग करते हैं। यह 'लाओ लिपि' के बहुत समीप की है।

(द) **अहामी लिपि**—'शान' शाखा की एक बोली के लिये जो अब नहीं प्रचलित है, इस लिपि का प्रयोग होता था। आज भी बर्मा के पश्चिमी किनारे पर कुछ लोग इस लिपि को जानने वाले हैं।

(ध) **खाम्ती लिपि**—यह भी 'शान लिपि' का एक भेद है और बर्मा के ऊपरी भागों में प्रयुक्त होती है। इसकी भी कुछ उपलिपियाँ हैं।

(न) **ऐतोनिया लिपि**—आसाम के 'शिव सागर' जिले का जो भाग बर्मा में है, वहाँ इस लिपि का प्रयोग होता है।

[९] **स्यामी लिपि**—इस लिपि का विकास तेरहवीं शताब्दी के अन्त में 'ख्मेर लिपि' के आधार पर 'सिंहली पाली' से हुआ। 'ग्रंथ लिपि' का भी इस पर प्रभाव है। आधुनिक स्यामी में प्राचीन स्यामी से कुछ अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। शायद यही एक लिपि है जिसमें स्वरों की संख्या सबसे ज्यादा—३० है। मुद्रण आदि के अतिरिक्त 'टाइप राइटर' यंत्र आदि भी इस लिपि के बन गये हैं। यह स्याम देश में सर्वाधिक प्रचलित है और आधुनिक सभ्यता तथा संस्कृति की परिचायक है।

[१०] फिलीपाइन की लिपियाँ—

फिलीपाइन कई छोटे-छोटे दीपों का समूह है। यहाँ ईसाई, मुसलमान, नीग्रितोस और ताग्बानुआ जाति के लोग रहते हैं। ईसाइयों के अतिरिक्त सभी 'मांग्यान' कहलाते हैं और वे 'हाम्पांग्यान' भाषा बोलते हैं। इस समय वहाँ की सभी पुरानी लिपियाँ रोमन लिपि के कारण दब गई हैं। फिर भी कुछ लोग उन लिपियों को जानने वाले मिलते हैं। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

(प) **तोगालाग लिपि**—फिलीपाइन की सभी लिपियों में यह सबसे महत्वपूर्ण है। यह कुछ विचित्र ढंग की लिपि है। इसके अक्षरों का क्रम बहुत ही टेढ़ा-मेढ़ा है। आजकल धीरे-धीरे इस लिपि का स्थान 'रोमन लिपि' लेती जा रही है।

(फ) **ताग्बानुआ लिपि**—यह लिपि 'प्राचीन कावि लिपि' से विकसित हुई है। इसका प्रयोग सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व नहीं होता है। 'ताग्बानुआ' जाति के लोग ही इस लिपि का प्रयोग करते हैं।

इसके अतिरिक्त भारत के बाहर कुछ और लिपियाँ हैं जो 'ब्राह्मी' से विकसित हुई हैं किन्तु अभी तक उनके लिये पर्याप्त प्रमाण नहीं प्राप्त हुए हैं। 'कोरियाई' और 'वोलीई' ऐसी ही लिपियाँ हैं जिनके सम्बन्ध में विद्वान अभी तक एकमत नहीं हो पाये हैं। मेरा विश्वास है कि नवीन शोधों के पश्चात् अवश्य ही कुछ लिपियाँ प्रकाश में आयेंगी जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से 'ब्राह्मी लिपि' से सम्बन्धित हैं।

---

९ : वर्तमान नागरी अक्षरों की उत्पत्ति

—स्वर्गीय रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

[प्रस्तुत लेख स्वर्गीय रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जी के "नागरी अंक और अक्षर" हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित पुस्तक से सम्मेलन की अनुमति से लिया गया है। ओझा जी इस विषय के और पुरातत्व एवम् भारतीय इतिहास के महापंडित और विचारक थे। अत: उनके इन विचारों का पर्याप्त महत्व है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने देव नागरी के वर्तमान अक्षरों की उत्पत्ति और उनके रूपों के विकास पर प्रकाश डाला है तथा उनकी उत्पत्ति बतलाने वाला एक नक्शा भी साथ में दिया है।]

वर्तमान नागरी अक्षरों की उत्पत्ति—

मनुष्य अपनी रचना में सदा परिवर्तनशील होता है, इसी से मनुष्य की निर्माण की हुई समस्त वस्तुओं में समय के साथ सदा परिवर्तन होता ही रहता है। दुनिया भर की समस्त लिपियों में छापे के यन्त्र के शोध के पूर्व समय के साथ बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है और यही दशा हमारी नागरी लिपि की भी हुई है। मध्य एशिया, जापान आदि से मिले हुए थोड़े से नागरी लिपि के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों एवं हमारे यहाँ से मिले हुए असंख्य प्राचीन शिलालेख; ताम्रपत्र और सिक्कों की नागरी लिपि में, वर्तमान नागरी लिपि से बड़ा अन्तर है जो समय के साथ क्रमशः होता गया है। जिसको प्राचीन नागरी लिपि का बोध न हो ऐसे विद्वान् के सामने यदि अशोक के लेख का फोटो रख दिया जाय तो वह उसकी लिपि को कभी नागरी न कहेगा, इतना ही नहीं किन्तु वह इस बात को सहसा स्वीकार भी न करेगा कि उस विलक्षण लिपि में परिवर्तन होते-होते हमारी वर्तमान नागरी लिपि बनी है।

वर्तमान नागरी लिपि का मूल अर्थात् प्राचीन रूप मौर्य वंश के प्रतापी राजा अशोक के शिलालेखों की लिपि में मिलता है जो (लेख) विक्रम सं० से करीब २०० वर्ष पूर्व के हैं और काठियावाड़ से उड़ीसा तक और नैपाल की तराई से माइसोर तक अनेक स्थानों में मिले हैं। अशोक के समय वह लिपि बहुधा सारे हिन्दुस्तान में वैसी ही प्रचलित थी जैसी कि इस समय नागरी लिपि है। अशोक के पूर्व नागरी का क्या रूप था और उसमें कैसे-कैसे परिवर्तन होने के पश्चात् वह उस स्थिति को पहुँची, यह जानने के लिये अब तक ठीक साधन उपलब्ध नहीं हुए हैं।[१] अतएव अभी तो हमको अशोक के समय की लिपि को ही अपनी नागरी लिपि का उत्पत्ति स्थान मानना चाहिए।

अशोक के समय की नागरी लिपि भारतवासियों ने ही निर्माण की या उन्होंने दूसरों से ग्रहण की, इस विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। इस छोटे से लेख में उक्त विवादग्रस्त विषय को स्थान देना, मैं उचित नहीं समझता ; किन्तु जिनको उक्त विषय में विशेष जानने की इच्छा हो उनको मेरी बनाई हुई 'प्राचीन लिपिमाला' में "पाली[२] लिपि आर्य लोगों ने ही निर्माण की है।" इस विषय का लेख तथा 'इण्डियन ऐंटिक्वेरी' में छपा हुआ आर० शामा शास्त्री बी० ए० का देवनागरी लिपि की उत्पत्ति विषयक लेख पढ़ने का मैं आग्रह करता हूँ।

१—अशोक के समय से पूर्व का अब तक एक ही छोटा-सा लेख मिला जो नैपाल की तराई के पिप्रावा नामक स्थान में शाक्य जाति के लोगों के बनाये हुए बौद्ध स्तूप के भीतर रक्खे हुए छोटे से पत्थर के पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा है। उसमें नागरी लिपि के केवल १४ अक्षरों के प्राचीन रूप मिलते हैं। उसमें और अशोक के लेखों की लिपि में विशेष अन्तर नहीं है। भेद इतना ही है कि उनमें दीर्घ स्वर चिह्नों का अभाव है।

२—पाली-प्राचीन नागरी। यूरोपियन विद्वानों ने अशोक के लेखों की लिपि का नाम 'पाली लिपि' रक्खा है, परन्तु उसके लिए कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता।

इस लेख का उद्देश्य केवल यही बतलाने का है कि अशोक के समय की लिपि में किस प्रकार के परिवर्तन होने के पश्चात् नागरी लिपि वर्तमान स्थिति को पहुँची है।

अशोक के समय की लिपि का नाम 'ललित विस्तार' में 'ब्राह्मी लिपि' मिलता है, और 'नित्याषोडषिकार्णव' के भाष्य सेतुबंधु में भास्करानन्द उसका नाम 'नागर' (नागरी) लिपि होना मानता है, क्योंकि वह लिखता है कि "नागरी लिपि में 'ए' का रूप त्रिकोण है"[1], जैसा कि अशोक के लेखों में मिलता है।

'नागरी' यह 'देवनागरी' का संक्षिप्त रूप है और इस लिपि का नाम 'देवनागरी' कहलाने का कारण उक्त शामा शास्त्री के मतानुसार यह पाया जाता है कि देवताओं की प्रतिमाओं के बनने के पूर्व उनकी उपासना सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोणादि यंत्रों के मध्य लिखे जाते थे और वे यंत्र 'देवनागर' कहलाते थे। उन देवनगरों के मध्य लिखे जाने वाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालान्तर में अक्षर माने जाने लगे, इसी से उनका नाम 'देवनागरी' हुआ।

यह कहना अनुचित न होगा कि अशोक के लेखों की नागरी लिपि वर्तमान नागरी से अधिक सरल थी और गुजराती लिपि की तरह इसके अक्षरों के सिर नहीं बनते थे, परन्तु पीछे के लेखकों के हाथ से उसके अनेक रूपान्तर हुए, जिनके मुख्य तीन कारण अनुमान किये जा सकते हैं—

(१) अक्षरों के सिर बनाना।

(२) अक्षरों को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करना।

(३) त्वरा से लिखना तथा कलम को उठाए बिना अक्षर को पूरा लिखना।

अशोक के समय की लिपि में किस प्रकार के परिवर्तन होने के पश्चात्

---

१. कोणत्रयवदुद्भवो लेखा यस्य तत्। नागरलिप्या साम्प्रदायिकै-रेकारस्य त्रिकोणाकारतयैव लेखनात्।

वह वर्तमान लिपि की स्थिति को पहुँची है, यह बतलानेवाला एक नक्शा[१] इस लेख के साथ दिया गया है, जिसमें प्रथम वर्तमान नागरी लिपि का प्रत्येक अक्षर लिखकर उसके आगे = चिन्ह रक्खा है, जिसके पीछे बहुधा प्रत्येक अक्षर का अशोक के समय का रूप तथा उसके समस्त रूपान्तर, जो समय-समय पर हुए, दिये गये हैं। इन रूपान्तरों का विवरण नीचे लिखा जाता है—

अ—इसका पहिला रूप गिरनार पर्वत (काठियावड़ में) के पास की एक चट्टान पर खुदे हुए उपर्युक्त राजा अशोक के लेख से लिया गया है (बहुधा प्रत्येक अक्षर का पहला रूप अशोक के लेख से ही लिया गया है अतएव आगे पहिले रूप का विवरण नहीं लिखा जायगा।) दूसरा रूप कुशनवंशी राजाओं के लेखों[२] में (जो ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी के आस-पास के हैं), उच्छकल्प के महाराज शर्वनाग के ताम्रपत्र में (जो कलचुरि सम्वत् २१४ = वि० सं० ५२० = ई० सं० ४६३ का है) तथा मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा अपराजित के लेख में (जो वि० सं० ७१८ = ई० सं० ६६१ का है) मिलता

---

१. यह नक्शा मैंने प्रथम वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में तैयार कर 'प्राचीन लिपिमाला' नामक पुस्तक में छपवाया था (लिपि पत्र ५१ वें में)। कुछ समय पीछे उसको सुधार कर एक बड़े नक्शे के रूप में तैयार कर नागरी-प्रचारिणी सभा, बनारस, को भेंट किया, जो अब तक उक्त सभा के पुस्तकालय में रक्खा हुआ है। इसी की हाथ से तैयार की हुई नकल बनारस के सिद्धेश्वर प्रेस में छपी और 'सरस्वती' की दूसरी जिल्द में इसकी फोटो तैयार की हुई कापी बड़ी उत्तमता से छपी; जिसके पीछे यह एक बार फिर 'सरस्वती' में छपा और 'लिपिबोध' नामक पुस्तक के कर्त्ता ने भी अपनी पुस्तक में इसकी अविकल नकल छापी, परन्तु इन पिछले दोनों प्रकाशकों ने इसके कर्त्ता का नाम लिखने का श्रम नहीं किया। जो चित्र इस लेख के साथ दिया गया है, वह सरस्वती में छपे प्लेट से लिया गया है।

२. कुशनवंशी (तुरुष्क-तुर्क) राजाओं के प्राचीन नागरी लिपि के लेख विशेषकर मथुरा तथा उसके आस-पास के प्रदेश से मिले हैं।

है। इसमें सिर बनाने का प्रयत्न स्पष्ट पाया जाता है। प्रारंभ में अक्षरों के सिर बहुत छोटे बनते थे परन्तु पीछे से बहुधा सारे अक्षर पर बनने लगे। प्रारम्भ में यह यत्न भी अक्षर को सुन्दर बनाने के उद्देश्य से किया गया हो ऐसा अनुमान होता है। तीसरा रूप दूसरे रूप से मिलता हुआ है, अन्तर केवल इतना ही है कि दूसरे रूप में नीचे के बायीं ओर के हिस्से में सुन्दरता की दृष्टि से जो घुमाव डाला गया है उसका सम्बन्ध मूल अक्षर से तोड़ दिया है। चौथे और पाँचवें प में 'अ' की दाहिनी तरफ की खड़ी लकीर को सुन्दर बनाने का यत्न पाया जाता है, जिससे अक्षर की आकृति में विशेष अन्तर हो गया है। ये रूप ई० की नवीं शताब्दी के आस-पास से लगाकर तेरहवीं शताब्दी तक के अनेक लेखों तथा हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं। कई जैन लेखक तो अब तक हर एक खड़ी लकीर के अन्त को सुन्दरता के विचार से हलंत के चिन्ह का-सा दे देते हैं।

अ—**अ** का यह रूप अब बहुधा दक्षिण में लिखा जाता है और ऊपर लिखे हुए 'अ' के तीसरे रूप को उसकी वास्तविक स्थिति में रहने देने अर्थात् उसमें सुन्दरता लाने का यत्न न करने से ही इसकी उत्पत्ति हुई है। अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा हस्तलिखित पुस्तकों में इसके चौथे और पाँचवें रूप मिलते हैं (देखो 'प्राचीन लिपिमाला', लिपिपत्र ५वाँ, १२ँ, १६वाँ, १७वाँ और १८वाँ)।

इ—का दूसरा रूप गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के लेख में (जो ई० स० की चौथी शताब्दी का है) तथा स्कन्दगुप्त के समय के कमाऊँ के लेख में (जो गुप्त संवत् १४१=वि० संवत् ५१७=ई० स० ४६० का है) मिलता है, जिसमें 'इ' की बिन्दियों पर सिर बनाने का यत्न किया गया है। चौथा रूप हैहय (कलचुरी) वंशी राजा जाजल्य देव के चेदी संवत् ८६६ (वि० सं० ११७१=ई० स० १११४) के लेख में (प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र १९वाँ) तथा कई हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों में पाया जाता है। पाँचवाँ रूप १३वीं शताब्दी के आस-पास के शिलालेखों तथा पुस्तकों में मिलता है और वर्तमान 'इ' से बहुत कुछ मिलता हुआ है।

उ—के दूसरे रूप में सिर बना है व नीचे की आड़ी लकीर के अन्तिम

भाग को सुन्दरता के विचार से कुछ नीचे को झुकाया है। कुशनवंशी राजाओं के लेखों में यह रूप मिलता है। उक्त झुकाव को बढ़ा देने से चौथे रूप की सृष्टि हुई है, जो अनेक लेखों में मिलता है (प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र ५वाँ, १२वाँ और १३वाँ)।

ए—के दूसरे रूप में त्रिकोण को उल्टा दिया है, जिससे ऊपर की तरफ सिर सा दिखता है। यह रूप उपर्युक्त समुद्रगुप्त के लेख में तथा कई अन्य लेखादि में मिलता है। (प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र ३ रा, १२वाँ और १३वाँ)। चौथे रूप में शुद्ध त्रिकोण की शक्ल पलटकर वर्तमान 'रा' का प्रादुर्भाव दीख पड़ता है। यह रूप मंदसौर (मालवे) में से मिले हुए राजा यशोधर्म के लेख में (जो मालव संवत् ५८९ = ई० स० ५३२ का है), मारवाड़ के पड़िहार राजा कक्कुक के समय में वि० सं० ९१८ (ई० स० ८६१) के लेख में तथा कई दूसरे लेखों में मिलता है (प्रा० लि० ५वाँ और १६वाँ)। पाँचवाँ रूप जो वर्तमान 'ए' से बहुत ही मिलता हुआ है, राठौड़ राजा गोविन्द-राज (तीसरे) के शक संवत् ७३० (वि० सं० ८६५ = ई० सं० ८०७) के, परमार राजा वाक्पति राज (मुंज) के वि० सं० १०३१ (ई० स० ९०४) के और कलचुरी राजा कर्णदेव के कलचुरी सं० ७९३ (वि० सं० १०९९ = ई० स० १०४२) के ताम्रपत्रों में तथा कई अन्य शिलालेखों व पुस्तकों में मिलता है।

इस लेख के साथ के नक्शे में दर्ज किए हुए बहुधा प्रत्येक अक्षर के भिन्न-भिन्न रूप अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा पुस्तकों में मिलते हैं। यदि उन सबके नाम, समय आदि का उल्लेख किया जाय तो एक छोटी-सी पुस्तक बन जाय, इसलिए आगे बहुधा उनका संक्षेप में उल्लेख किया जायगा और प्राचीन 'लिपिमाला' के लिपिपत्र का नम्बर दे दिया जायगा जिसको देखने से समय आदि का वृतान्त मालूम हो जायगा।

क—के दूसरे रूप से सिर बनाने का यत्न पाया जाता है एवं बीच की आड़ी लकीर को झुका दिया है (प्रा० लि० ३रा, ५वाँ और ६वाँ)। तीसरे रूप में बीच की लकीर का झुकाव बढ़ा दिया है। यह रूप उपर्युक्त कलचुरी राजा

कर्णदेव के ताम्रपत्र में मिलता है। चौथा रूप अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० १३वाँ, १६वाँ, १७वाँ, १९वाँ)।

ख—का दूसरा रूप कुशनवंशी राजाओं के लेखों में तथा गिरनार पर्वत के पास उपर्युक्त चट्टान पर खुदे हुए क्षत्रवंश के राजा रुद्रदामा के लेख में जो ई० स० की दूसरी शताब्दी का है (प्रा० लि० २ रा) मिलता है। तीसरे रूप में सिर बनाने के कारण अक्षर के दो खंड हो गये हैं, जिनमें से पहले अर्थात् खड़ी लकीर के हिस्से को सुन्दर बनाने का यत्न किया गया है। इस प्रकार उक्त अक्षर के 'र' और 'व' ये दो रूप बन गये (चौथे रूप में स्पष्ट है) जिनको मिलाकर लिखने से ही 'ख' बनता है (प्रा० लि० १२, १३, १६)।

ग—'ख' की नाईं 'ग' के रूपान्तरों का मुख्य कारण सिर बनाना है। दूसरे रूप में ऊपर के कोण के स्थान में वक्रता पायी जाती है। यह रूप मथुरा के क्षत्रप राजा सोडास और प्रसिद्ध क्षत्रप राजा नहपान के जवाईं शक उषवदास के लेखों में तथा कई दूसरे लेखों में भी मिलता है। इसी रूप के ऊपर सिर बनाने तथा पहली खड़ी लकीर को जरा बाईं तरफ मोड़ देने से तीसरे रूप की उत्पत्ति हुई है जो वर्तमान 'ग' से मिलता हुआ ही है। (प्रा० लि० ९, १२, १३, १६ आदि)।

घ—के दूसरे रूप में सिर बनाया गया है और दाहिनी ओर की दोनों ऊर्ध्व रेखाओं की ऊँचाई बढ़ाई गई है। यह रूप उपर्युक्त मालवा के राजा यशोधर्म के मन्दसौर के लेख में मिलता है (प्रा० लि० ५)। इसी का सिर पूरा बनाने तथा त्वरा के कारण अक्षर को कुछ टेढ़ा लिखने से तीसरा रूप बना है जो वर्तमान 'घ' से मिलता हुआ है। चौथा रूप भी उसी से मिलता हुआ ही है।

ङ—यह अक्षर अशोक के किसी लेख में नहीं मिलता। यह पहिले पहिल कुशनवंशियों के लेखों में संयुक्ताक्षरों में पाया जाता है। इसका पहिला रूप उपर्युक्त समुद्रगुप्त के लेख के एक संयुक्ताक्षर से लिया गया है (प्रा० लि० ३)। पीछे से इसके नीचे के हिस्से की गोलाई बढ़ती गई और इसकी आकृति 'ड' से मिलने लगी, जिससे इसको उससे भिन्न बनाने के लिए इसके सिर के अन्त

में गाँठ लगाई जाने लगी (देखो रूप चौथी) जो कहीं चतुरस्र, कहीं गोल और कहीं त्रिकोण-सी मिलती है (प्रा० लि० ९, १३, २१, २३, २४)। इस गाँठ का प्रादुर्भाव ई० स० की आठवीं शताब्दी के आस-पास होना पाया जाता है। पीछे से यह हिन्दी के रूप में अक्षर के मध्य भाग में लगाई जाने लगी।

च—के दूसरे हिस्से में सिर के अतिरिक्त बाईं ओर के नीचे के हिस्से पर नोक-सी बनी है। तीसरे रूप में वर्तमान 'च' की आकृति कुछ दीख पड़ती है जो चौथे रूप में पूरी तरह बन गई है (प्रा० लि० २, ४, ८, ९, १६, १७, १९, २०)।

(बहुधा दूसरे या तीसरे रूप से प्रत्येक अक्षर का सिर बना है। अतएव अब सिर का उल्लेख जहाँ कहीं विशेष आवश्यकता होगी वहीं किया जायगा)।

छ—के दूसरे रूप में खड़ी लकीर वृत्त को पार कर बाहर निकल गई है। (प्रा० लि० १६) तीसरा रूप कन्नौज के गहरवार (राठौर) वंशी प्रसिद्ध राजा जयचंद के वि० सं० १२३२ (ई० स० ११७५) के और मालवा के परमार वंशी महाकुमार उदय वर्मा के वि० सं० १२५६ (ई० स० १२००) के ताम्रपत्र में मिलता है।

ज—के दूसरे रूप में नीचे के हिस्से को कुछ आगे बढ़ाकर सुन्दर बनाने के लिए कुछ नीचे झुकाया है (प्रा० लि० ५, ९)। उसी हिस्से को बाईं ओर घुमाने से तीसरा रूप बनता है (प्रा० लि० ११, १२)। चौथा रूप वर्तमान 'ज' से मिलता हुआ ही है (प्रा० लि० १३)। और पाँचवाँ रूप तो इस समय तक कहीं-कहीं लिखा जाता है।

झ—'झ' अक्षर प्राचीन लेखादि में बहुत ही कम मिलता है। इसका दूसरा रूप ब्राह्मण राजा शिवगण के कनसवाँ (कोटा से कुछ दूर) के वि० सं० ७९५ (ई० स० ७३८) के लेख में और तीसरा राठौर राजा गोविन्दराज (तीसरे) के शक सं० ७३० (वि० सं० ८६४—ई० स० ८०७) के ताम्रपत्र में मिलता है। चौथा रूप 'म' (झ) से मिलता हुआ है। 'झ' का यह रूप कितनी ही छपी हुई जैन पुस्तकों में मिलता है और राजपूताने में बहुधा यही रूप लिखा जाता है।

झ—'झ' का यह रूप विशेषकर दक्षिण में प्रचलित है। इसके तीन रूप ऊपर 'म' के पहिले दो रूपों के सदृश हैं। तीसरे रूप के नीचे हिस्से में गाँठ लगाने से चौथा रूप बना है जो प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में कहीं-कहीं मिलता है।

वर्तमान नागरी लिपि में जो 'झ' अक्षर लिखा जाता है उसकी उत्पत्ति कैसे हुई, यह पाया नहीं जाता क्योंकि प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में कहीं उसका प्रयोग नहीं मिलता।

ञ—यह वर्ण प्राकृत लेखों में मिलता है और संस्कृत लेखों में बहुधा संयुक्ताक्षरों में ही पाया जाता है। इसका दूसरा रूप उपर्युक्त मेवाड़ के गुहिल राजा अपराजित के समय के वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) के लेख में (प्रा० लि० ११) और तीसरा कुमारगुप्त के समय के मन्दसौर के लेख में (प्रा० लि० ४) मिलता है, जो वि० सं० ५२९ (ई० स० ४७२) का है। तीसरे रूप की दाहिनी ओर की खड़ी लकीर को ऊपर की तरफ बढ़ाने से चौथा रूप बना है, जो वर्तमान 'ञ' से मिलता हुआ ही है।

ट—का दूसरा रूप पहले से मिलता हुआ है और सिर बनाने के कारण ऊपर के हिस्से में कुछ परिवर्तन मालूम होता है (प्रा० लि० ३, ४, ७, ८)। तीसरा व चौथा रूप वर्तमान 'ट' से मिलता है (प्रा० लि० १)।

ठ—का दूसरा रूप केवल सिर बनाये जाने के कारण बना है। इसमें और पहले रूप में कोई भेद नहीं है (प्रा० लि० ७)। तीसरे रूप में सिर तथा नीचे में वृत्ताकार हिस्से के बीच में छोटी-सी खड़ी लकीर रहने के कारण ठीक वर्तमान 'ठ' बन गया है। (प्रा० लि० १३, १७, १९)।

म—'ड' का यह रूप जैन पुस्तकों में मिलता है और राजपूताने में अब तक 'ड' बहुधा ऐसा ही (म) लिखा जाता है। इसके दूसरे रूप में नीचे का हिस्सा कुछ दाहिनी ओर बढ़ाया गया है, जिसका कारण त्वरा से लिखना अनुमान किया जाता है। इससे मिलता हुआ रूप उड़ीसा की हाथी गुफा (कटक से कुछ दूर) में खुदे हुए जैन राजा खारवेल के लेख में पाया जाता है, ई०स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के करीब का है। दूसरे रूप को सुन्दर बनाने या त्वरा

से लिखने के कारण तीसरा व चौथा रूप बना है। (प्रा०लि० ८) पाँचवाँ रूप वर्तमान 'भ' (ड) से बहुत कुछ मिलता हुआ है (प्रा० लि० ११)।

ड—इसके पहिले चार रूप तो ऊपर के 'म' के समान ही हैं। पाँचवें रूप में मध्य का घुमाव बढ़ा देने के कारण उसकी आकृति वर्तमान 'ड' के सदृश बन गई है (प्रा० लि० १८, १९)।

ढ—वर्तमान नागरी लिपि की वर्णमाला में केवल एक 'ढ' अक्षर ही अपनी प्राचीन स्थिति में बना रहा है। केवल उस पर सिर बढ़ाया गया है।

ण—का दूसरा तथा तीसरा रूप कुशनवंशियों के लेखों में मिलता है। चौथे से छठे तक के रूप अनेक लेखादि में पाये जाते हैं (प्रा० लि० ३, ५, ९, १०, ११, १२, १३, १६, १७, १८)। छठे रूप में सिर बढ़ा देने से वर्तमान 'ण' बना है।

ण—'ण' का यह रूप दक्षिण में प्रचलित है। इसमें भेद ऊपर के 'ण' के अनुसार ही है। इसके चौथे रूप के सिर जोड़ देने से यह रूप (ण) बना है।

त—का दूसरा रूप वर्तमान "त" से मिलता हुआ है (प्रा० लि० ११)।

थ—का दूसरा रूप उपर्युक्त समुद्रगुप्त के लेख में मिलता है (प्रा० लि० ३)। तीसरे से पाँचवें तक के रूप अनेक लेखों में पाये जाते हैं (प्रा० लि० ४, ५, ९, १२, १३, १६, १८, १९, २०)।

द—का दूसरा रूप अशोक के जोगड़ (मद्रास हाथे के गंजाम जिले में) के लेख से तथा पभोंसा (=प्रभास, इलाहाबाद से ३२ मील के अन्तर पर यमुना तट पर) के लेखों में (जो ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के हैं) मिलता है। तीसरा कुशनवंशियों के लेखों में और चौथा अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० ३, ९, १३)। पाँचवाँ रूप वर्तमान 'द' से मिलता हुआ है।

ध—का दूसरा रूप कन्नौज के पड़िहार राजा भोजदेव के ग्वालियर के लेख में (जो वि सं० ९३३=ई० स० ८७६ का है) तथा देवलगाँव (पीलीभीत से २० मील पर) की प्रशस्ति में (जो वि० सं० १०४९=ई० स० ९९२ की है) पाया जाता है। तीसरा रूप कन्नौज के गहरवार (राठौड़) राजा

जयचन्द के वि० सं० १२३२=ई० स० ११७५ के ताम्रपत्र में मिलता है। चौथा रूप वर्तमान 'ध' से बहुत कुछ मिलता हुआ है (प्रा० लि० २०)।

न—का दूसरा रूप उपर्युक्त क्षत्रप राजा रुद्रदामा के लेख में (प्रा० लि० २) और तीसरा राजानक लक्ष्मणचन्द्र के समय वैद्यनाथ के लेख में (शक सं० ७२६=वि० सं० ८६१=ई० स० ८०४ का है) मिलता है। चौथा तीसरे का ही रूपान्तर है।

प—का दूसरा रूप पहले से मिलता ही है। तीसरा अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० ३, ११, १२, १७, १८)।

फ—का दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है। तीसरा रूप समुद्रगुप्त के लेख में पाया जाता है। चौथा रूप तीसरे को त्वरा से लिखने के कारण उत्पन्न प्रतीत होता है, और अनेक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में मिलता है। पाँचवाँ चौथे से मिलता हुआ है और उसी से छठा रूप बना है।

ब—का दूसरा रूप उपर्युक्त राजा यशोधर्म के लेख में (प्रा० लि० ५) तथा अन्य कई लेखों में मिलता है (प्रा० लि० ११, १३)। तीसरा रूप 'प' से मिलता हुआ है (प्रा० लि० १८), कहीं-कहीं 'व' के समान भी पाया जाता है। इसको उक्त अक्षरों 'प' और 'व' से भिन्न बनाने के लिए इसके बीच में एक बिन्दी लगाने लगे, जिससे चौथा रूप बना। पाँचवाँ रूप चौथे से मिलता हुआ है और गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के वि० सं० १०८६ (ई० स० १०२९) के ताम्रपत्र में मिलता है।

भ—का दूसरा रूप कुशनवंशियों के लेखों और तीसरा गुप्तवंश के राजा स्कन्दगुप्त के इन्दौर से मिले हुए ताम्रपत्र में जो गुप्त सं० १४६ (वि० सं० ५२२=ई० स० ४६५) का है, मिलता है। चौथा रूप तीसरे से मिलता हुआ ही है।

म—के पहिले तीन रूप एक दूसरे से मिलते हुए ही हैं और चौथा रूप वर्तमान 'म' के सदृश ही है।

य—के पहले दो रूप अशोक के लेखों में मिलते हैं। दूसरे को कलम को उठाए बिना लिखने से तीसरा रूप बना है और चौथा उसी का भेद है जो

वर्तमान 'य' के सदृश है।

र—का दूसरा रूप पहिले रूप की खड़ी लकीर के अन्त की सुन्दरता के विचार से दाहिनी ओर कुछ नीचे की तरफ झुकाने से बना है। यह रूप बौद्ध श्रमण महानामन् के गुप्त सं० २६९ (वि० सं० ६४५=ई० स० ५०८) के लेख में पाया जाता है। तीसरा रूप वर्तमान 'र' से मिलता हुआ है।

ल—का दूसरा रूप हूणवंशी राजा तोरमाण के लेख, जो ई० स० ५०० के करीब का है, मिलता है। तीसरा रूप कई लेखों में पाया जाता है। (प्रा० लि० ९, ११, १२) तीसरे को सुन्दर बनाने का यत्न करने से चौथे रूप की उत्पत्ति हुई है और पाँचवाँ रूप वर्तमान 'ल' से मिलता हुआ है।

व—के पहिले रूप को बिना कलम को उठाए लिखने से दूसरा रूप बना है (प्रा० लि० ४) और उसके नीचे के हिस्से में सुन्दरता लाने का यत्न करने से तीसरे रूप की सृष्टि हुई (प्रा० लि० ११, १२, १३, १६)।

श—का दूसरा रूपान्तर पहिले से मिलता हुआ ही है। तीसरा व चौथा ये दोनों दूसरे के ही रूपान्तर हैं। (प्रा० लि० ३) पाँचवाँ रूप कई लेखों में मिलता है (प्रा० लि० १३, १५)। छठा रूप पाँचवें का ही रूपान्तर है।

ष—यह अक्षर अशोक के लेखों में नहीं मिलता। इसका पहिला रूप घोसुंडा (मेवाड़ में) के शिलालेखों से उद्धृत किया गया है, जो (लेख) ई०स० पूर्व की दूसरी शताब्दी का है। दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है और तीसरा कई लेखों में मिलता है (प्रा० लि० १६, १७, १८, १९)।

स—का दूसरा रूप पहले के सदृश ही है। तीसरा समुद्रगुप्त के लेखों में मिलता है (प्रा० लि० ३०) और चौथा कई लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० ५, ९, १२, १३)।

ह—का दूसरा रूप पहले के समान ही है। तीसरा उच्छकल्प के महाराज शर्वनाथ के उपर्युक्त वि० सं० ५२० (ई० स० ४६३) के ताम्रपत्र से उद्धृत किया गया है और चौथा अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० ४, ५, ९, १३, १६)।

ळ—वेदों के अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य में इस अक्षर का प्रयोग नहीं

मिलता, परन्तु संस्कृत शिलालेखों में इसका प्रयोग 'ल' या 'ड' के स्थानों में मिल जाता है। दक्षिण के शिलालेखों में यह विशेष रूप से मिलता है। गुज-रात से लगाकर कन्याकुमारी तक यह अक्षर अब तक बोला और लिखा जाता है। राजपूताने में भी यह बोला तो जाता है किन्तु इसके स्थान में 'ल' लिखा जाता है (जो सर्वथा अशुद्ध है)।

इसका पहिला रूप उपर्युक्त रुद्रदामा के लेख से उद्धृत किया गया है (प्रा० लि० २)। दूसरा रूप दक्षिण के सोलंकियों के ई० स० की नवीं शताब्दी से लगाकर ग्यारहवीं शताब्दी तक के लेखों में पाया जाता है। तीसरा रूप दूसरे रूप से मिलता हुआ ही है।

क्ष—यह वर्ण नहीं किन्तु संयुक्त वर्ण है, जो क और ष के मिलने से बना है। ई० स० की दसवीं शताब्दी तक के शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों और पुस्तकों में इसके दोनों वर्ण अन्य संयुक्ताक्षरों के समान मिलाकर लिखे जाते थे। परन्तु पीछे के लेखकों ने सुन्दरता की धुन में इसका रूप ऐसा विलक्षण बना दिया कि उक्त वर्णों का कहीं लेशमात्र भी बचने न पाया और एक विल-क्षण ही रूप बन गया, जिससे कई लेखकों ने इसको वर्णमाला में स्थान दिया, जैसे कि 'त्र' को अब दिया जाता है। इसका पहिला रूप क्षत्रप राजा सोडास के मथुरा के लेख से उद्धृत किया गया है। दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ है और तीसरा हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों में मिल जाता है। अन्य दो रूप तीसरे के ही भेद हैं।

ज्ञ—यह भी वर्ण नहीं किन्तु संयुक्त वर्ण है जो 'ज' और 'ञ' के मिलने से बना है। ऊपर क्ष के विषय में जो लिखा गया है वह इसके लिए भी चरि-तार्थ होता है। इसका पहला रूप रुद्रदामा के लेख से मिलता है (प्रा० लि० २) दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है; अन्तिम दो रूप हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं।

व्यंजनों के साथ जुड़ने वाले स्वर-चिह्नों की उत्पत्ति कैसे हुई यह पृ० १९७ के ब्लाक में स्पष्ट बताया गया है।

देवनागरी लिपि

—स्वर्गीय पं० श्री केशवदेव मिश्र

[प्रस्तुत लेख हिन्दी साहित्य-सम्मेलन से प्रकाशित "नागरी अंक और अक्षर" नामक पुस्तक से हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की अनुमति से यहाँ पर लिया गया है। देवनागरी लिपि का ऐतिहासिक तथा उसके स्वरूप का शास्त्रीय और वैज्ञानिक विवेचन इसमें होने से इस लेख की उपादेयता और भी बढ़ गयी है। लेखक का स्वर्गवास हो जाने से हम उससे और नये विचार नहीं प्राप्त कर सके। पर हम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवश्य ऋणी हैं अन्यथा इसकी उपयुक्त सामग्री हम प्राप्त न कर पाते।]

विशेष सूचना—इस लेख के आरम्भ में कुल २१ चित्र दिये गये हैं। इन में से प्रत्येक का अलग-अलग विवेचन अलग-अलग परिच्छेद में दिया गया है।

देवनागरी के अक्षरों की बनावट

मैं पहले भारतवर्ष की प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लिपियों पर विचार करना चाहता हूं। दक्षिणी भाषाओं और उनकी लिपियों का देवनागरी अक्षरों से बहुत कम सम्बन्ध है; इसलिये मैं आज व्याख्यान में उनका वर्णन नहीं करूँगा। भारतवर्ष की शेष पाँच ही ऐसी भाषायें मिलती हैं जिनकी लिपियों पर विचार करना, उनकी उत्पत्ति पर ध्यान देना और उनकी रचना पर ख्याल करना आवश्यक है। आज मैं इस व्याख्यान द्वारा बतलाऊँगा कि किस प्रकार से विकास-सिद्धान्तानुसार देवनागरी अक्षर वर्तमान अवस्था में आये। इन अक्षरों के सहारे कैसे-कैसे और कब-कब अन्य लिपियों का प्रचार हुआ और उन लिपियों के अक्षरों से कैसे ज्ञात होता है कि उनका मूलाधार भी यही देवनागरी अक्षर थे। जिन पाँच भाषाओं का ऊपर मैंने संकेत किया है वे बंगाली, मराठी, गुजराती, हिन्दी और पंजाबी हैं। उर्दू का सम्बन्ध फारसी तथा अरबी से है, इसलिए मैं उस लिपि

चित्र नं० ९

चित्र नं० १०

चित्र नं० ११.

चित्र नं० १२.

चित्र नं० १३.

चित्र नं० १४. चित्र नं० १५

चित्र नं० १६ चित्र नं० १७.

चित्र नं० १८ चित्र नं० १९.

सम्बन्ध है। ये दोनों प्रश्न अत्यावश्यक हैं। मैं प्रथम दूसरे प्रश्न पर विचार करूँगा और पहले पाँच चित्रों में इन चारों लिपियों के व्यंजनों पर ध्यान दिलाऊँगा। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इन सब लिपियों की वर्ण-माला समान है। गुरुमुखी में 'ज्ञ' और 'क्ष' नहीं मिलते, जिसका कारण उच्चारण की असुविधा जानना चाहिये। यदि हम दीर्घ दृष्टि से इन अक्षरों की रचना पर ध्यान देंगे तो हमें स्पष्ट रीति से ज्ञात हो जायगा कि किस भाषा की लिपि में कौन अक्षर किस शताब्दी में लिया गया है।

देवनागरी और अन्य कतिपय लिपियाँ

चित्र नं० १ में लिपियों का क्रम—(१) देवनागरी (२) गुरुमुखी (३) बंगाली (४) गुजराती है। इनमें कवर्ग का विधान है। ककार प्रायः चारों लिपियों के मिलते हैं। हाँ, रूप कुछ अवश्य बदल दिये गये हैं और भिन्न लिपि की प्रसिद्धि के लिये किसी अंश तक यह आवश्यक भी था। घकार में देवनागरी बँगला और गुजराती अक्षर मिलते हैं; परन्तु गुरुमुखी के घकार में अन्तर है। इस अन्तर के दो ही कारण हो सकते हैं; या तो देवनागरी अक्षरों का घकार उस समय जैसा न था जब गुरुमुखी लिपि के प्रवर्तकों ने उसका अनुकरण किया या लिपि के संचालकों ने जान-बूझ कर अपनी सुगमता इसकी रचना के परिवर्तन में समझी। गकार चारों लिपियों का मिलता है, ङकार में भी कुछ अधिक अन्तर नहीं। एक ङकार के परिज्ञान में दूसरी लिपियों के ङकार का सहसा बोध हो सकता है।

देवनागरी के तथा कुछ अन्य लिपियों के कुछ अक्षर

चित्र नं० २ में चकार बँगला का उलटा है किन्तु रूप वही है। गुजराती का जकार भिन्न है। झकार-जकार में बँगला अक्षर देवनागरी लिपि से भिन्न कर दिये गये हैं। गुरुमुखी में झकार का और जकार में भिन्न-भिन्न रूप बतलाने के लिये झकार को उलटा जकार कर दिया है। टकार, ठकार, घकार चारों लिपियों में समान ही हैं।

कतिपय अक्षर साम्य—

चित्र नं० ३ ढकार चारों लिपियों का मिलता-जुलता है। बँगला में

णकार भिन्न है, कारण यह है कि बँगला अक्षरों के 'ण' और 'न' में कुछ अधिक अन्तर नहीं। सर्वसाधारण तो इसके उच्चारण में कुछ भेद ही नहीं करते। हाँ, लिपि में और भी प्रामाणिक ग्रन्थों में नकार और णकार का अन्तर दिखलाया जाता है। गुरुमुखी और बँगला अक्षरों के तकारों में अधिक अन्तर जान पड़ता है, मगर रूप का अनुकरण अवश्य ही किया गया है। थकार में गुरुमुखी अक्षरों में कुछ अन्तर है, इसके परिवर्तन का कारण गुरुमुखी का खकार प्रतीत होता है, परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से वह अन्तर भी मिट जाता है। दकार सब के एक ही से हैं। धकार गुरुमुखी का न्यारा है। इसका कारण नागरी अक्षरों के परिवर्तन स्थान से जाना जा सकता है। नकार समान ही है। केवल गुरुमुखी में रूप कुछ बदल गया है।

देवनागरी का रेफ

चित्र नं० ४ में पकार बँगला लिपि का भिन्न प्रतीत होता है, परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से वह अन्तर भी मिट जाता है। केवल लिपि की विलक्षणता ही मूल कारण है। फकार में केवल गुरुमुखी लिपि वालों ने अन्तर डाल दिया है। बकार-मकार भी गुरुमुखी-वालों ने मिल जाने के भय से भिन्न-भिन्न निर्माण किये हैं। गुजराती बकार का घेरा विलक्षण है। उसी से अन्तर बढ़ गया है। मकार, यकार सब के समान हैं। रेफ में गुरुमुखी और बँगला अक्षर नहीं मिलते। देवनागरी अक्षरों के वर्तमान अवस्था में आने से पूर्व रेफ बहुत रूपान्तरों को धारण कर चुका है। हाँ, जिस सोलहवीं शताब्दी में गुरुमुखी और बँगला भाषाओं के भाषियों ने यह अक्षर देवनागरी लिपि से अपनी लिपियों में लिया उस समय का रेफ उनसे अधिक मिलता-जुलता था। जहाँ उन लिपियों के रेफ वहीं रहे, नागरी के रेफ में कुछ और परिवर्तन हो गया। गुजराती लिपि के अक्षरों की अधिक समानता का कारण यह है कि यह लिपि इन लिपियों में सबसे पीछे प्रचलित हुई।

देवनागरी अक्षरों का प्रभाव

चित्र ५ में लकार सबके समान हैं। लकार गुरुमुखी का भिन्न है। गुरुमुखी में शकार, षकार का अन्तर एक बिन्दु डालकर दिखलाया है। शकार के रूप

को हटा देने का कारण अधिकतर रूपों के परस्पर मिल जाने का भय था। षकार चारों लिपियों में समान है। सकार भी मिलता है। क्षकार और ज्ञकार गुरुमुखी में नहीं मिलते। गुजराती में संयुक्त अक्षरों से बना लिये गये हैं। बँगला (ज, ञ) को मिलाकर ज्ञ का रूप बना लिया है। मेरा विश्वास है कि यदि ध्यानपूर्वक हम विचार करें तो हमें इन चार प्रकार की लिपियों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध भली-भाँति ज्ञात हो सकता है। इतिहास द्वारा हम बतला सकते हैं कि १३वीं सदी में बँगला, सोलहवीं सदी में गुरुमुखी और अनुमानतः सत्रहवीं सदी में गुजराती लिपि का प्रचार हुआ। दसवीं सदी में इन तीनों लिपियों का पता न था, जबकि देवनागरी लिपि का सम्बन्ध आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व तक के अक्षरों में मिलता है, इसलिये जहाँ हम चारों लिपियों को परस्पर मिला-जुला पाते हैं वहाँ हम यह भी निर्भय होकर अनुमान से कह सकते हैं कि इन लिपियों की रचना देवनागरी अक्षरों के आधार पर हुई है। अब मैं स्वरों द्वारा बतलाऊँगा उनमें कितना सम्मिलन है।

चार लिपियों का साम्य

चित्र नं० ६ में इन चारों लिपियों का परस्पर इतना घनिष्ठ संबंध है कि प्रायः सब दीर्घ समान हैं। आकार चारों लिपियों का मिलता-जुलता है। बँगला लिपि में एक रेखा कम कर दी गई है। गुरुमुखी के आकार में रूप को रखते हुए भी किंचित अन्तर दिखाया गया है। इकार में भी उसी नियम का अनुकरण किया गया है। गुजराती में उलटा रूप दिखलाया है। गुरुमुखी में नीचे की रेखा ऊपर जोड़कर भेद बना दिया है। उकार चारों के समान है। ऋकार में भी कुछ अन्तर नहीं। यही हाल ऌ का ऐकार में बंगाली लिपि विपरीत है। गुजराती अक्षरों में अकार पर ऐकार की मात्रा बढ़ा कर काम ले लिया है। इस चित्र द्वारा भी स्पष्ट है कि चारों लिपियों की वर्णमाला एक-सी है और देवनागरी अक्षरों में ही कहीं-कहीं परिवर्तन कर स्वरों को बना दिया है।

चारों लिपियाँ एक ही नियम पर आधारित

जैसा कि चित्र नं० ७ में स्वरों का पारस्परिक सम्बन्ध बतलाया है, ठीक उसी प्रकार से मात्राओं में भी सम्बन्ध ज्ञात होता है। यहाँ मात्राओं को भी

उनके ह्रस्व रूपों में लिया गया है। अकार, इकार, की मात्राओं में लेश भी अन्तर नहीं। हाँ, लेख-प्रणाली में बंगला गुजराती और अक्षरों में सौंदर्य के लिए रेखा बढ़ा दी गई है। उकार में बँगला लिपि के संचालकों ने अन्तर दिखलाया है और ह्रस्व उकार को दीर्घ उकार का रूप दे दिया है। उकार में बँगला अक्षर फिर भिन्न है। गुरुमुखी लिपि में नियम वही हैं, हाँ, रेखा को कम कर दिया है। आकार में देवनागरी और गुजराती समान है। गुरुमुखी में ऊपर की रेखा से ही काम ले लिया है। बँगला में उसका रूप विभक्त करके दिखलाया है। अनुस्वार सबके समान हैं। चित्र नं० ७ से भी स्पष्ट है कि यह चारों लिपियाँ एक ही नियम पर चलायी गयी हैं।

देवनागरी लिपि के अक्षरों का परिवर्तन—आदि रूपों से

यहाँ तक तो मैंने व्याख्यान के पहिले भाग को समाप्त किया है। इन चित्रों से मुझे इतना ही सिद्ध करना था कि बँगला, गुजराती तथा गुरुमुखी लिपियों के मूलाधार देवनागरी अक्षर हैं। व्यंजनों, स्वरों, मात्राओं और हिस्सों में इन तीनों लिपियों के संचालकों ने देवनागरी अक्षरों का समय-समय पर अनुकरण किया है। मैंने इस विषय पर अभी बहुत अधिक विचार नहीं किया है और न मेरे पास ऐतिहासिक सामग्री है। पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि कुछ काल के पश्चात हमें पता लग जायगा कि किस शताब्दी में किस देश वालों ने अपनी लिपि देवनागरी लिपि में से बनाई है। देवनागरी अक्षरों की रचना में परिवर्तन होता रहा है और आगे के पाँच चित्रों द्वारा मैं बताऊँगा कि महाराज अशोक के समय से आज तक इसी लिपि के अक्षरों में क्या-क्या परिवर्तत हुए। भारतवर्ष में जो सबसे पुरानी किताबें मिली हैं, अथवा जितने खुतबे मिले हैं, उनकी वर्णमाला से ये पाँच चित्र लिये गये हैं। उनके आदि रूप और विकास सिद्धान्तानुसार उनके रूपान्तरों का दिग्दर्शन मात्र इन चित्रों में कराया गया है।

महाराज अशोक काल के गद्य और पद्य

चित्र नं० ८ में ग घ, और च छ ये चार अक्षर दिखलाये गये हैं, आदि रूप वे हैं जो महाराज अशोक के समय में थे, और अन्तिम रूप वे हैं जो आजकल हम लिखते हैं। आपको यदि दूसरे चित्र के बँगला चकार का ध्यान

हो तो आप तत्काल ही पहिचान लेंगे कि इस चित्र के चकार का द्वितीय रूप ही बँगला का चकार है, अर्थात् बँगला लिपि उस समय निर्माण की गयी थी जिस समय देवनागरी अक्षरों का चकार ऐसा था। मैंने यहाँ केवल चार-चार, पाँच-पाँच रूप दिखलाये हैं, वस्तुतः इससे कहीं अधिक हैं। जिन्हें इस विषय में अधिक परिज्ञान की उत्कण्ठा हो वे श्रीयुत गौरीशंकर ओझा का बनाया नक्शा देखें। अस्तु, शताब्दियों के परिवर्तन के पश्चात् आज देवनागरी लिपि का रूप सुन्दरता को प्राप्त हुआ है। पुरानी लिपि के अक्षर भद्दे और बेडौल थे।

ज, झ और ट, ठ का रूप

नवें चित्र में ज, झ, ट, ठ के चार अक्षर दिखलाये हैं। चार लिपियों में आज भी टकार, ठकार प्रायः समान ही हैं और प्राचीन काल की लिपियों से जिनका पारस्परिक सम्बन्ध भी अधिक है मगर जकार और झकार में कहीं-कहीं अन्तर है। बँगला झकार को समझने के लिये, जिसे दूसरे चित्र में दिखलाया था, इस नवें चित्र के छह झकारों में से चौथे पर ध्यान देना उचित होगा। इसकी एक नीचे की रेखा को ऊपर ले जाकर सुन्दर बनाने के भाव से बदल दिया है। बँगला लिपि का जकार भी सातों जकार के रूपों में से चौथा जकार है। इन्हीं कारणों से मेरा विश्वास यह है कि नवें में जकार के सात और झकार के जो छह रूप दिखलाये गये हैं उनमें से जिस शताब्दी में चौथा जकार और चौथा झकार ऐसे थे, उसी शताब्दी में बँगला लिपि का निर्माण हुआ।

चारों लिपियों में उकार की समानता

दसवें चित्र में चारों लिपियों के अक्षरों में उकार की समानता दिखलायी गयी है। उकार में अन्तर अवश्य है। गुरुमुखी का तकार दसवें चित्र के तीसरे तकार से बनाया गया है, हाँ, रेखा कुछ अधिक बढ़ा दी गयी है। थकार में अधिक अन्तर था। गुरुमुखी का थकार और इस चित्र के सब थकारों में से चौथे थकार को देखिये, कैसे परस्पर मिल जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय गुरुमुखी लिपि बनी थी उस समय देवनागरी लिपि का थकार ऐसा न था जैसे कि अब है वरन् गुरुमुखी के थकार के समान था। यह समय

अनुमान से सत्रह् का प्रारम्भ काल था। इन अढ़ाई शताब्दियों में बहुत अन्तर पड़ गया। दकार चिरकाल से वर्तमान रूप को धारण कर चुका था इसीलिये सभी लिपियों में उसका एक रूप समान है। इस चित्र से और भी स्पष्ट होता है कि ये चारों लिपियाँ देवनागरी अक्षरों से निकली थीं।

अक्षरों की रचना का बोध

चित्र नं० ११ में अक्षरों की रचना का बोध भली भाँति हो सकता है। बकार के रूप को सुन्दर बनाने के लिये कितने साधन किये गये। भकार और मकार कैसे आरम्भिक रूपों को लेकर उठे और किस प्रकार से अन्त में जाकर एक दूसरे के समक्ष बन गये। यकार और लकारों की उत्पत्ति विकास सिद्धान्त के अनुसार उसी क्रम से बनी है। मकार, यकार, लकार, सभी लिपियों के समान हैं, जो किंचित अन्तर भी है वह ग्यारहवें चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है, केवल गुरुमुखी के बकार का रूप नहीं मिलता। उसका कारण कदाचित असुविधा के विचार से परिवर्तन कर देना हो।

बकार, षकार और सकार की सुगमता

१२वें चित्र में केवल बकार, षकार और सकार तीन अक्षर दिखलाये गये हैं। गुरुमुखी के बकार में केवल अन्तर है; शेष सब लिपियों के बकार, षकार, सकार मिलते हैं। यदि गुरुमुखी लिपि में रेफ उपस्थित न होता तो बकार को रूपान्तर में ले जाने की आवश्यकता न पड़ती। सुगमता के बिना और इसका विचार भी क्या हो सकता है।

देवनागरी ही चार लिपियों के अक्षरों का स्रोत और विकास का सिद्धान्त

नं० ८ से १२ तक पाँच चित्रों से मैंने दूसरे प्रश्न का भी उत्तर दिया है। यदि आप भी दीर्घ दृष्टि से समान रूप से इन चित्रों पर विचार करेंगे तो आपको ज्ञात हो जायगा कि जहाँ अन्य सब लिपियों के बनने का काल भी हमें ज्ञात हो सकता है, चार लिपियों की वर्णमाला देवनागरी अक्षरों से ली गयी है, वहाँ इन लिपियों के जिन अक्षरों में परस्पर समानता है उनको छोड़कर अन्य अक्षरों पर ध्यान देने से आपको ज्ञात हो जायगा कि किसी समय में देव-नागरी अक्षरों का क्या रूप था और उनसे कैसे अन्य लिपि वालों ने अपनी-

अपनी वर्णमाला बनायी। इस प्रकार हम एक-एक अक्षर की उत्पत्ति पर विचार कर सकते हैं। मगर समय के अभाव तथा ठीक-ठीक सामग्री न मिलने के कारण हम इस विषय को आज यहीं विश्राम देते हैं। इस समय मैं आपके सम्मुख सात चित्र ऐसे और रक्खूँगा जिनसे आपको पता लग जायगा कि इन अढ़ाई हजार वर्षों में क्यों वर्णमाला में इतना परिवर्तन हुआ ?

विकास सिद्धान्त का नाम मैंने कई बार पहले भी लिया है। संक्षेपत: इसका भाव यह है कि जन्म दिन के पश्चात् प्रत्येक शक्ति सम्पन्न वस्तु अपने आपको बाहर फैलाती है। फैलाने में आकार, वर्णादि सभी सृष्टि क्रमानुसार सुन्दरता को उपलब्ध करना चाहते हैं। यंत्रालयों द्वारा इस विषय में नित्य नयी से नयी वर्णमाला बनती जाती है। अंग्रेजी अक्षरों में आज सैकड़ों प्रकार की वर्णमाला है जिन्हें सुन्दर अलंकारों से विभूषित और सुसज्जित किया जाता है। हिन्दी समाचार पत्रों तथा यंत्रालयों के द्वारा देवनागरी अक्षरों में भी सुन्दरता तथा लावण्य आता जाता है। १३वें चित्र में ऋकार को क्रमबद्ध करने के लिये एक चार कोन आकृति बनायी गयी है। उसमें बिन्दुओं द्वारा रेखाएँ डाली गयी हैं ताकि उसको सुडौल बनाने में शृंखलाबद्ध क्रम बन जाय, इस शैली को ड्राइंग कहते हैं।

चित्र नं० १४ में जकार की आकृति दिखलायी है। जिस प्रकार स्वरों में ऋकार दिया गया है ऐसे ही व्यंजनों में जकार है। इस क्रमबद्ध नियम से समानता, रूपादि का सहसा परिचय होता है। रचना-क्रम को जानने से लिखने में सुगमता तथा सुन्दरता का भाव उत्पन्न होता है। बस, इसी क्रम से वर्ण जो किसी समय बेडौल और भद्दे थे आज सुडौल और सुन्दर दीख पड़ते हैं।

चित्र नं० १५ में घकार की रचना का क्रम दिया गया है, इसी क्रम के अनुसार हम इसे अलंकृत (आर्नामेण्टल) करके आगे दिखावेंगे जिससे ज्ञात होगा कि शृंखलाबद्ध नियमों में लाने से साधारण से साधारण अक्षर भी मनो-रंजक बन सकता है।

चित्र नं० १६ में जकार को पहिले रचनाक्रम से एक व्यवस्थित रूप में लाया गया है। उसके पश्चात् उसमें दो प्रकार के रंगों से एक चित्र बनाया गया है। जिससे उसका सौन्दर्य अतिशय बढ़ गया है।

चित्र नं० १७ में भी वही क्रम रक्खा गया है। केवल इसकी चित्रकारी न्यारी बनायी गयी है। भिन्न-भिन्न रंग भर दिये हैं और उन्हें ऐसे क्रम से सजाया गया है कि आँखों को भला जान पड़ता है।

१८वाँ चित्र १४वें चित्र का सजा हुआ रूप है। वहाँ केवल काली स्याही से ड्राइंग की गयी थी। मगर इस चित्र में भिन्न-भिन्न चित्रकारी के संग-संग दो रंगों को मिला दिया है और एक रंग को प्रधानता देकर चित्र को सजा दिया गया है।

पंद्रहवें चित्र का प्रतिबिम्ब

उन्नीसवाँ चित्र पन्द्रहवें चित्र का प्रतिबिम्ब है। उसमें साधारण रचनाक्रम का प्रदर्शन था, इसमें विविध रंगों की छटा है और तिस पर चित्र विचित्र बेलों से अलंकृत करके दिखलाया गया है।

चित्र नं० १३ से १९ तक सात चित्रों से आपको विदित होगा कि वर्तमान समय में अक्षरों को उत्तम बनाने और अलंकृत करने की जो सामग्री हमारे सम्मुख उपस्थित है वह आज से दो हजार वर्ष पूर्व न थी। महाराज अशोक के समय की वार्णलाला में एक भी ऐसा अक्षर नहीं मिलता जो सौन्दर्य और लावण्ययुक्त हो। इन चित्रों को दिखलाने और अढ़ाई हजार वर्ष के अक्षरों को बार-बार बतलाने का केवल अभिप्राय यह है कि ये सभी अक्षर क्या आकार, क्या रूप और क्या सुन्दरता सब में क्रमशः उन्नत होते आये हैं।

अंकों की अन्वेषण की सामग्री

२०वाँ चित्र बड़ी कठिनाई से प्रस्तुत किया गया है। इसमें बहुत-सी अन्वेषण की सामग्री मिलेगी। सबसे पहिले आप दूसरे खाने में पहिली, पाँचवीं और दसवीं शताब्दी के अंकों पर विचार कीजिये। आपको स्पष्ट ज्ञात होगा कि पहली शताब्दी में एक अंक के लिये एक रेखा, दो के लिये दो और तीन

के लिये तीन रेखायें थीं, चार के लिये चार रेखाओं को परस्पर मिला दिया था। परन्तु पाँचवीं शताब्दी में यह क्रम बदल दिया गया। रेखाओं में अर्द्ध-चन्द्र के समान गोल घेरे दिये गये और दसवीं शताब्दी में उन्हीं गोल घेरों से १, २, ३, अंक बन गये। मैं पहिले बतला चुका हूँ कि बँगला, गुजराती और गुरुमुखी लिपियों की वर्णमाला देवनागरी अक्षरों से प्रवाहित हुई है। अब मैं बतलाऊँगा कि न केवल इन लिपियों के संग-संग देवनागरी अंक गये हैं परन्तु अरबी, फ़ारसी और अंगरेजी लिपियों में भी देवनागरी अंकों से अंक लिये गये हैं। इंगलैण्ड आदि देशों में चौदहवीं शताब्दी से पूर्व १, २, ३ अंकों के लिखने का क्रम वही था जो पहिली शताब्दी में भारतवर्ष में था। अर्थात् तीन को बतलाने के लिये तीन रेखायें लिखनी पड़ती थीं।

ग्यारहवी सदी के अंकों का स्वरूप

दसवीं शताब्दी के अंकों को पहिले अंकों से मिलाकर देखिये। ये वे अंक हैं, जो ग्यारहवीं शताब्दी में मिस्र देश में थे और यहाँ से यूनान और इटली पहुँचे। अब इन १२वीं शताब्दी के अंकों को चौदहवीं शताब्दी के अंकों के साथ मिलाकर जाँच कीजिये। इनमें आप बहुत थोड़ा अन्तर पावेंगे। अब आप भारतवर्ष की दसवीं शताब्दी के अंकों और मिस्र देश के बारहवीं शताब्दी के अंकों और इंगलैण्ड के चौदहवीं शताब्दी के अंकों को मिलाइये, आपको बहुत थोड़ा अन्तर मिलेगा।

अरबी और देवनागरी अंकों का घनिष्ठ सम्बन्ध

इधर दसवीं शताब्दी में जो अंक भारतबर्ष की देवनागरी लिपि में थे उनको दशवीं शताब्दी की अरबी लिपि के अंकों के साथ जोड़कर देखिये कितने मिलते-जुलते हैं। अरबी लिपि से ही वर्तमान फ़ारसी लिपि निकली और उसके यहाँ से ही अंक आये। अब मैं आपका ध्यान इस चित्र के तीसरे खाने की ओर दिलाता हूँ। इसमें अंग्रेजी देवनागरी और फ़ारसी अंकों को दिखलाया गया है। जितना अधिक ध्यान देंगे, आपको उतना ही अधिक निश्चय होगा कि इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है और ये सब देवनागरी अंकों से लिये गये हैं।

सबसे पुरानी उपलब्ध देवनागरी चित्र लिपि

इस विवेचन का २१वाँ चित्र अन्तिम चित्र है। मैंने इस चित्र को दिखलाने की जरूरत इसलिए समझी है कि आजकल के वैज्ञानिक सज्जनों का विश्वास है (और कोई बुद्धिपूर्वक हेतु इसके विपरीत भी नहीं दिखता जिससे हम उनके कथन का विश्वास न करें) कि प्राचीन समय में प्रायः सब देशों में चित्र लिपि (फिगर व पिक्चर राइटिंग) का नियम था। चीन और अमेरिका में इसके अनेक चिह्न मिले हैं। भारतवर्ष में अभी तक बहुत प्रमाण नहीं मिले। उनमें से भी एक ऐसा पत्थर मिल गया है जिसमें एक गोपाल की कहानी, गौओं का वर्णन, एक राजकन्या को दुष्टा के हाथ से बचाने के लिये युद्ध करना आदि लिखे हैं। यह सारी कहानी चित्रों में दी हुई है और मुझे मेरे मित्र श्रीयुत गौरीशंकर ओझा (क्यूरेटर राजपूताना म्यूजियम, अजमेर) ने समझाया था। यह पत्थर अजमेर में विद्यमान है। जहाँ तक मुझे पता मिला है यह ऐसा पत्थर है जिससे इस विषय का विद्यमान होना भी ज्ञात होता है। सारनाथ में भी ऐसे पत्थर उपस्थित हैं जिनमें जातकों का वर्णन, बुद्ध के उपदेश चित्रों द्वारा मिलता है। अब मैं इस चित्र की कहानी बतलाता हूँ। अमेरिका के उत्तर में एक बड़ी झील है जिसे 'लेक सुपीरियर' कहते हैं। इस झील के समीप एक पर्वत की कन्दरा में यह पत्थर मिला था। उस देश के वासियों का राजा, जिसका नाम किंग फिशर था, अपनी सेना को लेकर उस पर्वत की ओर युद्ध करने आया।

वह एक ऐसे दूर देश से आया था जिससे आने में उसे पूरे तीन दिन लगे और एक ऐसे मार्ग से आया था जिसमें नदी पार करनी पड़ती थी। उसके संग ईक्यावन मनुष्यों की सेना थी और वह सेनापति बनकर एक घोड़े पर चढ़कर आया था, इत्यादि। अब यह सारी कहानी इस चित्र से निकल सकती है। राजा का नाम किंग फिशर था। यह एक पक्षी का नाम भी है जिसका चित्र अन्यत्र दिया है। वह घोड़े पर सवार था। वह नदी से किश्तियों द्वारा गुजरा। पाँच किश्तियों में जितने मनुष्य बैठे थे, लकीरों से ज्ञात होगा कि उनकी संख्या पूरी ५१ थी। कछुआ नदी का उपलक्षण है। एक दिन तब पूरा होता

है जब सूर्य उदय होकर अस्त हो। आकाश का गोल बनाकर तीन गोल-गोल गेंद सूर्य के आकार को बतलाते हैं। पर्वत में सेना तब ही पहुँची जब शत्रु सेना को परास्त कर दिया। जिस प्रकार से यह कहानी बनाई गई है इसी प्रकार शिलाओं से आजकल वैज्ञानिक तत्ववेत्ता प्राचीन काल का इतिहास निकालते हैं और इस प्रकार की शिलाएँ समय-समय पर भारतवर्ष में बहुत मिलेंगी। मगर यह जानना अभी कठिन है कि जिस समय शिलाओं पर चित्र बनाये गये थे उस समय भारतवासियों की कोई लिपि न थी, या यह कि अन्य देशों के समान इन्हीं चित्रों से भारतवासियों ने अपनी लिपि को वर्णमाला का निर्माण किया।

इन चित्रों से आप अपने प्राचीन सभ्यता के गौरव, अपनी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भाषाओं की लिपियों के सम्मेलन को भलीभाँति जान गये होंगे। यदि मेरे इस व्याख्यान से देवनागरी अक्षरों की लिपि में आपकी श्रद्धा हो गई और आपको अपने देश के कल्याण के लिए इस लिपि को राष्ट्रीयता का रूप देना अभीष्ट प्रतीत होता हो तो मैं समझूँगा कि मेरा परिश्रम निष्फल नहीं गया।

---

११ : प्राचीन अभिलेखों में देवनागरी

—डॉ० कृष्णदत्त बाजपेयी
अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व विभाग,
सागर विश्वविद्यालय म० प्र०

[डॉ० कृष्णदत्त बाजपेयी जी सागर विश्वविद्यालय में प्राचीन इतिहास और पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष हैं। इस विषय के गण्यमान्य और मूर्धन्य विद्वानों में से आप एक हैं। देवनागरी लिपि के प्राचीन अभिलेखों में देवनागरी का स्वरूप किस प्रकार था और आज वह कैसे रूप धारण कर चुकी है इसकी मनोरंजक चर्चा इस रोचक और शास्त्रीय लेख में पढ़िए। श्री बाजपेयी मथुरा में पुरातत्व म्यूजियम के क्यूरेटर थे तथा इस विषय पर आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें 'ब्रजभाषा का इतिहास' के दो खण्ड प्रसिद्ध हैं।]

देवनागरी भारत की प्राचीन राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी का प्रमुख विकसित रूप है। ब्राह्मी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पहले कई धारणाएँ बनाई गई थीं। अनेक विदेशी विद्वान सेमिटिक फोनिशियन, असीरियन या यूनानी लिपि को ब्राह्मी का उद्गम् मानते थे। अपने-अपने मत की पुष्टि में उन्होंने विभिन्न तर्क उपस्थित किए। इन विद्वानों में प्रिंसेप, सैनार, ब्युलर, बेवर और टेलर के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके मतों का खण्डन श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने किया। विविध साहित्यिक एवं पुरातत्वीय प्रमाणों के आधार पर ओझा जी ने यह प्रतिपादित किया कि भारत में लिखने की कला वैदिक युग में भी ज्ञात थी तथा ब्राह्मी की उत्पत्ति इसी देश में यहीं के लोगों द्वारा की गई। ओझा जी के अतिरिक्त रिज डैविड्स, हुल्श, फ्लीट, टामस, कनिंघम आदि कई विदेशी विद्वानों में भी उपर्युक्त ब्युलर आदि के मतों से असहमति व्यक्त की तथा इस बात को स्वीकार किया कि भारतीय ब्राह्मी एक अत्यन्त वैज्ञानिक लिपि है।

ब्राह्मी वैज्ञानिक लिपि है

अब प्राय: यह स्वीकार किया जाता है कि ब्राह्मी की उत्पत्ति भारत में ही स्वतन्त्र रूप से हुई तथा इसी से इस देश की अनेक प्रादेशिक लिपियों का उद्‌भव हुआ। अपनी ध्वन्यात्मक विशेषताओं के कारण ब्राह्मी को सैमिटिक आदि लिपियों की अपेक्षा कहीं अधिक वैज्ञानिक माना जाता है।

ब्राह्मी के विविध रूप

ई० पूर्व पाँचवीं सदी से लेकर लगभग ३०० ई० तक भारत के प्राय: सभी भागों में ब्राह्मी का लगभग एक जैसा रूप प्रचलित रहा। इसके बाद क्रमश: स्थानीय विशेषताएँ इस लिपि में दिखायी पड़ने लगीं। गुप्तकाल में उत्तर भारत में प्राय: नर्मदा-तट तक ब्राह्मी का एक रूप तथा उसके दक्षिण दूसरा रूप प्रचलित हुआ। पहली को 'शंकुशिरा' (नेल हेडेड) तथा दूसरी को 'संपुटशिरा' (बाक्स हेडेड) कहा जाता है। पहली वाली की एक संज्ञा 'सिद्धमातृका' भी हुई। ६०० ई० के बाद से लेकर प्राय: ९०० ई० तक ब्राह्मी को 'कुटिला' कहा जाने लगा, क्योंकि तब अक्षर अधिक लचकदार होने लगे। इसका एक रूप शारदा कहलाया। धीरे-धीरे ब्राह्मी, बँगला, गुजराती, दक्षिणी आदि अन्य अनेक रूप विभिन्न जनपदों में प्रचलित हुए।

ब्राह्मी नागरी कैसे बनी ?

ब्राह्मी के विकास को देखने से पता चलता है कि ई० ७वीं-८वीं शती से उसे नागरी का स्वरूप प्राप्त होने लगा। ऐसी बात नहीं कि इसके पहले ब्राह्मी के कोई वर्ण आजकल की नागरी जैसे नहीं थे। तीसरी चौथी शती के कई अभिलेखों में हमें नागरी अक्षर मिलने लगते हैं। ब्राह्मी की "नागरी" संज्ञा के साथ "देव" शब्द कब और क्यों जुड़ा, यह निश्चित रूप से बताना कठिन है। ब्राह्मी की उत्पत्ति में दैवी भाव निहित है तथा कालांतर में उसका जो नागरी रूप बना उसमें वेदों की भाषा संस्कृत लिखी जाने लगी। संभवत: इसी कारण इस लिपि को 'देवनागरी', संज्ञा प्राप्त हुई। "नगर" संभवत: पाटलिपुत्र का द्योतक था, जहाँ इस लिपि का प्रारम्भिक प्रयोग हुआ। शायद

इसीलिए नगर से सम्बन्धित लिपि नागरी कहलायी। उत्तर भारत के मंदिरों की "नागरी" शैली भी संभवतः इसी कारण कहलायी।

देवनागरी अक्षरों के उत्कीर्ण रूप

नवीं से बारहवीं शती के बहुसंख्यक शिलालेख, ताम्र-पत्र, मृण्मुद्राएँ, सिक्के आदि मिले हैं, जिन पर स्पष्ट रूप से नागरी लिपि का प्रयोग मिलता है। अक्षरों की शिरोरेखाएँ नखाकृति के स्थान पर अब लम्बी मिलने लगती हैं तथा अक्षरों में भी लंबी लकीरों का प्रयोग मिलने लगता है। दीर्घ "आ" की मात्रा अक्षर के आगे पूरी सीधी रेखा के रूप में मिलने लगती है। लघु तथा दीर्घ इकार और उकार की मात्राओं में भी अब अन्तर मिलने लगता है। नवीं शती के पहले प्रायः ए, ओ आदि के लिए मात्राओं को पीछे लगाने की प्रथा थी। पृष्ठ मात्राओं की यह परिपाटी बाद में भी कई शताब्दियों तक जारी मिलती है, जैसा कि फलक २ के चित्र संख्या 'ग' में स्पष्ट है। चित्र 'घ' में "ओ" के लिए पृष्ठ मात्रा का प्रयोग किया गया है, पर "ए" के लिए नहीं। चित्र "च" में भी ऐसा ही मिलता है।

पूर्व मध्यकालीन अभिलेखों में देवनागरी अक्षर

पूर्व मध्यकालीन अभिलेखों में अक्षरों की बनावट भी उल्लेखनीय है। कुछ अक्षरों में पुराने रूप अब भी मिलते हैं, शेष में परिवर्तन हो गया तथा उनका प्रकार आजकल की नागरी-जैसा मिलता है। कुछ शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों पर अक्षरों को अत्यंत कलापूर्ण ढंग से उत्कीर्ण किया गया है तो कहीं उनकी लिखावट अत्यंत साधारण है। यह लेखकों तथा उत्कीर्णकों की कुशलता पर अवलंबित रहता था।

उत्तर मध्यकाल के अभिलेखों में देवनागरी अक्षर

नवीं से लेकर उत्तर मध्यकाल के अन्त (१८वीं श०) तक के अभिलेख बड़ी संख्या में उत्तर भारत के विभिन्न भागों से मिले हैं। वर्तमान उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार तथा बंगाल के कुछ भाग में नागरी का प्रयोग एक दीर्घकाल तक मिलता है। स्थानीय विशेषताएँ १२वीं शती के बाद अधिक स्पष्ट रूप में मिलने लगती हैं। बंगाल में पाल शासकों—धर्मपाल देवपाल

आदि के लेख नागरी लिपि में मिले हैं। अनेक ग्रंथ भी इसी लिपि में प्राप्त हुए हैं। यही बात गुजरात की भी है। राजस्थान, मालवा और गुजरात की प्राचीन चित्रकला में भी देवानागरी का प्रयोग व्यापक रूप से मिलता है। इनमें राग-रागिनियों तथा बारह मासों वाले चित्र विशेष उल्लेखनीय हैं। सतसई, रसिक प्रिया, सुन्दर शृंगार आदि ग्रंथ भी सचित्र मिले हैं।

प्राचीन मुद्राओं पर देवनागरी अक्षर टंकित

प्राचीन मुद्राओं पर भी ब्राह्मी का प्रयोग मिलता है। यहाँ महमूद गजनवी के टंक सिक्कों की चर्चा मनोरंजक होगी। ये सिक्के १०२७-२८ ई० में लाहौर की टकसाल में ढलवाये गये। इस पर एक ओर कलमा कूफी लिपि में लिखा है। दूसरी ओर उसी का संस्कृत में अनुवाद है, जो देवनागरी में लिखा है। यह अनुवाद इस प्रकार है—"प्रत्यक्तमेक मुहम्मद अवार नृपति महमूद।" सिक्के के किनारे नागरी में यह लेख लिखा है "अव्याक्ती उनमें अयं टंकं हत महमूद पुर संवती ४१८।" कुछ पर यही लेख इस प्रकार है—अयं टंक महमूद-पुर घटित ताजिकी ये संवती ४१८।"

यहाँ हिजरी में वही दिया है। जब नागरी का प्रयोग यह सूचित करता है कि मुस्लिम शासकों द्वारा भी ११वीं शती में नागरी का प्रयोग किया गया, जो उस समय की प्रचलित लिपि थी।

प्राचीन अभिलेखों की नागरी लिपि का सम्यक् अध्ययन आवश्यक है

प्राचीन अभिलेखों पर नागरी लिपि का सम्यक् अध्ययन अपेक्षित है। इससे विभिन्न भूभागों में इस लिपि के स्वरूप का पता चल सकेगा। अभी इस दिशा में बहुत कम कार्य किया जा सका है।

अ = अ
अ = अ
इ = इ
उ = उ
ए = ए
क = क
ख = ख
ग = ग
घ = घ
ङ = ङ
च = च
छ = छ
ज = ज
झ = झ
झ = झ
ञ = ञ
ट = ट
ठ = ठ
ड = ड
ड = ड
ढ = ढ
ण = ण
ण = ण
त = त
थ = थ

द = द
ध = ध
न = न
प = प
फ = फ
ब = ब
भ = भ
म = म
य = य
र = र
ल = ल
व = व
श = श
ष = ष
स = स
ह = ह
ळ = ळ
क्ष = क्ष
ज्ञ = ज्ञ
का = का
कि = कि
की = की
कु = कु
कू = कू
के = के

तीसरा अध्याय

देवनागरी लिपि की भाषा-संबंधी समस्याएँ

१ : प्रादेशिक भाषाओं के लिए एक लिपि

[संसदीय हिन्दी परिषद् की पाक्षिक मुख पत्रिका 'राज भाषा' (जो राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा के सहयोग से संचालित है) में राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी के देवनागरी लिपि-सम्बन्धी जो विचार समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं, उनमें से दो अवतरण नीचे लिये गये हैं।]

सभी भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी ही एक लिपि हो सकती है।

भारत की सभी भाषाओं की एक लिपि होनी चाहिए और अच्छा हो यदि वह लिपि देवनागरी हो। यह सुझाव नया नहीं है। पहले भी हमारे नेताओं ने इसी प्रकार का सुझाव कई बार रखा था लेकिन विभिन्न समस्याओं में फँसे रहने के कारण यह आवश्यक नहीं समझा गया कि इस सुझाव को कार्यान्वित कर दिया जाये। आज अधिकांश व्यक्ति चाहते हैं कि वे अपनी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं को सीखें लेकिन जीवन में इतनी अधिक व्यस्तता आ गई है कि जो काम आसानी से हो जाता है उसे ही किया जा सकता है। किसी भाषा को सीखने के पूर्व उसकी लिपि एक समस्या खड़ी कर देती है। यदि सभी भाषाओं की लिपि एक हो जायं तो हमारा यह उद्देश्य भी पूरा हो सकता है कि हम सब अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त दो चार प्रादेशिक भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त करें। मराठी, संस्कृत, गुरुमुखी, गुजराती और उर्दू आदि को देवनागरी लिपि में लिखे जाने से उन भाषाओं के साहित्य का

आनन्द उठाने में अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता है। तमिल, तेलुगू और मलयालम आदि दक्षिण भारत की भाषाओं के बिषय में यह कहा जा सकता है कि कठिनाई उतनी जल्दी हल नहीं होगी। फिर भी उत्तर भारतीयों के लिए यह बात बड़ी उत्साहवर्द्धक होगी और वे इन भाषाओं के सीखने में अधिक रुचि लेंगे। आज देवनागरी लिपि ही हम सब १४ भाषाओं के बोलने वालों को न केवल निकट ला सकती है बल्कि एक दृढ़ सूत्र में बाँध देगी। यह जनसाधारण की सुविधा-मात्र का प्रश्न है। इसका यह तात्पर्य कभी नहीं है कि नागरी लिपि के जानने वाले अपनी लिपि को अन्य प्रादेशिक लिपियों पर लादना चाहते हैं। इस सुझाव पर उदारतापूर्वक सोचा जाए तो निश्चित रूप से लाभदायक सिद्ध होगा। हाँ, इस सम्बन्ध में कुछ लोग यह भी सुझाव रख सकते हैं कि नागरी के बजाय रोमन लिपि को ही स्वीकार कर लेना चाहिये। यह सुझाव सिद्धान्ततः उचित नहीं है। यदि रोमन लिपि को ही स्वीकार करना उचित समझ लिया जाये तो स्वतन्त्रता की भी आवश्यकता नहीं रह जाती है। विदेशी राज्य से भी काम चल सकता था क्योंकि डेढ़ सौ वर्ष से तो चलता ही आ रहा था। इसलिए नागरी लिपि ही सम्पूर्ण देश को एक भाषा मंच पर लाकर खड़ा कर सकती है।[1]

समान लिपि

समान लिपि का चुनाव इस दृष्टि से किया जाय कि उसका प्रयोग कहाँ तक लाभदायक होगा और उसकी व्यावहारिकता कितनी है।

समान लिपि के रूप में देवनागरी का प्रयोग अधिक उपयोगी होगा। देवनागरी के प्रश्न में सबसे बड़ी बात यह है कि संस्कृत का समस्त साहित्य देवनागरी लिपि में ही है।

भय क्यों

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि हिन्दी के विकास और विस्तार के अर्थ यह नहीं है कि प्रादेशिक भाषा के अधिकारों पर किसी भी अन्य भाषा

१—राजभाषा, दिनांक ७ फरवरी १९५७, पृष्ठ ३।

की प्रगति में बाधक नहीं । हिन्दी सरल और लोकप्रिय है, इसका उदाहरण देते हुए राष्ट्रपति ने कहा कि मुझे गत वर्ष पता चला कि मद्रास में गत ३० साल में हुए हिन्दी प्रचार के कारण वहाँ ४० लाख व्यक्ति हिन्दी सीख गये, जबकि अंग्रेजी के २०० साल के राज्य में केवल १ लाख मद्रासी ही अंग्रेजी सीख सके ।[1]

१—राजभाषा, दिनांक २६ जनवरी १९५७, पृष्ठ १ ।

मराठी के दिवंगत साहित्य-सम्राट

श्री न० चि० केलकर जी का अभिमत

२ : एक भाषा : एक लिपि

आजकल हिन्दी प्रचार के कारण कुछ विवाद खड़े हो गये हैं। जैसे— हिन्दी शब्द की परिभाषा क्या है ? हिन्दी और हिन्दुस्तानी इन दोनों शब्दों के अर्थ में क्या भेद है ? किसी भी भाषा की लिपि एक हों या अनेक ? इन बखेड़ों का सब ज्ञान मुझे नहीं है। मैं इतना जानता हूँ कि नागरी लिपि काशी से लेकर रामेश्वर तक हिन्दू-मात्र को प्यारी है और सभी चाहते हैं कि उनकी अपनी भाषा संस्कृत शब्दों से समृद्ध हो।

(———)

३ : राष्ट्र लिपि के रूप में देवनागरी

—डॉ० भोलानाथ तिवारी

[डॉ० भोलानाथ तिवारी हिन्दी भाषा और भाषा-विज्ञान के अधिकारी विद्वान हैं ! वैसे आपके अध्ययन का क्षेत्र हिन्दी भाषा और साहित्य दोनों हैं, पर भाषा-विज्ञान में आपकी गति विशेष रूप से माननीय है। हिन्दी भाषा-विज्ञान से सम्बन्धित उच्च पठन-पाठन के लिए आपने सराहनीय कार्य किया है। प्रस्तुत निबन्ध "राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी" में आपने देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता, सरलता और समर्थता पर अपने विवेचन प्रस्तुत किये हैं, जिनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिपि-विषयक विश्लेषण भी है।

राष्ट्रीय भावना और लिपि सम्बन्धी एकता के लिए श्री तिवारी जी के विचार विचारणीय हैं ।]

राष्ट्र के लिए राष्ट्रलिपि आवश्यक है।

जिस प्रकार किसी बहुभाषी राष्ट्र के लिए राष्ट्र एवम् राज्य-भाषा के रूप में कोई एक भाषा अपेक्षित है, उसी प्रकार बहुलिपि वाले राष्ट्र के लिए राष्ट्र-लिपि के रूप में एक लिपि भी आवश्यक है। कहना न होगा कि भारत इसी प्रकार का एक बहुलिपि वाला राष्ट्र है। स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि किस लिपि को भारत की राष्ट्रलिपि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

भारत की प्राचीन और आधुनिक लिपियाँ

भारत की प्रमुख प्राचीन तथा आधुनिक लिपियाँ ये हैं :— ब्राह्मी, खरोष्ठी, गुप्त, कुटिल, देवनागरी, शारदा, बंगला, तेलुगु, कन्नड़, ग्रंथ, कलिंग, तमिल, वट्टे कुत्तु, मलयालम, गुरुमुखी, गुजराती, मैथिली, मोडी, कैथी, महाजनी तथा उर्दू।

अंग्रेजी के साथ हमें रोमन लिपि मिली है। उसे मिलाकर कुल प्रमुख लिपियाँ २२ हुईं, जिनसे किसी न किसी रूप में भारत का सम्बन्ध है।

उपर्यूक्त सूची पर यदि दृष्टि दौड़ाएँ तो इसके दो वर्ग बनाये जा सकते हैं।

(क) अप्रचलित अथवा प्राचीन लिपियाँ—जैसे ब्राह्मी, खरोष्ठी, गुप्त तथा कुटिल आदि।

(ख) प्रचलित लिपियाँ—जैसे देवनागरी, बंगला, तमिल, गुरुमुखी आदि।

इनमें से जो अप्रचलित लिपियाँ हैं, आज की जनता से पूर्णतः दूर हैं। उनका प्रयोग लेखन में कोई भी नहीं करता। उनकी जानकारी भी मात्र कुछ लिपि-विशेषज्ञों या पुरातत्ववेत्ताओं आदि को ही है। उनमें पुस्तकें भी प्रायः नहीं छपतीं। ऐसी स्थिति में उनको राष्ट्रलिपि बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता मृतभाषा की भाँति उन्हें मृत लिपि कहा जा सकता है।

प्राचीन लिपियों में महाजनी, कैथी, शारदा आदि बिलकुल सीमित क्षेत्रों में और विशिष्ट लोगों द्वारा प्रयुक्त होती हैं; इस प्रकार उनका ज्ञान बहुत ही कम लोगों को है। राष्ट्र की जनसंख्या में उनको जाननेवालों का प्रतिशत अत्यन्त नगण्य। अतएव इनमें कोई राष्ट्रलिपि होने के योग्य नहीं है।

भारत की प्रमुख लिपियाँ

उपर्युक्त दोनों प्रकार की लिपियों को छोड़ देने पर अब भारत की प्रमुख लिपियाँ ही शेष रहती हैं जिनका प्रयोग भारत की प्रमुख एवं महत्वपूर्ण भाषाओं के लेखन में होता है। ये लिपियाँ संबद्ध भाषाओं के साथ नीचे दी जा रही हैं :—

देवनागरी लिपि का प्रयोग

संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश हिन्दी तथा मराठी के लिखने में इसका प्रयोग होता है। मनीपुरी भाषा-भाषी मनीपुरी भाषा के लिए बंगला छोड़कर इसके प्रयोग पर विचार कर रहे हैं। भारत के सिंधी भी अरबी लिपि पर आधारित सिंधी (जो उर्दू से भिन्न नहीं है) को छोड़कर उसके स्थान पर

देवनागरी को अपनाने के पक्ष में होने जा रहे हैं। उर्दू भाषा के लिए भी देवनागरी लिपि के प्रयोग की बात चल रही है। उत्तर प्रदेश में उर्दू-वालों की एक समिति भी बन गई है, जो इस प्रश्न पर सभी दृष्टियों से विचार कर रही है। उर्दू के प्रायः बहुत से प्रसिद्ध कवियों एवं लेखकों का साहित्य देवनागरी लिपि में प्रायः ज्यों का त्यों आ चुका है। उर्दू की, उर्दू साहित्य (इलाहाबाद) तथा कुछ और पत्रिकाएँ भी देवनागरी लिपि में सफलता-पूर्वक प्रकाशित हो रही हैं। पंजाबी भाषा लिखने में भी कुछ लोग देवनागरी का प्रयोग करते हैं। दक्षिण भारत की भाषाओं के तथा बंगला आदि के भी कुछ ग्रंथ देवनागरी में प्रकाशित हो चुके हैं और होने जा रहे हैं। भारत के बाहर नेपाल की लिपि भी देवनागरी है।

उड़िया लिपि—उड़िया भाषा के लिखने में प्रयुक्त होती है।

बंगला लिपि—बंगला लिखने में प्रयुक्त होती है।

कन्नड़ लिपि—कन्नड़ भाषा के लेखन में प्रयुक्त होती है।

तेलुगु लिपि—तेलुगु भाषा के लेखन में प्रयुक्त होनी है।

मलयालम लिपि—मलयालम भाषा के लेखन में प्रयुक्त होती है।

गुजराती लिपि—गुजराती के लेखन में प्रयुक्त होती है।

गुरुमुखी लिपि—पंजाबी के लेखन में प्रयुक्त होती है।

उर्दू या अरबी फारसी लिपि—उर्दू, कश्मीरी तथा सिंधी भाषा के लेखन में प्रयुक्त होती।[१]

रोमन—अंग्रेजी-लेखन में प्रयुक्त होती है। कुछ लोग अन्य प्राचीन व

१—कश्मीरी भाषा के लेखन में पहले शारदा लिपि का प्रयोग होता था। अब केवल कुछ ब्राह्मण परिवार ही शारदा का प्रयोग करते हैं, अतः कश्मीरी भाषा की लिपि शारदा नहीं है, जैसाकि आफिशियल लांग्वेज कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया है, अपितु उर्दू है। कश्मीरी भाषा, सिंधी के लिए प्रयुक्त लिपि भी उर्दू भाषा के लिए प्रयुक्त लिपि से विशेष भिन्न नहीं है।

अर्वाचीन भाषाओं को भी इसमें लिखते हैं। उपर्युक्त प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि देवनागरी का ही राष्ट्रलिपि के रूप में नाम लिया जा रहा है।

सर्वप्रथम राष्ट्रलिपि देवनागरी है—यह बंगाल ने कहा

यह उल्लेख्य है कि राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी के नाम का सामने आना कोई नयी बात नहीं है। आज से लगभग आधी सदी पूर्व सन् १९६४ वि० में एक ऐसे प्रदेश में यह आवाज सबसे प्रथम सुनाई पड़ी थी, जो न तो हिन्दी या मराठी प्रदेश है और न जहाँ देवनागरी लिपि दैनिक काम-काज में ही प्रयुक्त होती है। वह प्रदेश बंगाल था। बंगाल आज इन बातों का चाहे कितना भी विरोधी क्यों न हो, पिछली तथा इस सदी के पूर्वार्द्ध में वह इस क्षेत्र में एक प्रकार से अग्रणी रहा है। इसका कारण यह था कि वहाँ सामान्य प्रबुद्धता अन्य प्रान्तों की तुलना में पहले आई। वहीं राजा राम मोहन राय ने पहले-पहले राष्ट्र भाषा के लिए हिन्दी का नाम लिया और वहीं इस सदी के पहले दर्शक में कलकत्ता हाईकोर्ट के जस्टिस शारदाचरण मित्र ने सर्वप्रथम देवनागरी लिपि को राष्ट्रलिपि के रूप में स्वीकार करने का सुझाव दिया। यों इस विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती पहले संकेत कर चुके थे (ध्यान देने योग्य है कि ये भी मराठी वा हिन्दी प्रदेश के नहीं थे।) देवनागरी लिपि के देश-व्यापी प्रचार और प्रसार के लिए मित्र महोदय की प्रेरणा से वहाँ 'एक लिपि विस्तार-परिषद' की स्थापना हुई और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'देवनागर' नामक पत्रिका निकाली गई जिसे देश के कोने-कोने से सहयोग प्राप्त हुआ।

देवनागरी ही राष्ट्रलिपि के लिए उपादेय

देवनागरी के साथ ही कुछ कोनों से रोमन को राष्ट्रलिपि बनाने का भी स्वर सुनाई पड़ रहा है। इन दो के अतिरिक्त किसी अन्य लिपि का नाम राष्ट्रलिपि के रूप में नहीं लिया जा रहा है। इसका कारण है—अन्य लिपियों की अपेक्षा या सीमित एवम् मात्र क्षेत्रीय प्रचार एवम् प्रयोग।

आज विचारार्थ है कि देवनागरी और रोमन में राष्ट्रलिपि होने के योग्य कौन-सी लिपि है। जैसाकि अधिकांश लोग कह रहे हैं तथा कई दशकों से

कहते आ रहे हैं, यह स्थान नागरी ही ले सकती है, रोमन नहीं। इससे संबद्ध प्रमुख तर्क नीचे दिये जा रहे हैं :—

रोमन लिपि राष्ट्र लिपि क्यों नहीं हो सकती

डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी-जैसे कुछ भाषा-शास्त्रविद् तथा कुछ अंग्रेजीप्रेमी रोमन को राष्ट्रलिपि बनाने के पक्ष में हैं, किन्तु निम्नाङ्कित बातों के कारण ऐसा होना कठिन सा प्रतीत होता है—

(१) सबसे बड़ी बात तो यह है कि रोमन एक विदेशी लिपि है। इस के साथ विदेशी भावनाएँ संबद्ध हैं। विज्ञान के विमान पर बहुत ऊँचे उड़कर भी मानव अभी तक सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय भावनाओं को तिलांजलि नहीं दे सका है। इस प्रसंग में कुछ लोग टर्की का नाम लेते हैं। टर्की ने अरबी लिपि छोड़कर रोमन लिपि अपना ली। ऐसे लोग कदाचित यह भूल जाते हैं कि टर्की की समस्या हमारी समस्या से पूर्णतया भिन्न थी। पहली बात तो यह है कि उनकी अपनी लिपि कोई न थी। ऐसी स्थिति में जब दूसरे की चीज ही लेनी है तो अच्छी चीज क्यों न ली जाय, यह भावना उन लोगों में कार्य कर रही थी। दूसरे, अरबी लिपि बहुत अवैज्ञानिक तथा अपर्याप्त थी, अतः सुविधाजनक भी नहीं थी। भारत में ये दोनों ही बातें नहीं हैं। हमारे पास अपनी लिपियाँ हैं, साथ ही उनमें से हमारे लिये आवश्यकताओं की दृष्टि से पर्याप्त एवम् सुविधाजनक हैं।

(२) रोमन के जाननेवाले देवनागरी आदि भारतीय लिपियों की तुलना में बहुत ही थोड़े हैं। ऐसी स्थिति में जिस लिपि के जाननेवाले प्रायः अत्यल्प ही नहीं, सर्वाल्प हैं, उसे राष्ट्रलिपि नहीं बनाया जा सकता।

(३) रोमन-लिपि, लिपि-विकास की दृष्टि से, अत्यन्त विकसित तथा वर्णात्मक (alphabetic) अवश्य है, किन्तु जिन भाषाओं के लिए उसका प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से हो रहा है, उनमें भी इसका वैज्ञानिक रूप सामने नहीं आया है। आशय फ्रेंच और अंग्रेजी आदि से है। इन दोनों भाषाओं में वर्तनी (spelling) तथा उच्चारण के बीच की दुर्गम खाई— इसका स्पष्ट प्रमाण है। इसमें सी (c) जैसे ऐसे भी अक्षर हैं, जिनका ध्वन्या-

त्मक मूल्य प्रायः अनिश्चित-सा है। हम अंग्रेजी के माध्यम से रोमन लिपि से परिचित हुए हैं और अंग्रेजी में आई (i), यू (u) आदि कई अक्षरों का प्रयोग एकाधिक ध्वनियों के लिए होता है। इस प्रकार अपनी वैज्ञानिकता के बावजूद रोमन का जो स्वरूप हमारे सामने है, उसे बहुत वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता। एक बात और ! भारतीय भाषाओं के लिये रोमन अक्षरों का अंग्रेजी तरीके से अलग ध्वन्यात्मक मूल्य निर्धारित करने की बात भी की जाती है। इस प्रसंग में एक कठिनाई की ओर संकेत कर देना आवश्यक है। अंग्रेजी से हमारा सम्बन्ध रहा है और आगे भी रहेगा। ऐसी स्थिति में एक ही अक्षर के दो ध्वन्यात्मक मूल्यों को—एक अंग्रेजी के लिए और दूसरा भारतीय भाषाओं के लिए—एक साथ स्वीकार करना प्रायोगिक दृष्टि से बहुत सुविधाजनक नहीं कहा जा सकता।

(४) किसी भाषा के लिए सबसे वैज्ञानिक लिपि वह है, जिसमें उस भाषा में प्रयुक्त सभी ध्वनियों के लिए अलग-अलग चिह्न हों। इस दृष्टि से रोमन बहुत पीछे रह जाती है। भारतीय भाषाओं में पचास से ऊपर ध्वनियां हैं, जबकि रोमन में केवल २६ अक्षर हैं और इनमें भी एक्स (x) आदि कुछ ऐसे अक्षर भी हैं, जिनको ध्वन्यात्मक दृष्टि से स्वतन्त्र अक्षर मानना चिंत्य है। इस तरह भारतीय भाषाओं को दृष्टि में रखने पर रोमन में मुश्किल से आधे अर्थात् लगभग २५ अक्षर हैं। २५ रोमन अक्षरों के आधार पर ५०-५५ भारतीय ध्वनियों को व्यक्त करना कितना असुविधाजनक तथा अव्यवहारिक होगा इसे कहने की आवश्यकता नहीं। इस बात को कुछ और विस्तार से देखा जा सकता है। रोमन की आक्षरिक-अपर्याप्तता को क्रमशः लिया जा रहा है :—

(क) रोमन में कुल ५ स्वर चिह्न है : a, e, i, o, u। यदि देवनागरी के भारत की प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं की प्रतिनिधि लिपि मानें तो कह सकते हैं कि यहाँ मोटे रूप से ११ स्वर हैं :—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ। यह संख्या दक्षिण भारत के ह्रस्व ओ, ह्रस्व ए तथा संस्कृत एवं प्राचीन दक्षिणी भाषाओं के लृ, ॠ आदि को छोड़ कर है। स्पष्टतः रोमन

को अपनाने पर ५ अक्षरों से ११ या उससे भी अधिक स्वर ध्वनियों को व्यक्त करना पड़ेगा, जो बहुत ही असुविधाजनक होगा। डाइक्रिटिक मार्क या विशिष्ट चिह्नों के आधार पर इन पाँच से आठ-दस को व्यक्त कर सकते हैं किन्तु विशिष्ट चिह्नों की बैसाखियों की भी एक सीमा होती है। लिपि में इसकी जितनी कम सहायता ली जाय, उतना ही अच्छा ; अन्यथा घमीट लिखी भाषा को पढ़ने में बड़ी परेशानी होती है। किसी वर्णमाला के अधिक से अधिक दो-चार अक्षरों को विशिष्ट चिह्नों से युक्त कर सकते हैं। किन्तु यहाँ रोमन के तो सारे के सारे अक्षरों पर विशिष्ट चिह्न लगाने की बात है, क्योंकि स्वर व्यंजन सब मिलाकर २५ अक्षरों के द्वारा ५० से ऊपर ध्वनियों को व्यक्त करता है, ऐसी स्थिति में नागरी को छोड़कर रोमन को अपनाना एक व्यर्थ की परेशानी के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। स्वर की दृष्टि से कुछ अन्य कठिनाइयाँ भी हैं। ऋ, लृ आदि को व्यक्त करने के लिए रोमन में व्यंजनों की सहायता लेनी पड़ती है। यह भी बहुत वैज्ञानिक नहीं है। वैज्ञानिक यही है कि स्वर के लिए स्वर चिह्न प्रयुक्त हो, अन्यथा इससे स्वर के व्यंजन होने का भ्रम उत्पन्न होता है। इसी प्रकार औ, ऐ की स्थिति भी विचारणीय है। रोमन की सहायता से, जैसाकि प्रचलन चल पड़ा है। अउ और औ दोनों को एक ही प्रकार से (अर्थात् au) लिखते हैं। हिन्दी की बोली भोजपुरी से एक उदाहरण लेकर इसके द्वारा उत्पन्न अव्यवस्था की ओर संकेत किया जा सकता है। भोजपुरी में कउड़ा और कौड़ा दो शब्द हैं। प्रथम का अर्थ है— 'तापने की आग' और दूसरे का अर्थ है —'बड़ी कौड़ी'। देवनागरी में लिखने से कोई परेशानी नहीं है। दोनों को दो प्रकार से लिखेंगे। कउड़ा, कौड़ा। अतः स्पष्टतः दो प्रकार से पढ़ लेंगे, किन्तु रोमन में दोनों को एक प्रकार से लिखेंगे, अब पढ़ने-वाला बिना पूर्ण संदर्भ जाने शब्द का ठीक उच्चारण कर ही नहीं सकता। और यदि दुर्भाग्य से शब्द वाक्य में प्रयुक्त नहीं है, अलग रोमन में लिखा है तो एक व्यक्ति उसी को 'कौड़ा' पढ़ेगा और दूसरा 'कउड़ा'। अइ और ऐ के सम्बन्ध में भी ऐसी ही कठिनाई है। रोमन में दोनों को एक ही प्रकार से (ai) लिखते हैं, किन्तु भारतीय भाषाओं और बोलियों में दोनों को दो प्रकार

से लिखने की आवश्यकता है। यदि ऐसा नहीं किया जायेगा तो भोजपुरी का गइल (गया) और हिन्दी गैल (रास्ता, गली) दोनों एक हो जायेंगे।

(ख) व्यंजनों से पहले महाप्राण ध्वनियों को ले सकते हैं। अधिकांश भारतीय भाषाओं में ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, आदि महाप्राण ध्वनियाँ हैं। उर्दू लिपि की भाँति ही रोमम में भी इन ध्वनियों के लिऐ स्वतंत्र अक्षर नहीं हैं। एच (h) की सहायता से इन ध्वनियों को रोमन में व्यक्त करते हैं। इसमें प्रमुखतः दो कठिनाइयाँ हैं। पहली बात तो यह है कि एक ध्वनि के लिए दो अक्षरों का मिलाकर प्रयोग (जैसे ख के लिए kh, आदि) बहुत वैज्ञानिक नहीं है। वैज्ञानिक लिपि वही है, जिसमें हर ध्वनि स्वतंत्र अक्षर द्वारा व्यक्त की जा सके। रोमन इस दृष्टि से बहुत अवैज्ञानिक है। ख, घ, भ आदि सभी मह प्राण व्यंजन इसमें दो अक्षरों के योग से व्यक्त किये जाते हैं और दो ही क्यों? छ (chh) में तो तीन अक्षर जोड़ने पड़ते हैं। ऐसे प्रयोगों में व्यर्थ में स्थान तो अधिक घिरता ही है, दो या तीन ध्वनियों के होने का भी भ्रम हो जाता है। दूसरी बात है—लिपि की वैज्ञानिकता के सम्बन्ध में। वैज्ञानिक लिपि वही है, जिसमें मूल ध्वनियों के साथ संयुक्त ध्वनियों को भी सुविधापूर्वक बिना किसी भ्रम के दिखाया जा सके। इस प्रसंग में यह उल्लेख्य है कि नागरी में क्ह, प्ह, और ख, फ को अलग-अलग व्यक्त कर सकते हैं किन्तु रोमन में दोनों के लिए kh, ph ही लिखेंगे। कहना न होगा कि वैज्ञानिक दृष्टि से क्ह, ख, या प्ह, फ एक नहीं है। यह बात दूसरी है कि भारतीय भाषाओं में इस प्रकार की संयुक्तता नहीं है। इस प्रकार महाप्राण व्यंजनों की दृष्टि से तो रोमन भारतीय भाषाओं के लिए पूर्णतया अपर्याप्त है।

(ग) व्यंजनों में महाप्राण के बाद ङ, ञ, त, द, ण, श, ष, क आदि उन अन्य ध्वनियों को लिया जा सकता है, जो भारतीय भाषाओं में आवश्यक हैं, और जिनके लिए देवनागरी आदि में अक्षर हैं, किन्तु रोमन में नहीं हैं। इनको यदि रोमन में व्यक्त करना चाहें तो विशिष्ट चिह्न लगाने पड़ेंगे, किन्तु यहाँ फिर वही प्रश्न उठेगा, जिसके सम्बन्ध में ऊपर कहा जा चुका है। अर्थात् विशिष्ट चिह्नों की बैसाखी से पंगु व्यक्ति कितना चल सकता है? साथ ही

यदि विशिष्ट चिह्न लगावें तो भी कई अक्षरों के सम्बन्ध में अन्य प्रकार की कठिनाइयाँ भी आ खड़ी होती हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी ड़ के लिए कुछ लोग r तथा कुछ लोग d लिखते हैं किन्तु इन्हीं r और d का प्रयोग ऋ और ड के लिए भी चलता है। इसी प्रकार रोमन l के नीचे बिन्दु देकर ! करते हैं। इसका प्रयोग भी लृ और ल दोनों के लिए चलता है। यों अन्य प्रकार के चिह्न लगाकर यह गड़बड़ी किसी सीमा तक दूर की जा सकती है । किन्तु जैसाकि कहा जा चुका है, अतिरिक्त चिह्न जितने ही अधिक बैठेंगे, व्यवहारतः लिपि उतनी ही असुविधाजनक होती जायेगी।

इस प्रकाग रोमन लिपि, विदेशी, कई दृष्टियों से भ्रामक एवं अवैज्ञानिक, हमारी ध्वनीय आवश्यकताओं की दृष्टि से अपर्याप्त, एवं देवनागरी आदि भारतीय लिपियों की तुलना में भारत में अल्प प्रचलित होने के कारण राष्ट्र-लिपि के रूप में ग्राह्य नहीं हो सकती।[1]

देवनागरी लिपि क्यों राष्ट्र लिपि हो सकती है ?

(१) देवनागरी लिपि रोमन की भाँति विदेशी लिपि नहीं है, अपितु पूर्णतः भारतीय है। इसकी उत्पत्ति और विकास दोनों ही भारत-भूमि में हुआ है इस प्रकार इसकी जड़ें देश के इतिहास और संस्कृति में हैं।

(२) भारत में जितनी भी लिपियाँ प्रचलित हैं, उनमें देवनागरी लिपि को जाननेवालों की संख्या सर्वाधिक है। रोमन के जाननेवाले ३ प्रतिशत से

१—अंग्रेजी के लिए रोमन लिपि का प्रयोग बहुत दिनों से होता आ रहा है, किन्तु अंग्रेज लोग भी इस लिपि से पूर्ण सन्तुष्ट कभी नहीं रहे। बर्नार्ड शॉ ने इसके विरुद्ध लिखा भी था। अभी हाल में इस लिपि की कमियों से ऊबकर वहाँ एक समिति ने इसमें पर्याप्त सुधार का सुझाव दिया है। नये सुधार के अनुसार इस लिपि में x तथा q निकाल दिये गये हैं और १९ नये अक्षर जोड़े गये हैं। हैरो के प्रायमरी स्कूल में इसकी शिक्षा भी आरम्भ कर दी गई है। यह है वैज्ञानिकता और पूर्णता उस लिपि की, जिसे भारत पर लादने का कुछ लोग प्रयास कर रहे हैं।

कम वाले ५ प्रतिशत से लगभग ८ प्रतिशत के बीच में हैं, किन्तु देवनागरी जाननेवालों की संख्या १५ प्रतिशत से ऊपर है। इस आधिक्य के प्रमुख कारण ये हैं :—(क) देवनागरी लिपि पूरे हिन्दी प्रदेश में प्रयुक्त होती है और हिन्दी-भाषी जनता भारत में हिन्दीतर भाषा-भाषी की जनता से अधिक है। (ख) हिन्दी के अतिरिक्त मराठी भाषा की लिपि भी यही है, अतः वहाँ के लोगों में भी इसी का प्रचार है। (ग) ऐसे लोगों में भी, जो कि हिन्दी और मराठी नहीं जानते, ऐसे लोगों में भी, जो कि या तो धार्मिक दृष्टि से संस्कृत, पालि, अर्ध मागधी आदि से न्यूनाधिक रूप से परिचित हैं, अतः देवनागरी लिपि से भी अपरिचित नहीं हैं, क्योंकि इन भाषाओं के ग्रंथ प्रायः देवनागरी में ही छपे हैं, या फिर अपने प्राचीन साहित्य, संस्कृति या दर्शन आदि के अध्ययन के लिए जिन्होंने संस्कृत, पालि, प्राकृत या अपभ्रंश आदि का अध्ययन किया है, और इस प्रकार देवनागरी लिपि से पूर्णतः परिचित हैं। प्रमुखतः दक्षिण भारत तथा बंगाली में ये दोनों बातें बहुत अधिक हैं। इस प्रकार हिन्दी और मराठी जनता के अतिरिक्त, अन्य शिक्षित भारतीयों का भी एक अच्छा प्रतिशत, धर्म, दर्शन, पुरातत्व, इतिहास, साहित्य आदि में रुचि रखने के कारण देवनागरी से पूर्णतः अपरिचित नहीं कहा जा सकता।

(३) जैसाकि आगे हम देखेंगे, भारत की सभी लिपियाँ प्राचीन भारतीय लिपि ब्राह्मी से निकली होने के कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष साम्य रखती हैं। देवनागरी लिपि मध्यदेशीय लिपि होने के कारण ब्राह्मी की लिपि परम्परा में है, साथ ही रूपात्मक दृष्टि से भी बीच में पड़ती है, इस तरह अन्यों की तुलना में यह कोष-सूची लिपियों से अधिक निकट है। इसी कारण गुजराती, बंगाली आदि लिपियों के जाननेवाले तो बिना जाने, मात्र अनुमान से ही इसके काफी अक्षरों को पहचान सकते हैं। इसका आशय यह भी हुआ कि अन्य भारतीय लिपियों की तुलना में लोग इसे अपेक्षाकृत अधिक सरलता से सीख सकते हैं।

(४) यों तो सभी लिपियाँ अपने जाननेवालों के लिए सरल होती हैं, इसमें दक्षिण भारत तथा उड़िया आदि की लिपियों की भाँति जटिल अक्षर

प्रायः नहीं हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी विदेशी को तमिल, मलयालम, कन्नड़, तेलुगु या उड़िया लिपि के साथ देवनागरी लिपि दिखाई जाय तो वह देवनागरी अपेक्षाकृत कम समय में सीख लेगा। यह बात अनुमान पर नहीं कही जा रही है। इन पंक्तियों के लेखक ने एक फ्रांसीसी, कंबोडियन तथा अमेरिकन से अलग-अलग इस सम्बन्ध में प्रयोग करवाये और निष्कर्ष इस प्रकार निकला :—

(क) देवनागरी लिपि तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम् और उड़िया लिपि से सरल है और कम समय में सीखी जा सकती है।

(ख) देवनागरी, बंगाली और गुरुमुखी लिपियाँ इस दृष्टि से लगभग समान हैं।

(ग) गुजराती और उर्दू सबसे सरल हैं।

(५) भारत के बाहर नेपाल की लिपि भी देवनागरी ही है।

(६) संस्कृत, पाली, प्राकृत, तथा अपभ्रंश के अध्ययन का मूलाधार होने के कारण भारत की प्रतिलिपि या प्रमुख लिपि के रूप में विश्व के सभी कोशों में कुछ-न-कुछ लोग देवनागरी लिपि को जानते हैं। प्रमुखतः भाषा विज्ञान, दर्शन, प्राचीन इतिहास, भारतीय पुरातत्व एवं संस्कृति आदि क्षेत्रों के विद्वानों एवम् कार्यकर्त्ताओं में तो यह पूर्णतया प्रचलित है।

(७) वैज्ञानिक लिपि में जिस भाषा के लिए वह प्रयुक्त हो, उसकी सभी आवश्यक ध्वनियों के लिए अलग-अलग लिपि-चिह्न होने चाहिए। भारत में प्रचलित लिपियों में इस दृष्टि से सबसे अपूर्ण रोमन लिपि तथा उर्दू है। तमिल में भी लगभग यही स्थिति है क्योंकि कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग और पवर्ग में देवनागरी आदि की तरह ५-५ अक्षर न होकर मात्र २-२ हैं। देवनागरी में इस प्रकार की अपूर्णताएँ नहीं हैं, और जैसाकि हम आगे देखेंगे कुछ ही नये अक्षरों के जोड़ देने पर यह सभी भारतीय भाषाओं को सरलता से लिख सकती है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेख्य है कि भारत की नहीं, विश्व की कोई भी लिपि ऐसी नहीं है जो बिना परिवर्द्धन के भारत की सभी भाषाओं को स्पष्टता पूर्वक लिख सके, थोड़ा बहुत परिवर्द्धन सभी में आवश्यक है। देवनागरी में जो परि-

वर्द्धन अपेक्षित है, वह विश्व की किसी भी लिपि से अधिक नहीं है। इस प्रकार इस दृष्टि से भी देवनागरी राष्ट्रलिपि होने के उपयुक्त है।

भारतीय लिपियों का आपसी संबंध

इस प्रसंग में संक्षेप में हमारी लिपियों का आपसी सम्बन्ध भी द्रष्टव्य है। इस आधार पर पीछे कुछ बातें कही जा चुकी हैं। भारत की प्राचीन लिपि सिंधु घाटी की लिपि है। उसके प्रायः तीन-साढ़े तीन हजार वर्ष बाद ब्राह्मी लिपि का प्रयोग मिलता है। ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति अनेक विदेशी विद्वानों ने विदेशी लिपियों से मानी है। उदाहरणतः कुपेरी के अनुसार यह चीनी लिपि से, प्रिंसेप और सेनार्त के अनुसार यूनानी लिपि से, वेबर आदि के अनुसार फोनिशियन लिपि से, तथा हलवे के अनुसार आर्येतर खरोष्ठी आदि कई लिपियों से उसकी उत्पत्ति है। किन्तु जैसाकि अन्यत्र दिखलाया जा चुका है ये मत सत्य से बहुत दूर हैं।[१]

प्रश्न यह उठता हैं कि फिर, ब्राह्मी लिपि आई कहाँ से ? इस प्रश्न को लेकर एडवर्ड थामस, डॉ० राजबली पाण्डेय, श्री आर० शामशास्त्री, जगमोहन वर्मा तथा डाऊसन आदि ने विचार किया है, किन्तु कोई बहुमान्य एवं निश्चित मत सामने नहीं आ सका है। इसी कारण डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का निम्नांकित कथन ही प्रायः प्रामाणिक माना जाता रहा है—

"जितने प्रमाण मिले हैं, चाहे प्राचीन शिलालेख के अक्षरों की शैली और चाहे साहित्य के उल्लेख, सभी यह दिखाते हैं कि लेखन कला अपनी प्रौढ़ावस्था में भी...उसके आरंभिक विकास के समय का पता नहीं चलता। ऐसी दशा में यह निश्चय पूर्वकनहीं कहा जा सकता कि ब्राह्मी लिपि का आविष्कार कैसे हुआ..."[२]

१—भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, इलाहाबाद, तीसरा संस्करण, पृ० ४९४-५०१।

२—भारतीय प्राचीन लिपि माला, गौरीशंकर ओझा, ३ रा संस्करण, पृ० ३०।

आज से ६ वर्ष पूर्व १९५६ में इन पंक्तियों के लेखक ने सिंधु घाटी की लिपि के साथ ब्राह्मी का तुलनात्मक अध्ययन किया था और निष्कर्षतः यह मत व्यक्त किया था कि ब्राह्मी लिपि सिंधु घाटी की लिपि से संबद्ध है, साथ में दोनों लिपियों में से कुछ समान लिपि चिह्नों का प्रथम बार एक चार्ट भी प्रस्तुत किया था।[1] तबसे कई लेखकों ने अपनी पुस्तकों में इस मत तथा चार्ट को (कुछ के संदर्भ देते हुए और कुछ के न देते हुए) उद्धृत किया, जिससे ऐसा अनुमान लगता है कि इसे मान्यता मिलती जा रही है। वस्तुतः इस दिशा में अभी और कार्य अपेक्षित है।

इस प्रकार संभावना यही है कि भारतीय लिपियों का मूल उत्स सिंधु घाटी की लिपि में है और यह लिपि अपने मूल में कदाचित चित्र लिपि थी। सिंधु-सभ्यता के काल से लेकर ५वीं सदी ई० पूर्व तक का काल प्रायः अन्धकार में है। इसी अन्धकार युग के कारण सिंधु और ब्राह्मी के अधिकांश लिपि-चिह्नों को एक-दूसरे से संबद्ध करना संभव नहीं हो रहा है। ५वीं सदी ई० पू० से ब्राह्मी के शिलालेख मिलते हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि इसका आरंभ बहुत पहले हो चुका था। इस प्रकार ब्राह्मी के प्रारंभ काल के सम्बन्ध में सनिश्चय कुछ कहना कठिन है, किन्तु इसकी उत्तर सीमा स्पष्टतः ३५० ई० है। इसके बाद इसकी दो शैलियाँ हो गईं— उत्तरी शैली, दक्षिणी शैली। दक्षिणी शैली से तमिल, कन्नड़, ग्रंथ, कलिंग, वट्टेकुत्तु आदि का विकास हुआ। उत्तरी शैली से गुप्त (४-५ वी सदी), कुटिल (६-८ वीं सदी), प्राचीन देवनारी (८-१५ वीं सदी), नागरी (१६ वीं सदी) तथा शारदा, टाकरी, डोग्री, गुरुमुखी, गुजराती, कैथी, बंगला, मैथिली तथा उड़िया आदि विकसित हुईं। इस प्रकार मूलतः सभी भारतीय लिपियाँ (उर्दू और रोमन को छोड़कर) आपस में संबद्ध हैं और इसी कारण उनमें आंचलिक समानता है।

राष्ट्रलिपि की दृष्टि से देवनागरी में अपेक्षित परिवर्द्धन :—

ऊपर हम देख चुके हैं कि अन्य भारतीय लिपियों की तुलना में देवनागरी

१—भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण।

राष्ट्रलिपि होने के अधिक उपयुक्त है, किन्तु उसे ज्यों-की-त्यों राष्ट्रलिपि नहीं बनाया जा सकता। इस दृष्टि से इसके समक्ष दो समस्याएँ हैं। एक तो यह कि, कुछ भारतीय भाषाओं में कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं, जिनके लिए देवनारी में चिह्न या अक्षर नहीं हैं और दूसरी यह कि इसमें कुछ अवैज्ञानिकताएँ हैं, (यों विश्व की सभी लिपियों में कुछ-न-कुछ अवैज्ञानिकताएँ हैं, कोई भी लिपि पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं है।) जिन्हें यथासाध्य दूर कर देना चाहिए। यहाँ क्रम से दोनों बातें ली जाती हैं।

राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी में भारत की सभी भाषाओं की ध्वनियों के अंकन की शक्ति होनी चाहिए। यहाँ सिद्धान्त की दृष्टि से कुछ बातें विचारणीय हैं। भाषाओं का प्रतिलेखन (Transcription) दो प्रकार का होता है (क) स्थूल या सामान्य प्रतिलेखन (Broad Transcription) (ख) सूक्ष्म या विशिष्ट प्रतिलेखन (Narrow transcription)। स्कूल में, जैसाकि नाम स्पष्ट है, ध्वनियों का अंकन स्थूल रूप से करते हैं, अर्थात् इसमें प्राय: ध्वनिग्राम (Phonem) का ही अंकन होता है, संध्वनियों (Allophons) का नहीं। दैनिक कार्य या सामान्य व्यावहारिक लेखन के लिए यही पद्धति उचित मानी जाती है। सूक्ष्म प्रतिलेखन भाषा-उच्चारण की सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों का अंकन करता है। अर्थात् उसमें संध्वनियों तथा बलाधान आदि के अंकन का ध्यान रखा जाता है। कहना न होगा कि राष्ट्रलिपि के प्रसंग में हमारा ध्यान प्रमुखतः स्थूल प्रतिलेखन पर होगा, क्योंकि सूक्ष्म प्रतिलेखन की आवश्यकता, लिपि के सर्वसामान्य प्रयोक्ता को नहीं होगी। स्थूल प्रतिलेखन में यह आवश्यक नहीं कि हमारा ध्यान उन सारी ध्वनियों की ओर जाय, जिनका भाषा-विशेष में प्रयोग हो रहा है। हाँ, हमारा ध्यान उन सारे लिपि-चिह्नों पर अवश्य जाना चाहिए, जिनका उस भाषा-विशेष में प्रयोग हो रहा है। अर्थात् जिस भारतीय भाषा के लेखन में जिन-जिन लिपि-चिह्नों का प्रयोग हो रहा है, उन सारे लिपि-चिह्नों के लिए देवनागरी लिपि में लिपि-चिह्न या अक्षर अपेक्षित हैं। इस समय व्यावहारिक आवश्यकता यही है। भाषा-वैज्ञानिक सूक्ष्मता के आधार पर किसी भाषा की हर ध्वनि के लिए देवनागरी

में लिपि चिह्नों को बढ़ाना, समस्या को और उलझा देगा। उदाहरणार्थ हमें पता है कि तेलुगु में दो प्रकार के 'च' हैं। किन्तु इसके लिए इस समय देवनागरी में हमें एक और 'च' बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। हम जानते हैं कि तेलुगु लिपि में भी एक चिह्न दोनों के लिए पर्याप्त समझा जाना चाहिए। यदि 'च' के लिए दो अक्षर कर लिए जाँयँ तो भाषा विज्ञानवेत्ता या बहुशिक्षित तो उनका प्रयोग सरलता से कर लेगा, किन्तु सामान्य जनता के के लिए यह समस्या हो जायेगी और उसके लिए यह जानना बहुत कठिन होगा कि कहाँ किस अक्षर का प्रयोग करें। उस बेचारे को क्या पता कि कौन च दंत्य है और कौन तालव्य है? इसी कठिनाई की दृष्टि से इस प्रसंग में वास्तविक उच्चारण, स्थान तथा प्रयत्न के आधार पर ध्वनियों के भेद-विभेदों पर ध्यान देना उतना आवश्यक नहीं है, जितना कि हर भाषा में प्रयुक्त लिपि-चिह्नों का, जिनका कि सर्वसामान्य लोग प्रयोग करते हैं, क्योंकि राष्ट्रलिपि भाषा-विज्ञानविदों के लिए नहीं, अपितु सामान्य लोगों के लिए है, हाँ भाषा विज्ञानविद् यदि उसे अपने लिए प्रयुक्त करना चाहें, तो जैसे रोमन के आधार पर अनेक प्रकार की ध्वन्यात्मक लिपियाँ विश्व में बनी हैं, उसी प्रकार विशिष्ट चिह्नों के आधार पर देवनागरी को भी ध्वन्यात्मक लिपि का रूप दे सकते हैं।[1]

यहाँ अलग-अलग भाषाओं को लेकर उनके लिए अपेक्षित अतिरिक्त लिपि-चिह्नों या अक्षरों की दृष्टि से देवनागरी पर विचार किया जा रहा है।

मलयालम

मलयालम भाषा के लिए लेखन में मलयालम या केरल लिपि का प्रयोग होता है। देवनागरी से तुलना करने पर यों तो मलयालम वर्णमाला में प्रमुखतः कुल ९-१० नये अक्षर मिलते हैं, किन्तु समान्य प्रयोग में ये सभी प्रचलित नहीं हैं। मलयालम-भाषियों तथा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के अधिकारियों

१—देवनागरी लिपि के आधार पर ध्वन्यात्मक लिपि (Phonetic Script) बनाने के प्रयास किये जा चुके हैं। देखिए 'भाषा विज्ञान—भोलानाथ तिवारी—तीसरा संस्करण, पृ० ४९० तथा ४२१।

से बात करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ह्रस्व ए, ह्रस्व ओ, विशेष प्रकार का तेज र, प्रतिवेष्ठित मूर्द्धन्य र, तथा इस र के द्विज उच्चारण की दंतमूलीय ट जैसी ध्वनि, ये पाँच ध्वनियाँ या अक्षर मलयालम में हैं, जिनके लिए देवनागरी लिपि में यदि अक्षर बना लिये जायँ तो मलयालम भाषा को देवनागरी में लिखने में कोई कठिनाई नहीं होगी। यहाँ मैंने 'ळ' का उल्लेख नहीं किया है। यह ध्वनि यद्यपि हिन्दी में प्रयुक्त देवनागरी लिपि में है। ऐसी स्थिति में यह भी देवनागरी का एक अक्षर है और इसे नव स्वीकृत चिह्नों में नहीं माना जा सकता। उपर्युक्त नये अक्षरों के संबंध में विभिन्न व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के सुझाव दिये गये हैं। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने ह्रस्व 'ए' के लिए ॅ रखा है, तो ह्रस्व 'ओ' के लिए ॉ। 'ॉ' में कठिनाई यह है कि हिन्दी में वृजमुखी ऑ के लिए इसका प्रयोग चल रहा है, जैसे कॉलिज। इसी प्रकार तेज 'र' के लिए नरवणे आदि कुछ लोग 'ऱ्' प्रयुक्त कर रहे हैं; किन्तु देवनागरी लिपि में स्पष्ट ही यह दो र् हैं जैसे हुर्रे। मलयालम आदि में यह र द्वित्त न होकर दंतमूलीय लुंठित है। अतः इसे 'ऱ्' लिखने में भ्रम होने की संभावना है। ऐसी स्थिति में इसे स्वीकार्य नहीं माना जा सकता। सभी दृष्टियों से विचार करने पर उपर्युक्त मलयालम अक्षरों के लिए क्रमशः निम्नांकित लिपि-चिह्न नागरी में स्वीकार किये जा सकते हैं—

एँ (केॅ), ओ (कोॅ), र, ळ[१], ट।

तमिल

तमिल वर्णमाला में यों तो देवनागरी लिपि की तुलना में काफी चिह्न कम हैं, किन्तु दूसरी ओर तमिल में भी चार अक्षर ऐसे हैं, जो देवनागरी में नहीं हैं। इनमें एक वर्ण तो 'न' के लिए है। तमिल वर्णमाला में 'न' के लिए दो चिह्न हैं। दोनों के उच्चारण में अब कोई भेद नहीं है। प्राचीन काल में अवश्य भेद था, जो अब समाप्त हो गया है। व्याकरण के प्राचीन नियम के

१—इसे कुछ लोग ष भी लिखते हैं। सुनने में यह ध्वनि 'ष' की अपेक्षा 'ळ' के निकट है, अतः इसे 'ळ' रूप में लिखना अधिक उचित है।

अनुसार लोग कुछ स्थानों पर एक 'न' का प्रयोग करते हैं और कुछ स्थानों पर दूसरे का। अब प्रवृत्ति यह है कि अल्प प्रचलित न का प्रयोग समाप्त होता जा रहा है और इस प्रकार लोग एक ही 'न' के प्रयोग की ओर झुक रहे हैं। उदाहरणार्थ तमिल शब्द मनरम (=इमारत) का 'न' पहले अल्प प्रचलित 'न' रूप में लिखा जाता था, किन्तु अब उसके स्थान पर सामान्य 'न' ही प्रयुक्त होने लगा है। आशय यह हुआ कि देवनागरी में तमिल के लिए एक अन्य न को जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी तमिल-भाषी उसे प्रयुक्त करना ही चाहें तो न का प्रयोग किया जा सकता है। शेष तीन अक्षर वे ही हैं, जिनका मलयालम के प्रसंग में विचार किया जा चुका है, अर्थात् एँ, ओँ, ळ, इस प्रकार उन्हें स्वीकार कर लेने पर देवनागरी लिपि में तमिल को सरलता से लिखा जा सकता है।

तेलगु

तेलुगु की पूर्ण वर्णमाला में नागरी की तुलना में यों तो कुल लगभग ६ लिपि-चिह्न ऐसे हैं, जिनके लिए देवनागरी में अक्षर नहीं हैं, किन्तु ये सभी आज प्रयोग में नहीं हैं। प्रयोग की दृष्टि से जो महत्वपूर्ण हैं, इनके लिए मलयालम् आदि की भाँति एँ, ओँ, ऱ लिपि-चिह्न प्रयुक्त किये जा सकते हैं। उच्चारण में मराठी की भाँति तेलुगु में भी ज, च दो-दो प्रकार के हैं। एक तालव्य है और दूसरा दंतमूलीय। किन्तु लिखने में इनके लिए एक ही लिपि-चिह्न का प्रयोग होता है। इसी कारण देवनागरी में भी इसके लिए स्वतंत्र चिन्ह अपेक्षित नहीं हैं। यों यदि करना ही हो तो च, च़, ज, ज़ का प्रयोग किया जा सकता है। कुछ लोगों ने ज के स्थान पर ज़ का सुझाव दिया है, किन्तु यह भ्रमोत्पादक है, क्योंकि हिन्दी में वर्त्स्य-संघर्षी ध्वनि के लिए 'ज़' का प्रयोग पहले से चल रहा है, जब कि मराठी, तेलुगु आदि में यह दन्तमूलीय स्पर्श-संघर्षी है, इस प्रकार ज से अलग है। तेलुगु प्राचीन काल में च और छ

तथा ज, झ के बीच एक-एक और अक्षर भी थे, किन्तु अब वे प्राय: लुप्त हो गये हैं, अत: इनके लिए चिह्न अपेक्षित हैं।

कन्नड

कन्नड-वर्णमाला की दृष्टि से देवनागरी में केवल ऍ और ऑ को सम्मिलित कर लेना पर्याप्त हैं। प्राचीन कन्नड में तीन अन्य अक्षर भी थे, जो 'र' और 'ल' से उच्चारण में मिलते-जुलते थे। अब वे प्रयुक्त नहीं होते, अत: इनके लिए देवनागरी में अक्षर बढ़ाने का प्रश्न नहीं उठता।

मराठी

मराठी की लिपि, जैसाकि संकेत किया जा चुका है, देवनागरी ही है। हिन्दी भाषा के लिए प्रयुक्त देवनागरी की तुलना में मराठी की देवनागरी लिपि में सिर्फ 'ल' अक्षर अधिक है। उच्चारण की दृष्टि से मराठी में च, छ, ज, झ, ये चारों ही ध्वनियाँ दो-दो प्रकार की हैं। एक तो तालव्य और दूसरी दन्तमूलीय। मराठी-भाषी दोनों ही प्रकार की ध्वनियों के लिए एक ही प्रकार के चिह्न का प्रयोग करते हैं। ऐसी स्थिति में इनके लिए अलग-अलग चिह्नों की योजना व्यावहारिक देवनागरी लिपि के लिए आवश्यक है, यों यदि इन्हें अलग-अलग लिखना ही चाहें तो च, च, छ, छ, ज, ज, झ, झ का प्रयोग हो
o o — o
सकता है। यहाँ 'ज' के नीचे बिन्दु न रख कर रेखा क्यों रखी गई है, इसका उत्तर तेलुगु के प्रसंग में ऊपर दिया जा चुका है।

हिन्दी

मराठी की भाँति ही हिन्दी की लिपि भी देवनागरी है। ध्वन्यात्मक दृष्टि से हिन्दी में नागरी लिपि द्वारा व्यक्त ध्वनियों के अतिरिक्त कई स्वर तथा व्यंजन हैं (जैसे ४ ए, ४ ओ, ख आदि), किन्तु जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, व्यावहारिक लिपि के लिए इन सूक्ष्मताओं में जाना अपेक्षित है। यदि उन्हें व्यक्त करना ही हो तो बिन्दु तथा ⌣ की सहायता से ए, ओ, व, आदि के ही आधार पर इनके अन्य रूपों को भी व्यक्त किया जा सकता है, जैसे व, ऍ ऑ आदि।

गुजराती

गुजराती लिपि देवनागरी के समान है। विशेष अन्तर केवल शिरोरेखा है। गुजराती लिखने के लिए देवनागरी में किसी परिवर्द्धन की आवश्यकता नहीं है।

पंजाबी

पंजाबी लिपि गुरुमुखी में देवनागरी की तुलना में अतिरिक्त लिपि-चिह्न नहीं हैं, अतः उसे भी देवनागरी में लिखने में कोई कठिनाई नहीं है। ध्वन्यात्मक दृष्टि से शब्दारम्भ में पंजाबी के घ, झ, ढ, ध, भ, कुछ विचित्र दृष्टि से उच्चरित होते हैं। डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी का कहना है कि ये महाप्राण सघोष व्यंजन पंजाबी में अल्पप्राण अघोष अर्थात् क, च, ट, त, प हो जाते हैं। किन्तु वस्तुतः यह बात नहीं है। इसकी ध्वनि कुछ विचित्र-सी अल्पप्राण अघोष और ह से युक्त होती है, जैसे भोली का 'पन्होली'। लिखने में इनके लिए किसी स्वतंत्र अक्षर का प्रयोग न होकर सामान्य घ, झ, ढ, ध, भ, का ही प्रयोग होता है, अतः देवनागरी में भी सामान्य घ, झ, ट, ध, भ, से ही इन्हें व्यक्त किया जा सकता है।

बंगाली

बंगाली लिपि में देवनागरी की तुलना में कोई अतिरिक्त अक्षर नहीं हैं, अतः बंगाली भाषा के लिए नागरी में किसी परिवर्द्धन की आवश्यकता नहीं है।

उड़िया

उड़िया वर्णमाला के सभी अक्षर देवनागरी में हैं। इसमें जं—जैसे उच्चारण का 'य' जैसा एक अतिरिक्त अक्षर कभी प्रयुक्त होता था, किन्तु अब वह प्रयोग में नहीं है, अतः उसके लिए किसी नये अक्षर को बनाने का प्रश्न नहीं उठता।

असमिया

असमिया की लिपि बंगाली ही है। असमिया भाषा में उच्चारण की कुछ अपनी विशेषताएँ अवश्य हैं (जैसे यहाँ ह एक विशेष प्रकार का भी है, तो ख

जैसा सुनाई पड़ता है तथा च, छ का उच्चारण कहीं-कहीं 'स' जैसा होता है), किन्तु लिखने से उनका सम्बन्ध नहीं है। इस तरह बंगला की तरह असमिया के लिए भी देवनागरी लिपि में कोई परिवर्द्धन अपेक्षित नहीं है।

उर्दू

उर्दू लिपि, अरबी-भरसी लिपि में भारतीय ध्वनियों की आवश्यकताओं के अनुरूप (टे, डाल, ड़े आदि) परिवर्द्धन करके विकसित की गई है। प्राचीन नागरी की तुलना में, इसमें से, हे, खे, जाल, जे, झे, स्वाद, ज्वाद, तोय, जोय, ऐन, गैन, फे, काफ ध्वनियाँ अधिक थीं। किन्तु हिन्दी भाषा में प्रयुक्त देवनागरी लिपि में उर्दू शब्दों के ठीक उच्चारण के लिए ख, ज, ग, फ, का ध्वनि-चिह्न आधुनिक काल में जोड़ दिये गये। शेष में से 'श' का उच्चारण अब 'सीन' का हिन्दी 'स' से भिन्न नहीं होता। इसी प्रकार ज़ाल, ज़े, झ़े, ज्वाद, जोय भी प्रायः 'ज' की भाँति ही उच्चरित होते हैं। इसी प्रकार 'तोय' 'ते' या त तथा 'ऐन' अ है। निष्कर्षतः यदि हिन्दी में प्रयुक्त देवनागरी को दृष्टि में रखें तो उर्दू के लिए देवनागरी में किसी अतिरिक्त अक्षर की आवश्यकता नहीं है। हाँ, यदि उर्दू-वाले अरबी-फारसी के उर्दू में अनुच्चरित अक्षरों के लिए भी विशिष्ट अक्षर रखना चाहें तो से—स, हे-ह, जाल—ज, जे—ज, झ़े—झ, ज्वाद—ज, ज़ोय—ज, स्वाद—स, तोय—त, ऐन—अ रूप में व्यक्त कर सकते हैं, यद्यपि न केवल व्यावहारिक, अपितु वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह अनावश्यक है।

कश्मीरी

आफिशियल लैंग्विज कमीशन की रिपोर्ट में कश्मीरी की लिपि को 'शारदा' कहा गया है। यहाँ की लिपि पहले शारदा अवश्य थी, किन्तु अब यहाँ उर्दू का अरबी-फारसी लिपि का प्रयोग होता है। कश्मीरी भाषा में यों तो अ, आ, उ, ऊ आदि स्वरों के एक से अधिक रूप हैं, लिखने में इस बात का ध्यान प्रायः नहीं रखा जाता। व्यंजनों में भी मराठी की तरह इसमें दन्तमूलीय च, थ, ज, आदि हैं, किन्तु उन्हें भी स्वतंत्र अक्षरों द्वारा व्यक्त करने की

परम्परा नहीं है। ऐसी स्थिति में उर्दू की तरह देवनागरी इसके लिए भी पर्याप्त है।

सिंधी

सिंधी लिपि अरबी-फारसी लिपि पर आधारित है। इस भाषा की सबसे बड़ी विशेषता, इसमें अन्तर्मुखी (implosive) ध्वनियों का होना है। इनके उच्चारण के समय स्वरयंत्र को नीचे कर देने के कारण भीतर जाकर बाहर आती हुई ध्वनि सुनाई पड़ती है। सिंधी में ग, ज, ड, द, ब अन्तर्मुखी व्यंजन हैं। भाषा-शास्त्र में इनके लिए उलटे कॉमे (ग) का प्रयोग किया जाता है। अरबी-फारसी के आधार पर बनी सिंधी लिपि (जो वहाँ अखबारों तथा स्कूलों में प्रचलित थी) में भी सभी विशिष्ट ध्वनियों के लिए चिह्न नहीं थे। उदाहरणार्थ सामान्य और इम्प्लोसिव दोनों ही 'ग' एक ही 'गाफ' से लिखे जाते रहे हैं। सामान्यत: हिन्दी-लेखन में स्वतंत्र अक्षरों का प्रयोग इन विशिष्ट ध्वनियों के लिए नहीं होता, किन्तु यदि करना चाहें तो रोमन की तरह कॉमे के प्रयोग से इन्हें लिखा जा सकता है। जैसे ग, ज, ड आदि।

ऊपर विभिन्न भाषाओं में प्रयुक्त लिपियों को लेकर देवनागरी लिपि में नये अक्षरों की आवश्यकता पर विचार किया गया। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सर्व-सामान्य प्रयोग की दृष्टि से देवनागरी लिपि को यदि राष्ट्रलिपि बनाना चाहें तो उसमें केवल पाँच नये अक्षर जोड़ने पड़ेंगे—

ऍ, ऑ, ळ, र, ट।
　　　　　　∘ ∘

इनके जोड़ देने पर देवनागरी लिपि में सभी भारतीय भाषाएँ उतनी ही सरलता, स्पष्टता एवं सुबोधता से लिखी जा सकती हैं, जितनी वे अपनी-अपनी लिपियों में लिखी जाती हैं। यही नहीं, तमिळ, उर्दू आदि में लिखी जाने वाली भाषाओं के लिए तो यह लिपि अपेक्षाकृत और अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

निष्कर्षत: राष्ट्रलिपि रूप में देवनागरी लिपि की वर्णमाला इस प्रकार हो सकती है।

राष्ट्रलिपि देवनागरी वर्णमाला

स्वर—अ, आ ऑ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ, ऍ, ए, ऐ, ऑ, ओ, औ।

व्यंजन—क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, ळ, व, श, ष, स, ह, क़, ख़, ग़, ज़, ट़, ड़, ढ़, फ़, ऱ, ऴ, ; :।

दूसरी समस्या इसमें सुधार की है। विश्व की प्रायः सभी लिपियों में कुछ-न-कुछ अवैज्ञानिकता होती है। देवनागरी भी इसका अपवाद नहीं है। अच्छा हो कि इसकी अवैज्ञानिकताएँ दूर कर दी जायँ। इसमें सुधार का प्रश्न अपने आप में एक स्वतंत्र निबन्ध का विषय है। अतः यहाँ इस प्रश्न को पूरी गहराई के साथ लेना संभव नहीं है। संक्षेप में कुछ बातें संकेत-स्वरूप ही कही जा रही हैं। इसमें निम्नांकित सुधार अनिवार्यतः आवश्यक हैं—

(क) 'ई' की मात्रा ि बहुत अवैज्ञानिक है। यह प्रायः उस स्थान पर नहीं लगाई जाती, जहाँ उच्चरित होती है। उदाहरणार्थ 'चन्द्रिका' शब्द में 'ि' का उच्चारण क के पूर्व होता है, किन्तु यह अंकित होती है 'च' के पूर्व अर्थात् तीन ध्वनियाँ पहले। इसके लिए प्रस्तावित सुधार ई=ी– (की–) तथा इ=ी (क़ी) को अपनाया जा सकता है।

(ख) ख में 'र', 'व' का भ्रम हो जाता है। इसके लिए भी प्रस्तावित सुधार पर्याप्त संतोषजनक है। अर्थात् ख के लिए दोनों को मिलाकर ख लिखा जा सकता है।

(ग) 'र' के चार रूप हैं—र, ॅ, /, ‸। इनमें तीन तो अयुक्त र हैं, और ॅ अविहीन है। अच्छा हो कि इनमें केवल 'र' को रखा जाय, शेष छोड़ दिये जायँ। 'र' को ही हलन्त लगाकर अविहीन र के स्थान पर प्रयुक्त किया जाय।

(घ) संयुक्त व्यंजन के (क्ष, त्र आदि) जो पूर्णतः नये रूप धारण कर लेते हैं, उन्हें छोड़ दिया जाय और क्ष के स्थान पर क्ष, त्र-जैसे स्पष्ट संयुक्त रूपों का प्रयोग किया जाय।

(ङ) कुछ लिपियों के कई रूप प्रचलित हैं। जैसे अ, अ, ल, ळ, श, श, झ, झ, ण, ण आदि। इनमें केवल एक-एक लिये जायँ, दूसरे को छोड़ दिया जाय।

इन सुधारों को अपना लेने से देवनागरी लिपि और अच्छी हो जायगी। शीघ्रता की हानि से शिरोरेखा को भी छोड़ा जा सकता है। भ, ध को स्पष्टता के लिए घुंडीयुक्त रूप में भ, ध रखा जा सकता है।

यदि इन बातों को मान लिया जाय तो भारत को एक बहुत अच्छी राष्ट्र-लिपि मिल सकती है।

तमिल-भाषियों को अम्बु जम्माल की प्रेरणा

[श्रीमती अम्बु जम्माल तमिलनाड प्रान्त की राष्ट्र-भाषा-प्रचारिका हैं। आपने दिनांक २८-१२-१९३७ को 'दक्षिभारत हिन्दी प्रचारक सम्मेलन, मद्रास' के आठवें अधिवेशन में जो अध्यक्षीय भाषण दिया था, उसी के आधार पर उनके देवनागरी लिपि-सम्बन्धी विचार यहाँ संकलित हैं।]

राजभाषा हिन्दी सीखने से प्रान्तीय भाषा का अहित नहीं हो सकता

चन्द तमिल-भाषी प्रेमियों का कहना कि हिन्दी की अनिवार्य पढ़ाई से तमिल भाषा को नुकसान पहुँचेगा, कदापि ग्राह्य नहीं हो सकता। इस तरह दलील देकर भय खाने की कोई आवश्यकता मैं नहीं समझती। जो राष्ट्रीय भाषा मानी जाती है, जो अपने ही देश के आम लोगों की एक सर्वमान्य तथा सरल भाषा है, जो हिन्दुस्तान में अधिक-से-अधिक बोली जाती है, उसमें मामूली ज्ञान के प्राप्त करने के लिए एकाध वर्ष तक दिन में पच्चीस-तीस मिनट खर्च करने से क्या तमिल का बड़ा नुकसान हो जायगा ?

कभी नहीं।

बल्कि यह कहना अनुचित नहीं होगा कि हिन्दी-प्रचार ने प्रजा के मन में अंग्रेजी-मोह को कुछ हद तक हटाकर उसके प्राण को खतरे से उबार लिया है, क्योंकि अगर अभी हमारे दिल में देश के प्रति, अपनी मातृभाषा के प्रति, अपनी संस्कृति के प्रति कुछ प्रेम, कुछ आदर रह गया है, तो वह उन महापुरुषों के ही प्रयत्न का फल है, जिन महापुरुषों ने देश में राष्ट्रीयता का भाव फैलाकर देश को आजादी के लिए—समाज की उन्नति के लिए कुछ काम करके दिखा दिया है।

नागरी लिपि सीखने में समय की बचत

देवनागरी लिपि के बारे में यहाँ पर कुछ चर्चा करना असंगत न होगा। कुछ लोगों की यह राय है कि हिन्दी सीखने के लिए देवनागरी लिपि सीखने

की कोई जरूरत नहीं है। यह भाषा रोमन या मातृभाषा की लिपि के जरिये भी सिखाई जा सकती है। मगर मेरी समझ में इससे लाभ तो कुछ नहीं होगा ; हाँ, नुकसान हो सकता है !

मेरा यह अनुभव है कि नागरी लिपि सीखने में १५ दिन से अधिक समय नहीं लगता है। लिपि सीख लेने पर भाषा सीखना कहीं सुलभ हो जाता है। वही भाषा दूसरी लिपि में सीखने से अन्ततः समय अधिक लगेगा, भाषा का सौन्दर्य ग्रहण करना कठिन हो जायगा और हम मूल ग्रन्थों की खूबी को समझने से वंचित रह जायेंगे। इस लिपि को सीखने के लिए समय लगाना वक्त खोना नहीं है। बल्कि भाषा-ज्ञान के महल को खड़ा करने की नींव को डालना है।

---

५ : अगर नागरी को बचाना है ![1]

हमारा देश रूढ़िवादी है। बड़े-बड़े विद्वान भी रूढ़ि को छोड़ने की हिम्मत नहीं करते, और सामान्य लोग तो नये अक्षर पढ़ने के प्रति अरुचि रखते ही हैं। इसलिए अगर थोड़े से सुधार धीरे-धीरे किये जायँ तो दस-बीस बरस के अन्दर नागरी लिपि वैज्ञानिक और यन्त्र-योग्य बनेगी।

अगर अंग्रेजी के जबरदस्त अधिराज्य को हटाना है और हिन्दी को और उसकी नागरी लिपि को वह स्थान देना है तो नागरी को सुधार कर उसे 'भारती लिपि' बनाये बिना चारा नहीं। श्री विनोबा ने इसे लोक नागरी का नाम दिया है। देवनागरी को लोकनागरी बनाना सब तरह से इष्ट है। आज नागरी में सुधार करने का विरोध करना रोमन लिपि के प्रचलन के पक्ष में वोट देने के बराबर है। प्रान्तीय भाषाओं की लिपियाँ अलग-अलग हैं। उनकी जगह नागरी लिपि चलाकर देश में लिपि की एकता स्थापित करने की बात अब आयेगी, तब दक्षिण के लोग और पूरब के लोग भी अंग्रेजी की रोमन लिपि ही हमारे सामने धरेंगे। शायद उत्तर भारत की रूढ़िप्रियता कहेगी, भले भारत के लिए रोमन लिपि चले, हम अपने लिए अपनी रूढ़ देवनागरी जब तक चलेगी, चलाते ही रहेंगे। रूढ़ि के साथ मरना भी अच्छा ; सुधार के साथ जीना भयावह है !

इतनी बात स्पष्ट है, लिपि-सुधार के बिना देश में नागरी को फैलाना नामुमकिन है। लिपि-सुधार के बिना हिन्दी का प्रचार आसानी से नहीं होगा]

—काका कालेलकर

[1]गाँधी—हिन्दुस्तानी सभा, राजघाट, नई दिल्ली, के साप्ताहिक मुखपत्र 'मंगल प्रभात' वर्ष ८, अंक ५२, मंगलवार २१ जनवरी, १९५८।

६ : केरल में हिन्दी प्रचार और देवनागरी लिपि प्रयोग समस्या[1]

केरल के हिन्दी प्रचारकों से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं के ऊपर विचार करते-करते आपको एक बहुत बड़ी महत्वपूर्ण समस्या के ऊपर विशेष विचार करना होगा, जो स्वतंत्र भारत को मजबूत बनाने और उसकी एकता को कायम रखने के लिए आवश्यक है। वह है समूचे भारत के लिए एक सामान्य लिपि का प्रश्न। इस प्रश्न के हल में हमारा यह उद्देश्य छिपा नहीं रहना चाहिए कि इस समय जो भिन्न-भिन्न प्रान्तीय लिपियाँ हैं, उनको नेस्तनाबूद करके उनके स्थान पर नागरी लिपि को रखें, बल्कि यही हमारा उद्देश्य होना चाहिए कि भारत की प्रान्तीय भाषाओं के लिए भी नागरी लिपि का अधिक-से-अधिक उपयोग हो, जैसा कि आज भी संस्कृत के लिए नागरी लिपि का तथा प्रान्तीय लिपियों का उपयोग हो रहा है। मेरे ख्याल में भाषा के प्रचार का जितना महत्व है, उससे ज्यादा ही महत्व सामान्य लिपि का है। सामान्य लिपि का है। सामान्य लिपि के प्रचार के लिए वर्तमान समय बहुत ही अनुकूल है, क्योंकि इस समय हमारे देश में साक्षरों की संख्या सिर्फ १६ प्रतिशत है। उनमें आज भी हिन्दी साक्षरों की संख्या ६० फीसदी से अधिक

१—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र 'हिन्दी प्रचार समाचार' वर्ष १९, अंक ९, सितम्बर १९५७ के पृष्ठ क्रमांक १४, १५, १६ पर प्रकाशित श्री मो० सत्यनारायण [जो हिन्दी प्रचार समाचार के सम्पादक भी हैं] के अखिल केरल हिन्दी अध्यापक सम्मेलन दिनांक १२-८-५७ के तिरुवनंतपुरम् अधिवेशन में दिए गए अध्यक्षीय अभिभाषण से।

है। इसकी तुलना में कुछ अँग्रेजी जानने वालों की संख्या ३८ लाख है। इस संख्या में वे ही सम्मिलित किये गये हैं जिनकी अँग्रेजी योग्यता मैट्रिक या उसके ऊपर की है। यह स्पष्ट है कि इससे कम योग्यता वाले व्यक्ति अँग्रेजी भाषा या लिपि के द्वारा कोई उपयोगी कार्य नहीं कर सकते। यह भी स्पष्ट है कि हमारे देश के अँग्रेजी जानने वाले सभी लोगों को अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषा भी अच्छी तरह मालूम है। इस हालत में अँग्रेजी का ज्ञान उनके लिये एक अतिरिक्त ज्ञान है। अँग्रेजी जानने वालों की संख्या हमारे देश की कुल आबादी में १·६ प्रतिशत है। और यह संख्या कुल साक्षरों की संख्या में ६·४१ प्रतिशत बैठती है। इस तरह कुल साक्षरों की संख्या में अँग्रेजी-साक्षरों की संख्या बिलकुल नगण्य-सी है। इससे यह भी स्पष्ट है कि रोमन लिपि, जिसमें अँग्रेजी लिखी जाती है, देश की सामान्य लिपि कभी नहीं हो सकती। इसमें सन्देह नहीं कि साक्षरता में हिन्दी प्रान्त बहुत पिछड़े हुए हैं। फिर भी सारे हिन्दुस्तान की साक्षरता ३२.४३ प्रतिशत हिन्दी साक्षरता बैठती है। नागरी लिपि का उपयोग हिन्दी भाषा-भाषी ही नहीं, बल्कि मराठी भाषा-भाषी भी करते हैं। गुजराती तथा नागरी लिपियाँ एक-दूसरे के साथ इतनी मिलती-जुलती हैं कि गुजराती का जानकार बिना विशेष परिश्रम के नागरी लिपि जान सकता है। इस तरह मराठी, गुजराती तथा हिन्दी भाषा-भाषियों की साक्षरता की संख्या ४९·२५ प्रतिशत बैठती है। इसके अलावा संस्कृत-भाषा तथा हिन्दी भाषा के अध्ययन के द्वारा अहिन्दी प्रान्तों में नागरी लिपि के इतने अधिक जानकार हैं कि उनकी भी संख्या इसमें सम्मिलित की जाये तो नागरी लिपि में साक्षरों की प्रतिशतता ६० से अधिक हो जाती है। तब ज्यादा-से-ज्यादा दो करोड़ साक्षर ऐसे रह जाते हैं, जो नागरी लिपि से अनभिज्ञ हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस अनुपात में १९५१ की जनगणना के बाद साक्षरता बढ़ी है, उस अनुपात ही में नहीं, बल्कि उससे अधिक अनुपात में नागरी लिपि में साक्षरता बढ़ी है। जब नागरी, रोमन तथा प्रादेशिक लिपियाँ स्थिति तथा संख्या-बल के अनुसार हमारे सामने आती हैं, तब इस बात का निश्चय करने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती कि हमारे देश की

सामान्य लिपि नागरी के सिवाय और कोई नहीं हो सकती।

तर्क की दृष्टि से यद्यपि यह सिद्ध हो चुका है कि नागरी ही हमारे देश की सामान्य लिपि हो सकती है, तो भी प्रयत्न की कमी के कारण इस दिशा में हमारे देश के विद्वान, शासक या व्यवसायी लोग कुछ विचार नहीं कर रहे हैं। प्राय: लोगों को यह मालूम नहीं कि प्रान्तीय लिपियों की अपेक्षा नागरी लिपि की छपाई अधिक आसानी से हो सकती है, और सस्ती भी है। नागरी ज्यादा वैज्ञानिक और स्वयं पूर्ण है, और स्वयं पूर्ण अक्षर का होना ही उसकी सफलता का मुख्य कारण है।

---

७ : मोडी लिपि और उसका स्वरूप

—डॉ० कृष्ण दिवाकर,
एम्० ए०, पीएच्० डी०

[डॉ० कृष्ण दिवाकर, एम्० ए०, पीएच्० डी०, पूना विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। आप एक कुशल निबन्धकार, समीक्षक व संशोधनकर्त्ता हैं। पीएच्० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत आपके शोध-ग्रंथ का विषय था-भोंसला राजाओं तथा उनके आश्रित कवियों का हिन्दी काव्य। इसके अतिरिक्त "महाराष्ट्र का हिन्दी लोक काव्य" और "कवीन्द्र चन्द्रिका" आपके प्रकाशित शोध-ग्रंथ हैं।]

भारतीय शीघ्रलिपियों में "मोडी" लिपि का एक विशिष्ट स्थान है। कहा जाता है कि इस लिपि के जन्मदाता देवगिरि के यादव राजाओं के दरबार के प्रसिद्ध पंडित हेमाद्रि उर्फ हेमाडपन्त थे। सन् १२६० ई० से हेमाद्रि यादव राजा के दरबार में रहे थे।[१] इसके सम्बन्ध में एक किंवदंती प्रचलित है कि हेमाद्रि मोडी लिपि लंका से महाराष्ट्र ले आये। इसका दूसरा नाम पिशाच लिपि भी बताया जाता है।[२] इतिहासाचार्य स्व० राजवाडे ने इस बात का खंडन करते हुए लिखा है—देवगिरि के यादव राजा का साम्राज्य दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैला हुआ था। सम्भवतः कन्याकुमारी अथवा रामेश्वर में शासकीय काम से हेमाद्रि गये हों और वहीं से लंका की यात्रा भी कर आये हों। लंका से लौट आने पर शीघ्र ही उन्होंने समस्त दफ्तर की कार्रवाही मोडी में करने की आज्ञा दी और इसीलिये जान पड़ता है कि लोगों ने समझ

१. ऐतिहासिक प्रस्तावना (खंड ८, सन् १९२८ ई०) पृ० ३७६.
२. महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश, विभाग १ (१९२६ ई०) पृ० २१८.

लिया हो कि हेमाद्रि लंका से मोडी लिपि को ले आये थे। वस्तुतः तत्कालीन सिंहली भाषा का और मोडी का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। इस बात का कोई प्रमाण तक उपलब्ध नहीं होता। सिंहली में न मोडी का प्रचार कभी था न अभी है। इसके अतिरिक्त मोडी लिपि देवनागरी से भिन्न द्रविड़ भाषाओं के अक्षरों से भी तो नहीं बताई गयी। अतः हेमाद्रि द्वारा लंका से मोडी का लाया जाना दंतकथा मात्र है। इसमें कोई प्रामाणिक तथ्य नहीं है। उनका कथन है कि फारसी में "नस्ख" और "शिकस्ता" नामक दो लिपियों का प्रचलन है। नस्ख लिपि में लिखित अक्षर स्पष्ट तथा सुपाठ्य होता है। "शिकस्ता" फारसी की शीघ्रलिपि है। इसमें अक्षरों को विशिष्ट ढंग से मोड़कर लिखा जाता है। "मोडी" शब्द शिकस्ता शब्द का अनुवाद है। हेमाद्रि ने "शिकस्ता" लिपि की पद्धति पर मोडी लिपि का निर्माण तथा प्रचलन किया।[3]

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान् हेमाद्रि को "मोडी" का जनक मानने के पक्ष में नहीं हैं। श्रीमान् गुप्ते के मतानुसार मोडी लिपि का सर्वप्रथम प्रचलन बाळाजी आबाजी चिटणीस ने छत्रपति शिवाजी महाराज भोंसले के समय में प्रारम्भ किया था।[4] स्वर्गीय चांदोरकर मोडी की व्युत्पत्ति अशोक मौर्य की मौर्यी लिपि से मानते हैं।[5] अपने मत का समर्थन करने के लिये उन्होंने देवनागरी, मौर्यी और मोडी लिपियों की तुलनाकर मोडी और मौर्यी में समानता दिखाने का प्रयत्न किया है। मौर्यी लिपि में ऋ, ॠ, ऐ स्वर नहीं हैं, मोडी में भी इनको स्थान नहीं है। जिस प्रकार "मौर्यी" में ह्रस्व-दीर्घ का कोई भेद नहीं माना जाता उसी प्रकार "मोडी" में भी ह्रस्व-दीर्घ का अन्तर नहीं माना जाता। संस्कृत में सस्वर व्यंजन और अस्वर व्यंजन का एक महत्वपूर्ण भेद है। परन्तु मोडी और मौर्यी अथवा अशोक लिपि में वैसा भेद नहीं है। मोडी

---

३. ऐतिहासिक प्रस्तावना (वही) पृ० ३७७.

४. द् मोडी कॅरेक्टर अंड इट्स् ओरिजन (सन् १९०६ ई०) श्री० बा० आ० गुप्ते, पृ० १.

५. आर्य लिपि-गो० का० चांदारकर, पृ० ३७.

लिपि में अपूर्ण वर्णों की व्यवस्था नहीं है इसलिये देवनागरी की भाँति संयुक्त वर्ण ठीक से लिखना संभव नहीं होता। अशोक लिपि अथवा मौर्यी लिपि में भी यह स्थिति है।[६] निष्कर्ष रूप में उन्होंने लिखा है कि देवनागरी और मोडी दोनों भिन्न लिपियाँ हैं। देवनागरी संस्कृत भाषा की और मोडी प्राकृत भाषा की लिपि होगी।[७] श्रीमान पाध्ये ने मोडी की उत्पत्ति कैथी अथवा कुटिल लिपि से मानी है। अपने मत की पुष्टि के लिये उन्होंने कैथी लिपि और मोडी लिपि में समानता दिखाते हुए लिखा है कि जिस प्रकार कैथी में संस्कृत की संपूर्ण वर्णमाला का प्रयोग नहीं किया जा सकता वैसे ही मोडी में भी नहीं किया जा सकता। कैथी और मोडी लिपि के अ, ख, थ वर्ण नागरी से पूर्णत: भिन्न हैं।

विवेचन से स्पष्ट होता है कि मोडी लिपी के प्रवर्त्तक तथा व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विवाद है। हम उस पर संक्षेप में विचार करेंगे। श्रीमान् गुप्तेजी का कथन व्यक्तिगत उपलब्ध सामग्री के आधार पर था। बहुत प्रयास करने पर भी उन्हें शिवाकाल के पूर्व मोडी लिपि में लिखित एक भी पत्र अथवा हस्तलेख प्राप्त नहीं हुआ। इसलिये उन्होंने मोडी के प्रवर्तक बाळाजी आबाजी चिटणीस को मानकर मोडी का प्रचार वहीं से स्वीकार किया। इनका खंडन करते हुए श्री राजवाडे ने ज्ञानेश्वरी की कुछ पंक्तियों का हवाला देते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि मोडी लिपि का प्रचार हेमाद्रि के समय से था। ज्ञानेश्वरी की वे पंक्तियाँ इस प्रकार हैं।

हे बहू असो पंडितू घरूनु बालकाचा हातू
वोळा लेहे वेगवंतू आपणचि।[८]

इन पंक्तियों में प्राप्त "वेगवंतू" शब्द तो उन्होंने मोडी का वाचक माना और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि मोडी का प्रचलन ज्ञानेश्वर के समय

६. इंडियन ऐंटिक्वेरी ग्रंथ-३३ परिशिष्ट, पृ० ३७-३८.
७. आर्य लिपि-गो० का० चांदोरकर, पृ० ६३.
८. ज्ञानेश्वरी—अध्याय १३.

में जो हेमाद्रि के समकालीन थे, होता रहा। श्रीमान राजवाडे का यह कथन प्रमाणों की अपेक्षा तर्क पर अधिक समाश्रित है। "वेगवंतू" शब्द को मोडी का वाचक मानना उन्हीं की कल्पना है। यदि वे समकालीन अथवा शिव-काल-पूर्व मोडी में लिखित कोई प्रमाण प्रस्तुत करते तो अधिक उचित होता। किसी अनुसंधान में मोडी लिपि में लिखित कुछ प्रामाणिक पत्र उपलब्ध हुए हैं जो शिवाजी के लगभग १५० वर्ष पूर्व के हैं। इससे इतना तो निश्चित होता है कि मोडी लिपि का प्रचलन शिवाजी के पूर्व १५० वर्षों से यहाँ था। अतः मोडी लिपि के प्रवर्तक बाळाजी आप्पाजी चिटणीस कदापि नहीं हो सकते। अब प्रश्न रहा कि हेमाद्रि के पूर्व मोडी लिपि का प्रचलन था अथवा नहीं?

कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने[१०] मोडी लिपि की व्युत्पत्ति "मूर" लोगों से मानी है। वस्तुतः यह व्युत्पत्ति भ्रममूलक तथा निराधार है। मोडी शब्द अंग्रेज लोगों ने अपने उच्चारण के अनुसार लिखते समय "ड" के स्थान पर "र" का प्रयोग किया जिससे वह शब्द "मोडी" के स्थान पर "मोरी" हो गया और यह मोरी शब्द मूल मानकर भाषाविज्ञान की दृष्टि से उसकी व्युत्पत्ति "मूर" से लगाने का प्रयत्न किया।[११] अतः इस पर विचार करने अथवा यह मत स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता। श्रीमान चांदोरकर जी ने मोडी की व्युत्पत्ति "मौर्यी" लिपि से बताते समय कुछ अंशों में इसी प्रकार का तर्क दिया है। उन्होंने लिखा है—ललित विस्तार में चौसठ लिपियों के जो नाम दिये हैं उससे ज्ञात होता है कि जिस प्रकार खरोष्ट्र की खरोष्ट्री, मगध की मागधी, शोरसेन की शौरसेनी बनी उसी प्रकार मौर्य की मौर्यी रही होगी। उन्होंने मोडी का व्युत्पत्ति-क्रम इस प्रकार माना है—मौर्य-मौर्यी-मोरी-मोडी।[१२] श्रीमान् चांदोरकर ने अपने मत की पुष्टि में जो बातें लिखीं, उसमें प्रमाणों की अपेक्षा कल्पना

---

९. महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश—श्री व्यं० केतकर, पृ० २१८.

१०. सेन्सस रिपोर्ट १ (९)-श्री बेन

११. द मोडी लिपि अंड इट्स ओरिजिन (सन् १९०६ ई०) पृ० ३१.

१२. आर्य लिपि-श्री गो० का० चांदोरकर, पृ० ३७.

और तर्क ही अधिक हैं। मोडी शब्द की मौर्यी से व्युत्पत्ति उसी प्रकार है जिस प्रकार मूर से मोरी का व्युत्पत्ति बताना है। दूसरी बात है—मौर्यी और मोडी लिपियों में कुछ बातों में समानता प्राप्त होना। दोनों में जिस प्रकार कहीं-कहीं समानता है उसी प्रकार असमानता भी है इस तथ्य का भी विचार होना आवश्यक है। वैसे कुटिल अथवा कैथी लिपि और मोडी में भी अनेक स्थलों पर साम्य है। अतः केवल कुछ बातों में साम्य प्राप्त होने पर मोडी की व्युत्पत्ति मौर्यी से मानना समीचीन प्रतीत नहीं होता। उसके लिये और भी वैज्ञानिक तर्क एवम् प्रत्यक्ष प्रमाणों की आवश्यकता है।

अनुसंधान में प्राप्त अद्यवधि प्रमाणों से मोडी लिपि की व्युत्पत्ति देवनागरी की उपलिपि कुटिल अथवा कैथी से मानी जाती है। परम्परा ऐतिहासिक तथ्य, लिपियों की आवृत्ति-प्रकृति आदि अनेक बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि "मोडी" की व्युत्पत्ति "कैथी" से हुई है। शीघ्रलेखन की दृष्टि से मूल वर्णों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर बनायी गयी वर्णमाला अथवा अक्षर-वाटिका को "कुटिल" कहा गया है। मराठी में प्रयुक्त "मोडी" शब्द संस्कृत के "कुटिल" का पर्यायवाची है। ११वीं शताब्दी में बिल्हण कवि द्वारा लिखित विक्रमांक देवचरित नामक ग्रंथ में कायस्थ की कुटिल लिपि का सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है।

तो कायस्थैः कुटिल लिपिभिः र्नोविटैश्चाटुदक्षैः[१३]

इससे स्पष्ट होता है कि कुटिल लिपि का प्रचलन हेमाद्रि के लगभग १५० वर्ष पूर्व रहा था। इतिहास से ज्ञात होता है कि हिसाब-किताब लिखकर उपजीविका करनेवाले कायस्थ लोग भारत के समस्त प्रांतों में प्राचीन काल से फैले हुए थे। कायस्थों के अतिरिक्त इसी व्यवसाय पर उपजीविका करने-वाली अन्य जातियाँ भी थीं परन्तु इन सभी में कायस्थों का प्रभाव अधिक रहा। कायस्थों में करण नाम की एक उपजाति थी। कन्नौज के राजा का हिसाब-किताब करनेवाले अधिकारी को कायस्थ अथवा "करणिक" संज्ञा

---

१३. हेमाद्रि उर्फ हेमाडपंत—केशव आप्पा पाध्ये, पृ० २६८.

रहती थी ।[१४] इससे "करण" अथवा "करणिक" शब्द का रूढ़िगत अर्थ राज-व्यवहार का हिसाब-किताब देखनेवाला अधिकारी हो जाता है । अतः यह शब्द जातिवाचक न रहकर व्यवसायवाचक बन गया । दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष के समय के एक लेख से ज्ञात होता है कि दक्षिण में कायस्थ लोग व्यवसाय के लिये आये थे और अमोघवर्ष ने अपने शासनकाल में शासकीय पत्र-व्यवहार, हिसाब-किताव लिखने के लिये इनका उपयोग किया था । कायस्थों को इस प्रकार का आश्रय देने की परंपरा उत्तरकालीन राष्ट्रकूट राजाओं ने भी कायम रखी थी ।

देवगिरि के यादव राजा के दरबार में हेमाद्रि "करणाधीप" के स्थान पर थे । उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि देवगिरि के यादव राजा का शासकीय सारे पत्रव्यवहार, हिसाब-किताव का उत्तरदायित्व हेमाद्रि पर था । वे "करणों" के अधीप थे । हेमाद्रि के समय देवगिरि के यादव राजा का अधि-कार क्षेत्र दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैला हुआ था ।[१५] इससे हेमाद्रि के कार्य की व्यापकता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । अतः इस स्थिति में कम समय में अधिक कार्य करने के लिये किसी शीघ्र लिपि का प्रयोग करना उनके लिये परमावश्यक हो गया होगा । अतः बहुत संभव है कि हेमाद्रि जैसे व्युत्पन्नमति, बुद्धिमान तथा मेधावी व्यक्ति ने देवनागरी की पूर्व प्रचलित कुटिल अथवा कैथी उपलिपि में आवश्यकतानुसार हेरफेरकर मोडी लिपि का प्रचलन देवगिरि के राजाओं के अधिकार क्षेत्र में शुरू किया हो । महाराष्ट्र में हेमाद्रि के पूर्व मोडी लिपि लिखने की परंपरा नहीं मिलती । इसलिये अधि-कांश लोगों ने हेमाद्रि को ही "मोडी" लिपि का जनक मान लिया है । आज भी अनेक कायस्थों के पास "मोडी" में हिसाब-किताब लिखा जाता है । उनके पास मोडी में लिखित अनेक प्राचीन कागज पत्र उपलब्ध हुए हैं । कालक्रम की दृष्टि से उन हस्तलेखों की परीक्षा करने पर स्पष्ट हो जाता है कि मोडी

---

१४. वही हेमाद्रि उर्फ हेमाडपंत—पृ० २६९.

१५. ऐतिहासिक प्रस्तावना, वि० का० राजवाडे, पृ० ३७७.

लिपि "कैथी" का ही परिवर्तित स्वरूप है। अतः हेमाद्रि को मोडी लिपि का वास्तविक प्रवर्तक भले ही न कहा जाय परंतु इसमें संदेह नहीं है कि महाराष्ट्र में "मोडी" का प्रचार हेमाद्रि के समय से ही प्रारम्भ हुआ। अतः महाराष्ट्र में मोडी लिपि के प्रथम प्रचारक के रूप में उन्हें गौरव देना अनुचित न होगा। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि फ़ारसी की "शिकस्ता" लेखन पद्धति का अनुगमन मोडी लिपि में नहीं है बल्कि उसमें कैथी अथवा कुटिल लिपि का अनुगमन है।

मराठा शासकों ने शासकीय पत्र-व्यवहार आदि के लिये मोडी लिपि को प्राधान्य प्रदान किया था। अतः मराठों के साम्राज्य-विस्तार के साथ मोडी लिपि का प्रचार भी पर्याप्त मात्रा में हुआ। मराठा शासनकाल में मोडी को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और उसे स्थैर्य मिला। इसी से कुछ विद्वान मोडी लिपि को महाराष्ट्र की राष्ट्रीय शीघ्रलिपि मानते हैं।[१६] मोडी लिपि का प्रचलन महाराष्ट्र तक ही सीमित न रहकर दक्षिण तथा उत्तर भारत के उन प्रदेशों में भी रहा जहाँ मराठा शासकों का साम्राज्य रहा अथवा जिनसे मराठा शासकों का घनिष्ठ संबंध रहा। सवाई माधवराव पेशवा के समय में भारत के प्रमुख शहरों में मोडी लिपि के ज्ञाता थे। मराठा शासनकाल में मोडी का पूर्ण विकसित रूप दिखायी देता है। वर्तमान महाराष्ट्र में मोडी लिपि का प्रचलन न के बराबर ही रहा है। देवनागरी का प्रचलन ही सर्वत्र दिखाई देता है।

आज से सौ वर्ष पूर्व मद्रास तथा मैसूर के सरकारी दफ्तरों में मोडी लिपि का ही बोलबाला था। आज भी कर्नाटक में कुछ महाजन-साहूकारों के यहाँ के कानडी भाषा के हिसाब-किताब मोडी लिपि में लिखे जाते हैं।[१७] मराठा शासनकालीन उपलब्ध हिन्दी-पत्रों में भी ऐसे कई पत्र प्राप्त होते हैं जो मोडी लिपि में लिखे गये हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि मोडी लिपि में आर्य परिवार की भाषाओं के समान द्रविड़ परिवार की भाषाएँ भी लिखी जाती

१६. महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश, पृ० २१८.
१७. वही, पृ० २१८.

थी । मोडी लिपि के इस विशिष्ट गुण पर विशेष गंभीरता से विचार होना चाहिए । जिस प्रकार भारत जैसे बहुभाषी देश की सांस्कृतिक तथा राजकीय एकता बनाये रखने के लिये एक राष्ट्रभाषा तथा एक राष्ट्रलिपि की आवश्यकता है उसी प्रकार एक राष्ट्रीय शीघ्र लिपि की भी आवश्यकता है और इस दृष्टि से राष्ट्रीय शीघ्रलिपि के रूप में सुकर तथा सुलभ मोडी लिपि पर विचार करना अवांछनीय न होगा ।

यहाँ परिचय के लिये मोडी लिपि की वर्णमाला दी जा रही है ।

स्वर

व्यंजन

८ : सिन्धी तथा देवनागरी

—डॉ० दशरथराज

[डॉ० दशरथराज अध्यक्ष हिंदी विभाग, साहित्य, विज्ञान और वाणिज्य महाविद्यालय धूलिया, हिंदी, सिंधी और उर्दू के विद्वान हैं। उनके विचार व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की दृष्टि से महत्व रखते हैं।]

सिंधी भाषा :—

सिंधी भाषा का देवनागरी के साथ संबंध स्थापित करने से पूर्व मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि हम सिंधी भाषा के उद्भव, विकास एवं साहित्य की संक्षिप्त रूपरेखा का परिचय पा लें।

मोहनजोदरो ने यह बात साबित कर दी है कि सिंध एक बहुत ही प्राचीन देश है और उस समय भी वहाँ पर संस्कृति औग सभ्यता के प्रमाण मिलते हैं जब अन्य स्थानों के लोगों ने ठीक तरह से व्यवस्थित जीवन व्यतीत करना भी नहीं सीखा था। कुछ लोग मोहनजोदरो की सभ्यता और संस्कृति की तुलना सुमेरी तथा मिस्र की प्राचीनतम संस्कृति से करते हैं और यह विदित होता है कि ईसा पूर्व १००० वर्ष आर्य लोग कहीं से आकर सिंध में बस गये थे अथवा वे सिंध से ही अन्य स्थानों की ओर गये। यह एक विवादग्रस्त विषय है और स्वतंत्र रूप से अनुसंधान का अधिकारी भी, पर इतना मानने में कोई आपत्ति नहीं कि ईसा-पूर्व एक हजार वर्ष मोहनजोदरो की सभ्यता ने सिंध की संस्कृति और सम्यता पर प्रकाश डाला है। हम जानते हैं कि संस्कृति साहित्य द्वारा ही जीवित रहती है। वैसे तो मोहनजोदरो से भी लेख और उस युग के लिपि-चिन्ह प्राप्त हुए हैं, पर दुर्भाग्यवश अभी तक उनको पढ़ा नहीं जा सका अन्यथा सिंधी भाषा और साहित्य पर इन लेखों से विशेष प्रकाश पड़ने की संभावना है।

अरबस्तान तथा ईरान से सिंध के संबंध बहुत ही प्राचीन काल से रहे हैं। अरबों की सिंध-विजय से पूर्व ही इन देशों के आपस में व्यापारिक संबंध थे। एक बार पाँच सौ मुसलमान एक अरब सरदार की आधीनता में मकरान से भाग कर सिंध के राजा दाहर के यहाँ चले आये थे और उनके बहुत दिन बाद ही हिजरी पहली शताब्दी के अन्त में (ईसवी आठवीं शताब्दी के आरम्भ में) मुहम्मदबिन क़ासिम ने सिंध और मुलतान जीता था। इसके बाद प्रायः सौ-सवा सौ बरस तक यह देश पहले दमिश्क और फिर बगदाद के राज्य का एक अंग बना रहा। मसऊदी सन् ३०३ हिजरी (ईसवी नवीं शताब्दी) में सिंध में आया था तब अब्दुल्लाह के लड़के उमर को मन्सूरा (सिंध की उसबल राजधानी) का शासन करते हुए देखा था और साथ ही बहुत से अरब सरदार भी उसे वहाँ मिले थे। वह सिंधी भाषा के बारे में लिखता है कि "सिंध में वहाँ की अपनी भाषा है, जो भारत की और भाषाओं से अलग है। और भी वहाँ सब व्यापारी ही व्यापारी बसते हैं। उनकी भाषा सिंधी और अरबी है।"[१]

इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि ईसवी नवीं शताब्दी में सिंध में सिंधी और अरबी दोनों भाषाओं का समान रूप से प्रचार था। और आज भी सिंधी की लिपि अरबी ही थोड़ी हेर-फेर से बनी हुई है। इस हेर-फेर और उस पर अन्य विदेशी भाषाओं के प्रभाव को हम बाद में देखेंगे। यहाँ तो हम यह देखना चाहते हैं कि सिंध की इस विशिष्ट भाषा का उद्गम किस तरह और कौन-कौन सी भाषाओं से हुआ है।

जब ईसवी आठवीं शताब्दी के आरम्भ में सिंध पर मुसलमानों (अरबों) का आक्रमण हुआ तब सिंध में बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार था। अरब वाले बौद्धों को समनियः कहते थे। भूगोल के सभी लेखकों ने भी सिंध में बुद्ध नाम की एक बस्ती का उल्लेख किया है, जिसका नाम "चचनामे" में भी "बुद्धपुर"

१—अरब और भारत के सम्बन्ध—सैयद सुलेमान नदवी, पृष्ठ २८२।
तथा मसऊदीकृत मुरूजुज्जहब, पहला खण्ड, पृष्ठ २८१।

के रूप में आया है। "इलियट" के इतिहास में भी इस कथन का समर्थन है। सिंध में "नवविहार" नाम के बौद्ध उपासना मंदिर का भी उल्लेख इतिहास ग्रंथों तथा भूगोल ग्रंथों में पाया जाता है, जिससे एक प्रमाण इस बात का मिलता है कि उस समय सिंध में बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार था। "इलियट" तो उस समय सिंध का प्रधान धर्म "बौद्ध" ही मानते हैं। किन्तु "चच" और "दाहर" शक्तिशाली ब्राह्मण शासक थे, जिनके कारण बौद्ध धर्म के प्रचार में बाधा उपस्थित होती थी और बौद्ध धर्म के अनुयायी तथा पुजारी ब्राह्मणों के विरोधी थे। इतिहास गवाही देता है कि इनकी मदद से ही मुहम्मद विन-कासिम विजयी हुआ। बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ हो न हो, पाली भाषा ने भी सिंध में प्रवेश पाया हो और उसका रूप यहाँ पर आकर बदला हो। पर उसका प्रभाव भी सिंधी भाषा पर रहा हो। ब्राह्मणों के कारण और उनके ही शासन के कारण संस्कृत का प्रचार और प्रभाव भी सिंध में वहाँ की भाषा पर था ही। जब मुसलमानों के साथ अरबी भाषा ने भारत में प्रवेश पाया तब हिन्दुओं को भी राज्य-भाषा के नाते उसे स्वीकार करना पड़ा। इतना ही नहीं तो धर्म-परिवर्तन करने वाले हिन्दुओं ने अरबी को धार्मिक भाषा के रूप में स्वीकारा क्योंकि कुरान और हदीस अरबी भाषा में ही थे अतः सिंधी और अरबी एक साथ पनपने लगीं और दोनों ने एक दूसरे को प्रभावित भी किया। अरबों ने भी शासन-कार्य के लिए वहाँ की जन भाषा को स्वाभाविक तौर पर अपनाया और साथ ही धर्म प्रचारार्थ भी उन्हें प्रादेशिक भाषा का महत्त्व स्वीकारना पड़ा पर वे उस समय की वहाँ पर प्रचलित लिपि को न स्वीकार कर अपनी ही लिपि में उस प्रदेश की भाषा को भी लिखने लगे और इस तरह सिंधी भाषा अरबी लिपि में लिखी जाने लगी। वैसे तो यह मानी हुई बात है कि कोई भी भाषा अपने आरम्भिक रूप में नहीं मिलती क्योंकि आरम्भिक अवस्था में वह जन भाषा ही होती है और विकसित होकर ही वह साहित्य के उपयुक्त बन पाती है और भाषा का रूप साहित्य में ही सुरक्षित रहता है पर साहित्य में उपलब्ध रूप तो उस भाषा का विकसित रूप ही माना जाता है। अतः सिंधी का आरम्भिक रूप पाना भी आज असंभव ही दीख पड़ता है। एक

बात और जो इन आक्रमणकर्त्ताओं ने की थी, वह था पुराने साहित्यिक ग्रंथों का ध्वंस ताकि उस देश की संस्कृति नष्ट करके उस पर अपनी संस्कृति की छाप लगाई जा सके। अतः आज भी यह कहना कठिन ही है कि अरबों के आगमन के पूर्व सिंधी किस लिपि में लिखी जाती थी।

सिंधी की लिपिमाला

आज भी चाहे सिंधी अरबी लिपि में लिखी जाती है फिर भी आज अरबी की अपेक्षा सिंधी वर्णमाला की बारहखड़ी अधिक विस्तृत पाई जाती है। अरबी में 'थ' के लिए फारसी की ही भाँति त+ह को जोड़ना पड़ता है 'फ' के लिए प+ह का प्रयोग होता है हालाँकि 'फ़' वर्ण अरबी और फ़ारसी में उपलब्ध है। 'भ' के बारे में भी वही बात है कि अरबी और फ़ारसी में ब+ह के जोड़ से यह शब्द बनता है पर सिंधी में ये सभी वर्ण नुकतों की कमी-बेशी से आज भी बने हुए हैं। सिंधी के कुछ और उच्चारण (वर्ण) ऐसे भी हैं जो न तो संस्कृत में ही मिलते हैं और न अरबी फारसी में। पे 'ब' नहीं कहा जा सकता। इसका ठीक उच्चारण करने के लिए सिंधी वाले देवनागरी में सिंधी लिखते समय 'ब' लिखकर काम चला लेते हैं। चे वर्ण भी न संस्कृत में मिलता है न अरबी फारसी में ही। यह अरबी फारसी के जे और संस्कृत के 'ज' से भिन्न ही है। सिंधी का गाफ़ वर्ण भी इस तरह अपनी भिन्न सत्ता रखता है।

इस तरह हम देखते हैं कि सिंधी भाषा और लिपि में कुछ वर्णमाला के शब्द अधिक हैं और वे वर्ण अन्य भाषा-भाषी ठीक तरह से न तो बोल पाते हैं और न ही उनको लिपिबद्ध कर सकते हैं।

सिंधी भाषा का विभाजन

सिंधी भाषा को चार भागों में विभाजित किया जाता है (१) विचोली (बीच की या मध्यम)। (२) सरारकी या सरेली यह सिंध के पूर्व भाग में बोली जाती है। जिसमें बहावलपुर का भाग भी आ जाता है। (३) भरेली जो थरपारकर विभाग में प्रचलित है। (४) कच्छी जो कच्छ और काठिया-वाड़ में बोली जाती है। परन्तु साहित्यिक तथा विशेष प्रचलित सिंधी वह विचोली ही मानी जाती है।

सिंध की पुरानी भाषा

डॉ० नबी वख्श खान बलोच मानते हैं कि सिंध में बहुत पुराने जमाने से कोई सामी बोली प्रचलित थी। जो लोग पहले पहल सिंध में आकर बसे, वे पश्चिम से आये थे और उन्होंने सिंध नदी के पश्चिमी किनारों पर अपनी वस्तियाँ बसा लीं और संभव है कि मोहनजोदरो से प्राप्त लेखों में सुमेरी भाषा से कुछ संबंध स्थापित किये जा सकें पर वह दुर्भाग्यवश आज पढ़ी ही नहीं जा सकी और यह भाषा ईसा पूर्व २५०० वर्ष पहले भी लिपिबद्ध पाई जाती है। अतः अवश्य ही उसका प्रचार रहा होगा।[१]

भाषाविज्ञानियों ने सिंधी को व्राचड अपभ्रंश के अंतर्गत रखा है। इसका कारण यही है कि सिंधी पर न केवल पाली का (बौद्धधर्म के प्रभाव के कारण) अपितु ईरानी, यूनानी, तुर्की और द्रविड़ भाषाओं के शब्द-समूह का भी विशेष प्रभाव रहा है और हम जानते हैं कि व्राचड अपभ्रंश का अर्थ है बिल्कुल बिगड़ी हुई जो नाम संभवतः इन सम्मिश्रणों को देख कर ही निर्धारित हुआ हो।

हम ऊपर कह आये हैं कि सिंध में अरबों की विजय के पश्चात सिंधी और अरबी दोनों ही भाषाएँ विशेष रूप से प्रचलित रहीं पर धीरे-धीरे हिजरी की चौथी शताब्दी के अंत में (ईसवी १० वीं शताब्दी में) यहाँ फारसी भाषा का प्रचार भी आरम्भ हो चला। बिशादी जो हिजरी ३७५ (ईसवी १० वीं शताब्दी में) भारत में आया, लिखता है कि "यहाँ सभी ताजर (व्यापारी) बसते हैं और उनकी जबान सिंधी ओर अरबी है।"[२] फिर भी धीरे-धीरे तुर्कों और मुगलों के आगमन से फारसी भाषा का भी सिंधी पर विशेष प्रभाव पड़ा है। आज भी सिंधी भाषा में अरबी-फारसी भाषाओं के शब्द तत्सम और तद्भव रूप में बहु संख्या में मिलते हैं।

सिंधी और देवनागरी

अंत में हम सिंधी और देवनागरी के विषय में कुछ विचार करेंगे। आज

१—सिंधी अदब—पीर हसामुद्दीन राशदी, पृष्ठ १९।

२—सिंधी अदब—पीर हसामुद्दीन राशदी, पृष्ठ १२।

समस्त भारतीय भाषाओं को एक ही राज्यलिपि (देवनागरी) में लिपिबद्ध करने की विचारधारा चल पड़ी है जो अपने स्थान पर एक महत्व अवश्य रखती है, जिससे एक लिपि होने के कारण एक भाषा-भाषी को दूसरी भाषा सीखने में सुविधा तो होगी ही और उसे आज की तरह अन्य लिपियाँ सीखने में अपना समय बरबाद करना नहीं पड़ेगा। जहाँ एक लिपि अपनाने से यह लाभ है, वहाँ एक बड़ी भारी हानि की संभावना भी बनी हुई है। प्रत्येक प्रांतीय भाषा की भाँति सिंधी का भी अपना साहित्य है जो आज भी उसी अरबी लिपि में लिपिबद्ध मिलता है। अगर भविष्य में देवनागरी लिपि को ही स्वीकारा जायगा तो हम उस प्राचीन साहित्य से वंचित रह जायँगे जिस पर कोई भी देश, प्रांत, जाति अभिमान कर सकता है। यह तो संभव नहीं है कि वे समस्त प्राचीन ग्रंथ देवनागरी में पुनः मुद्रित किये जा सकें और उनको भविष्य के लिए सुरक्षित रखा जा सके ताकि प्रत्येक जाति अपनी संस्कृति और सभ्यता के इतिहास से परिचित रह सके। अतः मेरी अल्प बुद्धि तो इस बात को स्वीकारने के लिए प्रस्तुत नहीं कि समस्त प्रांतीय भाषाओं के लिए एक ही राष्ट्रीय लिपि (देवनागरी) उपयुक्त हो सकेगी। इससे हम अपने अपूर्व प्राचीन साहित्य निधि को खोकर निर्धन रह जायँगे अतः कोई भी स्वाभिमानी जाति अपनी संस्कृति का विनाश नहीं चाहेगी। यह अवश्य संभव है कि जिन लोगों को अन्य भाषाओं के साहित्य में रुचि है, वे उस भाषा की लिपि भी सीख लें। यह कोई असंभव बात नहीं चाहे कठिन भले ही हो।

अरबी और फारसी लिपियाँ

अरबी और फारसी लिपि तो हिन्दी साहित्य तथा इतिहास के अनुसंधान में भी सहायक ही है। हमारा विपुल अप्रकाशित साहित्य आज भी फारसी और अरबी लिपि में हस्तलिखित प्रतियों के रूप में सुरक्षित है, अगर हम केवल देवनागरी को ही अपनाने लगें तो हमें उस साहित्य और ऐतिहासिक ग्रंथों से भी हाथ धोने पड़ेंगे जिनकी आज भी आपको आवश्यकता प्रतीत होती है और इस दिशा में कोई विशेष कार्य नहीं हो रहा। हमें तो देवनागरी के साथ अरबी और फारसी लिपियों का भी विशेष अध्ययन करना होगा ताकि

हम उस अतुल धनराशि को सुरक्षित रख सकें। केवल राष्ट्रीयता की अंधी लहर में हम उसे खोने को प्रस्तुत नहीं।[१]

१—सामान्यतः जो कुछ पुराना है, वही श्रेष्ठ है, और जो आधुनिक है, अथवा भविष्य में होगा, वह सब पुराने के ही अनुरूप हो, यह प्रगतिशील विचार नहीं है। प्राचीन साहित्य और प्राचीन लिपि का संरक्षण ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक समन्वय के प्रयास न करना, देश के भविष्य के हित में उचित नहीं है। विश्व की प्रगति के साथ-साथ भारतीय भाषा और राष्ट्रलिपि का प्रश्न केवल हस्तलिखित ग्रन्थों को लेकर ही नहीं चला जा सकता। देवनागरी लिपि में भी प्राचीन साहित्य पर विवेचन, संकलन और सम्पादन किये जा सकते हैं और उनका अध्ययन, विवेचन और अनुशीलन हो सकता है।

—सम्पादक

चीनी लिपि का देवनागरी में रूपान्तरण

[चीन यात्रा के बाद भारतीय सुप्रसिद्ध मेजर श्री एन० बी० गद्रे ने पूना के भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट में "ए लेटर फ्रॉम चाइना टाउन" नामक पुस्तक भेंट की, जिसमें श्री गद्रे ने चीनी भाषा को देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध करने की सम्भावनाओं और व्यावहारिक सुविधाओं का शास्त्रीय विवेचन किया है।

देवनागरी लिपि की प्रतिष्ठा के विषय में यह लेख बहुत महत्वपूर्ण है। दिवंगत प्राध्यापक शं० दा० चितले जी के विशेष आग्रह से डॉ० म० सि० करमरकर एम०ए०, पी-एच०डी०, अध्यक्ष, जर्मन भाषा विभाग बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने मूल अँग्रेजी लेख का हिन्दी अनुवाद कर हमें अनुग्रहीत किया है]

चीनी लिपि का नागरीकरण

चीनी भाषा को रोमन लिपि में लिखने की कई पद्धतियाँ अपनाई गई हैं, लेकिन जहाँ तक मेरा ख्याल है, उनमें से एक भी अधिकृत या व्यापक रूप से कार्य में नहीं लाई गई। चीनी लिपि का नागरीकरण करने के लिये सुविधानुसार व्यक्तिगत प्रयास अवश्य किये गये। चीनी-भारतीय सम्बन्ध को यदि व्यापक बनाना है तो अँग्रेजी के द्वारा ये दो भाषायें सीखने से काम नहीं चलेगा, क्योंकि हिन्दुस्तान में अँग्रेजी जानने वाले २ प्रतिशत ही होंगे और चीन में तो इससे भी कम। अगर चीनी और हिन्दुस्तानी भाषाओं को पारस्परिक रूप में लिपिबद्ध किया जाय तो इनका अनुपात २० गुना अधिक बढ़ सकता है। यहाँ मैं चीनी लिपि को नागरी में रूपान्तरित करने का प्रयत्न करता हूँ।

चीनी वर्णमाला का स्वरूप

चीनी शब्द प्रायः सभी एकाक्षर होते हैं, जिसके दो भाग होते हैं—आद्य और अन्तिम। अन्तिम भाग ही कभी-कभी आदि भाग के बिना प्रयुक्त होता

है। आदि प्रायः व्यञ्जन होता है और अन्तिम स्वर, जो अनुनासिक 'न' या 'ङ' के बाद आता है। और कभी-कभी अर्ध स्वर Y (य) या W (व) के पहले आता है, जिससे आदि के साथ संयुक्त व्यञ्जन के रूप में प्रयुक्त होता है जो y या w (यकारान्त अथवा वकारान्त) होता है, जैसे Ky, Kw, Py, Pw, Chy, Chw इत्यादि।

संस्कृत में जिसको I और U (इ और उ) का सम्प्रसारण कहते हैं, उसके लिए दो नये स्वर संकेत AI और Aw (आय् और आव्) निर्माण करने पड़ेंगे। व्यञ्जनों की संख्या चीनी भाषा में किसी भी भारतीय भाषा के व्यञ्जनों की अपेक्षा बहुत कम है।

चीनी भाषा का देवनागरी लिपि में ध्वनिरूप :

अब मैं चीनी भाषा को लिपिबद्ध करने के लिये देवनागरी व्यञ्जन दे रहा हूँ—

Gutteral (1) K (क) ; KH (ख); G (ग)।
Palatals (2) CH (च); CHH (छ); J (ज)।
Dentopalatals (3) Ts (च्) ; TSH (छ्) ; TZ (ज्)।
Dentals (4) T (त) ; TH (थ) ; D (द) ; N (न)।
Lobitals (5) P (प) ; PH (फ) ; B (ब); M (म)।
Semi-Vowels (6) Y (य) ; R (र) ; L (ल) ; W (व)।
Sibilants (7) SH (श) ; HS (ष); S (स)।
Asphirates (8) H (ह) ; और यहाँ पर नीचे ये स्वर दे रहा हूँ—

(1) OA (अ)

(2) A (आ)

an (अं)

An (आं)

Ang (आँ)

(3) Ang (अँ) ; I (इ) ; In (इं)

(4) U (उ) ; Un (उं) Ung (उँ)।

(5) e (ए)

(6) O (ओ)

(7) ai (ऐ)
(8) au (औ)
(9) AI (ऐ)
(10) Au (औ)

(ये सभी तीन "N" के साथ और "NQ" के साथ भी जोड़कर और बनाये जा सकते हैं।)

ऊपर जैसे कहा जा चुका है कि अर्धस्वर 'y' और 'w' से और भी दुगने प्रकार के अंतिम उच्चारणों की सम्भावना है, लेकिन इन सबका व्यवहार नहीं होता है।

चीनी लिपि का रोमनीकरण सन्देहात्मक और अनिश्चित

मैंने RI (ऋ) और AR (अर्) अभी छोड़ दिये हैं। लेकिन बाद में पूरी सारिणी दे दूँगा, तब इनका भी उसमें समावेश हो जायगा। इस तरह कुछ २६ या २८ आदि और करीब-करीब ३० प्रायमरी (Primary) और ६० सेकेण्डरी फायनल्स (Secondary Finals) हैं। मैंने अनुभव किया है कि करीब-करीब ९५ प्रतिशत चीनी शब्द मेरी पद्धति से ध्वनि लिखित किये जा सकते हैं जिनका रोमन पद्धति से लिखे जाने पर सन्देहात्मक और अनिश्चित होता है। एक चीनी शब्द संकेत के लिये एक ही नागरी और व्यवहार की दृष्टि से बड़ी उपादेयता है।

चीनी के लिये प्रस्तावित देवनागरी लिपि पद्धति—

उपरोक्त स्पष्टीकरण के अनुसार अब मैं अपनी लिपि दे रहा हूँ जिसमें अभी चीनी भाषा की विशेष ध्वनियों का निर्देश नहीं किया गया है और बाद में अपने दूसरे पत्र[1] में इन विशेष ध्वनियों को लिखने की पद्धति भी दे दूँगा।

एक व्यंजन से ९० एकाक्षर शब्द बन सकेंगे और अगर इन ९० में से हर एक के चार-चार रूप हों तो ३०×३×४=३६० रूप हो सकते हैं।

१—लेखक महोदय का उक्त दूसरा पत्र अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

——सम्पादक

२७ व्यजंनों से तैयार हो सकने वाले सम्भाव्य रूपों की संख्या (Phones जो सभी एकाक्षर होंगे) १०,००० से कुछ कम ही होगी और प्रत्यक्ष व्यवहार में में वह ७,००० से अधिक नहीं होगी। शेष ३,००० सम्भाव्य रूप व्यवहार में नहीं आते। अन्य शब्द दो या दो से अधिक (Syllables) के सम्मिश्रण से बनाये जाते हैं, जिनका व्यवहार होता आया है या जो (Isophones) के व्यवहार से बनते हैं, तथा अलग-अलग ढंग से लिखे जाते हैं। मूल ७,००० रूपों को सीख लेने से अन्य रूपों की जानकारी आसान हो जाती है। कहा जाता है कि चीनी अखबार पढ़ने के लिये सभी ७,००० रूपों का जानना आवश्यक नहीं है। करीब-करीब २,००० या ३,००० रूप पर्याप्त हैं।

९० प्रकार के ये रूप "श (SH)' व्यजंन के ३० प्रधान स्वरों के साथ और ६० गौण अन्तिमों (Secondary Finals) के साथ जैसे बनते हैं, वे इस प्रकार हैं—

Sha, Sha, Shi, Shu, She, Shai, Sho Shau
श, शा, शि, शू, शे, शैं, शो, शौ
Shau, Shan, Shan, Shin, Shun, Shen, Shain
शो, शं, शां, शिं, शुं, शें, शैं,
Shain, Shaun, Shaun, Shon, Shang, Shang,
शैं, शों, शौं, शों, शं, शां,
Shing, Shong, Sheng, Shaing, Shain आदि अन्य
शिं, शुं, शिं, शैं, शौं,

तथा Shya, Shya, Shyi Shyu और अन्य इसी प्रकार
श्य, श्या, श्यी, श्यु,

से ३० और, तथा Shwa, Shwa, Shwi, Shawi और इसी
श्व, श्वा, श्वी, श्वू,

तरह के ३० अन्य। कुल मिलाकर ९० होते हैं। जब हर एक का ध्वन्यात्मक उच्चारण करते हैं तो हमें ३६० सम्भावनायें दीख पड़ती हैं, जिससे एक व्यंजन 'श' बनाया जा सकता है।

हरेक एकाक्षर के दो भागों को समझ लेने पर (Initial & final) ध्वनियों की (Tones) जानकारी आसान पड़ेगी। उदाहरणार्थ—हिन्दी का आज्ञार्थी मध्यम पुरुष एक वचनी रूप JAU (जाव्) पर ध्यान दीजिये। "तुम जाव" में "तुम" पर विशेष जोर दिया जाता है और "जाव" के आदि और अन्त दोनों पर जोर नहीं दिया जाता (Unstressed)। सुनने वाला अगर इस आज्ञा को न सुने तो फिर दुबारा आज्ञा में "जाओ" शब्द में अन्तिम या आदि व अन्तिम दोनों पर जोर दिया जावेगा, या आदि पर जोर दिया जावेगा, जिससे आज्ञा, अनुनय, शीघ्रता के भाव अभिव्यक्त होंगे। ये इस तरह लिखे जा सकेंगे। Jaū, Jau, J-au, J au, चीनी भाषा में ये Jau J AV J–AU J

AU, चार रूप चार ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करते हैं और नागरी में नीचे लिखे अनुसार लिखे जा सकेंगे यथा 'ज्ञौं, जृौं, ज्ञौं', जे ौं'।

नागरी का हर एक व्यञ्जन शीर्ष लकीर (Top line) और खड़ी लकीर (Vertical line) व्यञ्जन के ही अंग के रूप में दिखाई जा सकती है, इसलिये ऊपर बतलाई हुई ध्वनि दर्शना पद्धति हर एक व्यञ्जन में अपनाई जा सकेगी। इस तरह "SH" (श) से ९० शब्द, जैसे ऊपर बतलाये गये हैं, ३६० रूपों में लिखे जा सकते हैं :—

शीर्ष रेखा को (modify) करने से जैसे ाश, ९० रूपों में श् के ९० रूपों में (श्र की पाई को modify करके और ९० अन्य रूपों में इस तरह—श्र। छापने के लिये इस तरह (modified type) के रूप Foundary में आसानी से ढाले जा सकेंगे।

इस पद्धति से हर एक चीनी शब्द के एक अक्षर के लिये एक नागरी प्रति अक्षर में लिखा जा सकता है। चीनी के मूल शब्दों का मैंने ध्वनि के अनुसार नया क्रम लगाने का प्रयत्त किया है। प्रत्येक उच्चारण मध्य में दिखाया गया है, तथा उसका चीनी रूप अगर व्यवहृत हो तो बायें, ऊपर, नीचे और दायें, जिस तरह ध्वनि प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ हो—लिखा गया है।

देवनागरी का लेखन

—डॉ० नारायण गोविन्द कालेलकर

[प्राध्यापक डॉ० नारायण गोविन्द कालेलकर भाषा शास्त्र के प्रख्यात विद्वान हैं। इस समय पूना के डेक्कन कालेज में भाषा-शास्त्र के प्राध्यापक हैं। प्रस्तुत लेख में उन्होंने देवनागरी लिपि सम्बन्धी अपनी विचारधारा को तर्क-पूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। आपके विचारों के अनुसार आधुनिक युग में जब कि टंकन और मुद्रण का महत्व बहुत अधिक होता जा रहा है, देवनागरी-लिपि को भारतीय सभी भाषाओं में अपनाने के लिए अपनाने में अवैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय देना होगा क्योंकि देवनागरी-लिपि अधिक शीघ्रता से नहीं लिखी जा सकती। इस सम्बन्ध में उत्पन्न जिज्ञासा को शान्त करने के लिये प्रस्तुत लेख महत्वपूर्ण है।]

राष्ट्रीय जीवन में एकता का महत्व

आज हमारे देश में ऐक्य की भावना स्थिर हो, इसलिए प्रयत्न चल रहा है और इस ऐक्य से उद्‌भूत शक्ति से अनेक राष्ट्र-हित के कार्य संपन्न हों ऐसी भावना का सर्वत्र स्वागत होता दिखाई दे रहा है। अनेक प्रतिकूल विरोधों के बावजूद भी सबको एकता की भावना से संपन्न हो रहना चाहिए। यह समयानुकूल सद्‌भावन' हो तो विकास एवम् प्रगति हो सकना संभवनीय है।

एक बार एकता का महत्व मान लेने पर तथा उसको जीवन में अपना लेने का संकल्प कर लेने पर कुछ अन्य बातें जो हमें मान्य न हों उन्हें मौन होकर स्वीकृति देनी पड़ जाती है, इसका कारण देश-हितार्थ अनुशासन और त्याग का आत्मसात कर लेना है। व्यक्ति-स्वातंत्र्य और वर्ण-स्वातंत्र्य की भी मर्यादाएँ इसी से संपन्न और निश्चित हो जावेंगी। इसे अपनाने की मनोवृत्ति एक बार तत्परता ग्रहण कर ले, तो समाज के सामने आनेवाली सामाजिक

जीवन सम्बन्धी समस्याओं का बिना किसी संघर्ष या कम से कम संघर्ष के साथ निराकरण हो जायगा।

राष्ट्रीय निर्णय सहयोग, सहजीवन और सहअस्तित्व पर निर्भर है।

फिर भी इसके साथ एक बात और महत्वपूर्ण है, जिसे हम भूल नहीं सकते। वह बात यह है कि भारत एक बहुभाषी, बहुधर्मी मतों को मानने वाला, बहुपरम्पराओं को व्यवहृत करने वाले समूहों, वर्गों एवम् समाजों का राष्ट्र है। इन सबका पारस्परिक सहयोग, सहकार्य लिये बिना कोई भी राष्ट्रीय कार्य सुसंपन्न नहीं हो सकता। किसी भी राष्ट्रीय निर्णय और निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए इस प्रकार के सहकार्य, सहजीवन और सहअस्तित्व की परम आवश्यकता जान पड़ती है। तभी कोई भी राष्ट्रीय निर्णय पक्का हो सकता है।

सामाजिक जीवन में बहुत काल तक बरते गये साधन के प्रति एक विशेष प्रकार की आत्मीयता रहा करती है। उसे किंचित मात्रा में भी बदलते हुए या धक्का लगाते हुए और अन्य बातों की पूर्ति कर लेनी पड़ती है। इन भावनाओं के अस्तित्व और स्थिति का विचार करते हुए कार्य के न किए जाने से कई बार असंतोष की अग्नि सुलग उठती है। अतः राष्ट्र-हित की दृष्टि से ऐसी बातों में विशेष सावधानी एवम् सतर्कता से प्रचार के प्रयत्न होने चाहिए। केवल बहुमत के बल पर किसी निर्णय की अनुकूलता को न आँकते हुए तथा लोगों पर उसे न लादकर विरोधकों का हृदय-परिवर्तन कर यदि उस लिये गये निर्णय को स्वीकारा जायगा तो उसमें सब का हित होगा; क्योंकि जब विरोधकों को यह ज्ञात हो जायगा कि अमुक निर्णय उनके लिए परम हितकारी किस प्रकार है तो वे उसे तुरन्त मान लेंगे और इस तरह प्रगति शीघ्र होगी। भारत-जैसे, असंख्य पुरातन रूढ़ियों से पूर्ण और अनेक प्रकार की बहुविध संस्कृतियों से भरे सिद्धान्तों और विभिन्न जीवन-पद्धतियों से सम्पन्न देश में तो इस प्रकार के संयम की विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है। ऐसा न किया जाने से हिन्दी का अनेक स्थानों पर बहुत जोरों से विरोध किया जाता है।

राष्ट्रीय आन्दोलन की ऐन प्रगति और परिपक्वता के सुअवसर पर स्वाभाविक रूप से सिद्ध हो सकने वाली बात भी आज जटिल बन गयी है ।

हिन्दी अखिल भारतीय बोली भाषा है

भारत की सब भाषाओं में हिन्दी भाषा सर्वसामान्य व्यवहार के माध्यम के रूप में अत्यन्त सरल और सुविधाजन्य भाषा है । किन्तु उसका साहित्यिक अथवा समाचारपत्रीय रूप लोग आत्मसात कर पायेंगे ऐसा नहीं जान पड़ता । पर व्यवहार के एक माध्यम के नाते धीरे-धीरे उसमें स्थिरता आ जाने पर एवम् उसके पर्याप्त रूप में प्रयोग में आने पर उसका एक स्वरूप भी निश्चित हो जायगा । कदाचित प्रादेशिक एवम् प्रान्तीय भाषाओं के क्षेत्र में व्यवहृत होते रहने से उसमें कुछ आंचलिक और प्रादेशिक विशेषताएँ भी अपने आप आ जायेंगी । संभवतः ये विशेषताएँ उच्चारण, शब्द संपत्ति और व्याकरण सम्बन्धी होंगी । परन्तु इसी से उसे अखिल भारतीय बोली का अभिधान सच्चे अर्थ में सम्प्राप्त होगा ।

सब भारतीय लिपियों का एक ही स्रोत है

जब एक भाषा सर्वत्र व्यवहार में प्रयुक्त होगी तो उसका लिखित रूप भी सर्वत्र एक ही प्रकार का रहे, ऐसी अपेक्षा रहना स्वाभाविक ही है । वैसे आज भारत भर में भिन्न-भिन्न बारह प्रकार की लिपियों का प्रचलन है । संस्कृत, हिन्दी और मराठी इन तीन भाषाओं के लेखन में व्यवहृत होने वाली देव-नागरी, गुजराती, गुरुमुखी (पंजाबी), शारदा (काश्मीरी), असमिया और बंगाली (बंगाली), उरिया, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, मलयालम्, अरबी (उर्दू), रोमन (अंग्रेजी) और कोंकणी ये लिपियाँ आती हैं । इनमें से अंतिम दो को छोड़ भी दिया जाय तो अन्य दस लिपियाँ ब्राह्मी से निकली हैं । इनमें से कन्नड़ और तेलुगु में बहुत थोड़ा अन्तर है । इस तरह उन दोनों की लिपि एक मानकर कुल लिपि-संख्या नौ हो जाती है ।

किन्तु मूलतः इन सब लिपियों का स्रोत एक ही होने पर भी इन लिपियों के रूप इतने भिन्न-भिन्न हैं कि जब तक प्रयत्नपूर्वक इनका अध्ययन न किया जाय और प्रयत्नपूर्वक उनको न सीखा जाय तब तक उनको आत्मसात करना

कठिन है। यदि यह अड़चन न होती तो कई आर्य-भाषा-भाषियों को अन्य आर्य भाषाओं का साहित्य पढ़ना सुकर हो जाता।

अखिल भारतीय स्वरूप की हिन्दी को लिखित रूप प्रदान करते समय भी लिपि-समस्या का विचार कुछ अलग ढंग से ही किया जाना चाहिए। हिन्दी सीखने की गति बढ़े एवम् वह शीघ्रातिशीघ्र सीखी जा सके, इस तरह से उसका व्याकरण लिखा जाना चाहिए तथा वर्त्तमान ढंग की लिपि के स्वरूप में कौन सा सुधार एवम् परिवर्तन कर सकना इस दृष्टि से सम्भवनीय है, इसे भी देखना होगा।

लिपि में केवल परिवर्तन-सुधार नहीं

भारतीय लिपियों में तमिल लिपि बहुत सुलभ और सौन्दर्यपूर्ण है, ऐसा बतलाया जाता है; क्योंकि इसके अक्षरों की आकृति अपने मूलभूत स्वरूपों में विशेष सरल न होने पर भी इसमें संयुक्त व्यंजन लिखने की पद्धति वर्ण-लेखन-पद्धति की ही तरह है। इसकी बारहखड़ी भी अधिक विश्लेषणात्मक है।

परन्तु इस प्रकार के उदाहरण आँखों के सामने रहने पर भी लिपि के पारस्परिक स्वरूप में विशेष परिवर्तन करना सम्भव नहीं रहता। सैकड़ों वर्षों तक एक विशिष्ट स्वरूप में बरती गई उसी स्वरूप में साहित्य का दृश्य वाहन बनी हुई लिपि को बदलने से मन को सहसा लगने वाले धक्के को यदि विचार में न भी लिया जाय तो भी एक दीर्घ, अखण्ड और सब लोगों की सुपरिचित एवम् सर्वमान्य परम्परा को एकदम त्यागने से प्रवाह-खंडन का बहुत बड़ा धोखा निर्माण हो जायगा। सामाजिक जीवन के बने रहने के लिए जीवन का स्थैर्य रखने वाले साधनों की अखण्ड स्थिति बने रहने की परम आवश्यकता है। उसका नाश करने वाले किसी भी परिवर्तन को टालकर आगे बढ़ने में समाज-हित की दृष्टि से आवश्यक एवम् उपयुक्त माना जा सकता है। केवल परिवर्तन माने सुधार नहीं है। परिवर्तन हितकारक है, इसीलिये उसका कार्यान्वित होना सुधार नहीं माना जावेगा। सुधार की आवश्यकता प्रतीत होने पर वैसा प्रचार किया जाय तथा उस प्रचार से लोक-जागृति उत्पन्न हो जाने पर सुधार जिस ढंग से होगा, उसकी योजना बनाकर ये बातें कार्यान्वित

करनी होंगी। सभी परिवर्तन और सुधार असमय में और एक ही समय में कार्यान्वित करने से हानि की संभावना रहती है।

देवनागरी का श्रेष्ठत्व उसके निहित गुणों पर निर्भर नहीं

देवनागरी लिपि सर्वगुण-सम्पन्न लिपि है तथा उसमें कोई भी परिवर्तन या सुधार की कतई गुंजाइश और आवश्यकता ही नहीं है, अपितु दुनियाँ की कोई भी भाषा इस लिपि में लिखकर दिखाई जा सकती है, ऐसा मानने वाले अनेक लोग हैं। वे इस सिद्धान्त का सदा आग्रहपूर्वक प्रतिपादन करते हुए दिखाई देंगे। अन्य भाषाओं की ध्वनि विशेषताओं से युक्त लिपियों के उन गुणों का सचमुच ऐसे विद्वानों को ज्ञान नहीं है जिनके कारण उन भाषाओं के ध्वनि-रूपों के प्रतीकों का वाहन होकर वे लिपियाँ बनी हैं, अन्यथा वे ऐसा अभिमान प्रकट कदापि न करते।

देवनागरी लिपि का श्रेष्ठत्व उसमें निहित गुणों पर अवलंबित नहीं है। इसका श्रेय तो उन व्याकरणकारों को दिया जाना चाहिए जिन्होंने विशिष्ट ध्वनियाँ खोजकर उच्चारण की दृष्टि से शास्त्रीय और योजनाबद्ध ध्वनियों के प्रकटीकरणार्थ ऐसे ध्वनि संकेत तैयार कर यह लिपि बनाई। मार्सेल कोएन नाम के भाषाशास्त्री का कहना है कि (L' Ecriture) इस लिपि के बाह्य-रूपों को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि यह लिपि दूसरों से ली गई है, क्योंकि यह लिपि जिस भाषा के लिये व्यवहृत होती है उसकी ध्वनि रचना के व्याकरणकारों के द्वारा निश्चित किये गये शास्त्रीय गुणों का अभाव स्पष्टतः प्रकट करती है।[१]

देवनागरी विदेशी है

ऐसा कहा जा सकता है कि यह प्रमाण ऐसा है जो देवनागरी लिपि को दूसरों से वह ली गई है, इसे प्रकट करता है। लिपि का व्यवहार प्रमाणतः आवश्यकता के कारण जिन्होंने किया होगा वे सम्भवतः भाषावैज्ञानिक नहीं रहे होंगे। लिपि का उपयोग किसी अन्य वर्ग के द्वारा आरंभ किया गया

---

१. मार्सेल कोएन—L' Ecriture, पृ० ६६।

होगा। यह मत भी अब विवाद्य नहीं रह गया है। पुराने भारतीय साहित्य में इस बात की कतई भी चर्चा नहीं आई है। अतएव इसे विशेष स्मरण में रखना होगा। इसके प्रतिवाद के रूप में यह दावा पेश किया जाता है कि जो जन-समाज इतना सुसंस्कृत है, उसे लिपि-विज्ञान का पता ही नहीं होगा, यह कैसे संभव है? पर लिपि के अस्तित्व का कोई ऐतिहासिक प्रमाण दिये बगैर उनके प्रतिपादन का क्या महत्व सिद्ध होगा! सिद्धान्ततः यह माना गया है कि समाज-जीवन का बहुत विकास हो जाने पर ही लिपि का प्रयोग और उसमें उत्क्रान्ति आदि बातें होना सम्भवनीय है, क्योंकि लेखन मानव की मूलभूत आवश्यकता नहीं है। जब तक लेखन का अभाव किसी विशिष्ट जन-समाज के विकास और प्रगति को नहीं रोक सकते तब तक लिपि की आवश्यकता की ओर किसी का भी ध्यान नहीं जाता। संसार के कई देशों में लिपि बाहर से ही आई है।

देवनागरी का लेखन क्लिष्ट है

देवनागरी के वाह्य स्वरूप का यदि विचार किया जाय तो पता चलता है कि वह बहुत क्लिष्ट है। विशेषतः वर्ण-लेखन की दृष्टि से रोमन लिपि के साथ तुलना करने पर यह क्लिष्टता और भी समझ में आ जाती है। इसके सम्बन्ध में मैंने अपना स्पष्टीकरण अपनी पुस्तक "ध्वनि विचार" में कर दिया है जो द्रष्टव्य है।[१] यहाँ पर मैं उसकी पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता। और भी एक पुस्तक उल्लेखनीय है जो इस विषय पर अधिक प्रकाश डालती है। देखिए :—Phonomic Frequencies in Marathi in their relation to devising a speed-script का Alphabet in Motion—यह प्रकरण इस बात पर और अधिक उद्‌बोधन दे सकता है।[२] इसे पढ़कर लेखन की दृष्टि से देवनागरी लिपि कितनी मंदगतिशील है—इसका पता चल जाता है। जो लोग यह प्रतिपादन करते हैं कि समाज के हर व्यक्ति के लिए लेखन का

---

१. **ध्वनिविचार दखिए :—लिपि के मूलतत्व और मराठी का लेखन—यह प्रकरण—श्री नारायण गोविंद कालेलकर।**

2. Phonomic Frequencies in Marathi in thier relation to devising a speed-script—**डा० श्री. वा. भागवत।**

साधन उसी के हाथ रहे, उन्हें चाहिए कि वे लेखन को सीखते समय और उसका व्यवहार करते हुए उसमें आने वाली अड़चनों और बाधाओं पर भी विचार करें। लिपि का व्यवहार टंकन, मुद्रण और लेखन इन तीनों के लिए होता है। टंकन की गति लिपि के गुणों पर ही निर्भर रहती है। मुद्रण कार्य सस्ता और क्षिप्रगति से होना उसके ही स्वरूप पर निर्भर है। देवनागरी के वर्तमान स्वरूप में केवल चंद साधारण सुधार ही किये जा सकते हैं। श्री सावरकर के द्वारा सुझाई गई स्वराखड़ी के प्रयोग से और संयुक्त व्यंजनों और उनके अंशों को अधिक सुबोध पद्धति से जोड़कर उन्हें लिखकर या थोड़े परिवर्तन से लिखा जा सकता है। पर इससे मूल अक्षरों की गति के प्रतिकूल उनकी वक्रता नष्ट नहीं होगी।

देवनागरी लिपि मंदगतिशील है अतः रोमन लिपि का प्रयोग

केवल संस्कृत ध्वनि-रचना के तत्वों का उपयोग कर तार और तत्सम सन्देश भेजने के संकेत अत्यन्त सुलभता से तैयार किये जा सकते हैं। महाप्राण, अनुनासिकत्व और अवधि इन तत्वों को अलग कर लेने से कुल संकेतों की (ध्वनि-संकेतों की) संख्या मर्यादित हो जायगी और रोमन लिपि की तरह सुविधाजनक हो जायगी। उदाहरणार्थ 'क' यह ध्वनि इन तत्वों से युक्त बनाकर उसके ग (घ) ङ और क्क ऐसे रूप उपलब्ध हो सकेंगे। दीर्घ स्वर और अनुनासिक स्वर भी सुविधापूर्ण रीति से बतलाये जा सकेंगे। यह कार्य बहुत अंशों में हिन्दी का रोमन स्पेलिंग करके आजकल बहुधा कर लिया जाता है। पर वह इससे भी अधिक शास्त्र शुद्ध, सुविधाजन्य और मितव्ययितापूर्ण, स्पष्ट एवम् सरल बन सकना सम्भव है।

सामाजिक जीवन के जिन-जिन क्षेत्रों में लेखन के, मुद्रण के और टंकन के प्रयोग किए जाते हैं उन-उन क्षेत्रों में क्या-क्या अड़चनें आ सकती हैं उनकी जानकारी ले लेनेपर यह समस्या और अधिक स्पष्ट हो जायगी। मेरा विनीत सुझाव है कि डॉ० भागवत का ऊपर उल्लिखित प्रबन्ध पठनीय और द्रष्टव्य है, क्योंकि उसमें इस समस्या का भली-भाँति दिग्दर्शन किया गया है।

अध्याय—४

देवनागरी लिपि की यान्त्रिक समस्याएँ

१ : देवनागरी और तत्संबंधी अन्य विषयों में यांत्रिक सुविधा के प्रयोग

[डॉ० रघुवीर को कौन नहीं जानता ? प्रस्तुत लेख में डॉ० रघुवीर जैसे प्रकाण्ड विद्वान ने देवनागरी लिपि सम्बन्धी यांत्रिक सुविधाओं को अपनाने से किन-किन कठिनाइयों का निराकरण हो सकता है, इन बातों पर मार्मिक ढंग से विचार किया है। यह लेख मूल रूप में सरस्वती विहार नाम के अँग्रेजी पाक्षिक के अंक ८ पौष कृष्ण एकादशी विक्रमाब्द २०१० में अँग्रेजी "Adaptation of mechanical devices for Devanagari and allied scripts" शीर्षक के अन्तर्गत छपा है। यह हिन्दी लेख उसी पर आधारित है। डॉ० रघुवीर ने हिन्दी भाषा और देवनागरी के विकास और प्रचार में कोशों का विशेषत: सभी वैज्ञानिक कोशों का निर्माण कर हिन्दी का तथा भारत का बड़ा हित किया है।]

ब्राह्मी लिपि में पुरातन लेख

देवनागरी का इतिहास बहुत पुराना है। दसवीं शताब्दी से उसमें परिवर्तन होते-होते आज उसका प्रचलित रूप सामने आया है। यदि उससे भी पूर्व पंद्रहवीं शताब्दी तक हम जाते हैं तो हम ब्राह्मी लिपि को पाते हैं, जो उस समय प्रचलित थी। यह देश के इस कोने से उस कोने तक व्यवहृत होती थी। सिलोन में पाये गये पुराने शिलालेख भी ब्राह्मी लिपि के हैं।

अशोक के शिला लेख ब्राह्मी लिपि में लिखे गये हैं तथा वे नेपाल से मैसूर तक और गुजरात से उड़ीसा तक फैले हुए हैं।

ब्राह्मी-लिपि-परिवर्तन

गत तेईस शताब्दी में ब्राह्मी के कई लिपि-विषयक परिवर्तन हुए हैं। एक शताब्दी से दूसरी शताब्दी में तथा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाते-जाते थोड़े-थोड़े परिवर्तन इस लिपि में होते रहे हैं और भारतवर्ष के विभिन्न भागों में उसका विकास होता रहा है, जिससे भारतीय तथा एशियाई लिपियों का विकास हुआ है। उसका एक रूप मौलिक है तथा अन्य रूप विभिन्न स्वरूप धारण किये हुए है। इस प्रकार मलाबार हमें मलायन लिपि का रूप दिखाता है जो दूसरों के लिए अगम्य है। उसकी पड़ोसी तमिल ग्राँथिक लिपि है। इसके बाद तेलुगु और कन्नड का नम्बर आता है जो एक दूसरे के निकट हैं पर फिर भी दोनों में अन्तर है और कई सदियों से अब तक रहा है।

देवनागरी के अंतरंग और बहिरंग

भारतवर्ष के उत्तरी भाग में प्रमुख लिपि देवनागरी है। गत सदी से हम यह देख रहे हैं कि उसका रूप गुजराती है। उसके आगे बढ़ने पर पाण्डुलिपियों में देवनागरी का मूल रूप मिलता है। इन पर शिरोरेखाएँ भी हैं। इस देवनागरी के पूर्व में बंगाली है जो दशवीं शताब्दी तक पीछे ले जाई जा सकती है। बंगला लिपि में आसामी, संथाली भाषा लिखी जाती है। आधुनिक उरिया लिपि जिसमें अक्षर वक्र गति से शीर्षों में लिखे जाते हैं वह भी पिछली चार सदियों से विकसित हुई है। इनके शीर्षों की वक्रता हटा लेने पर इसका मूल सच्चा स्वरूप सामने आ जाता है। बंगला तथा देवनागरी में बहुत साम्य देखने को मिलता है। देवनागरी के उत्तर पश्चिम में गुरुमुखी मिलती है, जिसमें प्रमुख रूप से पंजाबी लिखी जाती है। गुरुमुखी शारदा तथा टाकारी लिपि की बहन है। काश्मीर में शारदा का थोड़ा बहुत प्रयोग होता है तथा कुछ जम्मू में भी होता है।

नागरी लिपि का सुदूरपूर्व के देशों में ऐतिहासिक प्रचलन

भारतीय संस्कृति का हिमालय के उस पार के देशों में तथा समुद्र पार के

देशों में जब प्रसार हुआ तब भारतीय लिपियों ने इन प्रदेशों की भाषाओं को अक्षर दिये हैं। इन लिपियों में जो आज भी जीवित हैं उनका हम उल्लेख कर सकते हैं। हमारे पड़ोस के बर्मा तथा सीलोन में अपनी स्वतंत्र लिपियाँ हैं। यों तो कई शताब्दियों पूर्व इन शिला लेखों में भारतीय लिपियाँ प्रयोग में लाई गई दिखाई देती हैं। जावानीज, बालीद्वीप, थाई तथा कम्बोडियन लिपियों के बारे में यही कहा जा सकता है। इन लिपियों में पाली तथा संस्कृत के ग्रंथ लिखे गये हैं जैसे आज भी भारत की वर्तमान लिपियों में ये भाषाएँ लिखी जाती हैं। केवल तमिलभाषी संस्कृत के लिए ग्रंथम् का प्रयोग करते हैं।

उत्तर में हम तिब्बत में आते हैं। यहाँ की लिपि १७वीं सदी में विकसित हुई है।

देवनागरी की बहनें

एक और भारतीय लिपि है जिसे सिद्धम् कहा जाता है। इस लिपि में तिब्बत के मंत्र लिखे जाते हैं। यही हाल मंगोलिया, चीन, मांचुरिया और जापान का भी है। इन लिपियों का पुरातत्व काल सातवीं सदी का माना जा सकता है। इस तरह हमने देवनागरी लिपि की कई बहनों का आपसी सम्बन्ध ध्यान में रखा और जब हम आधुनिक यांत्रिक सुधार के दृष्टिकोण से देवनागरी लिपि में संशोधन करना चाहते हैं तब यह आपसी सम्बन्ध भी ध्यान में लेना निहायत जरूरी है।

वर्णों के रूप-परिवर्तन में ध्वनि की स्थिरता

अक्षरों के स्वरूप यद्यपि कई बार बदले हैं तो भी उनकी वही ध्वनियाँ आज तक विद्यमान रही हैं। उनकी अपनी कुछ लिखित वा चित्ररूप विशेषताएँ भी हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

(१) स्वरों के दो स्वरूप—

अ—उनके पूर्ण स्वरूप जिनको हम उन्हीं रूपों में लेते हैं।

ब—उनके अधूरे स्वरूप या व्यंजन में उनके लाये गये सहायक रूप जिनसे व्यंजनों में सहायता ली जाती है।

(२) हर व्यंजनों में 'अ' यह स्वर अपने पूर्ण रूप से विद्यमान रहता है,

जिसके लिए कोई अलग संकेत लिपिबद्ध नहीं किया जाता है।

(३) 'अ' की अनुपस्थिति या व्यंजन के बाद आने वाला कोई दूसरा स्वर अपने साथ दो, तीन चार व्यंजन तक साथ ले आते हैं। ये व्यंजन ब्राह्मी में मिलते हैं तथा उनका मूल लिपिकरण ऊपर से हुआ है। वे एक ही बंधन अपनाते हैं। यह तो बड़े महत्व की बात है। इस तत्व पर हम आगे विचार कर लेंगे।

(४) ब्राह्मी तथा उसके अक्षर और शब्द लिपि के अन्तर्गत आते हैं। इनमें एक मूलतः स्वर होता है या एक या अनेक व्यंजन एक स्वर से मिले हुए होते हैं। दो स्वर सम्बद्ध रूप में कभी नहीं लिखे जाते।

(५) आरंभिक स्वरों के चिह्न ऊपर या नीचे लिखे जाते हैं या बाजुओं में भी लिखे जाते हैं। ये आगे और पीछे भी लिखे जाते हैं।

नागरी लिपि-परिवार की वैधानिक विशिष्टताएँ

देवनागरी लिपि की ये कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। इनसे ही देवनागरी की मूल प्रकृति बनी है। उसकी जननी तथा बहनों की यही विशेषताएँ है। अतः इनका सम्मान करना होगा।

पुराने जमाने में जब लिपियों का आविष्कार हुआ तब वे केवल हाथ से लिखी जाती थीं। चीन जहाँ कि केवल चित्रलिपि है तथा जिसमें वर्ण या अक्षर नहीं हैं, उन्होंने काठ के ब्लाक में मुद्रण का कार्य भी आविष्कृत कर लिया था। एक हजार वर्ष पूर्व चीनी लोगों ने यह कार्य किया। यूरोपीय लोगों ने पूरे शीट पर लिखे हुए एकाक्षरी टाइप काठ के ब्लाक्स में ढाले। फिर धातुओं के अन्दर इधर-उधर बदलने वाले टाइप भी ढाले गये, जिनका प्रयोग सब प्रकार की लिपियाँ छापने के लिए किया जाने लगा। इसमें पुराने, मध्ययुगीन, आधुनिक कीलाक्षरी, चित्रलिपि, अक्षरात्मक आदि सब प्रकार की लिपियाँ आती हैं। बगाईनीज जैसी लिपि में तो बहुत छोटे टाइपों की संख्या रहती है। चीनी जैसी लिपि में इतने टाइपों की आवश्यकता होती है कि जिनसे पूरा एक दीवानखाना भर सकता है।

लेखन, मुद्रण, टंकन और बीसवीं सदी

१९ वीं सदी में एक यांत्रिक युक्ति अपनाई गई। इसे टाइपरायटर भी कहते हैं। सन् १७७४ में प्रोटोटाइप का पुराना रूप सामने आया, जिसे इस रूप में लाने का कार्य हेनरी मिल का है। १९ वीं सदी के अंतिम भाग से इस टंकन का प्रयोग दैनंदिन राजकार्य संबंधी काम-काजों के लिए आवश्यक रूप में होने लगा। २० वीं सदी में तो इसके बिना कार्य चलना असंभव हो गया है।

अब आजकल हमारी वर्तमान सदी में टेलीप्रिन्टर जैसे नये उपकरण सामने आये हैं। मोनो तथा लिनो कंपोजिंग का भी व्यवहार होने लगा है।

मोर्सकोड, झंडी के जरिये संकेत देना आदि साधनों का टंक लेखन में या मुद्रण में भले ही प्रयोग न होता हो किन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि यह संकेत वर्णों पर ही निर्भर रहते हैं। इनको भी देवनागरी में अपनाना होगा।

पश्चिम में इन नवीन उपायों का प्रयोग विकास के रूप में किया गया है। पश्चिम के अक्षर रोमन लिपि के हैं। विभिन्न योरोपीय भाषाओं को इस लिपि में लिखने के लिए कुछ थोड़े से यत्र-तत्र परिवर्तन कर लिए गये हैं। घूमने या सरकने वाले प्रिन्टिग टाइपों में नंबरों की संख्या अनियमित रहती है। दूसरे उपायों में यह संख्या मर्यादित रहती है। मोर्सकोड में अक्षरों की संख्या २६ है। झंडों के सांकेतिक सन्देशों में इससे अधिक अक्षरों की व्यवस्था है। टेली-प्रिन्टर के साथ भी यही व्यवस्था है। टाइपरायटर में ८८ से ९२ चाभियाँ होती हैं। लिनो टाइप में नब्बे पंक्तियाँ होती हैं। मोनो टाइप में यही संख्या २५२ तक पहुँच जाती है।

जब हम यह विचार करते हैं कि रोमन अक्षरों की संख्या केवल २६ है तब मोनो और लिनो मशीनें बड़ी उदार होती हैं। बड़े तथा छोटे आकार के अक्षरों को पूर्ण अवकाश दिया है तथा विरामादि चिह्नों के संकेतों को तथा अन्य चिह्नों को जो पश्चिम की भाषाओं में अपनाये जाते हैं, उनको भी समाविष्ट कर लिया है। एक तरफ तो कम्पोज करते समय पश्चिमी लोगों के द्वारा इन मशीनों में सभी आवश्यक अक्षरों की व्यवस्था मिलती है तथा

संयुक्ताक्षर मिलते हैं और दूसरी ओर हाथों से कंपोज करने में वे संख्या पर कोई पाबन्दी नहीं लगाते । किसी ने भी यह नहीं सोचा कि C, Q, या X को रखने से वह फालतू सिद्ध होगा जब कि उसके स्थान पर K और S से काम चल सकता था ।

नागरी की यांत्रिक समस्याएँ

हिन्दी प्रेमियों ने देवनागरी के लिए भी पश्चिम के उपकरणों को अपनाना चाहा तथा उनको व्यवहृत करना चाहा । इन मनुष्यों को यांत्रिक आविष्कारों की तथा उपयुक्तता की कोई जानकारी नहीं थी । उनकी चिन्ता केवल यह थी कि रोमन लिपि को ढालने वाली मशीनों को काम में लाया जाय । जब उन्हें ज्ञात हुआ कि ये मशीनें देवनागरी के लिए उपयुक्त नहीं हैं तब अपनी लिपि को ही उन्होंने बदलना चाहा । देश अभी इस अवस्था से आगे नहीं बढ़ सका है । सरकारी कर्मचारी इस प्रकार के व्यक्तियों से भरे हैं, जिन्हें तुरन्त कम से कम परिणाम दिखाई देने की चिन्ता लगी है । वे यह नहीं सोचते कि इसके लिए अपनी लिपि के उपयुक्त मशीनों का आविष्कार क्यों न कर लिया जाय ? यह बतलाया गया है कि भारतवर्ष को कम से कम १००,००० देवनागरी टंक यंत्रों की आवश्यकता है ।

समिति के बाहर के लोगों में कुछ इस प्रकार के विचार वाले लोग हैं, जिन्होंने बहुत दूर जाकर देवनागरी अक्षरों में ऐसे संशोधन कर दिखाये हैं जिन सुझावों को देखकर उनमें से कुछ की तो बिलकुल आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती ।

अभी तक आदर्श मशीनों का निर्माण नहीं हो पाया है । सरकार की एक अनुसंधान संघटना होनी चाहिए जो इस बात पर भली-भांति शोध कार्य कर सके । जब तक आदर्श मशीन का आविष्कार नहीं हो जाता तब तक कम से कम परिवर्तन कर इस लिपि को प्रचलित रूप में ही ले लिया जाय तथा काम चला लिया जाय तो अच्छा होगा । आदर्श मशीन सब प्रकार के अक्षरों को पूर्ण अवकाश देगी तथा उनके संयोगीकरण की भी व्यवस्था करेगी । आज मजा तो यह है कि अक्षर को उसके मूलरूप में भी हम टाइप नहीं कर सकते ।

आज की मशीन केवल आगे बढ़ती जा रही है। देवनागरी तथा उसकी अन्य लिपियों को टाइप करने वाली आदर्श मशीन ऐसे प्रकार की होगी जो ऊपर से प्रयोग में लाई जा सके तथा अंतिम और बाजुओं से उसका उपयोग हो सके। इसके साथ ही टाइप करने में सुविधा, गति आदि की दृष्टि से मशीन को प्रयोग में लाने के अनुकूल बनाना होगा। इन सब सुविधाओं की मशीन में व्यवस्था होगी। इसके साथ ही उसकी कीमत भी सस्ती रखनी पड़ेगी।

इस प्रकार की मशीन केवल देवनागरी लिपि के लिये ही अपनायी जायगी तो उसकी बहनें अन्य लिपियों के लिए भी अपनाई जावेंगी। केवल भारत की लिपियाँ ही नहीं तो बर्मा, सिलोन, थाईलैण्ड और इण्डोचाइना वाले भी इस मशीन को अपनावेंगे। सेमेटिक भाषाएँ भी इस प्रकार की मशीन से फायदा उठा सकती हैं। पश्चिमी देशों में भी ऐसी मशीन की प्रशंसा की जावेगी। इस मशीन का उपयोग विशेष कार्यों के लिए भी किया जा सकता है :—जैसे गणित के विशेष सिद्धान्त सूत्रों को लिखने में इसकी मदद ली जा सकती है। इन सूत्रों में जहाँ अक्षर नहीं हों वहाँ संख्याओं को किसी भी प्रकार से किन्हीं भी रूपों में लिखा जा सकता है। चाहे तो ऊपर नीचे, बाजुओं में या अनुतम संख्याओं को लिखना हो जैसे—$\overset{४}{\underset{२}{\overline{\underline{११}}}}(१+\text{n})^{१} = (१+\frac{१}{२})$

$$(१+\frac{१}{३})\ (१+\frac{१}{४})$$

मैं आगे चलकर यह भी कहना चाहूँगा कि यदि अपनी मशीनें आविष्कृत नहीं करें या उनकी प्रगति और विकास नहीं करेंगे तो हम केवल देवनागरी का ही अहित नहीं करेंगे बल्कि भारत की अन्य लिपियों को भी कम या अधिक मात्रा में नुकसान पहुँचावेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि देवनागरी तथा अन्य भारतीय सभी लिपियाँ रोमन लिपि के ढाँचे में ढालकर उनकी ही मशीनों से कामचलाऊ बना ली जावेंगी।

नागरी टंकन यंत्र ही सर्वोपरि

वह एक नया युग ही सिद्ध होगा जब हम अपनी मशीन आविष्कृत कर देंगे तथा उसका उपयोग करने लगेंगे और जो आवश्यकताएँ हैं उन्हें भी पूरा कर लेंगे।

टाइपरायटर की तो सबसे बड़ी आवश्यकता है क्योंकि अंगरेजी का स्थान हिन्दी लेने जा रही है और राजकीय अनुशासन उसी में चलने वाला भी है। व्हेरी टाइपराइटर अपने की-बोर्ड में एक सौ बीस अक्षरों की व्यवस्था करता है। चायना का टाइपराइटर जो कि जापान में बनाया गया है, आश्चर्यजनक रूप से ३००० ठोस लोहे के टंक लिखित संकेत अपने की-बोर्ड में रख सकता है। इसकी कीमत आठ सौ से अधिक नहीं है तथा उसकी टाइप करने की गति मर्यादा एक मिनिट में अस्सी शब्दों की है। (जब इस यांत्रिक टाइपरायटरों से अन्य देशों में इस तरह काम लिया जाता है तब देवनागरी के टंकनयंत्र इस प्रकार की व्यवस्था क्या अपने यहाँ नहीं कर पायेंगे? नागरी टंकनयंत्र ही सर्वोपरि बन सकता है।)[१]

१—ब्रैकेट में लिखे गये वाक्य हमारे अपने हैं।—संपादक

२ : राष्ट्रीय लिपि की आज की समस्याएँ

—स्व० ललिताप्रसाद शुक्ल

[स्व० ललिताप्रसाद जी शुक्ल कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। लगभग तीस वर्षों तक वहाँ के हिन्दी विभाग की सेवा करते हुए उन्होंने कलकत्ते में 'बंगीय-हिन्दी-परिषद्' की स्थापना की थी। इस संस्था की त्रैमासिक पत्रिका 'जन-भारती' अब भी प्रकाशित हो रही है। शुक्ल जी बड़े स्पष्टवक्ता और सुलझे हुए विचारक थे। देश-प्रेम की उदात्त भावना के संस्कारों के साथ भारतीय साहित्य और सांस्कृतिक विषयों पर उनके अपने अनेक मौलिक विचार थे। उसी क्रम में देवनागरी-लिपि पर भी उनका विचार प्रस्तुत है। उनके अनेक उपयोगी लेख अभी तक अप्रकाशित पड़े हुए हैं।]

लिपि की समस्या स्वतन्त्रता के युग में भी उलझी और अनसुलझी है

कहावत है कि "मर्ज बढ़ता गया; ज्यों ज्यों दवा की", भारत की विशालता जगत-प्रसिद्ध है। जहाँ एक ओर इसका भाग्य विशाल है, वहीं तरह-तरह की जटिलताओं से युक्त इसकी मजबूरियाँ भी कम नहीं। चिरकाल से भारतवर्ष संसार का गुरु माना गया है और निश्चय ही ज्ञान के साथ भाषा की समृद्धि चोली-दामन की तरह केवल जुड़ी ही नहीं, स्वयं सिद्ध भी है। देश गुलाम हुआ और उसकी सदियों की गुलामी ने उसके वैभव और विभूतियों को क्षार-क्षार कर डाला। उन्नत ज्ञान के बहुत से अंग भी अज्ञान में और कुज्ञान में परिवर्तित हो गये। लेकिन फिर भी ज्ञान का मेरुदण्ड अभंग ही रहा। आशावादी देश की छिन्न-भिन्नता में भी सांस्कृतिक अभिन्नता को टिकी देखकर सन्तोष की साँस भरते ही रहे। विभिन्न प्रान्तों की बोलियाँ और उनकी विभिन्न लिपियाँ अपने-अपने क्षेत्र में अपनी-अपनी सत्ता स्थिर देखकर अपनी ही लघुता में "महानता" की अनुभूति अनायास करने लगीं। धर्म के अनुचित प्रश्रय ने

विदेशी लिपि "फारसी या उर्दू" का अनावश्यक बखेड़ा खड़ा कर दिया, अंग्रेजी सत्ता प्रसाद के रूप में "रोमन-लिपि" के विष-वृक्ष का बीजारोपण कर गई। आधुनिक विज्ञान-युग की लाड़ली पुत्री "मशीन-विलासिता" युगों से स्थिर परम-वैज्ञानिक आधारों पर स्वीकृत देवनागरी-लिपि के सर्वमान्य ध्वनि चिन्हों में विविध प्रकार के थोथे तर्कों के सहारे परिवर्तन की आवश्यकता अनिवार्य सी सिद्ध करा गई, और देखते-देखते राष्ट्रभाषा की उलझी हुई समस्या और अधिक जटिल बनकर देशवासियों के सामने उपस्थित हो गयी। इसी तरह आज स्वतंत्रता के युग में यदि राष्ट्रभाषा का प्रश्न हल सा भी हुआ तो लिपि-समस्या आज भी उलझी और अनसुलझी ही सी देख पड़ती है।

लिपि या अक्षर ध्वनियों के चिन्ह ही तो हैं

संस्कृत की ज्येष्ठा पुत्री हिन्दी अपनी कुल परम्परा के अनुरूप सदा से ही लेखनी की नोक पर देवनागरी के वेश में ही अवतरित होती रही है, और उसे होना भी चाहिए था, क्योंकि लिपि-सिद्धान्त के आधार पर देवनागरी से अधिक वैज्ञानिक, स्पष्ट और सुसंस्कृत होने का और दावा ही संसार की किस लिपि का है। किन्तु फिर भी अन्तर्राष्ट्रीयता की दुहाई देने वाले कुछ मनीषी विद्वान उसे "रोमन" का जामा पहनाने का हठ करते देखे ही जाते हैं। धर्म स्वातन्त्र्य के हिमायती उसे उर्दू का बुर्का ओढ़ाना ही चाहते हैं। प्रान्तीय लिपियों की संकीर्ण मोहकता में बँधे यदि और कुछ नहीं कह सकते तो अन्तर्राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण से ही सही देवनागरी के मार्ग में रोमन की आड़ में या कभी मशीन-वाद की टट्टी के पीछे से ही रोड़े अटकाने की व्यर्थ चेष्टा सी करते तो देखे जाते हैं। इनकी दलीलें भी कम विचित्र नहीं, राष्ट्र-लिपि के लिए रोमन की उपयोगिता दो तरह से सिद्ध की जाती है। एक तो यह कि जहाँ रोमन में केवल छब्बीस अक्षर हैं वहाँ देवनागरी में छप्पन। दूसरी दलील है कि रोमन के माध्यम से संसार की विभिन्न विदेशी भाषाओं से अनायास सम्पर्क कायम रहने का भरोसा है। लेकिन इन रोमन के समर्थकों ने यह न सोचा कि लिपि या अक्षर आखिर विविध ध्वनियों के चिह्न ही तो हैं। जिस भाषा के शब्दों में जितनी ध्वनियाँ आवश्यक होंगी उतने चिन्ह भी अनिवार्य होने चाहिए।

यदि रोमन में हिन्दी भाषा लिखी जायगी तो उसे छप्पन ध्वनियों के लिए रोमन के छब्बीस अक्षरों का छप्पन बनाना ही पड़ेगा। रोमन का घूंट भारतीयों के गले के नीचे अंग्रेजी भाषा के आवश्यक ग्रहण के निमित्त ही उतारा गया था, आज भी अंग्रेजी का पल्ला अभी छूटा नहीं है। अंग्रेजी शब्दों में रोमन की ध्वनियाँ जिस रूप में हमारे कानों में गूँजती हैं वे सहसा हिन्दी भाषा या भारत की अन्य किसी भी प्रादेशिक भाषा के व्यवहार में अन्य रूप धारण कर लेंगी, यह तब तक सम्भव नहीं जब तक सतत और महाकष्टसाध्य अभ्यास के द्वारा मस्तिष्क में ध्वनि-विवेक की एक विलग शक्ति उत्पन्न न कर ली जाय। रोमन लिपि का जो प्रसाद हमें अब तक मिल चुका है उसके परिणाम-स्वरूप कदाचित दो-एक उदाहरण ही यहाँ पर्याप्त होंगे। प्रसिद्ध पुण्य-स्थल, 'भीम-गया' का 'भाम गोडा', प्रख्यात हो जाना या 'द्रोणाचल' का 'द्रोण-कल' प्रसिद्ध हो जाना या 'पुरुषराम' का 'रामा-वेश' धारण कर लेना या 'रैम' की निरर्थकता में विलुप्त हो जाना कम भयंकर परिणाम नहीं है।

लिपियों के लिए विशेष मशीन बनाने का प्रयास नहीं हुआ

रही बात केवल रोमन के छब्बीस अक्षर सीख लेने के मत्थे योरुप या विदेशों की सारी भाषाओं पर आधिपत्य प्राप्त करने का स्वप्न देखने की। केवल अक्षरज्ञान के मत्थे भाषा सीखने का ख्वाब इतना उपहासास्पद है जिस पर कुछ न कहना ही अच्छा होगा। अब रही बात छपाई की सुविधा और असुविधा की। सत्य तो यह है कि छपाई की मशीन बनी 'विलायत' में, वहीं के लिए और वहीं की प्रचलित लिपि या लिपियों को दृष्टि में रख कर। वे ले ली गईं अंग्रेजी शासन काल में, अंग्रेजी भाषा के अक्षय-साम्राज्य के रोब में और कामचलाऊ ढंग से। घिसी-घिसाई उच्छिष्ट उन्हीं मशीनों के बनाने का प्रयास किया गया और न शायद हमें कभी ऐसा कोई अवसर ही मिला। ऐसी परिस्थिति में यह कहना कि परम वैज्ञानिक देवनागरी लिपि मशीन के पैमाने पर खरी नहीं उतरती, कुछ वैसा ही होगा कि जैसे किसी भारतीय सुन्दरी को जबरदस्ती फ्राक पहनाकर उसे 'अजीब' कहना।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में देवनागरी का महत्व

अपनी वस्तु पर मोह होना मनुष्य का स्वभाव है । इस नाते विविध प्रान्त वालों का अपनी लिपियों के प्रति विशेष आकर्षण समझ में आ सकता है, किन्तु इन्हें भी क्या बताना होगा कि देवनागरी अनादिकाल से आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत की अविच्छिन्न लिपि रही है । वह किसी प्रांत विशेष की नहीं है, उस पर सभी प्रान्तों का एक सा अधिकार है और वह भी सभी की है । तब इसके सम्बन्ध में अपने और पराये का भेद कैसा ? इस पर भी जब अन्तर्राष्ट्रीय-भाषा विषय संबंधी आड़ में विविध अंचलों से देवनागरी के विरुद्ध रोमन का झंडा ऊँचा किया जाता है, तब जरा समझने में असमंजस होता है कि हमारे विविध प्रान्तों के जो देशवासी राष्ट्रीयता की सीमा तक भी उदार होने में असमर्थ देख पड़ते हैं, उनकी अन्तर्राष्ट्रीयता की असीम सीमा को छूनेवाली तथाकथित उदारता या उसके लिए भी उनकी इतनी व्यग्रता कितना वास्तविक मूल्य रखती है ।

हमीर हठ का आधुनिक युग में पुनः दर्शन

पार्लियामेण्ट ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में तो स्वीकार कर लिया किन्तु संख्या चिन्ह रोमन के ही माने और मनवाये गये । लिपि भी सरकारी तौर पर देवनागरी ही स्वीकृत हुई । यदि निर्णयकर्ताओं के प्रति अनुदार न हुआ जाय तो भी प्रश्न तो खटकता ही है कि देवनागरी के छप्पन अक्षर सीखे जा सकते हैं, भाषा सीखी जा सकती है किन्तु संख्या के "नौ" चिन्ह हिमालय के कैलाश शिखर की तरह से ऐसे जटिल जान पड़े कि जो अलंध्य ही प्रतीत होकर रहे । तर्क इसके पीछे क्या हो सकता है, कहना कठिन है किन्तु हमीर के हठ के आधुनिक युग में एक बार फिर दर्शन हो ही गये ।

लिपि की खरी कसौटी पवित्र वैज्ञानिकता है

हमारा राज्य-शासन डंके की चोट पर घोषित करता है कि भारतीय विधान "अक्षर और भावना" में धर्मनिरपेक्ष है । तब ऐसी अवस्था में उर्दू और फारसी के अक्षरों का प्रश्न तो उठना ही नहीं चाहिए । क्योंकि विश्ववन्द्य बापू ने जब इस लिपि को अपना आशीर्वाद दिया था उस समय की परिस्थिति

कौन नहीं जानता कि समस्या थी हिन्दू-मुस्लिम एकता की। यदि दैव दाहिने होता, देश का विभाजन न होता और हिन्दू मुसलमान पहले की भाँति एक घाट पर पानी पीते होते, तब निश्चय ही विधान धर्म निरपेक्ष के आधार पर न होकर धर्म-सापेक्ष के आधार पर होता और वैसी दशा में कदाचित् फारसी लिपि का प्रश्न कुछ अपना मूल्य रखता। किन्तु उस समय भी विद्वत् समुदाय का मत संभवतः इसके विरुद्ध ही होता, क्योंकि लिपि और भाषा कुछ अंशों में सांस्कृतिक मूल्य भले ही रखती हो, परन्तु उसका वास्तविक संबंध है शिक्षा से और ज्ञान से। इस क्षेत्र में एकमात्र कसौटी होनी चाहिए खरी और पवित्र वैज्ञानिकता की। इस पर लिपि या भाषा जो खरी उतरे वह ग्राह्य है और जो न उतरे वह स्पष्ट रूप से होनी चाहिए त्याज्य।

---

३ : लिपि संशोधन और मुद्रण पद्धति

[श्री शं० रा० दाते नागरीलिपि-सुधारकों में अग्रणी रहे हैं। प्रस्तुत लेख मराठी में दाते ने महाराष्ट्र साहित्य-परिषद की मुख पत्रिका मराठी साहित्य पत्रिका, संख्या १००, जनवरी सन् १९५२ में लिखा था। श्री दाते का महत्व-पूर्ण कार्य है—अखंड पद्धति के टाइप नागरी से ढलवाकर उसका महाराष्ट्र में प्रयोग करवाना। महाराष्ट्र के मुद्रणालयों में यही पद्धति प्रचलित है। इस पद्धति के अनुसार अंग्रेजी (Mono type) मोनो टाइप मशीन पर नागरी का अंकन होता है। सन् १९३१ में श्री दाते ने मोनोटाइप कंपनी की सहायता और सहकार्य से इस मशीन का आविष्कार किया। अब सर्वत्र भारत में यही यंत्र नागरी का कंपोज कर रहे हैं। नागरी टाइपरायटर के सम्बन्ध में भी आपकी एक योजना है। "काठ" नाम के प्रसिद्ध मराठी दैनिक के आप संपादक भी थे। लिपि की शास्त्रीय चर्चा करने वाला यह लेख विशेष महत्वपूर्ण है। हम हिन्दी में यहाँ पर उसका अनुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं। उनके विचारों के हम आभारी हैं।]

लिपि विशारदों की समस्या

महाराष्ट्र में लिपि विकास का कार्य तथा उसका संशोधन गत अर्ध शताब्दी से चल रहा है। नागरी लिपि टंक लिखित बनकर मुद्रण का रूप लेकर सामने आई तब से मुद्रण क्षेत्र में उसका सदुपयोग होने लगा और उसके प्रचलित रूप में परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इस सुधार-कार्य की परिसमाप्ति नहीं हुई है ऐसा ही माना जावेगा ; क्योंकि अंग्रेजी की तरह नागरी लिपि में टाइपरायटिंग और कंपोजिंग आदि के कार्य जब व्यवस्थित व सुगमता से होने लगेंगे तब यह समझना होगा कि लिपि-सुधार का एक काल-खण्ड समाप्त हो गया है। यदि छापने की प्रचलित पद्धति में कुछ परिवर्तन और क्रान्ति हो गई, या ध्वनि लेखन की और मुद्रण की अन्य कोई पद्धति

निर्माण हो गई तो हम आज जिसे लिपि-सुधार मानते हैं वह अनुपयोगी और अनावश्यक माना जावेगा तथा प्रचलित पद्धति से सर्वथा भिन्न पद्धति की आवश्यकता प्रतीत होने लगेगी। अतः कोई अन्य व्यवस्था निर्माण हो जावेगी। अभी तक लिपि में संशोधन की आवश्यकता इस बात को ध्यान में रख कर प्रतीत होती है कि वह मुद्रण सुलभ कैसे बने ? प्रमुखतः यही बात सभी लिपि-विशारदों के सामने है।

संदिग्ध वर्ण—

किन्तु इससे भी भिन्न एक और भी दृष्टिकोण हो सकता है जिसको प्रधान रूप से ध्यान में लेना परमावश्यक है और वह यह है कि अक्षरों का लेखन असंदिग्ध और व्यवच्छेदक हो। यदि वह वैसा नहीं है तो संदेह निर्माण होता है और कभी-कभी ऐसे समय अक्षरों को देखकर केवल संदर्भ से ही शब्द समझना पड़ता है। उदाहरणार्थ 'ख' अक्षर लीजिए। 'ख' में 'र', और 'व' ये दोनों अक्षर दिखाई पड़ते हैं और हस्तलिखित प्रतियों में उनका अन्तर ध्यान में नहीं आता। वहाँ पर केवल संदर्भ से उसे ग्रहण करना पड़ता है, और यदि योग्य संदर्भ ग्रहण न हुआ तो 'र', 'व' के स्थान पर 'ख' का परिवर्तन हो सकता है। इस प्रकार की गलतियाँ न हों इसलिए 'ख' अक्षर को 'र', 'व' से भिन्न बतलाने की व्यवस्था हो या यह अक्षर पहले से असंदिग्ध और व्यवच्छेदक रूप से भिन्न हो।

'म' और 'भ', 'घ' और 'ध' हिन्दी का 'ए' और ए (आणा ण) 'ग्' ये अक्षर भी संदिग्धता प्रकट करने वाले हैं। इनके स्वरूप में प्रचलित रूप से भिन्नता चाहिए जो स्पष्टतया व्यक्त हो जाय। लिपि सुधार की दृष्टि से इन सब बातों का विचार आवश्यक है। केवल मुद्रण सुलभता न देखी जाय वरन् लिखने की दृष्टि से भी यह अन्तर अत्यन्त आवश्यक माना जा सकता है।

वर्ण रूपों की विभिन्नता में एक रूप निर्धारण—

मुद्रण की दृष्टि से जब हम विचार करते हैं तो कई प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं। (१) मराठी देवनागरी टाइपों की संख्या एकत्रित करने की दृष्टि से कम कैसे की जा सकेगी ? (२) अक्षरों का संधान तिमंझिला या दुमंजिला

न बनाते हुए अंग्रेजी की तरह उसे इकमंजिला बना सकेंगे ? (३) अक्षरों का संधान करने वाले जोड़ने वाले जितने भी विभिन्न यंत्र हैं उन पर यह लिपि सिद्ध कर बैठाई जाय इसलिए कौन से परिवर्तन किये जायँ ? लिपि का संशोधन करने वालों ने अब तक इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए प्राय: विचार किया है और आज भी वही दृष्टि सामने रखकर वे चल रहे हैं। (४) देवनागरी लिपि के हिन्दी और मराठी भाषाओं के कुछ अक्षरों का जो विभिन्न रूप कुछ मामलों में दिखाई देता है उसे किस प्रकार कर सकेंगे यह भी एक चिन्तनीय विचार लिपि सुधार करने वालों के सामने रहा है। उदाहरणार्थ—झ, झ, ण, ण, अ, अ, ल, ल, ९, ९ आदि। हिन्दी मराठी के अक्षरों का अन्तर भले ही थोड़ा हो पर उसे निकालना अर्थात् दूर करना निहायत जरूरी है।

प्रस्तावित नये वर्णों के मुद्रण की जटिलताएं

सामान्यत: लिपि-सुधार का स्वरूप जिस प्रकार का है उसकी चर्चा हम ऊपर कर आये हैं। लेकिन आज तक जितने लिपि-सुधारकों ने जो-जो विविध पर्याय सुझाए हैं उनमें से बहुत से क्रान्तिकारक हैं। उनके विविध स्वरूप यदि यहाँ पर देने हों तो उनका टाइप उसी प्रकार ढाला गया है यह मानकर उस प्रकार लिख कर वैसे ही उनके छाया-चित्र यहाँ पर छापने पड़ेंगे; क्योंकि उनमें से कुछ तो ऐसे आमुलाग्र क्रान्तिकारक परिवर्तन सुझाये गये हैं कि उस पद्धति के अनुसार टाइप ढालना और तैयार करना—इसमें पर्याप्त मात्रा में द्रव्य खर्च करना पड़ेगा।

लिपि-सुधार की सीमाएँ

इस दृष्टि से यह कार्य बहुत खर्चीला होगा। फिर भी कुछ उत्साही और लिपि-सुधार कार्य में दिलचस्पी रखने वालों ने अपनी योजना के अनुसार टाइप ढलवाकर और उस प्रकार उन्हें लिखवाकर उनके छाया-चित्र प्रसिद्ध किये हैं। इसमें प्रमुख रूप से उनके तीन उद्देश्य प्राय: नजर आते हैं—(१) अक्षरों की संख्या कम से कम हो यह प्रयत्न (२) मुद्रण सुलभ अक्षरों का संधान बने ऐसी योजना, और (३) किसी भी भाषा का लेखन देवनागरी में किया जा सके

ऐसे उद्देश्य को सामने रखकर, विविध उच्चारणों का लेखन किया जा सके ऐसे नये अक्षर तैयार करना। लिपि विशारदों ने इन्हीं दिशाओं की ओर ध्यान देते हुए अब तक प्रयत्न किये हैं।

कुछ पूर्ववर्ती प्रस्तावित लिपि-सुधार और मुद्रण

बीच में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वारा एक लिपि-सुधार-समिति बनाई गई थी। उस समिति ने 'ख' अक्षर के प्रचलित स्वरूप बदल कर उसमें थोड़ा सा परिवर्तन कर मोडी लिपि के 'ख' को एक दंड जोड़कर उसे एक नया स्वरूप प्रदान किया था। उसी प्रकार मराठी के अ, झ, ण इन अक्षरों को हिन्दी भाषी ले लें और हिन्दी का 'ल' मराठी भाषी के अपना लें, क्योंकि हिन्दी 'ल' दंड-युक्त है, आदि बातें उस समिति ने सुझाई थीं। सभी स्वर चिन्ह उच्चारण क्रम के अनुसार व्यंजनों के आगे लिखे जायँ और इस दृष्टि से ह्रस्व इकार का 'ि' आगे लिखा जाय ऐसा विचार भी सामने आया था। किन्तु यह परिवर्तन एक बड़ा भारी परिवर्तन होगा इस कल्पना से उसे छोड़ दिया गया। मोड़ी लिपि में ह्रस्व और दीर्घ इकार के लिए एक स्वर चिन्ह है और वह भी व्यंजन के आगे ही लगता है। किन्तु बालबोध नागरी में ह्रस्व इकार का स्वर चिन्ह स्वतंत्र है और उसे पीछे लिखते हैं। अभी कुछ दिन पूर्व बम्बई सरकार ने लिपि सुधार के बारे में विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त की थी, पर आज तक सुझायी गयी योजनाओं की अपेक्षा या उन सुधारों की अपेक्षा उससे विभिन्न योजना व सुधार विशेष रूप से समिति के द्वारा सामने नहीं आये। उस समिति की सूचनाएँ भी कार्यान्वित नहीं हो सकी हैं।

महाराष्ट्रीय लिपि-सुधारकों की मुद्रण-सम्बन्धी योजनाओं का विवेचन

लिपि-सुधार का दूसरा दृष्टिकोण छपाई सुलभ कैसी हो इस ओर रहा है। अनेकों ने इस दिशा में प्रयत्न किये हैं और वे प्रायः महाराष्ट्रीय ही हैं। उनकी सुधार-योजनाओं का सामान्य रूप से विवेचन इस प्रकार है—

(१) संयुक्ताक्षर नष्ट किये जायँ। (२) सब अक्षर दण्डयुक्त हों उदाहरणार्थ का पा न। (३) 'ट, ठ, ड, ढ, द, ह' ये अक्षर दंडयुक्त नहीं हैं अतः उन्हें दंडयुक्त बनाया जाय। (४) स्वर चिन्हों के बदले अ, आ, इ, ई, उ, ऊ

इन स्वरों के आधे वर्णों को जोड़कर उनके पूरे वर्ण बनाना जैसे—ऋअ, आ ठई, स्आ, हइ ह्अ प्अ इ ष्अ द् याने 'मराठी साहित्य परिषद।' (५) प्रचलित स्वर चिन्हों के स्वरूपों में परिवर्तन जैसे अ, आ, इ, ई की बारहखड़ी का व्यवहार करना और दंड के ऊपर व नीचे आने वाले किन्तु दायें-बायें विस्तार पाने वाले स्वरूपों को संकुचित करना जैसे—झुकी हुई गैलरी की तरह ह्रस्व मात्रा दण्ड पर लटकती है यथा (ि) इसलिये उसका झुकने वाला भाग कम करके उसे संयत रूप में बैठाना जैसे—ी। (६) उकारादि चिन्ह ह्रस्व दीर्घ 'रु, रू' की तरह सामने किन्तु अक्षर की पंक्ति में सरका लेना या उनके प्रचलित स्वरूपों में परिवर्तन आदि।

ये सभी सूचनाएँ कम या अधिक मात्रा में आज केवल कागज पर लिखित रूप में पड़ी हुई हैं। उनका व्यवहृत होना संभव नहीं जान पड़ता। फिर भी गत बीस-पचीस वर्षों में मुद्रण के कार्य का विस्तार एवं व्याप्ति बढ़ जाने से मुद्रण-सुलभता दिन-ब-दिन अधिक आवश्यक बन गई है। आगे दी गयी सुधार की योजनाएँ इसीलिये व्यवहृत हो रही हैं।

(१) संयुक्ताक्षरों की संख्या कम हो गई है जैसे क्क, क्क, क्व, क्व, च्च, च्च, ट्ट, ट्ट, न्न, न्न, ल्ल, ल्ल, प्त, प्त, आदि शब्दों में संयुक्ताक्षर के स्थान पर आधा अक्षर छोड़कर उनके आगे पूरा लिखने की पद्धति चालू हो गयी है। इसे मान्यता भी व्यवहार में मिल चुकी है। परन्तु रकारान्त संयुक्ताक्षरों के बारे में यह पद्धति अभी मान्य नहीं हुई है। जैसे—क्र, क्‍र, ग्र, ग्‍र, ब्र, ब्‍र, श्र, श्‍र आदि। इन अक्षरों को लिखने की पूर्व पद्धति ही अब तक जारी है और उसे छापने का कार्य भी उसी प्रकार हो रहा है। आजकल कहीं-कहीं कुछ वर्तमान पत्रों में दूसरे स्वरूपों के संयुक्ताक्षर छापे जाते हैं, पर उनको भी टाइप कम पड़ने पर काम में लाया जाता है। सर्वत्र इसका प्रचलन अभी नहीं हुआ है।

(२) बिना दंड के अक्षरों के स्वरूपों में अभी विशेष फर्क नहीं आ पाया है यथा—द्द, न्द, द्ध, द्ध, ह्म, ह्य, आदि संयुक्ताक्षर आज भी अपने पूर्व स्वरूपों में ही विद्यमान और प्रचलित हैं तथा जब तक बिना दंडवाले अक्षरों का आधा

रूप बनकर तैयार नहीं होता तब तक इस पद्धपि में विशेष परिवर्तन की गुंजाइश नहीं दिखाई देती। मेरी दृष्टि से ऐसे संयुक्ताक्षर प्रमुखत: दकार और हकार युक्त होने से ऐसे संयुक्ताक्षरों के आधे 'द' का 'द' और आधे ह का 'ह्' इस प्रकार के दो स्वतन्त्र टाइप ढलवाये गये हैं। इनकी सहायता से सब संयुक्ताक्षर उनके संयुक्त रूपों में न लिखे जाकर उन्हें इस प्रकार लिखा जा सकता है यथा—दव, दब, दद, दम, दध आदि, तथा ह्म, ह्व आदि दकारयुक्त और हकार युक्त संयुक्ताक्षर लिख सकते हैं।

यह योजना सर्वत्र प्रचलित नहीं हो पाई है। यद्यपि इसका कहीं-कहीं प्रयोग होने लगा है। यदि टाइप फौन्डरी बनाने वाले इन सुधारों को अपना लेंगे तो फौरन वह प्रचलित हो सकता है। इसलिए जिनके पास टाइप फौन्ड-रियाँ हैं उन्हें चाहिए कि वे ऐसे नये टाइप ढलवा लें।

व्यवहृत परिवर्तन

अंग्रेजी में छपाई की पद्धति का (Style of Printing) का एक अपना विज्ञान बन गया है। हमारे यहाँ अभी वह नहीं बन पाया है किन्तु उसे वैसे बनाना ही पड़ेगा और वैसे प्रयत्न करना आज अत्यावश्यक बन गया है। आज तक छपाई का व्यवसाय एक साधन के रूप में अपनाया गया। शिक्षा-प्रसार राजनीति आदि कार्यों का मुद्रण एक साधन बन गया है। अत: उसे विज्ञान बनाकर उसकी उन्नति करनी चाहिए। अब तक इस प्रकार विचार किसी के सामने आया ही नहीं है। विदेशों में मुद्रण व्यवसाय की जो आश्चर्यजनक प्रगति एवं विकास हुआ है उसकी छाप यहाँ के मुद्रण व्यवसाय पर पड़ी है तथा उतना ही उस पर संस्कार भी हुआ है। मुद्रण तथा मुद्रकों की संस्थाओं को चाहिए कि वे प्रमुख रूप से इस कार्य में हाथ बँटायें और विशेषत: ध्यान देकर टाइप-सुधार, लिपि-सुधार आदि बातों में योगदान देने लगें तो वे इन कार्यों को सुगमतापूर्वक कर सकते हैं।

नागरिक लिपि में यंत्रसिद्ध छपाई ढालने की समस्या

नागरी लिपि यंत्रसिद्ध बनाते समय उसके स्वरूप को बिना परिवर्तित किये ही रोमन लिपि के काम में लाये गये टाइप्स और यंत्रों का उपयोग किस

प्रकार कर लिया जाय यही मूल समस्या है। नागरिक लिपि का राष्ट्रीय महत्व है और वह देश की भावात्मक एकता बनाये रखने का एक प्रमुख साधन और अंग है। लिपि सुधार करते समय क्रान्तिकारक परिवर्तन न करते हुए लिपि के वर्त्तमान स्वरूप में सादृश्य रखते हुए जो परिवर्तन कर लिये जाते हैं वे खत्म हो जाते हैं। नागरिक लिपि में परिवर्तन भारत के किसी एक ही राज्य में न किये जायँ बल्कि अखिल भारतीय स्तर पर किये जायँ। नागरिक लिपि के मुद्रण क्षेत्र में यांत्रिक और तांत्रिक ज्ञान मुद्रकों को संगठित रूप में और कार्यक्षम बन कर प्राप्त करना चाहिए। मुद्रण यंत्रों को सुधारने वाले साधनों की कमी इस देश की बहुत बड़ी कमी है। बिगड़े हुए यंत्रों का उचित सुधार करते आना चाहिए। यंत्रों को दुरुस्त करने वाले कारखाने चाहिए। सरकारी पैमाने पर ऐसे कारखाने हों जो इस समस्या का निराकरण कर सकें। बाहर से मशीनें न लाकर अपने यहाँ पर ही नये मुद्रण यंत्र बनाये जायँ। देश की वर्त्तमान आर्थिक असंपन्नता विदेशों से यंत्र मँगाने में अक्षम है और इधर सर्वत्र यंत्रों की माँग बढ़ रही है।

कुशल कर्मचारियों की शिक्षा—

मुद्रणालयों में कुशल कर्मचारियों की अत्यन्त अनिवार्य आवश्यकता है। आजकल सर्वत्र उनकी माँग बढ़ रही है। इस व्यवसाय में सीखने की इच्छा रखने वाले जिज्ञासुओं को प्रवेश नहीं मिल पाता है। इस बारे में भी सरकार को ही कदम उठाने चाहिए। मुद्रण शिक्षण विद्यालय खोलकर मुद्रण विज्ञान का यांत्रिक और तांत्रिक ज्ञान दिया जाय। बड़े-बड़े सरकारी मुद्रणालय खोले जायँ, जिनमें बिगड़े हुए यंत्रों को सुधारने की शिक्षा दी जाय तथा बिगड़े हुए यंत्र सुधारे जायँ तथा नये यंत्र कारखानों में बनाये जायँ। विदेशों पर निर्भर रहने से हमारी इस क्षेत्र में प्रगति कदापि नहीं हो सकती। नागरी लिपि का यांत्रिक बनाव और ढलाव अपने ही यहाँ बने यंत्रों पर किया जाय तभी वह मुद्रणयन्त्र और तंत्र दृष्टि से कार्यक्षम बन सकती है।

४ : प्रस्तावित देवनागरी मुद्रालेखन यंत्र

—श्री बंकटलाल ओझा

[देवनागरी मुद्रालेखन यन्त्र का जो प्रस्तावित स्वरूप भारत सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा समाचार पत्रों में प्रकाशित कराया गया था, उसके स्वरूप की यान्त्रिक वैज्ञानिक और व्यावहारिक समीक्षा श्री बंकटलाल ओझा ने "राजभाषा", वर्ष १, अंक १६, नई दिल्ली, ७ जून १९५६ के अंक में पृष्ठ क्रमांक २ और ३ पर प्रकाशित की थी। उसी समीक्षा का अविकल रूप नीचे दिया गया है।]

देवनागरी मुद्रालेखन यंत्र के अखिल भारतीय रूप का प्रश्न

चिर प्रतीक्षा के बाद भारत सरकार के शिक्षा-विभाग ने देवनागरी मुद्रा लेखन यंत्र का प्रस्तावित रूप ४ दिसम्बर को प्रकाशनार्थ समाचार पत्रों को दिया। इस पर सुझाव आदि भेजने के लिए अंतिम तिथि ३१ दिसम्बर निर्धारित की गई है। विषय के महत्व को देखते हुए यह अवधि बहुत ही कम है, क्योंकि यह एक अखिल भारतीय प्रश्न है और एक बार जो रूप निर्धारित हो गया तो हो गया। बार-बार इसमें परिवर्तन होने का नहीं है। शिक्षा मंत्रालय विचार-विमर्श में चाहे वर्षों लगा दे पर जनता को पूरे महीने भर का भी अधिकार नहीं है।

देवनागरी मुद्रालेखन यंत्र पर विचार करते हुए हमें हिन्दी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं को दृष्टि में रखना होगा। यह कदापि नहीं हो सकता कि हिन्दी और भारतीय भाषाओं के लिए अलग-अलग देवनागरी मुद्रा लेखन यंत्र हों।

हमारे विचार से इसमें निम्नलिखित परिवर्तन होने चाहिए—

रोमन अंक वर्ण संकर हैं

(१) अंक देवनागरी के मूल अंक ही रखे जायँ क्योंकि हमारा १ रोमन का ९ होता है, जिससे हिसाब-किताब में भयंकर गड़बड़ी होने की संभावना है। संस्कृत, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, नेपाली आदि कई भाषाओं के अंक देवनागरी के ही हैं। वे कदापि रोमन अंकों को स्वीकार नहीं करेंगे। जबकि हमारे अपने असली अंक हैं तो उन असली अंकों को छोड़ कर वर्णसंकर अंकों को क्यों अपनाएँ, जो हिन्द से अरब में जाकर 'हिन्दसे' हो गये और वहाँ से यूरोप गये। इस प्रकार तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय रोमन अंक भारतीय अंकों के वर्णसंकर रूप ही तो हैं।

लखनऊ लिपि सम्मेलन का समर्थन

लखनऊ लिपि सम्मेलन ने मूल देवनागरी अंकों को ही अपनाने की सिफारिश की है। आखिर जब उस सम्मेलन के निर्णयों के अनुसार ही मुद्रा-लेखन यन्त्र का आधार है तो उसकी इस सिफारिश को क्यों त्यागा जा रहा है?

अक्षरों का क्रम

(२) इसमें अक्षरों का क्रम ठीक नहीं है। जो अधिक काम आते हैं, उन्हें निकट और जो कम काम में आते हैं उन्हें दूर रखने के सिद्धान्त का पालन नहीं हुआ है। इस बात पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है नहीं तो लेखन की गति में काफी कमी हो जायगी।

आज के अंग्रेजी टाइपराइटर के अनुकरण पर अक्षरों का क्रम बैठाया गया हो, यह सम्भव है पर अंग्रेजी और भारतीय भाषा की क्या तुलना? उसमें अमुक-अमुक अक्षरों का विशेष प्रयोग होता हो पर हमारे यहा उन्हीं का होना कोई जरूरी नहीं है और फिर अंग्रेजी का टाइपराइटर ही कहाँ निर्दोष है। "टाइम्स आफ इंडिया" के ११ दिसम्बर के अनुसार अमरीकन सरकार अंग्रेजी के नये 'की-बोर्ड' का परीक्षण कर रही है। यदि उसे स्वीकार कर लिया गया तो ३५ प्रतिशत गति बढ़ जायगी। वाशिंगटन विश्वविद्यालय में १९३४ से

इस पर अनुसन्धान हो रहा है। अतः अंग्रेजी का अनुसन्धान हमारे लिए कदापि श्रेयस्कर नहीं है।

संयुक्ताक्षरों का टंकन

(३) अर्ध अक्षरों का ठीक चुनाव नहीं हुआ है। भारतीय भाषाओं में संयुक्ताक्षरों का बाहुल्य है। उनके शुद्ध लेखन का ध्यान भी हमें रखना आवश्यक है। द और ह से बनने वाले संयुक्ताक्षरों के रूप कुछ कम नहीं हैं। अतः इनके लिए द और ह के अर्ध रूप निश्चित करना अनिवार्य है, जिससे शुद्ध लिखा जा सके। आज के कुछ प्रचलित अशुद्ध रूप देखिए :—

शुद्ध	अशुद्ध
प्रह्लाद	प्रल्हाद
ब्राह्मण	ब्राम्हण
चिह्न	चिन्ह
द्वारा	व्दारा आदि

यह अशुद्धता हलन्त की प्रसादी है। कहीं ऐसा न हो कि आगे चल कर यही अशुद्ध रूप रूढ़ हो जाये। अतः समय रहते इनकी रक्षा जरूरी है। इस लेख के साथ छपने वाले अक्षर पटल में द और ह के अर्ध रूप भी विचारणीय हैं। ह के अर्ध रूप का प्रयोग मोनो टाइप में हो रहा है। द के अर्ध रूप का प्रयोग पूना के कुछ मुद्रणालय करते हैं।

अचल कुञ्जियाँ (Dead keys)

(४) पटनावासी प्रो० कृपानाथ मिश्र के तीन पेटेंटों का उपयोग ओलपिया हिन्दी मुद्रालेखन यन्त्र में हुआ है, जिसमें अर्ध अक्षरों के लिए यन्त्र की चाल आधी है। अचल कुञ्जियाँ (डेड कीज) उसमें केवल दो ही हैं। पर इस प्रस्तावित में छः रखी गई हैं। आज तो बिना अचल कुंजियों के ही मुद्रालेखन यन्त्र बाजार में आ गये हैं तो फिर इसकी क्या आवश्यकता है। आज तक के आविष्कारों का हमें अपने नये मुद्रालेखन यन्त्र में उपयोग करना चाहिए। तभी हमारा काम सुविधाजनक और सफल कहा जा सकता है।

अर्धचाल की कुन्जियाँ

अर्ध चाल की दो कुन्जियाँ रखी गई हैं, जबकि सभी अर्ध अक्षरों को अर्ध चाल की आवश्यकता है।

प्रस्तावित अक्षर पटल

(५) किस अक्षर का कितना कम या अधिक प्रयोग होता है, उसकी जाँच की कसौटी के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं। किसी भी मुद्रणालय में इसका सर्वेक्षण हो सकता है। मुद्रणविदों के उसी सर्वेक्षण के फलस्वरूप देवनागरी अक्षर पटल हमने तैयार किया है, जिसे मराठी, गुजराती और हिन्दी के मुद्रणकलाविज्ञों का समर्थन प्राप्त है। इस अक्षर पटल की विशेषता यह है कि संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, नेपाली आदि कोई भी भाषा शुद्ध रूप से लिखने के लिए सामान्य रूप से उपयोगी है। सभी आवश्यक चिह्नों का समावेश भी इसमें किया गया है। इसमें २६ पूर्ण अक्षर, २० अर्ध अक्षर, १३ मात्राएँ, १० अंक और १३ विराम चिह्न आदि हैं। इ, उ और ए का समावेश इसमें किया जा सकता है; क्योंकि लखनऊ सम्मेलन ने अ, अे के रूपों को स्वीकार नहीं किया है।

कल बदल अगल बगल में ही हो

(६) सभी मुद्रालेखन यन्त्रों में कल बदल अगल-बगल में रहते हैं, पर प्रस्तावित में मध्य में रखा गया है, जिससे कठिनाइयाँ बढ़ेंगी ही, कम नहीं होंगी। अंग्रेजी यन्त्र पर काम करने वाले को देवनागरी के लिए कल बदल का नया अभ्यास करना होगा।

यंत्रों के अनुरूप लिपि नहीं हो : यंत्र लिपि के अनुरूप हों

(७) ह्रस्व इ की मात्रा का नवीन रूप कुछ मेल नहीं खाता; क्योंकि हाथ की लिखावट में ह्रस्व इ और दीर्घ ई की मात्रा के सूक्ष्म अन्तर को पहचानना असम्भव हो जायगा, क्योंकि सभी के पास सदा सर्वदा लिखने के लिए लेखन यंत्र होंगे नहीं। इस प्रकार कालान्तर में ह्रस्व और दीर्घ का भेद मिट जायगा, जिससे यह होगा कि शब्दों के अर्थ को समझने में अर्थ का अनर्थ हो जायगा। हिन्दी का प्रयोग अब भविष्य में राजकीय व्यवहार में अन्तर्राष्ट्रीय रूप से होगा। अतः शब्दों का शुद्ध रूप रहना अत्यन्त आवश्यक

है, अन्यथा भ्रमवश राष्ट्र पर बहुत बड़ा संकट आ सकता है, जैसाकि जापान पर आज से दस वर्ष पूर्व आया था । अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति ट्रूमन ने जापान को चेतावनी दी थी कि यदि अमुक समय तक लड़ाई बन्द न की गई तो अमेरिका, जापान पर अणुबम का प्रयोग करेगा । मन्त्रिमण्डल ने युद्ध बंद करने का निर्णय भी कर लिया । परन्तु जापानी प्रत्युत्तर का अंग्रेजी अनुवाद अशुद्ध हुआ अर्थात् लड़ाई चालू रखेंगे जो रेडियो पर प्रसारित हुआ। कुछ असैनिक आधिकारियों के सामने यह बात तत्काल आ गई, परन्तु सैनिक नियंत्रण के कारण कुछ कहना मौत को बुलाना था । अतः वे मौन रह गये और बाद में जो कुछ हुआ वह हमारे सम्मुख है । यदि जापान पर अणु बम न गिरता तो आज अमेरिका की नीति कुछ और ही होती और जागृत एशिया के साथ वह खिलवाड़ न करता । अणु बम को पाकर आज तो अमेरिका भस्मासुर बना हुआ है । अन्त में हमें एक बात कहनी है, आज लिपि को यंत्रों के अनुकूल तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है पर होना यह चाहिए था कि यन्त्रों को लिपि के अनुकूल बनाया जाता । जब तक हम इस सिद्धान्त को नहीं अपनाते, किसी भी अवस्था में शुद्ध मुद्रालेखन यन्त्र बनाना असंभव है ; क्योंकि परम्परा से जो कुछ प्राप्त हुआ है उसे कोई भी सरकार एकाएक अपने एकाध आदेश से परिवर्तन नहीं कर सकती । ऐसा करना जन-भावना के साथ खिलवाड़ करना होगा । प्रगतिशील यूरोप और अमेरिका भी आज रोमन वर्णमाला के छोटे और बड़े रूपों से चिपटा हुआ है । यदि दोनों में से किसी भी एक रूप को वे अपना लें तो लेखन यंत्र की गति ही नहीं बढ़ती, मुद्रणालयों में कीलाक्षर (टाइप) भी कम रखने पड़ेंगे । पर वे इसके लिये तैयार नहीं हैं ।

मुद्रणकलाविद और व्यवहारिक कार्यकर्त्ताओं से परामर्श

ऐसी अवस्था में शिक्षा मंत्रालय गम्भीरतापूर्वक इस विषय पर विचार करे और किसी अन्तिम निर्णय पर पहुँचने के पूर्व मुद्रणकलाविज्ञों और देवनागरी मुद्रालेखन यंत्र विषयक व्यावहारिक कार्यकर्त्ताओं से अवश्य ही परामर्श करेगा । राजनीतिज्ञों और शिक्षाशास्त्रियों से तो वह विचारविनिमय कर ही चुका है ।

५ : नयी हिन्दी टंक लिपि

[श्री बाला साहेब खेर की अध्यक्षता में राष्ट्रभाषा की प्रगति के सम्बन्ध में भारत सरकार के 'हिन्दी-भाषा-मंडल' (Official Language commission) ने सम्पूर्ण देश में विचार-विमर्श किया। इस विषय की प्रश्नपत्रिका के अनुसार लेखक डॉ० रा० ज० फडके ने गत वर्ष अगस्त महीने में 'ए न्यू हिन्दी-टाइप-स्क्रिप्ट' [एक नई हिन्दी टंक लिपि] नामक विस्तृत प्रबन्ध, मण्डल को समर्पित किया, तथा विगत दिसम्बर में मण्डल से व्यक्तिशः भेंट भी की। उक्त प्रबन्ध के विचारों का संक्षिप्त रूप पूना के सुप्रसिद्ध मराठी पत्र 'केसरी', रविवार २, सितम्बर १९५६ के पृष्ठ क्रमांक ८ पर 'माहिती नि मनोरंजन' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था। मराठी के उसी लेख 'नवी हिन्दी टंक लिपि' का हिन्दी अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है।]

क्या देवनागरी लिपि के अक्षर विस्तार का संक्षिप्तीकरण संभव है ?

कई विभिन्न बातों की तरह लेखन कार्य भी सुगम और शीघ्र हो, इसलिये यंत्र की शरण ली गई अर्थात् मुद्रण यंत्र और टंकलेखन में भी कुछ कठिनाइयाँ हैं। लिपि जितनी सरल हो उतनी ही यंत्र के लिए सुविधाजनक होती है। इस दृष्टि से २६ अक्षरों वाली अंग्रेजी (रोमन) लिपि, ५२ अक्षरों की देवनागरी (हिन्दी) लिपि की अपेक्षा मुद्रण और टंकलेखन के लिए अधिक सुविधाकारक है, यह निर्विवाद है।

क्या देवनागरी लिपि का यह अक्षर-विस्तार टंकलेखन की दृष्टि से संक्षिप्त करना संभव है ? यही विचारणीय है। मुद्रण में भी यह लिपि संकोच होना चाहिये—यह आग्रह नहीं है, क्योंकि मुद्रण में, अक्षरों का जोड़ना (Composing) और मुद्रण (Printing) करना दो स्वतंत्र क्रियायें होने से प्रथम क्रिया में होने वाला विलम्ब दूसरी क्रिया शीघ्रता से करके ; समय की बचत करना अधिक असुविधाजनक नहीं होता। हस्तलेखन के सम्बन्ध में इस

तरह के लिपि संकोच अथवा परिवर्तन करने का कोई कारण नहीं है। उसी प्रकार हस्त और टंक लिपि में थोड़ा बहुत भेद रहने पर नाक-भौं सिकोड़ने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा भेद अंग्रेजी-लिपि में है, और उससे कोई अधिक असुविधा है—ऐसा नहीं सुना जाता है।

बारहखड़ी का विभाजन

'अ' बाहरखड़ी आजकल बहुमान्य हो गई है। 'क' से 'ज्ञ' पर्यन्त जो अक्षर हैं, उन्हें 'अ' और 'ह' के निम्नांकित दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है :—

१. 'अ' विभाग :—क, ग, ङ, च, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ, क्ष, त्र, ज्ञ,

२. 'ह' विभाग :—ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ,

'ह' विभाग के अक्षरों का आज देवनागरी में स्वतंत्र स्थान है, किन्तु इन अक्षरों को यदि अधोलिखित ढंग से जोड़ाक्षर रूपों में लिखा जाय तो भी उनका योग्य उच्चारण होता है।

'क्ह', 'ग्ह', 'च्ह', 'ज्ह', 'ट्ह', 'ड्ह', 'त्ह', 'द्ह', 'प्ह', 'ब्ह',
(ख) (घ) (छ) (झ) (ठ) (ढ) (थ) (ध) (फ) (भ)

देवनागरी लिपि के अनन्त जोड़ाक्षरों का समावेश करने में कोई बुराई नहीं है, अर्थात् देवनागरी के मूलाक्षरों में से इन दस अक्षरों को कम करना सम्भव है।

'अ' विभाग के अक्षरों को भी संक्षिप्त किया जा सकता है। इस विभाग में 'ङ', 'ञ' अक्षर अनावश्यक हैं। "वाङ्.मय" के स्थान पर टंक लेखन में यदि "वांग्मय" लिखा जाय तो कोई अधिक बुराई नहीं होगी। "क्ष", "त्र" "ज्ञ" जोड़ाक्षरों को स्वतंत्र रूप दिये ही जायें— ऐसा नहीं है। 'श' और 'ष' दोनों में से एक को भी स्थान दिया गया तो काम चल सकता है। 'क', 'र' और 'स' के सावरकरी रूप अच्छी तरह से परिचित हो चुके हैं। शेष अक्षरों में पूर्णाक्षरों की अपेक्षा अपूर्णाक्षरों की आवश्यकता टंकलेखन में अधिक रहेगी। इसका कारण है कि—

पूर्णाक्षर = अपूर्णाक्षर + अ (अथवा अपूर्णाक्षर + अ)
ग = ग् + अ (अथवा ग + ा)
च = च् + अ (अथवा च + ा)
ज = ज् + अ (अथवा ज + ा)

अर्थात् ट, ड और द अक्षरों के पूर्ण और अपूर्ण रूप समान होने से उनका प्रश्न ही नहीं है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि 'अ' और 'ह' पूर्णाक्षर, 'क' वर्ग के अक्षरों के अर्धाक्षर व बारहखड़ी मात्राओं तक देवनागरी लिपि का संक्षिप्तीकरण सम्भाव्य है। क वर्ग के अक्षरों में 'अ' के दर्शन केवल खड़ी पाई (ा) के रूप में ही होते हैं, ये भी उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट होने के कारण टंक लेखन के लिए पर्याप्त होंगे। यही रूप 'अ' अक्षर को देने पर बहुत अधिक सुविधा होगी, क्योंकि उसमें अंग्रेजी की ही भाँति नीचे दिये गये २६ रूपकों में सब जोड़ाक्षरों सहित देवनागरी लिपि की सृष्टि-सज्जा सम्भव हो जाती है—

ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ग	च	ज	ट	ड	ण
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)	(९)	(१०)	(११)	(१२)	(१३)

ट	द	न	८	ढ	म	ट	ट	ल	ठ
(१४)	(१५)	(१६)	(१७)	(१८)	(१९)	(२०)	(२१)	(२२)	(२३)

श	ह	ळ
(२४)	(२५)	(२६)

'क', 'र', 'स', 'अ' के वर्तमान रूप रखने पर कुल योग ३० होगा। अर्थात् टंकलेखन जगत में इसके आगे होने वाले सुधार हिन्दी टंकलेखक को सुगमता से आत्मसात हो सकेंगे तब अक्षरों की संख्या २६ होना कभी भी अधिक अच्छा रहेगा। इन २६ रूपों में अंग्रेजी टंकलेखन की ही भाँति हिन्दी टंकलेखन में भी अर्द्ध व पूर्ण विराम उद्गार चिह्न, बिन्दु (dot) व आड़ी रेखा (dash), एक से नौ तक अंक इत्यादि रहेंगे ही।

हिन्दी टंकलेखक से लाभ

देवनागरी लिपि को उपरोक्त ढंग से टंकलेखन में संक्षिप्त करने का एक

और फायदा होगा। अंग्रेजी टंकलेखक में २६ छोटे और २६ बड़े (Capital) अक्षरों की सुविधा रहती है। देवनागरी लिपि में इस प्रकार का भेद नहीं होने के कारण मोटे अक्षरों की अपेक्षा देवनागरी टंकलेखक में गुजराती, कन्नड़, तमिल, बंगाली इत्यादि में से कोई भी एक अतिरिक्त लिपि का समावेश किया जा सकेगा; क्योंकि देवनागरी ही की तरह इसको भी संक्षिप्त करना संभव है अर्थात् (Shift-Key) दबाते ही जैसे अंग्रेजी टंकलेखक बड़े अक्षर टंकित करता है उसी प्रकार नई लिपि स्वीकार करने पर भावी देवनागरी टंकलेखक एक अतिरिक्त लिपि में टंकन करने लगेगा। भाषावार प्रान्त-रचना के अनुसार प्रान्तीय व्यवहार प्रान्तीय भाषा में तथा अन्तरप्रान्तीय व्यवहार भविष्य में देवनागरी लिपि में चलेगा। ऐसे अवसर पर खर्च और सुविधा दोनों की दृष्टि से दो लिपियों में टंकलेखन करने वाला हमारा नया हिन्दी टंकलेखक क्या अधिक उपयुक्त नहीं ठहरेगा ?

अर्थात् लिपि-संकोच के साथ-साथ देवनागरी टंकलेखक में अक्षर व्यवस्था व संख्या की अराजकता नष्ट होना जरूरी है। की-बोर्ड (Key-board) में ४२ से ४७ तक की (Key) होने पर भी आधुनिक हिन्दी टंकलेखक हिन्दी की समुचित सेवा नहीं कर सकते। हिन्दी टंकलेखन की गति पहले से ही कम है—अधिक से अधिक ४५ शब्द प्रति मिनट, तिस पर अंडरवुड, रेमिंग्टन इत्यादि की अक्षर व्यवस्था इतनी भिन्न है कि एक पर की हुई मेहनत दूसरे की दृष्टि से बिलकुल निरुपयोगी सिद्ध होती है। यह बात जरूर ध्यान देने की है कि हिन्दी टंकलेखक में संशोधन किये बिना, उसमें व्याप्त अराजकता नष्ट किये बिना भविष्य में मुक्ति का मार्ग नहीं है; क्योंकि अन्य बातों की तरह देश की प्रगति शासकीय, कामकाज की द्रुतगति पर अवलंबित रहती है और टंकलेखक इस द्रुत गति का आधार ही है।

उपरिलिखित ढंग से नई हिन्दी टंक लिपि पर आधारित "प्रदर्शनी-टंक लेखक" तैयार करना व उसकी कार्यक्षमता प्रत्यक्ष दिखाकर सिद्ध करना आगामी कार्य है तथा इस संबंध में यह प्रयास करके देखना है कि क्या इस कार्य के लिये भारत सरकार की ओर से आर्थिक सहयोग मिलना संभव है

अथवा नहीं ? यदि कोई उत्साही टंकलेखक तंत्रज्ञ इस कार्य को करना चाहे तो वह डा० रा० ज० फडके, Stan Vac Refinery, Bombay से पत्र व्यवहार कर सकता है।[१]

---

१ :—प्रस्तुत निबन्ध में "टंक-लेखक" और "टंकलेखन" शब्दों का प्रयोग Type-writer और Type writing के लिये किया गया है।

लिपिसुधार

—पं० केशवराम का० शास्त्री, अहमदाबाद

[श्री पंडित केशवराम का० शास्त्री० गुजराती के प्रसिद्ध अनुसंधायक और विद्वान हैं। भूतपूर्व बंबई राज्य के प्रधानमंत्री श्री बा० ग० खेर जी की अध्यक्षता में जिस लिपि-सुधार समिति का निर्माण हुआ था, उसके आप भी एक प्रमुख सदस्य थे। उच्चतम शिक्षा और शोध आपके अपने क्षेत्र हैं। गुजरात की कई शोध-संस्थाओं से आपका सीधा सम्बन्ध है। आजकल भाई दलपतराम संशोधन संस्था में आप शोध-सम्बन्धी कार्य कर रहे हैं। आपने अपनी अमूल्य सेवायें गुजरात विद्या सभा को भी कई वर्षों तक दी हैं। प्रस्तुत लेख आपकी लिपि-सुधार सम्बन्धी धारणाओं और मान्यताओं को प्रदर्शित करने वाला है।]

भारतीय लिपियाँ और देवनागरी

भारत के संविधान में 'राष्ट्रभाषा' के पद पर जनसाधारण की 'हिन्दी' को और 'राष्ट्रभाषा की लिपि' के पद पर 'देवनागरी लिपि' को रखा गया है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं के ग्रन्थ प्रायः देवनागरी लिपि में छपते हैं, अतः भारतीय पढ़े-लिखे लोग देवनागरी लिपि से परिचित हैं। देवनागरी लिपि का विकास भारत की अशोकालीन 'ब्राह्मी लिपि' से 'गुप्त' एवं 'कुटिल लिपियों' द्वारा क्रमशः हुआ है। भारतीय भाषाओं ने आगे चल कर अपनी-अपनी लिपियाँ भी आज प्राप्त कर ली हैं, जोकि पुरानी देवनागरी लिपि का ही अलग-अलग प्रान्तों में प्राप्त किया हुआ विकास है। द्रविड़ भाषाओं का कुल नितान्त भिन्न होने पर भी द्रविड़देश की तमिल, मलयालम्, कन्नड़ आदि लिपियाँ भी 'ब्राह्मी लिपि' से ही प्राप्त हुई हैं। इतना ही नहीं, भारत के बाहर सीलोन, ब्रह्मदेश, सियाम, नेपाल, तिब्बत आदि देशों की लिपियाँ भी 'ब्राह्मी लिपि' से उतर आई हैं।

देवनागरी की विशिष्टता

भारतीय लिपिप्रकार अक्षरात्मक (Syllabic) है, क्योंकि स्वरों का जब व्यंजनों के साथ संयोग होता है, तब स्वरों के चालू संकेतों के स्थान पर विशिष्ट चिह्न व्यंजनों में लगाये जाते हैं । यूरोपीय आदि लिपियों में यह सुविधा नहीं होने के कारण वे वर्णात्मक (Alphabetic) लिपियाँ हैं ; प्रत्येक वर्ण (Phoneme) चाहे वह स्वर हो या व्यंजन हो, अलग-अलग लिखा जाता है।

भारतीय लिपि की एक यह भी विशिष्टता है कि कोई भी एक वर्ण का उच्चारण एक ही होता है ; यूरोपीय आदि लिपियों में एक वर्ण के एक से ज्यादा भी उच्चारण हो सकते हैं । उन लिपियों में कई वर्ण भी हैं । भारतीय भाषाओं का जब रोमन लिपि में लिखना-छापना होता है तब नुकता और दूसरे चिह्नों से चालू वर्णों में पूर्ति करने की आवश्यकता बन रही है ; तो भी व्यंजनों के विषयों में अस्पष्टता रहती है । उदाहरणार्थ—गुजराती 'त्हारा और मारवाड़ी 'थारा' रोमन लिपि में thara ही लिखा जाता है । हाँ, जरूर भारतीय लिपियों में भी कई विदेशी उच्चारण बताने के लिये वर्ण संकेत नहीं है, ऐसे स्थान भारतीयों के लिये कम हैं और भारतीय भाषाओं के व्यवहार कोई न्यूनता बताते नहीं हैं ।

यों भारतीयों के पास बहुजनमान्य देवनागरी लिपि है । हमारे राष्ट्र के एक कोने से दूसरे कोने तक वह प्राय: सबको परिचित है । धर्म-ग्रन्थों की लिपि होने के कारण इस लिपि की ओर सबको आदर भी है । किन्तु इस कारण से ही इसको भारतीय संविधान में स्थान मिला है, ऐसा नहीं है ; भारत की प्राय: सब प्रजा को इसका व्यापक रूप में परिचय है यही स्थान मिलने में सच्चा कारण है ।

देवनागरी के मुद्रण, टंकन की समस्यायें और सुझाव

मुद्रण में, टाइपराइटरों में, टेलिप्रिन्टरों में रोमन लिपि से जो सुविधा है, वह देवनागरी लिपि से नहीं है । देवनागरी के मूल एवं संयुक्ताक्षरों के अनेक स्वर चिह्नों के सादे और मिश्र स्वरूप आदि के कारण टाइप-फौन्ड्रियों में ६०० से भी ज्यादा कीलक (metrices) अपेक्षित रहते हैं । मोनो-लिनो-टाइप-यन्त्रों में भी ४०० से कम कुंजियाँ (Keys) नहीं हैं । इसी कारण अनेक भारी

असुविधाएँ रहती हैं। 'कूं' करना हो तो या तो सम्पूर्ण अखण्ड बिम्ब (Type) चाहिये, अथवा ऊपर नीचे काटा हुआ 'क' 'अनुस्वार का चिह्न' और 'दीर्घ ऊकार की मात्रा' इन तीनों को अलग-अलग लेकर 'कूं' बना लेना चाहिये। रोमन लिपि की तरह देवनागरी लिपि में एक के बाद दूसरा बिम्ब (type) लगाने से काम चल सके--ऐसी संपूर्ण रूप में जहाँ तक न की जाय वहाँ तक यह आपत्ति रहेगी। इसके कारण मुद्रण योजना एवं मोनो-लिनोटाइप यन्त्र टाइप-राइटर, टेलिप्रिन्टर आदि में यान्त्रिक असुविधा बहुत बाधाजनक प्रतीत हुई है। क्या देवनागरी लिपि की आज की विशिष्टता को रखते हुए ऐसा कोई संशोधन संभव है ? यहाँ इस विषय में एक सुझाव रखा जाता है।

(१) हमारे पास आज मूल स्वर "अ इ उ ऊ ऋ ए" ये संकेतों की दृष्टि से पड़े हैं। इनमें से "आ ई ऐ ओ औ" चिह्नों की मदद से बनाये जाते हैं। मैं यहाँ एक महत्व का संशोधन आवश्यक समझता हूँ---ए-ऐ को निकाल दिया जाय, 'ओ-औ' की तरह उनको कर लिया जाय। गुजराती लिपि में 'अ' से ही ये चार स्वर बनाये जाते हैं। 'ई-ऊ' को किस प्रकार से बनाना वह 'बाराखड़ी' के समय नीचे यथा-स्थान निर्दिष्ट होगा।

तो मूल संकेत 'अ इ उ ऋ' इन चार से ही हमारा काम सिद्ध होगा।

(२) आज अनुस्वार और अनुनासिक उच्चारणों के लिये बिन्दु और सबिन्दु अर्धचन्द्र चिह्न चालू हैं, तो भी दोनों के लिये बिन्दु से ही काम चलाया जाता है। ये दोनों चिह्न संकेत के ऊपर लगाये जाते हैं । यहाँ अखण्ड बिम्ब (type) न होने के कारण वर्ण ऊपर से काटा हुआ लेकर उसके ऊपर दोनों के चिह्नों के बिम्ब लगाये जाते हैं। मैं यहाँ वर्ण की दाहिनी ओर अनुस्वार के लिये ०़ और अनुनासिक के लिये ॱ़ इन दोनों चिह्नों का प्रयोग सूचित करता हूँ।

यों इन दो चिह्नों से हमारा कार्य सभी स्थानों में सिद्ध होगा।

(३) व्यंजनों के साथ स्वरों के लघु-चिह्न लगाये जाते हैं। इनमें मात्र 'आ' के विषय में 'ा' दाहिनी ओर आता है, अवशिष्ट चिह्नों में से या तो ऊपर, अथवा नीचे, तो ह्रस्व इकार का ऊपर और बाईं ओर, एवं दीर्घ ईकार का

ऊपर और दाहिनी और लगाया जाता है। तीन माला (storeys) दूर करने के लिए—जिसकी 'मोनो-लिनो टाइपयन्त्र' 'टाइप-राइटर' एवं 'टेलिप्रिन्टर' में बहुत जरूरत है, सुविधा भी होगी—हमेशा 'ा' की तरह सभी चिह्न दाहिनी ओर ही आ रहे यह हमारी परम आवश्यकता है। 'ई' को यों दीर्घ 'ई' की सूचित रचना से और 'ऊ' की सूचित रचना से बनाना आसान बन जायगा। अंग्रेजी उच्चारण में विवृततर 'अॅ'—आॅ के लिये यहाँ उलटी मात्रा ही है। देखिये इस आयोजना को—

क] क˥ कु क ॄ कॄ कॄ क > क < क ≽

(कि की कु कू कृ क ≶ के कॅ कै)

यों बताये हुए प्रकार के नव चिह्नों से हमारा कार्य 'बाराखड़ी' के विषय का सिद्ध होगा। 'ा' यह दसवाँ विसर्ग का कार्य तो महाविराम चिह्न : (colon) से ही होता है। अनुस्वार-अनुनासिक के ऊपर बनाये गये नये चिह्न और के बनाये गये सस्वर व्यंजनों की दाहिनी ओर आ जायेंगे।

यह ख्याल में रहना चाहिये कि आज 'रु' 'रू' में दाहिनी ओर ही 'उ-ऊ' की वरड़ी आती है। वह पुरानी पद्धति का अवशेष है। यह पद्धति देवनागरी की एक समय की व्यापक रूप में थी।

स्वर अनुस्वर-अनुनासिक-विसर्ग, और स्वरचिह्न—ये सब मिलकर १७ बिम्ब (types) यहाँ तक होते हैं।

(४) अब व्यंजनों का विचार करते समय संयुक्त व्यंजनों के विषय में कुछ संशोधन जरूरी बनता है। आज संयुक्त व्यंजनों के ही कारण बहुत से बिम्ब (types) आवश्यक बने हैं। 'ब्राह्मी लिपि' में तो पूर्व व्यंजन ऊपर के भाग में और पिछला व्यंजन नीचे के भाग में रखा जाता था। बिना पाई के व्यंजनों के विषय में यही पद्धति आज तक प्रायः चालू है; पाई वाले व्यंजनों की तो पाई हटा कर उनके बाद द्वितीय व्यंजन को आज लिखा-छापा जाता है। इनमें से भी कितने के संयुक्त व्यंजनों के अखण्ड बिम्ब (types) बनाये गये हैं। इसी कारण कीलकों की संख्या बहुत बढ़ गई है।

संयुक्त व्यंजनों के विषय में, खास करके 'र' की रसम 'ब्राह्मी लिपि की

आज तक चालू है। 'रेफ' यह ब्राह्मी 'र' का ऊपर का भाग है ; टेढ़ी लकीर उसका नीचे का अर्ध है, (घोड़ा का भी प्रचार है) आज जब संयुक्त व्यंजनों में आदि हो तब 'कर्‌ण' और अन्त में तब 'नम्र' यों लिखना आवश्यक होगा। बिना पाई के सभी वर्ण जब आदि में हों तब हल् चिह्न साथ ही लिखना-छापना आवश्यक होगा। नीचे का अलग माल (storey) बन न जाय इसीलिये अखण्ड बिम्ब (types) बनाते समय वर्ण का आकार जरा सा छोटा करके हल् चिह्न नाप में समा रहे इस प्रकार से कर लेने का होगा।

संस्कृत भाषा में पदान्त हलन्त शब्दों का भी प्रयोग होता है, इसके लिये पाई वाला व्यंजन भी हल् चिह्नवाले चाहिये ; इससे तो दूसरे २३ बिम्ब बढ़ जायँ इस आपत्ति का निवारण हल्-चिह्नवाली पाई स्वतन्त्र ही बना ली जाय और आधे व्यंजनों की दाहिनी ओर लगाई जाय।

आज के देवनागरी तीन वर्ण—'ख' 'ध' और 'भ' के विषय में इतना जरूरी है कि 'ध' और 'भ' में ऊपर की पांखड़ी में 'थ' जैसा शून्य का आकार किया जाय, जिससे उनकी 'घ' 'म' की साथ होती हुई भ्रान्ति दूर हो जाय। 'ख' में 'र+व' की भ्रान्ति है। वह दूर करने के लिये गुजराती आकार का उसको बना लिया जाय और बाईं ओर की पांखड़ी शून्यवाली कर ली जाय।

आकार की दृष्टि से मराठी घाट के 'अ क झ ण फ ल' और जैनी देवनागरी के गुजराती प्रकार के 'श' का समादर किया जाय।

बिना पाई के व्यंजन के बाद जब संयुक्तता में 'य' आता है तब पांखड़ी वाला 'च' लिखा-छापा जाता है। यह आवश्यक लगता है । गुजराती-मराठी आदि एवं द्रविड़ी कुल की भाषाओं के लिये जिह्वामूलीय 'ळ' की तो अनिवार्यता है ही।

संयुक्त व्यंजनों में 'क्ष' की अब कोई जरूरत नहीं ; वह तो 'क्ष' ही सिद्ध है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने इसका ही व्यापक प्रचार किया है ; आसानी भी है। 'ज्ञ' का तो उच्चारण ही नष्ट हो गया है ; तत्सम शब्दों के लिये ही उसको रखा जाय, जिनको 'श्र' का आग्रह हो वे 'श्र' को भी रख सकते हैं। .

यों च 'ळ' 'ज्ञ' 'श्र' साथ पूर्ण वर्णों की व्यंजन संख्या ३७, बिना पाई के

"ङ छ ट ठ ड ढ द र ह्" व्यंजनों के हल् चिह्नवाले स्वरूपों की ९, "क फ ल ळ" के आधे आकार 'क़ प ल़" ये ४, पाई वाले व्यंजनों के पाई-रहित आधे स्वरूपों की २३, हल् चिह्नवाली पाई और (१) (२) (३) में बताई हुई १९ की संख्या, ये सब मिलकर संख्या ९१ की होगी।

हिन्दी में अनादि "ड़-ढ़" के अर्धतालव्य उच्चारण के लिये नीचे नुकता लगाया जाता है; ग्रामीणों में 'स' का अघोष कण्ठ्य उच्चारण है और उर्दू, सिन्धी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के कितनेक कुछ उच्चारण भी आये हैं जो कि समान व्यंजन के नीचे नुकता से बताये जाते हैं। '-अ क ख ग ज ड ढ स" ये आठ पूर्ण स्वरूप और 'अ' सिवाय के, संयुक्त व्यंजनों के आदि में आनेवाले यथापेक्ष हलन्त-चिह्नवाले या अर्ध स्वरूप ये १५ होंगे।

" १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०" ये १० अंक देवनागरी के या व्यापक उपयोग के लिये एरेबिक "1 2 3 4 5 6 7 8 9 0"।

इसी प्रकार मात्र ११५ बिम्बों से भारत की प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी भाषाओं का लेखन-मुद्रण आसानी से कम खर्च में सिद्ध हो सकेगा।

विराम चिह्नादिक पुरानी रसम के ही रहेंगे, जैसे कि नीचे के १० । . , ; ? ! ' — – – –

इन सिवाय दूसरे आवश्यक चिह्न २२—

° (डिग्री), ′ (स्ट्रोक या इन्च के लिये), = + × ÷ · (दशांश),

7 ∟ ∠ ॥ · / % ★ ({ [, ऽ (अवग्रह), और वैदिक स्वरों के लिये नीचे की रेखा—और ऊपर की खड़ी रेखा आवश्यक हो इनके लिये ॐ।

यों सब मिलकर ९२ + १५ + १० + ११ × १२ = १४९ बिम्बों (types) से हमारा सब कार्य सिद्ध हो सकेगा। कहाँ ६०० से भी अधिक संख्या और कहाँ यह १४९ की संख्या !

मोनो-लिनो-टाइप यन्त्रों में ये १४९ और 'स्पेइस' की १ रखने से १५० कुंजियों से काम संपूर्ण सिद्ध होगा। अब प्रश्न रहता है टाइपराइटरों एवं टेलिप्रिन्टरों का। टाइप-राइटरों में ४६ कुंजियाँ हैं। उनमें मात्र १२ संकेत

एवं चिह्न आ सकते हैं। केन्द्र सरकार की ओर से टाइप-राइटरों का देवनागरी कुंजी-पटल (Key board) सूचित किया गया है। उसकी योजना को रखते हुए मैं यहाँ एक कुंजी-पटल सूचित करता हूँ।

(१) स्वरों में मात्र 'अ' रखा जाय और १३ चिह्न रहे, जिसमें 'अ' की एवं व्यंजनों की 'बाराखड़ी' बने, यों १४ संकेत-चिह्न।

(२) विराम चिह्नों में से। . , ? ये ४, उपरांत " दोनों ओर उक्ति के लिए, ये ५।

(३) अन्य चिह्नों में ° (डिग्री),' (स्ट्रोक), — (डेश), = × / % * ये ८।

(४) कौंस के (और) २।

(५) १ से ९ और ०, ये १०।

(६) व्यंजनों में हल् चिन्हों एवं नुकतावले व्यंजनों की संख्या कुंजियों में से बचाने के लिए हल्-चिन्ह का १ और नुकता का १, ये २।

(७) वर्ण के नीचे करने लिए — (डेश) का १।

यहाँ तक १४+५+८+२+१०+३+१=४३ चिन्ह आ जाते हैं। अब बाकी रहे ५० चिह्न।

(८) व्यंजनों में 'क च ज त न प फ ब म य ल व स' और 'ळ' इनके पूर्ण एवं संयुक्त व्यंजनों में आदि स्थान के लिए अपूर्ण, यों २८ ;

'ङ छ ट ठ ड ढ द र ह' ये ९ ;

पांखड़िया 'च' यह १ ;

बाकी रहे हुए 'ख ग घ झ ञ ण थ ध भ श ष ज्ञ' इनके मात्र पाई-रहित स्वरूप १२, जो कि 'ा' मदद से पूर्ण किये जायेंगे।

यों ५० बन रहते हैं।

ये १० चिह्न इस प्रकार के यों पसन्द किये हैं, जिनकी मदद से संस्कृत भाषा एवं अर्वाचीन भारतीय सब भाषाओं को टाइप-राइटरों से अंकित किया जा सके।

टाइप-राइटर यन्त्र की नई आयोजना में केन्द्र सरकार के कुंजी-पटल में कई मृत कुंजियाँ हैं, तो कितनीक अर्द्ध-गतिक हैं। ऊपर की योजना में अब मात्र नुकता और हल् चिह्नवाली कुंजी ही मृत अपेक्षित है। अर्द्ध व्यंजनों, स्वरों की बरडियों, विराम चिह्नों की कुंजियाँ अर्द्ध-गतिक हैं। ये सब यथास्थान ऊपर-नीचे अर्द्धवर्तुल से बनाई हैं।

बाकी की कुंजियाँ पूरे नाप की हैं।

टेलीप्रिन्टरों में इनमें भी यथावकाश कुंजियाँ कम हो सकेंगी। पोर्टेबल टाइपराइटर में ८४ चिह्नों से काम लिया जाता है। इसके लिए × = ? (०%') इन ८ चिह्नों को कम कर दिया जाये ; चालू काम में कोई बाधा नहीं आयेगी।

जिनको शिरोरेखा-रहित यन्त्र चाहिए वे ऊपर की योजनाओं से ही अपना कार्य सिद्ध कर सकेंगे।

७ : हिन्दी का टंकन यन्त्र

'की-बोर्ड को अन्तिम रूप दे दिया गया

देवनागरी के अंकों को भी स्थान मिला

[हिन्दी के टंकन यंत्र के सम्बन्ध में प्रस्तुत लेख 'राजभाषा', वर्ष २, अंक ११, नई दिल्ली, २२ मार्च १९५७ के पृष्ठ १-२ से संकलित किया गया है ।]

स्टेण्डर्ड की बोर्ड

हिन्दी की टाइप मशीन और दूर-मुद्रक यंत्र का स्टैंडर्ड 'की बोर्ड' तैयार करने के लिए भारत सरकार ने एक विशेष समिति नियुक्त की थी । उसने एक की बोर्ड को अंतिम रूप दे दिया है ।

इस समय हिन्दी टाइप की मशीनों के की-बोर्ड एक दूसरे से नहीं मिलते । इसका परिणाम यह होता है कि एक मशीन पर टाइप करने वाला व्यक्ति दूसरी पर काम नहीं कर सकता । इस कठिनाई को दूर करने के लिए एकसा 'की बोर्ड' बनाना बहुत जरूरी था ।

इस विशेष समिति ने भाषा और यांत्रिक सुविधा, दोनों की दृष्टि से की बोर्ड बनाने के बारे में विचार किया । समिति ने व्यावहारिक परीक्षण और गहरी छानबीन करके यह देखा कि रोजमर्रा के काम में किस अक्षर का कितना योग होता है । इस बात की भी जाँच की गई कि किस अंगुली से कौन सी कल दबाने में आसानी होती है ।

इन सब बातों की पूरी-पूरी जाँच कर लेने के बाद समिति ने यह की बोर्ड तैयार किया है । इसके तैयार करने में इस बात पर सबसे अधिक ध्यान दिया गया है कि सबसे अधिक प्रयोग में आने बाले अक्षर ऐसी कल पर रखे जायें जिनको दबाना सबसे आसान हो और जो ऐसी ही अंगुली के नीचे आयें, जिसके चलाने में शारीरिक सुबिधा अधिक रहती है ।

मुख्य-मुख्य विशेषताएँ

समिति ने इस बात का बहुत ख्याल रहा है कि ऐसे ही अक्षरों को एक कल में ऊपर-नीचे रखा जाया, जो हिंदी में प्रायः एक साथ नहीं आते । उदाहरणार्थ 'ख' और 'ह', ए' और 'ठ', 'उ' और 'ट', 'र' और 'ज्ञ' और 'छ' और 'ढ' एक साथ नहीं आते । इसलिए टाइप करनेवाले को इन अक्षरों के एक ही कल में आने से कोई कठिनाई नहीं होगी ।

हिंदी से मात्राओं का स्थान पूरे अक्षर के बराबर ही होता है । इन्हें कलों के नीचे के भाग में ही रखा गया है, ताकि मात्राएँ लगाते समय कल न बदलनी पड़ें । केवल 'ऋ' की मात्रा को ऐसा स्थान नहीं दिया गया है, क्योंकि यह मात्रा बहुत कम प्रयोग में आती है ।

अक्षरों और चिन्हों का रूप

इस की-बोर्ड में अक्षरों और चिन्हों आदि का रूप वही रखा गया है, जिसकी देवनागरी लिपि के बारे में लखनऊ सम्मेलन ने सिफारिश की थी और जिसे भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया है । सरकार की अनुमति से 'इ' की मात्रा और उल्टे 'अर्ध-विराम' (कोमा) की शक्ल में थोड़ा सा परिवर्तन किया गया है । लखनऊ सम्मेलन ने 'अर्ध-चन्द्र' और 'ऋ' की मात्रा को उड़ा दिया था, लेकिन इस की-बोर्ड में इन दोनों को भी रख लिया गया है ।

यांत्रिक दृष्टि से इस की-बोर्ड की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें ऐसी भी कलें हैं, जिनके दबाने से मशीन केवल आधे अक्षर के बराबर आगे बढ़ती है यह चीज केवल हिंदी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं की टाइप-मशीनों के लिए भी आवश्यक थी, क्योंकि भारतीय भाषाओं में मात्रायें और संयुक्ताक्षर काफी होते हैं । इस व्यवस्था से संयुक्ताक्षरों का रूप सुन्दर बना रहेगा ।

स्थिर कलों (जिनके दबाने से मशीन आगे नहीं बढ़ती) में अक्षर न रख कर मात्रायें आदि ही रखी गयी हैं । इससे टाइप तेजी से हो सकेगा ।

इस की-बोर्ड की एक और विशेषता यह है कि इसमें अंग्रेजी और देवनागरी दोनों प्रकार की संख्यायें दी गई हैं । इसके लिए सबसे ऊपर की पंक्ति

में एक तीसरा कल-बदल रखा गया है। ऐसा करने के कुछ और तरीके भी हो सकते थे, जिनके बारे में समिति ने काफी विचार-विमर्श किया और अपना प्रतिवेदन सरकार को दे दिया है।

समिति ने मशीन निर्माताओं को सब विकल्प बता दिये हैं और वे, चाहे जिस ढंग से, एक ही मशीन में देवनागरी और अंग्रेजी संख्याओं को रखने की व्यवस्था कर सकते हैं।

समिति ने दिसम्बर, १९५५ में एक अस्थायी की-बोर्ड प्रकाशित किया था और इसके बारे में राय माँगी थी। समिति के पास जो सुझाव आये, उनके आधार पर उस की-बोर्ड में कुछ परिवर्तन किये गये। कुछ सुझाव समिति को बहुत उपयोगी जँचे।

हिन्दी टंकन यंत्र में सुधार की परम्परा

हिन्दी के टाइपराइटरों के लिए स्टेण्डर्ड की बोर्ड बनाने का प्रश्न स्वतन्त्रता प्राप्ति के फौरन बाद उठाया गया। इसके लिये भारत की संविधान सभा ने १९४८ में काका साहेब कालेलकर की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की, जिसने १९४९ में अपना प्रतिवेदन दे दिया था।

फिर, १९५५ के आरम्भ में, नवम्बर १९५३ में हुए देवनागरी लिपि सुधार सम्बन्धी लखनऊ सम्मेलन की सिफारिश पर केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने जो निर्णय किया, उसके अनुसार शिक्षा मन्त्रालय ने एक समिति नियुक्त की। इसमें डाक तथा तार विभाग, मुद्रण तथा कागज-पत्र नियंत्रक के कार्यालय और शिक्षा मंत्रालय का एक-एक प्रतिनिधि रखा गया, जिन्हें हिन्दी टाइपराइटर और टेलीप्रिंटर के लिये स्टेण्डर्ड की बोर्ड के बारे में अन्तिम निर्णय करना था।

फलतः शिक्षा मंत्रालय ने फरवरी १९५५ में एक विशेष समिति नियुक्त की, जिसके सदस्य इस प्रकार थे—श्री एस० एम० अग्रवाल, टेलीफोन निर्देशक, डाक तथा तार महानिदेशालय भारत सरकार, नई दिल्ली, श्री ए० सी० सेन, नियंत्रक मुद्रण तथा कागज-पत्र, निर्माण आवास तथा पूर्ति मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, और डॉ० यदुवंशी, विशेष अधिकारी (हिन्दी), शिक्षा-मंत्रालय, नई दिल्ली।

समिति का कार्य

समिति ने ४ मार्च १९५५ से अपना कार्य शुरू किया। अनेक बैठकें हुईं और लखनऊ सम्मेलन में देवनागरी लिपि सम्बन्धी जो निर्णय हुए थे, उनके तथा अन्य बातों के बारे में विस्तृत जाँच की गई। साथ ही इसकी भी जाँच की गई कि टाइपराइटर के की-बोर्ड में इन अक्षरों को किस प्रकार शामिल किया जाये और की-बोर्ड में इनका कहाँ-कहाँ पर स्थान रहे। समिति ने जिन अन्य बातों की जाँच की, वे इस प्रकार हैं—

'की-बोर्ड' में अधिक से अधिक कितने कल लगाये जा सकते हैं, कौन से अक्षर ज्यादा काम आते हैं और इसलिए उनका स्थान क्या रखा जाये ताकि टाइप करने में आसानी हो, आदि।

इस विषय से सम्बन्धित समस्त साहित्य और मुख्यतः हिन्दुस्तानी शार्टहैण्ड एण्ड हिन्दी टाइपरायटर स्टेण्डर्डाइजेशन कमेटी, १९४९ (जिसके अध्यक्ष काकासाहेब कालेलकर थे) के प्रतिवेदन का समिति ने गहन अध्ययन किया।

इस समय हिन्दी के जितने भी किस्म के टाइपराइटर हैं, उन सबकी जाँच की गई। जिन लोगों ने इस विषय पर अध्ययन किया है, उनके प्रतिवेदनों और टाइपराइटर बनानेवाले कुछ कारखानों ने अपने टाइपराइटरों की विशेषता के बारे में स्वेच्छा से जो प्रतिवेदन भेजे, उन सबका भी अध्ययन किया गया।

इसके अलावा समिति ने इस बारे में भी अनेक प्रयोग कराये कि कौन से अक्षर ज्यादा प्रयोग में आते हैं और उनका परस्पर क्या सम्बन्ध रहता है। समिति ने अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं के टाइपराइटरों के अक्षर क्रम के सिद्धान्तों का भी अध्ययन किया।

इस सब अध्ययन और जाँच के बाद समिति ने जो निर्णय किये उन्हीं के आधार पर हिन्दी टाइपराइटर के लिये यह की-बोर्ड तैयार किया गया है।

समिति ने व्यक्तिगत रूप से स्वराष्ट्रमंत्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्त से भी विचार-विमर्श किया। देवनागरी लिपि सुधार के लखनऊ सम्मेलन में श्री पन्त का काफी हाथ रहा है। काका साहेब कालेलकर ने भी समिति को अनेक सुझाव तथा सलाह दी।

की-बोर्ड तैयार करते समय टाइप करने में आसानी, अधिक तेजी और शुद्धि—यही सिद्धान्त समिति के सम्मुख रहे और आशा है कि यह की-बोर्ड इन सभी आवश्यकताओं की दृष्टि से पूरा उतरेगा।

[संसार की सबसे प्राचीन लिपि देवनागरी ने, जिसने अपने विशाल स्वरूप और जटिल गुणों के कारण मुद्रण-अक्षरों के व्यवस्थापकों को चुनौती दे रखी है, अमेरिकन संस्था में कार्य करने वाले एक भारतीय द्वारा विकसित आधुनिक छाया-चित्रण पद्धति से एक नया मोड़ लिया है। देवनागरी-मुद्रण के लिये अधिकतर प्रयुक्त लिनो अथवा मोनो मशीन में पिघले हुए शीशे के मुद्रण-अक्षर काम में आते हैं, किन्तु छाया-लेखन में धातु का स्थान फिल्म ले लेती है। छापे का सीधा-प्रभाव फिल्म पर ले लिया जाता है, जो छपाई की किसी भी विधि में प्लेट बनाने के लिये उपयुक्त होता है। छायालेखक में मुद्रण-अक्षरों को जमाने में कोई भी धातु का उपयोग न होने के कारण ध्वनि-चिन्ह अपने आप अक्षरों पर चिन्हित किये जा सकते हैं।

लिनो की भाँति छाया-लेखक के लिए धातुनिर्मित विभिन्न आकार के अक्षरों की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि विभिन्न आकार के अक्षर दर्पण की सहायता से छोटे-बड़े किये जा सकते हैं। रोमन और देवनागरी दोनों के समन्वित टंकन-अक्षरों से युक्त संयोजन मशीन होने के कारण छायालेखन यंत्र द्विभाषी पाठ्य-ग्रन्थों और हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोशों के लिए आदर्श यंत्र की भाँति उपयोग में लाया जा सकता है। छायालेखन की यह अधुनातन पद्धति, फिल्म द्वारा देवनागरी अक्षरों के विभिन्न आकारों को छपाई की किसी भी निधि के लिए सीधे तैयार करती है।

यह निबन्ध बुधवार, दिनांक ९ जून सन् १९५५ को नई दिल्ली से अंग्रेजी में प्रकाशित-अमेरिकन रिपोर्टर के 'देवनागरी स्क्रिप्ट कैन बी फोटो सेट' लेख (पृष्ठ-क्रमांक १ और ८) के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।]

छायालेखन में देवनागरी मुद्रण की सुगमता

देवनागरी लिपि ४,००० वर्ष पुरानी संस्कृत भाषा की सीधी उत्तराधिका-

रिणी है। भारतवर्ष में छायालेखन यन्त्र पद्धति मुद्रण के क्षेत्र में क्रान्ति कर सकती है और कम कीमत में लाखों लोगों के लिये जन-साहित्य-उत्पादन बढ़ा सकती है। नवीन अअन्तर्मुद्रण यंत्र, जो छाया-लेखक कहलाता है, 'की-बोर्ड' पर अवस्थित देवनागरी अक्षरों को छाया चित्रण-पद्धति द्वारा आसानी से फिल्म पर अंकित कर सकता है, और इसके फलस्वरूप हमें धातु के अक्षर की आवश्यकता नहीं पड़ती।

छायालेखक यंत्र के आविष्कार की पृष्ठभूमि

बीकानेर (राजस्थान) निवासी मुद्रण आलेख विशेषज्ञ श्री हरि जी० गोविल लगभग ३५ वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका में इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने के लिये गये थे। 'इन्टर टाइप कार्पोरेशन ऑफ ब्रूकलिन, न्यूयार्क' ने उनके सहयोग से इस नये यन्त्र को तैयार किया। श्री गोविल ने भाषाओं की सक्षम और कार्यान्वित होने योग्य मुद्रण-पद्धतियों की खोज के लिए ३० से भी अधिक वर्ष बिताये।

छायालेखक यंत्र की कार्य पद्धति

छायालिखित देवनागरी के स्वरूप-निर्धारण में अंक और विराम चिन्हों सहित छायाक्षरों में मूल टंकन अक्षरों की संख्या १७५ तक कम की जाना संभव हो सका है। जिस फिल्म पर छायाक्षर मुद्रित होते हैं, उसकी गति को व्यवस्थित कर मूल अक्षरों में मात्रायें लगाई जाती हैं। यह कार्य 'पीछे हटाकर जगह करना' बैक स्पेसिंग यांत्रिक विधि द्वारा अपने आप किया जाता है। इसका परिणाम ठीक उसी प्रकार होता है, जैसे टंकलेखक में कुछ मात्राओं वाली 'की' निष्क्रिय होती हैं और उन्हें दबाने पर टंकलेखक का 'रोलर' नहीं सरकता।

दर्पणों की व्यवस्था, ६ प्वाइन्ट से ३६ प्वाइन्ट तक के किसी भी वांछित आकार के अक्षरों को निर्माण कर सकती है, तथा और भी बड़े आकार के अक्षर छायाचित्रण पद्धति से विकसित कर प्राप्त किये जा सकते हैं।

देवनागरी अक्षरों के मुद्रण की प्रचलित सामान्य पद्धति की अपेक्षा छाया-क्षर चित्रण-पद्धति से छायालेखन में सबसे महत्वपूर्ण लाभ टंकन अक्षरों के

आकार की असीम श्रेणियाँ हैं। मुद्रण अक्षर पास-पास जमाकर टंकित किये जाने वाले पाठ्य-ग्रन्थ, समाचार पत्र, यांत्रिक आँकड़े, वैज्ञानिक रिपोर्टें तथा अन्य सामग्री जिसमें बहुत से मुद्रण अक्षरों को थोड़ी सी जगह में जमाया जाता है, छायालेखक में, वांछित आकार में आसानी से व्यवस्थित किया जाता है। छाया-चित्रण-विकसन द्वारा शीर्षक की पंक्तियाँ, पोस्टर और नक्शे भी बनाये जा सकते हैं।

द्विभाषी मुद्रण

चूँकि छाया लेखक एक संयोजक यंत्र है, वह ऐसे कार्यों के लिये, जैसे हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश, द्विभाषी पाठ्य पुस्तकें अथवा अनुवाद, जहाँ हिन्दी के साथ-साथ दूसरी भाषा को भी एक ही पंक्ति में मिलाना हो, आदर्श रूप से उपयोग में आ सकता है। उदाहरण के लिये श्री मद्भगवद्गीता के अंग्रेजी अनुवाद में निम्नलिखित संस्कृत श्लोक अंग्रेजी अनुवाद-सहित पवित्र-ग्रन्थ में इस प्रकार दिखाई देगा—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थ द्वेष्य बन्धुषु,
साधुष्वपि च पापेषु, समबुद्धिर्विशिष्यते।

He who regards impartially lovers, friends and foes, strangers, neutrals, foreigners and relative, also the rignteous and unrighteous, he excelleth.

छायालेखक की मुद्रण विषयक उपादेयता

भारतीय मुद्रकों के लिये भी छायालेखक का 'द सर्कुलेटिंग मेट्रिक्स प्रिंसिपल' कार्य करता है। साधारण छापेखाने में, जहाँ हाथ से छपाई का काम होता है, कम से कम १,००० मूल मुद्रण अक्षरों की आवश्यकता होती है और ऐसी स्थिति में मुद्रण अक्षरों की उचित पूर्ति की व्यवस्था बनाये रखना बहुत कठिन हो जाता है। विशेषकर ऐसे कार्यों में, जहाँ पुनर्मुद्रण आवश्यक है, छापे के ऐसे फार्मों को बनाये रखना, जिनके लिये बहुत अधिक जगह और अत्यधिक मात्रा में मुद्रण-अक्षरों की जरूरत पड़ती है, मुद्रक के लिये दुष्कर ही नहीं, असम्भव हो जाता है। प्रायः मुद्रक के आठ पृष्ठों के प्रचार-पत्र या फार्म को

कम्पोजिंग-प्रिंटिंग के बाद खोलकर टाइप बिखेरना पड़ता है, किन्तु छायालेखक 'की बोर्ड' द्वारा मुद्रण-अक्षरों की धारावाहिक पूर्ति करता है।

अंग्रेजी में मुद्रण के लिये लगभग १०० मुद्रण अक्षरों की आवश्यकता होती है। उनकी तुलना में देवनागरी लिपि के लिये हमेशा ७५० से १,००० मूल मुद्रण अक्षरों की आवश्यकता पड़ती है। इतने अधिक मुद्रण अक्षरों का निर्माण भी बहुत महँगा पड़ता है, किन्तु नये अन्तर्टंकन यंत्र में देवनागरी लिपि के मूल मुद्रण अक्षरों की संख्या १७५ तक कम कर दी गई है।

छायालेखन की अन्तर्राष्ट्रीय देन

जनव्यापी निरक्षरता से संघर्ष करने के लिये भारतवर्ष में छायालेखक की सर्वोत्तम उपादेयता यह है कि हम छायालेखक द्वारा ऐसी कम कीमती अध्ययन सामग्री का, जिसे साधारण आय वाला व्यक्ति भी खरीद सकता है, बड़ी मात्रा में उत्पादन कर सकते हैं।

आने वाले वर्षों में, छायालेखन पद्धति में, बंगाली, गुजराती, गुरुमुखी, आसामी, उड़िया, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ आदि भारतीय भाषायें, जो देवनागरी पर आधारित हैं, अथवा जिनका संस्कृत से निकटतम सम्बन्ध है, समन्वित की जा सकती हैं। अरबी, फारसी, उर्दू, सिंघाइली, बर्मी, कम्बोडियन, जावानीज़, चीनी, कोरियन और जापानी लिपियाँ भी नई पद्धति के लिये ग्राह्य हैं। इस प्रकार पश्चिम द्वारा अनुसंधानित नई पद्धति (छायालेखन) से सुदूर पूर्व की प्राचीन भाषायें एक नया मोड़ पायेंगी।

---

९ : हिन्दीतर भाषाओं का देवनागरी में मुद्रण[१]

देश के गण्यमान्य विद्वानों ने, पूज्य बापू ने तथा राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद—जैसे राष्ट्रपुरुषों ने बड़ी ही विनम्रता के साथ भारतीय साहित्य की हितचिंता करते हुए भारतीय भाषाओं को देवनागरी लिपि में लिखने का परामर्श दिया है। पूज्य बापू ने अपनी आत्मकथा गुजराती भाषा और देवनागरी लिपि में छपवाई थी। बम्बई युनिवर्सिटी द्वारा संयोजित ठक्कर वसनजी माधवजी व्याख्यानमाला के कुछ व्याख्यान भी गुजराती भाषा और देवनागरी लिपि में छापे गए हैं। गुजरात के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान पं० बेचरदासजी द्वारा इस व्याख्यानमाला के अन्तर्गत दिए गए व्याख्यान 'गुजराती भाषानी क्रान्ति' के नाम से देवनागरी में पूरे ६०२ पृष्ठों का ग्रन्थ छपवाया गया है। अभी-अभी स्व० श्री रामनारायण भाई पाठक द्वारा रचित 'बृहत् पिंगल' नामक अपूर्व ग्रंथ गुजराती साहित्य परिषद द्वारा देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुआ है। इसी प्रकार गुजराती के गण्यमान्य विद्वान अपने अखिल भारतीय स्तर के ग्रन्थों को देवनागरी लिपि में छपवाया करें, तो भारतीय साहित्य की समृद्धि में काफी वृद्धि होगी। बंगला भाषा के विद्वानों से भी यही अभ्यर्थना है कि वे भी देवनागरी लिपि को अपनाने की ओर अग्रसर हों।

---

[१]गुजरातप्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद की त्रैमासिक पत्रिका "राष्ट्रवीणा", वर्ष ७, अंक ३, जुलाई १९५७ के पृष्ठ क्रमांक १८८ पर सम्पादक श्री जेठालाल जी जोशी द्वारा लिखित सम्पादकीय से।

१० : लिपि के अनुकूल यंत्र बनाओ

टेलीप्रिन्टर, टाइपराइटर या मोनो या लीथो मशीनों की रचना रोमन लिपि के २६ वर्णों को ध्यान में रखकर की गई है। उन्होंने अपनी लिपि को और सरल तो नहीं बनाया। 'क्यू' की क्या आवश्यकता है ? क्यू बिना 'यू' के लिखा ही नहीं जाता, इनका काम 'के डब्ल्यू' को मिला कर चलाया जा सकता है। इसी तरह 'सी, के' और 'एस' को लेकर एक वर्ण को कम करने का निर्णय लिया जा सकता है, रोमन वालों ने यह नहीं किया। रोमन लिपि की यंत्र-योजना में देवनागरी को बैठाने का यत्न अनुचित और हानि कारक है। यदि विदेश या जहाँ भी इस तरह के यंत्र बनते हों, एक विशाल पैमाने पर यंत्र बनाने के आदेश भेजे जावें तो कोई कारण नहीं कि नागरी के लिए उपयुक्त यंत्र उपलब्ध न हों।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, वर्धा अधिवेशन, ३० दिसम्बर, १९५५ में माननीय रविशंकर जी शुक्ल का अध्यक्षीय भाषण।

११ : देवनागरी का यान्त्रिक विधान : एक सुझाव

[विद्याशास्त्रनिपुण गवेषतिलक एल० ए० रवि वर्मा एम०.बी० सी० एम०, डी० ओ० एम० एस० (लंदन) ने भारत के राष्ट्रपति और संस्कृत आयोग के समक्ष जो देवनागरी टंकन यंत्र तथा अन्य आधुनिक यंत्रों के सम्बन्ध में सुझाव दिये थे, वे यहाँ अविकल प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इनमें से पहला चार्ट मोनो मशीन, दूसरा चार्ट टंकन यंत्र और तीसरा चार्ट टेलीप्रिंटर के लिए है।

देवनागरी की यांत्रिक समस्याओं को सुलझाने की दृष्टि से वर्मा जी की सेवाएँ अमूल्य हैं। उन्होंने अपनी शोध सामग्री विशेष रूप से इसी ग्रंथ के लिये प्रदान की है।]

Table 1

(For loose-type printing and mono etc. machines)

No.	letter	signs	Remarks

No.	Letter	Sign
1	अ	
2		ा
3	इ	ि
4		ी
5	उ	ु
6		ू
7		ृ
8	ऋ *	ॄ
9		[illegible] *
10	ऌ	
11	ए	े
12	ऍ	ॆ
13	ऐ	ै
14		ो
15		ॊ
16		ौ
17		ः *
18	क	[illegible]
19	च	[illegible]

Dirgha sign for use with all vowels & consonants.

e. g. आ, का, उा (=ऊ) ऋा (=ॠ).

To join consonants from the left; hence right end to be without shoulder or bevel.

The rest of the vowel signs with the exception of 17 to join from the right and hence no bevel or shoulder on their left. No. 17 should fall near its left letter.

Special sign for Samvrta-U-kara of Malayalam.

Anusvnram is omitted ; it is to he replaced by 'ardha-ksara' of 'ma.' e. g. कम् (=कं)

Short 'e' of Dravidian languages.

" 'o' , "

Rare use except in Sanskrit.

No consonant compounds with elemets above or below letters ; all to fall on the same line for which purpose vowel free consonant signs are provided.

No.	Letter	Symbol	Remarks
20	ट		Gingivial 't' of Dravidian languages ; sound of 't' in 'state.'
21	ट़		
22	त		
23	प		
24	ख		
25	छ	*	Rare use.
26	ठ	*	"
27	य		
28	फ	*	
29	ग		
30	ज		
31	ड		
32	द		
33	ब		
34	घ		
35	झ	*	"
36	ढ	*	"
37	ध		
38	भ		

39	ङ	ङ	
40	ञ	ञ	
41	ण	ण	
42	न	न	
43	ऩ	ऩ	Gingivial 'n' of Dravidian languages.
44		न्	,, Ardhaksara.
45	म	म	
46		म्	This ardhaksara to be substituted for Anusvara.
47	य	य	
48	र	र	
49	ऱ	ऱ	ङ्क (=कँ) ग्र (=ग्र) etc.
50	ल	ल	Hard 'r' of Dravidian languages.
51		ळ	
52	व	व	
53	श	श	
54	ष	ष	
55	स	स	
56	ह	ह	
57	ळ	ळ	

No.			
58	[illegible]	[illegible]	Special 'zh' sound of Dravidian languages.
59	क्ष	क्ष	
60	ज्ञ	ज्ञ	
61	श्री		
62		् *	To make vowel free consonants at end of words ; required only in Sanskri, and even that rare.
63		ऽ *	'Pra'slesa' sign for Sanskrit only.

Notes on Table I.

1. For loose-type printing all the characters given in the table are to be used. It is possible to get correct reading without any chance of mis-reading by substi-tuting ardhaksara of 'ma' for anusvara and it is so contemplated here.

2. A few of the consonant combinations will look different from the form now in vogue, there will however be no confusion at all or difficulty in reading the new forms. The new forms are confined to those letters whose vertical limbs are 'central.'

3. The asterisk marked ones are of very, very rare use and hence in machines like the mono type they be put in the extra case and not in the magazine proper. There are no signs to fall above or below any letter which constitute the greatest single trouble of the Devanagari as well as other regional language scripts of India. Machines of the mono type etc. can easily accomodate 120 symbols in their magazines and the table gives less than that number including figures, punctuation marks and essential 'spaces' etc.

4. There is only one new symbol (for Dravidian) all the rest being current Nagari symbols, 3 with diacritical additions to meet the needs of Dravidian languages.

Table II

Type-writes characters

to meet the needs of all Indian regional languages

	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
a	अ	इं	उ	ऊ	ॠ	ऌ	ए	ः	(	)	ऽ
b	ा	ि	ी	ो	ौ	य	स	१	७	,	/
c	क	च	ट	त	प	र	ह	२	८	.	_
d	ख	छ	ठ	थ	फ	ल	ळ	३	९	;	–
e	ग	ज	ड	द	ब	व	क्ष	४	0	"	=
f	घ	झ	ढ	ध	भ	श	ज्ञ	५	च	?	+
g	ङ	ञ	ण	न	म	ष	ॐ	६	*	!	.
h	ृ	्	ु	ू	ँ	ं	/	~	[illegible]	[illegible]	[illegible]

Notes

The characters are not arranged key-board-wise ; that can be done when required. As the various languages differ in frequencies of letters it may be very difficult to ensure epual facility for all the languages. I know only the frequencies of Dravidian languages and Sanskrit. 1 presume that the North Indian languages being derivatives of Sanskrit will be more or less like Sanskait in frequency factor. Anyhow key-board arrangement can be attended to in due course.

The plate is self-explanatory except for some of the characters the use of which are given below.

1. (a. 11) is the 'Pras'lesa' sign for Sanskrit.
2. (g. 11) is a dead-key ; the dot is to fall below certain consonants as diacritical marks to represent the sounds of (ऩ, ऱ, ट़) of Tamil and Malayalam.
3. (h. 1, 2, 3, 4, 9 and 10) are also dead-keys and are to represent vowel signs in combinations (h. 1 to 4 are to fall below letters and h. 9 and 10 to fall above letters to make 'u', 'u', 'r', 'r', and 'd' & 'ai' as कु, गू, कृ, नॄ, के, तै, & Malayalam कुँ & c.
4. (h. 5) is a breve to represent 'e' & 'o' of Dravidian languages and to represent the Samvrta U-kara of Malayalam. It is to fall above the 'e' & 'o' letters and signs and over short 'u' signs as required.

5. (h. 6), also a dead-key to make anusvara sign. It is to fall above a letter. This has to be carefully aligned as it has to fall to the right of the curls of (b. 3, 4, 5 and h. 9, 10 and 11) besides over all consonants and vowels. as कं, किं, कँ etc.
6. (h,7), dead-key to represent a succeeding 'r' and should fall as in प्र.
7. (h. 8), a dead-key to fall below consonant forms to make then vowel free. e.g. क्.
8. (h. 11), Dead-key to represent a preceeding 'r' and is to fall at the right hand corner above as र्क. This is also to be used to make ईं.
9. There are altogether 12 dead characters (6 dead-keys) which can be accomodated in any machine. The diacritical marks I have used in this letter are local made and fitted to a portable Royal typewriter. They work well and easily as the sample will show—

"Agnimile purohitam yajnasya devamrtvijam hotaram ratnadhatamam" etc.

All compound consonants are to be formed with the help of h. 8. This being a dead-key there will be no loss of space but one extra tap may be required. The typed matter will look like existing Nagari matter for all practical purposes, the slight difference being in respect of consonant combinations alone. It may be noted here that loose-type printing today uses such combinations frequently though not exclusively.

Table III

For Teleprinter in all Indian Languages.

	1	2	3	4	5	6	5	8	9	10	11	12	13
a	अ	ा	इ	उ	ऋ	ए	ऍ	ि	ी	ु	ू	ृ	ॅ
b	ॆ	ै	ो	ॉ	ौ	क	च	ट	त	प	ग	ज	ड
c	द	ब	ङ	थ	ण	न	म	य	र	ल	व	श	ष
d	स	ह	ह्	०	्	•	.	,	:	"	–	ळ	ज्ञ

Notes

As teleprinter matter is intended only for the use of specially trained personnel, even considerable changes in the forms of the letters are not of any great moment. As these machines take only 52 symbols including figures and punctuation marks great reduction in the number of Devanagari characters is imperative. These machines do not admit of dead-keys either.

Teleprinter work is carried on in the Indian languages through Roman script without diacritical marks. This causes some loss of accuracy and results in some

mis-reading even in expert hands. With the method now in existence a speed of over 80 words a minute is achieved by well trained hands. A much better speed can be achieved with the types envisaged here as the number of taps for most words will be shorter than when typed with Roman. This teleprinter will be very much quicker than telegraphy where every letter except two demands more than one tap.

1. (a. 1 to 13, b. 1 to 5 & d. 5). These signs should be so aligned as to cause the left tip of its harizontal limb to just touch the right tip of the letter to which it is to be related. All except d. 5 are to make vowel combinations as required ; e, 5 is to make a vowel-free consonant when required. The occasion for the use of this will be very few.

2. Long forms of 'i' and 'u' are to be made by adding a. 2 as is now done to make long 'a'. (इा = ई & उा = ऊ).

3. Atikharas and Ghosas are omitted ; they are to be made by adding the sign for 'h' (d. 3) to the respective Khara and Mrdu as required. Their appearence will be different from what they are now but will cause no confusion. (ख = कह, घ = गह etc.).

4. (d. 4) ie for anusvara and must be aligned to fall a little near to the preceeding letter which is to be affected. (क० = कं).

5. (d. 6) is a joining sign to show that the consonants are joined together as a combined letter (क, त = क्त, प्र = प, र, etc.).

6. Numbers are omitted ; for them, 'katapayadi' formula form 'ya' to 'la' and 'na' for cipher are to be used. This is a well known formula where ya = 1, ra = 2, la = 3, va = 4, sa = 5, s.a = 6, s.a = 7, ha = 8, l.a = 9 and na = 0. In Katapayadi the figures are to be read from right to left, here however it is to be read from left to right as that will be easier. To show that they symbols stand for numbers they may be preceded and followed by two hyphens thus : —1957 will appear sa– –कळशस– – –.

अध्याय—५

देवनागरी लिपि : सुधार और समीक्षा

१ : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की देवनागरी लिपि संबंधी मान्यताएँ

[हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की स्थापना १० अक्टूबर, १९१० को हुई। सम्मेलन का यह उद्देश्य रहा है कि, "देशव्यापी व्यवहारों और कार्यों को सुलभ करने के हेतु राष्ट्रलिपि देवनागरी और राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार बढ़ाने के प्रयत्न करना।"

राष्ट्रभाषा का नाम, लिपि, उसका स्वरूप आदि के सम्बन्ध में सम्मेलन ने समय-समय पर जो मान्यतायें स्थापित की हैं, उनमें से कुछ आवश्यक अंशों का चयन यहाँ किया गया है। राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के सम्बन्ध में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी और हिन्दी के प्राण तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सामर्थ्यवान दिग्गज कर्णधार राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन में जो तनातनी हुई थी, उसमें राजर्षि के मन्तव्य का समर्थन करते हुए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तैंतीसवें अधिवेशन (उदयपुर, संवत् २००२) में जो प्रस्ताव पारित किया गया था, उसका विवरण इस प्रकार है।]

राजर्षि टण्डन का राष्ट्रपिता के नाम पत्र

८ जून, १९४५ के पत्र में सम्मेलन की ओर से भी पुरुषोत्तमदास टंडन ने महात्मा गान्धी को ये वाक्य लिखे थे:—

"सम्मेलन हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानता है। उर्दू को वह हिन्दी की एक शैली मानता है, जो विशिष्ट जनों में प्रचलित है। स्वयं वह हिन्दी की साधा-

रण शैली का काम करता है, उर्दू शैली का नहीं।"

ये वाक्य सम्मेलन के सिद्धान्त और नीति के सर्वथा अनुकूल हैं और सम्मेलन उन्हें मत के प्रकाशनार्थ स्वीकार करता है।

राष्ट्रपिता की लिपि सम्बन्धी रीतिनीति का सतर्क विरोध

महात्मा गान्धी के इस मत से कि प्रत्येक देशवासी नागरी और फारसी दोनों लिपियाँ सीखे, सम्मेलन सहमत नहीं हो सकता। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सम्मेलन इस मत को नितान्त अव्यावहारिक और अग्राह्य समझता है। केवल नागरी लिपि में राष्ट्रलिपि होने की योग्यता है। उसमें बैज्ञानिक पूर्णता है। देश की बहुत बड़ी जन-संख्या ऐसी लिपियों का व्यवहार करती है, जो नागरी लिपि के समीप हैं और उनके लिए नागरी सीखना अति सुलभ है। यह मानी हुई बात है कि फारसी लिपि का आधार वैज्ञानिक नहीं है और सीखने में वह कष्ट-साध्य है। हमारे देश में साक्षरता की कमी है। अपनी प्रान्तीय लिपि के साथ दो अन्य लिपियाँ सीखना साधारण जनता के लिए सम्भव नहीं।

कोण सम्मेलन का राष्ट्रीय दृष्टिकोण

सम्मेलन की दृष्टि पूर्ण रूप से राष्ट्रीय है। देश की राष्ट्रीय आवश्यकताओं के साथ सम्मेलन चलता आया है और भाषा और लिपि के प्रश्न पर साम्प्रदायिक दृष्टि से विचार करना अनुचित समझता है। भाषा और लिपि का, राष्ट्रीय उत्थान और एकीकरण में बहुत बड़ा स्थान है। वास्तविकता को देखते हुए राष्ट्रभाषा और लिपि के विकास में सम्मेलन विचारयुक्त प्रगतियों का पोषक है।

[हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सैंतीसवें अधिवेशन, (हैदराबाद, दिसंबर, सन १९४७) में सम्मेलन की ओर से केन्द्रीय शासन की राष्ट्र लिपि देवनागरी के प्रति बरती गयी नीति का खुलेआम विरोध किया गया, और सम्मेलन ने जो सुझाव केन्द्रीय शासन की ओर विचार तथा प्रयोग के लिए प्रेषित किये थे, वे यहाँ दिये जाते हैं।]

भारतीय संविधान परिषद् के भाषा और लिपि सम्बन्धी दोष—

यह सम्मेलन भारतीय संविधान परिषद् के इस निर्णय पर कि देवनागरी

लिपि में लिखी हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा स्वीकार की जाय, सन्तोष प्रकट करता है और परिषद के सदस्यों को बधाई देता है। परन्तु खेद के साथ सम्मेलन को अपना यह सच्चा मत प्रकट करना पड़ता है कि अंग्रेजी भाषा के पुराने प्रभाव के कारण संविधान परिषद ने राष्ट्रभाषा के महत्वपूर्ण प्रश्न को सही दृष्टिविन्दु से नहीं देखा। अंग्रेजी भाषा को केन्द्रीय शासन तथा व्यवस्थापिका सभाओं और केन्द्रीय न्यायालय तथा प्रान्तीय हाईकोर्ट के कामों में कम से कम १५ वर्ष तक प्रभुत्व देना और केन्द्रीय कामों के लिये नागरी लिपि में अंग्रेजी अंकों का मिश्रण—ये दो संविधान में भाषा और लिपि सम्बंधी भारी दोष हैं।

सम्मेलन के सुझाव

जन-भावना की रक्षा तथा देश के भविष्य को ध्यान में रखकर सम्मेलत पूर्ण सद्भावना से केन्द्रीय गवर्नमेन्ट (शासन) को यह सुझाव देता है कि संविधान के अन्तर्गत जो अवसर पन्द्रह वर्ष के भीतर अंग्रेजी के साथ अथवा अंग्रेजी के स्थान पर, हिन्दी के प्रयोग तथा नागरी लिपि में, देवनागरी अंकों के प्रयोग के सम्भव है, उनका वह पूरा उपयोग करे और हिन्दी भाषा तथा देवनागरी अंक-युक्त देवनागरी लिपि के अधिकाधिक व्यवहार में सहायक हो।

२ : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा देवनागरी लिपि सुधार

[हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की लिपि सुधार समिति ने अपनी एक बैठक में जो रविवार, दिनांक ५ अक्तूबर, १९४१, आश्विन, संवत् १९९८ को हुई। उसमें सर्वसम्मति से कुछ प्रस्ताव पारित किये थे। उन पर आधारित कुछ सिद्धान्त स्थिर एवम् निश्चित किये गये। (नोट—सम्मेलन के द्वारा इनको अधिकृत स्वीकार नहीं किया गया है।)]

लिपि सुधार के मूलभूत सिद्धान्त

१—जिस लिपि का समिति समर्थन करेगी उसके टाइप में, छपने में और लेखन में एक ही रूप होना चाहिए।

२—आधुनिक लिपि से अधिक अन्तर न हो।

३—लिपि का वैज्ञानिक स्वरूप बदलना नहीं चाहिए।

४—लिपि में एक स्वर के लिये एक ही चिह्न हो।

५—अक्षरों का कम होना किसी लिपि या भाषा का गुण नहीं है, बल्कि उसका पूर्ण होना यही लिपि का गुण है—अर्थात् एक भाषा में प्रयुक्त जितनी ध्वनियाँ हों, उनके लिए उतने ही विशिष्ट चिह्न हों।

६—एक ध्वनि के लिये दो चिह्न न हों।

७—लेखन और मुद्रण में अन्तर न हो, इसलिये साधारण रीति से शिरोरेखा लगाने का ही नियम रहे। वैसे कहीं-कहीं विशिष्ट स्थानों में अक्षरों की विभिन्नता प्रकट करने के लिये शिरोरेखा-विहीन अक्षर भी प्रयुक्त हो सकते हैं।

समिति की सिफारिशें

इस समिति की सिफारिश है कि विशेषकर छोटे अक्षरों में जहाँ शिरोरेखा होने से मुद्रण में कठिनाई या अस्पष्टता उत्पन्न होती हो तो वहाँ शिरोरेखा-

विहीन अक्षरों का प्रयोग करना अच्छा होगा।

(८) प्रत्येक वर्ण ध्वनि के क्रमानुसार लिखा जाय।

मात्राएँ

(क) जब तक कोई सन्तोषजनक स्वरूप सामने नहीं आता तब तक 'इ' की मात्रा अपवाद रूप से वर्तमान पद्धति के अनुसार 'ि' लिखी जाय। यथा—'शिर'। कुछ सदस्यों की सम्मति में 'इ' की मात्रा के लिये, 'ी', और ई की मात्रा के लिये 'ी' का प्रयोग किया जा सकता है। यथा—श‍ीर और श्री‍मान।

(ख) ए, ऐ की मात्राएँ वर्ण के ठीक ऊपर न लगाकर दाहिनी ओर हटाकर वर्तमान पद्धति के अनुसार ऊपर लगाई जायँ यथा—द‍ेवता, द‍ैवत।

'ओ' और 'औ' भी ऊपरी सिद्धान्त के अनुसार लिखे जायँ यथा आ‍ेला, आ‍ैरत।

(ग) उ, ऊ, ऋ की मात्राएँ अक्षर के बाद आवें और पंक्ति में ही लिखी जायँ। यथा—क‍ुटिल, प‍ूजा, सृष्टि।

(घ) अनुस्वार का चिन्ह भी अक्षर के बाद ऊपर लिखा जाय। यथा-अंश।

(ङ) रेफ से व्यक्त होने वाला अर्ध 'र' उच्चारण क्रम से योग्य जगह पर लिखा जाय। यथा ध‍र्म। किन्तु नीचे की ओर न झुके जिससे 'ि' का भ्रम न हो।

(च) संयुक्ताक्षर में द्वितीय 'र' सामान्य रूप से लिखा जाय। जैसे प्र, ट्र।

(छ) स्वरों और मात्राओं में समानता तथा सामंजस्य स्थापित करने के लिए "इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ऋ" के वर्तमान रूप छोड़कर केवल अ में ही इन स्वरों के मूल स्वरूप का बोध कराया जाय। 'अ' की बारहखड़ी बनाई जाय। यथा—अ आ अि अी अु अू अे अै ओ औ अं अः। या ा ा ि ी ा ु ू ो ा ा ो ा ो ा ा: अथवा अ, ा, इ, ि, ी, ु, ू, े, ै, ो, ौ, का बोध कराया जाय।

अनुस्वार और नुक्ता

१०—अनुस्वार और अनुनासिक के लिए केवल अनुस्वार से काम लिया जाय। व्यंजन के पूर्व हलन्त ङ् ञ् ण् न् म् की जगह जहाँ प्रतिकूलता (वाङ्मय तन्मय) न हो वहाँ अनुस्वार लिखा जाय। यथा—चंचल, पंथ, पंप।

११—छपने में अक्षरों के नीचे बाईं ओर यदि अनुकूल स्थान पर नुक्ता—बिन्दी लगाई जाय तो उसका अभिप्राय होगा कि उस अक्षर की ध्वनि का निर्णय प्रचलन के अनुसार होगा। यथा—फारसी क़, ख़, ज़, मराठी च़ और सिंधी ज़ आदि।

विराम चिह्न

१२—विराम चिह्न आजकल सब भाषाओं में जैसे प्रचलित हैं, वे ही कायम रखे जायँ। पूर्ण विराम का चिन्ह पाई ('।') रहे।

अंक

१३—अंकों के स्वरूप इस प्रकार रहें—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०

१४—यदि कोई अच्छा स्वरूप मिले तो वर्तमान 'ख'[१] के स्वरूप में परिवर्तन करना आवश्यक है। श्री लक्ष्मणस्वरूप जी का मत है कि प्रत्येक वर्ग के दूसरे और चौथे वर्ण के स्थान पर पहिले और तीसरे वर्ण में 'ह' मिलाकर लिखा जाय। यथा ख के लिए, क्ह, घ के लिए ग्ह।

१५—अ, झ, ण, के स्थान पर बंबई के अ, झ, ण टाइप वाले रूपों को आपेक्षिक दृष्टि से प्रचलित किया जाय और ळ श की जगह हिन्दी के 'ल, श' रखे जायँ। क्ष का रूप ज्यों का त्यों रहे।

१६—मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलगू आदि भाषाओं में विशिष्ट स्थानों के लिये 'ळ' अक्षर प्रयुक्त होता है उसे वैसा ही रखा जाय। 'ड' या 'ल' से उसे व्यक्त न किया जाय।

---

[१] 'ख' अक्षर के लिये डॉ० पारनेरकर जी का लेख विशेष दृष्टव्य है वहाँ ख 'क्र' इस प्रकार सुझाया गया है।

१७—'ज्ञ' के उच्चारण में प्रान्तीय भिन्नता होने से 'ज्ञ' का रूप जैसा है वैसा ही रखा जाय। ओ३म के, ओइम और ॐ ये दोनों रूप चलें। 'श्री' का प्राचीन रूप 'श्री' ही रहे।

संयुक्ताक्षर

१८—संयुक्त अक्षरों को बनाने के लिए जिन वर्णों में खड़ी पाई का अंतिम भाग है तथा—ख, ग, घ, च, ज, झ, ञ, ण, त, थ, ध, न, प, ब, भ, म, य, ल, श, ष, स—इनका संयोज्य रूप खड़ी पाई हटा कर जो बने वह समझा जाय यथा—ग, च, ज, ट, थ, न, प, ब इत्यादि। क और फ का वर्तमान संयोज्य रूप क, और फ स्वीकृत किया जाय। जिन अक्षरों में खड़ी पाई का अंतिम भाग नहीं है या बिलकुल ही नहीं है उनका संयोज्य रूप संयोजक चिन्ह (-) लगाकर समझा जाय। संयोजक चिन्ह पिछले अक्षर से मिला रहे। संयोजक चिन्ह (-) हो। यथा विट्-ठल, श्वासोच्छ-वास, उड-डाण।

१९—जहाँ पर शिरोरेखा हटाकर लिखनी हो वहाँ 'भ' और 'ध' के (म और घ से पृथक करने के हेतु) भ, ध स्वीकार हो।

२०—रेफ के स्थान पर मराठी या अन्य प्रान्तीय भाषा के कतिपय शब्दों के लिए "" का भी प्रयोग किया जा सकता है। यथा मु ँयास।

२१—दक्षिण की लिपियों में ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ के स्वरूप आते हैं उनके लिए मात्रा इस प्रकार लगाई जाय। यथा ऎ ऒ।

---

३ : लिपि-सुधार

[आचार्य नरेन्द्रदेव समिति के महत्वपूर्ण निर्णय, सुझाव और विचारों के आवश्यक अंश और अभिमत यहाँ पर उद्धृत किये जा रहे हैं।]

—संपादक

देवनागरी लिपि-सुधार-समिति का संगठन ३१ जुलाई सन् १९४७ ई० के राजकीय आदेश ए/६७२४/ पन्द्रह / १२१० /१६४६ के अन्तर्गत हुआ था। जिस प्रकार का कार्य इस समिति को सौंपा गया था, उसका विस्तृत विवरण तो हम आगे प्रस्तुत करेंगे। किन्तु यहाँ पर प्रस्तावना के रूप में उन परिस्थितियों पर थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है, जिनके कारण इस समिति के संगठन की आवश्यकता पड़ी और जिनके बीच इस समिति ने कार्य किया। १५ अगस्त १९४७ के बाद सारे देश की परिस्थिति एकदम बदल गयी और सहसा नई आशाओं का सूत्रपात हुआ। युक्तप्रांतीय सरकार ने अवसर का समुचित उपयोग करते हुए जनता के जन्मसिद्ध अधिकार उसकी मातृभाषा को राजभाषा के पद पर आसीन होने की स्वीकृति ता० ८ अक्टूबर सन् १९४७ को दे दी। इस घोषणा से न केवल सारे देश विशेषतः प्रान्त में उल्लास और प्रसन्नता की लहर दौड़ गई वरन् जनता और सरकारी काम करने वाले दोनों में इस बदले हुए समय में अपने उत्तरदायित्व को सँभालने की चिन्ता भी पैदा हो गई। प्रान्तीय सरकार ने इस स्वप्न का तत्काल अनुभव किया और उनके सहायतार्थ उनके रोज के काम में आसानी पैदा करने तथा राजभाषा की मर्यादा की रक्षा करने के लिए जहाँ नये शब्दों के संग्रह और बनाने आदि के लिए कमेटियाँ बनाई गईं, वहीं इस समिति का संगठन कर लिखने, छापने और टाइप करने की भी उतनी ही सुविधा, जितनी कि रोमन लिपि में होती है, देने की योजना उपस्थित करने का अवसर प्रदान किया गया।

अधिकार की घोषणा

ता० ३१ जुलाई सन् १९४७ को निम्नलिखित घोषणा हुई—परम मान्या गवर्नर महोदया ने देवनागरी लिपि में सुधार के प्रश्नों की जाँच तथा सुधार के अनुरोध उपस्थित करने के लिए एक विभागीय समिति के संगठन का आदेश दिया है।

समिति के सदस्य निम्नलिखित सज्जन होंगे :—

१—आचार्य नरेन्द्रदेव, एम० एल० ए० — अध्यक्ष
२—डा० धीरेन्द्र वर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय — सदस्य
३—पं० रामशंकर द्विवेदी, लखनऊ विश्वविद्यालय — सदस्य
४—पं० चन्द्रशेखर शास्त्री, प्रिंसिपल, श्री वलदेव सहाय संस्कृत महाविद्यालय कानपुर, — सदस्य
५—पं० भाऊ शास्त्री बझे, ब्रह्माघाट, बनारस — सदस्य
६—डा० मंगलदेव शास्त्री, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज — सदस्य
७—रायबहादुर पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, विशेष कार्यकर अधिकारी शिक्षा विभाग — मन्त्री

अधिकारादेश

१—नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रस्तावित प्रतिसंस्कार के सुझावों की परीक्षा करना।

२—संग्रथन Composing, टंकण Typing तथा साधारण व्यवहार के लिए इसकी उपयुक्तता पर विवरण देना।

३—संस्कृत के लिए इसकी उपयुक्तता पर विवरण उपस्थित करना।

४—प्रचलित देवनागरी लिपि में परिवर्तन की वांछनीयता पर विचार करना तथा,

५—परिवर्तित लिपि में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के लिखे जाने की सुविधा और उपयुक्तता पर विचार करना यथा मराठी आदि, जिनमें नागराक्षरों का व्यवहार होता है।

उद्देश्य और महत्व

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि राजभाषा की घोषणा के अनन्तर हमारे बढ़े हुए व्यवहार क्षेत्रों में अतिरिक्त और अधिक ध्वनि प्रतीकों, जिनका दूसरा नाम वर्ण या अक्षर है, तथा उन प्रतीकों को व्यक्त करने के लिए अतिरिक्त अधिक या परिवर्तित रूप विकास की आवश्यकता में किसी को सन्देह नहीं रहा था। अतएव हमारा उद्देश्य नागरी-लिपि को हिन्दी तथा अन्य पड़ोसी प्रान्तों की भाषाओं को व्यक्त करने तथा शासन के रोज के कामों में प्रयुक्त होने योग्य बनाना था। इसका शासन के सभी क्षेत्रों में प्रयुक्त होने के योग्य, समाचार पत्रों के योग्य, और विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले नाना विषयों के प्रकाश के योग्य तथा इन कार्यों और साधारण व्यवहार के कार्यों की आवश्यक छपाई और टाइप में प्रयुक्त होने वाली आधुनिकतम यंत्रों के योग्य होना आवश्यक होने से हमारी समस्या और भी महत्वपूर्ण हो गई थी।

राष्ट्रीय पक्ष

भारतीय राष्ट्र संघ के विभिन्न प्रान्तों में व्यवहृत होने वाली भाषाओं की लिपियाँ भिन्न अवश्य हैं। किन्तु बोलने वालों की दृष्टि से हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का विश्व में चौथा स्थान है। भारत की कतिपय अन्य लिपियों से सादृश्य होने के कारण इसके प्रसार की सम्भावना और भी अधिक प्रतीत होती है। जहाँ तक तेज लिखने की बात है, कई लिपियों में यह गुण नागरी से अधिक अवश्य है, तो नागरी में इनसे अधिक स्पष्ट प्रतीत होती है। नागरी ध्वनि-मूलक लिपि है। अतएव यदि इसमें निश्चयात्मकता और उपयोगिता आदि जैसे गुण न हों तो यह लिपि किसी भी देश में उत्कृष्ट कोटि की लिपियों में स्थान न पावेगी। सरसता और सौंदर्य को बनाये रखकर तेज लिखने की दृष्टि से परिवर्तन अवश्य वांछनीय है पर हम ऐसे परिवर्तन के पक्ष में मत देने को प्रस्तुत न थे, जिनके कारण इसकी ध्वनिमूलकता नष्ट होती और इसके आवश्यक गुणों को धक्का पहुँचता। अतएव इन बातों को ध्यान में रखकर जब हमने विचार किया तो यह बात स्पष्ट थी कि नागरी का अपने वर्तमान रूप में भी मराठी आदि से तो साम्य है ही, शिरोरेखा हटा देने पर इसका

गुजराती से भी बहुत कुछ रूपसाम्य हो जाता है । दक्षिणी लिपियों से भी नितान्त असमानता की बात नहीं कही जा सकती । अन्ततः हम इस नतीजे पर पहुँचे कि राष्ट्रलिपि होने के लिये नागरी बहुत थोड़े से परिवर्तनों की अपेक्षा रखती है ।

इस समय भाषा का व्यवहार बोलने से अधिक लिखने में और लिखने से भी अधिक छापने और टाइप करने में होता है । एक वर्ग मील में सुनाई पड़ने वाला भाषण, मुद्रण और दूर-क्षेपण यंत्रों के कारण सहस्रों वर्गमील तक पढ़ा जाता है । कार्य व्यापार की अधिकता के कारण मनुष्य अपने विचारों को भविष्य के लिए सुरक्षित रखने के हेतु और भूल जाने के खतरे से बचने के लिए भी लिख रखने की आवश्यकता के वशीभूत होकर छपाई का अधिक प्रयोग करता है । इसलिये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये, और शिक्षण के लिये भी जो लिपि व्यवहृत होना चाहती है, उसमें ऐसे गुणों का होना भी आवश्यक है, जो उसको लिखने में तेजी और छापने में सरलता प्राप्त करते हैं । यह देख लेना भी रोचक और प्रासंगिक होगा कि देवनागरी में रुचि भी सभी प्रान्तवाले रखते हैं । उनके विचार तो हम अन्यत्र यथावसर व्यक्त करेंगे ही, यहाँ हम उन स्थानों का नाम मात्र लेना चाहते हैं जहाँ-जहाँ से हमारे पास इस सम्बन्ध के सुझाव आये हैं । युक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के अतिरिक्त दिल्ली, राजस्थान, ग्वालियर, बंबई, मद्रास, बिहार आदि स्थानों से लोगों ने नागरी लिपि पर अपने सुझाव भेजे हैं ।

यह तथ्य देवनागरी की बहुमान्यता तो प्रकट करता ही है, साथ ही उसके प्रभाव के क्षेत्र का परिचय भी दे देता है । हमें उन सज्जनों के सुझावों से हमारे विचारों में सहायता मिली हैं, तथा हमारे निश्चयों में वे सहायक हुए हैं । इधर हाल की घटनाएँ भी इस ओर संकेत करती हैं कि भारतीय विधान परिषद, देवनागरी लिपि को राष्ट्रलिपि मान लेगी । कहने का तात्पर्य यह है कि देवनागरी लिपि का प्रश्न हमारे सामने कभी भी प्रान्तीय दृष्टि में नहीं आया । हमने उसे और उसमें होने वाले परिवर्तनों पर राष्ट्रीय दृष्टि से विचार किया और हमारे अनुरोध पर उन भाषाओं के हित की दृष्टि से भी वे

परिवर्तन हुए हैं, जो कि देवनागरी में लिखी जाती हैं, या सरलता से लिखी जा सकती हैं।

अन्तर्राष्ट्रीयता की उत्सुकता

श्री मोतीलाल गुर्टू की लिपि भी विचाराधीन थी पर उसे कई स्पष्ट और प्रबल कारणों से पहले ही अस्वीकृत कर दिया था। उनका यह कहना कि उनकी लिपि विश्वलिपि है और संसार की सभी भाषाओं को लिख सकती है, यह बात महत्व की नहीं। पर देवनागरी के विषय में यह उत्सुकता कई साथियों ने दिखाई। केन्द्रीय समिति के साथ परामर्श करते समय भी यह विचार हुआ कि इस लिपि का भी भारत के बाहर एक स्थान होना निकट भविष्य में सम्भावित ही है। भारत की राष्ट्रलिपि भारतीय पत्रों, सूचनाओं तथा शासन संबंधी अन्य आलेखों को लेकर विदेशों में जायगी ही, इसमें तो किसी को सन्देह नहीं है। जो विचारणीय है वह यह कि इसके ध्वनि-सापेक्ष गुणों ने विदेशी विशेषज्ञों का भी ध्यान आकर्षित किया है और रोमन लिपि में भी ध्वनि-मूलकता लाने के प्रयत्न हो रहे हैं। यह बात भी श्रीनिवास जी तथा काका साहेब ने भी अपने-अपने मतों को व्यक्त करते समय प्रसंगानुकूल कही थी। श्री श्रीनिवासजी ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि हमारी लिपि में कुछ नई ध्वनियाँ लाई जायँ। यथा ह्रस्व 'ओ' और 'ए' तथा जो ध्वनियाँ at और all में उच्चरित होती हैं। Fzh और Z के लिये भी वर्ण बढ़ाये जायँ। इसी प्रकार उनका कहना था कि 'अ, आ', स्वर वर्णों का उत्तरार्ध (मात्रा) उनके पूर्वार्ध के बराबर रखा जाय किन्तु जो स्वर जिह्वा की नोक से उच्चरित होते हैं जैसे 'ई', 'ए' उनके वर्णों का उत्तरार्ध (मात्रा) पंक्ति से ऊपर उठता हो तथा जो स्वर जिह्वा मुख से उच्चरित होते हैं जैसे क, ओ, उनके वर्णों का उत्तरार्ध (मात्रा) नीचे उतरा हो जैसे रोमन अक्षरों में (a, b, g) के उत्तरार्ध क्रमशः पंक्ति से सम ऊपर तथा नीचे उतरे होते हैं। इस प्रकार के परिवर्तनों की उत्सुकता लोगों में केवल इसीलिये है कि इन्हीं विशेषताओं के आधार पर अन्य बहुत सी त्रुटियों के रहते हुए भी रोमन लिपि अन्तर्राष्ट्रीय लिपि का स्थान ग्रहण करती चली जा रही है। देवनागरी में

जहाँ अन्य बहुत से गुण हैं, वहाँ इन गुणों की कमी उसे इस महत्व के पद को प्राप्त करने में बाधक हो सकती है, यह आशंका लोगों ने प्रकट की। यह नितान्त सत्य है और हमने भी इस बात का अनुभव किया कि धीरे-धीरे यदि हमारी देवनागरी में परिवर्तन संभव हो जाय तो देवनागरी अपने मात्रा-विधान की उत्कृष्टता, आकृति की स्पष्टता और व्यापकता तथा ध्वनि की वैज्ञानिकता के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त कर सकती है।

नागरी लिपि की विशेषताएँ

देवनागरी का प्रचार भौगोलिक दृष्टि से समस्त हिन्दी प्रदेश में तथा मालव, गुजरात और महाराष्ट्र में है और प्राचीनता की दृष्टि से इसका सम्बन्ध भारत की सबसे पुरानी और राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी से है। ऐतिहासिक प्रमाणों तथा विभिन्नकालीन साहित्य ग्रंथों के अंतरंग तथा बहिरंग साक्ष्य के आधार पर यह निर्विवाद सत्य है कि भारत में लिखने की कला का जन्म ईसा की छठवीं शताब्दी पूर्व के भी पहले से हो चुका था। भारत की पुरानी लिपियों में दो ही प्रचलित लिपियाँ थीं। उनमें से एक ब्राह्मी तथा दूसरी खरोष्ठी थी। ब्राह्मी का प्रचार उत्तर-पश्चिम प्रदेश को छोड़ कर समस्त भारत में था। दूसरी आवश्यक बात यहाँ यह जानने की है कि जिस प्रकार देवनागरी का जन्म ब्राह्मी लिपि से हुआ है, उसी प्रकार मध्य तथा आधुनिक कालों की समस्त भारतीय लिपियों का उद्गम भी ब्राह्मी ही है। इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। अतएव इस दृष्टि से भी देवनागरी का सम्बन्ध परप्रान्तीय पड़ोसी लिपियों से घनिष्ठ है। भारत की अन्य लिपियाँ जो देवनागरी से अब रूप-साम्य नहीं रखतीं, ब्राह्मी के ही दक्षिण शैली का विकसित रूप हैं। दक्षिण की लिपियों के अतिरिक्त बंगला लिपि भी प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग निकली और इसी के आधुनिक परिवर्तित रूप बंगला, मैथिली, उड़िया तथा नैपाली लिपियों के रूप में प्रचलित हैं। प्राचीन नागरी से ही गुजराती, कैथी तथा महाजनी आदि उत्तर भारत की अन्य लिपियाँ भी सम्बद्ध हैं। नागरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हम जो लिखते हैं वही पढ़ते भी हैं। लिखे हुए का निश्चयात्मक ढंग से पढ़ा जाना

किसी भी लिपि का सर्वप्रधान गुण होता है और वह नागरी में सर्वाधिक मात्रा में है। उर्दू की भाँति एक चिन्ह से कई ध्वनियों की अभिव्यक्ति नागरी में नहीं होती प्रत्युत एक लिपि-चिन्ह से एक ही ध्वनि का बोध होता है। इसके साथ ही देवनागरी एक और विशेषता रखती है। इस लिपि में जिन वर्णों का जिस प्रकार उच्चारण होता है, वह उसी प्रकार लिखा भी जाता है। नागरी की तीसरी विशेषता यह है कि इसमें आवश्यक ध्वनियों को व्यक्त करने वाले चिन्हों का न तो अभाव है और न एक ही ध्वनि को व्यक्त करने के लिए कई चिन्हों की अधिकता है अर्थात हमारी लिपि अतिव्याप्ति के दोषों से मुक्त है। अपने साक्षियों के तर्कों का प्रतिवाद या पुष्टि करते हुए हम नागरी के गुणों का विस्तृत विवेचन आगे चल कर यथा-स्थान करेंगे। किन्तु सुविधा के लिए इसकी एक अन्य विशेषता का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। त्वरा लेखन के अभाव के आक्षेप पर विचार करने को प्रस्तुत रहते हुए भी हम यह मानने में असमर्थ रहे हैं कि इसमें त्वरा लेखन की कमी है। सरलता और सौंदर्य की व्याप्ति तो इस लिपि में सर्वत्र वर्तमान है।

लिपि तथा लिपि के रूपान्तर

यह मानी हुई बात है कि भारतीय वर्णमाला संसार की सभी वर्णमालाओं में अधिक वैज्ञानिक और सुगम है। भारतीय लिपियों का एकमात्र स्रोत अशोक-कालीन ब्राह्मी लिपि है। प्रांतीय लिपियाँ ब्राह्मी की रूपान्तर मात्र हैं। सबमें वे ही स्वर और व्यंजन हैं, एक क्रम है। जिन प्रान्तीय भाषाओं में किसी स्वर या व्यंजन की ध्वनि का प्रयोग नहीं होता, उस लिपि में वह स्वर या व्यंजन लुप्त है। इनकी एकता के द्योतक भारत के विभिन्न भागों में मिले हुए शिलालेख और ताम्रलेख हैं। वे हमारे देश की प्राचीन लिपि के प्रान्तीय रूपान्तर तथा समय-समय के रूप बोधित करते हैं।[1] इस लिपि के रूपान्तर भोट-तिब्बत, बर्मा, श्याम तथा अन्य पूर्वी प्रदेशों में आज भी प्रचलित हैं।

देवनागरी-लिपि

यद्यपि देश में अनेक प्रान्तीय लिपियों का प्रयोग हो रहा है तथा देश के

---

[1] देखिए:—श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझाकृत भारतीय-प्राचीन-लिपिमाला)

विद्वान देवनागरी लिपि में ही लिखते-पढ़ते रहे हैं और संस्कृत तथा देवनागरी के माध्यम से देश की एकता और राष्ट्रीयता की रक्षा करते आये हैं। पंजाब में सिख धर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानकदेव से लेकर दसवें बादशाह गुरु गोविन्दसिंह जी तक के महात्माओं ने हिंदी में रचना की है और नागरी का प्रयोग किया है। मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र ने तो प्रान्तीय रूपान्तरों को त्याग कर अपने नित्य के कार्य और भाषा के पठन-पाठन में देवनागरी को ही अपना लिया है।

अन्य प्रांतों से भी यही आशा की जाती है कि एकता और राष्ट्रहित की भावना से प्रेरित होकर वे भी देवनागरी को अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषा का माध्यम बनायेंगे। ऐसा करने से किसी प्रान्तीय भाषा को अन्य प्रान्त के वासी सरलता से अध्ययन कर सकेंगे, प्रान्तीय साहित्यों का प्रभाव समस्त भारत पर पड़ने लगेगा। किसी प्रान्तीय भाषा की देवनागरी में मुद्रित विज्ञान शास्त्र तथा अन्य-शास्त्र की पुस्तकें जिनमें समान संस्कृत शब्दों का बाहुल्य होगा, दूसरे प्रान्तों में पढ़ी एवं समझी जा सकेंगी। समय पाकर देश के प्रत्येक भाग में एक सर्व-सामान्य भाषा व्यापक हो जायेगी।

राष्ट्र लिपि

देवनागरी अपने मात्रा-विधान, आकृति, स्पष्टता और व्यापकता के कारण निश्चित रूप से देश की राष्ट्रलिपि होने की अधिकारिणी है। परन्तु वर्तमान युग में मनुष्य पहले की अपेक्षा अधिक सार्वजनिक हो गया है और उनका संपर्क बाहरी देशों के साथ अधिक-अधिक बढ़ता ही जा रहा है, इसलिए हमारी लिपि में भी कुछ आवश्यकताएँ बढ़ गई हैं। इस सम्बन्ध में हमारी दृष्टि सदा से उदार रही है, समयानुसार लिपि को हमने बारम्बार परिष्कृत किया है।

मुद्रण में कठिनाई

देवनागरी लिपि की विशेषताओं को जानते हुए भी हमसे यह छिपा नहीं है कि लिपि के मुद्रण में प्रत्येक पंक्ति के लिए तीन पंक्तियाँ कम्पोज करनी पड़ती हैं। मध्य की पंक्ति वर्ण के लिए, ऊपर और नीचे की मात्राओं के लिए। अन्यथा एक मुद्रा (टाइप) पर दूसरी मुद्रा आंशिक रूप से चढ़ाकर कम्पोज करना पड़ता है। इस कठिनाई के अतिरिक्त लगभग ७०० स्वतंत्र मुद्राओं की

आवश्यकता होती है जिन्हें हाथ से उठाकर यथास्थान रखना पड़ता है। इस कारण अत्यधिक समय, परिश्रम और द्रव्य लगता है। लाइनो टाइप, टाइप-राइटर, टेलीप्रिंटर, यन्त्रों द्वारा इतने विस्तृत वर्णों का मुद्रण कदापि सम्भव नहीं है।

रोमन लिपि

रोमन लिपि में कितनी ही त्रुटियाँ क्यों न हों, उसमें मुद्रण-सम्बन्धी कुछ ऐसी सुगमता है कि इस यंत्रयुग में वह व्यापक से व्यापकतर होती जा रही है। देश में इस मत के कुछ विशिष्ट व्यक्ति बढ़ते जा रहे हैं कि उसको राष्ट्रलिपि के रूप में स्वीकार कर लिया जाय। अतएव, इस सांस्कृतिक संकट के समय यह अति आवश्यक है कि देवनागरी लिपि का पुन: संस्कार करके हम उसे वर्तमान मुद्रण युग के अनुकूल कर दें। यह कोई नयी बात नहीं है। ऐसा रूपांतर समय-समय पर पात्र, लेखनी तथा लेखक के अनुकूल बराबर होता आया है। इस प्रकार उसका रूप भावुकता के स्तर से उठकर आधुनिक संघर्ष युग के अनुरूप हो जायगा।

लिपि का पुन: संस्कार

युग के अनुरूप राष्ट्रलिपि के पुन: संस्कार की बात देश के मनीषी सदा सोचते रहे हैं। यह विषय ऐसा है कि इस पर अविलम्ब विचार हो जाना चाहिए। देश में आजकल रोज-रोज नये परिवर्तन तेजी से हो रहे हैं। लिपि और भाषा के सम्बन्ध में भी विशेष परिवर्तन होंगे, इसलिए नागरी लिपि में भी आवश्यकतानुसार सुधार करके उसे युग के अनुरूप कर लेना आवश्यक था।

देवनागरी लिपि परिवर्तन क्यों ?

परिवर्तन की आवश्यकता और उसके कारण :—

परिवर्तन की आवश्यकता और उसके कारण के राजनैतिक आधार की चर्चा तो हम पहले ही कर चुके हैं। अब हमें यहाँ उसके व्यावहारिक पक्ष पर ही विचार करना आवश्यक है। फिर भी एक दो बातें और कह देनी जरूरी हैं। इन बातों की ओर हमारी समिति के सम्मुख आये हुए साक्षियों ने भी ध्यान दिलाया था। पाकिस्तान के अलग हो जाने पर भी हममें एक राष्ट्र की

भावना को सचेत होकर बलवती रखने के कारण मौजूद हैं और भारतीय राष्ट्र संघ का यह कर्त्तव्य है कि इस बात को वह बार-बार ध्यान में रखे। राष्ट्र की अखंडता के लिए आवश्यक बातों में एक राष्ट्रलिपि का स्थान महत्वपूर्ण है, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। यह स्पष्ट है कि भारतीय भाषाओं और लिपियों में हिंदी और नागरी ही इन पदों के योग्य है। प्रायः सभी लोगों ने, जो साक्ष्य के लिए आये या जिन्होंने अपने विचार लिखे, इस बात को निर्विवाद माना है। यह प्रयत्न आज ही आवश्यक नहीं हुआ वरन् पहले भी एक भाषा और एक लिपि के स्तुत्य प्रयत्न संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा हुए हैं। एक लिपि-विस्तार परिषद, जिसकी स्थापना श्री शारदा चरण मित्र ने की थी तथा जिसके तत्वावधान में 'देवनागर' पत्र निकलता था, इस प्रकार संस्थाओं के कार्य भी विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। अस्तु उस परिवर्तन की आवश्यकता का सबसे पहला और प्रमुख कारण तो शासन व्यवस्था में हिंदी और नागरी के व्यवहार का प्रारम्भ होना ही है। उत्तर प्रदेश, बिहार, पूर्व पंजाब, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा अन्य देशी रियासतों के शासन-कार्य में हिन्दी और नागरी के व्यवहार की छूट मिल जाने पर इस लिपि को तुरन्त रोमन लिपि के मुकाबले में खड़ा होना पड़ा। रोमन लिपि के दोषों को तो इसे अपनाना नहीं था किन्तु जिन गुणों के कारण रोमन लिपि अंतर्राष्ट्रीय लिपि के पद पर आसीन हुई, उन्हें तो इसे अपनाना ही था। दूसरा कारण हमारी शिक्षा-प्रसार की योजनाएँ हैं। विभिन्न प्रान्तों में भी यह कार्य तेजी से हो रहा है। इस बात की आवश्यकता सभी सरकारें, संस्थाएँ और विचारक अनुभव कर रहे हैं कि जीवन और शासन के प्रजातंत्रात्मक आधार को ठीक-ठीक समझने के लिए शिक्षा का अधिकतम प्रचार और प्रसार अनिवार्य है। यह कार्य केवल स्कूल और कालेजों में नहीं हो सकता। इसके लिए तो विभिन्न विषयों में और विभिन्न स्तर की संख्यातीत पुस्तकों की आवश्यकता है। ये पुस्तकें केवल एक आकार और प्रकार की नहीं हो सकतीं। इन्हें तो विभिन्न प्रकार और आकार का होना ही पड़ेगा। फिर भी बहुत छोटे टाइप में भी पुस्तकों का प्रकाशन आवश्यक हो जायेगा। तीसरा कारण भी इसी से मिलता-जुलता समाचार पत्रों की बढ़ती

हुई संख्या का है। जिस अनुमान से हिन्दी के दैनिक से लेकर मासिक पत्र और पत्रिकाओं की वृद्धि हो रही है, वह आकर्षक है और लिपि-सुधार-समस्या से सीधा संबंध रखने वाली है।

उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण जो समस्या प्रस्तुत हो गई है, उसको सुलझाने के साधनों की हमारे पास कमी नहीं है। हिंदी में पुस्तकों, समाचार पत्रों और शासन संबंधी विज्ञप्तियों तथा आदेशों का प्रकाशन जिस तीव्रता से होना अपेक्षित हो गया है, न तो उस गति से हो रहा है और न उसके लिए साधन ही हैं। रोटरी ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हम छपाई का काम तेजी और कम समय में कर सकते हैं। रोटरी की मशीन पर छपाई के लिए मोनो और लाइनो टाइप संग्रथन आवश्यक हो जाते हैं। फलतः लिपि-सुधार की आवश्यकता का एक कारण मोनो और लाइनो की वर्तमान मशीनें भी हैं, इतना ही नहीं, हम अपने विचार-विनिमय में इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि इन मशीनों में भी कुछ सुधार आवश्यक हो गये हैं। दूसरा कारण है नागरी में टेलीप्रिंटर का न होना। नागरी में टेलीप्रिंटर अभी तक नहीं बना है। इसका कारण भी स्पष्ट है। देवनागरी लिपि के मुद्रण में प्रत्येक पंक्ति के लिये तीन पंक्तियाँ संग्रथित करनी पड़ती हैं, मध्य की पंक्ति वर्ण के लिए, ऊपर और नीचे की मात्राओं के लिए। अन्यथा एक मुद्रा पर दूसरी मुद्रा आंशिक रूप से चढ़ाकर संग्रथित करनी पड़ती है। एक कठिनाई और भी है। संग्रथन में लगभग ७०० से ९०० तक के बीच में स्वतंत्र मुद्राओं की आवश्यकता होती है, जिन्हें हाथ से उठाकर यथास्थान रखना पड़ता है। इस कारण अत्यधिक समय, परिश्रम और द्रव्य लगता है। लाइनो टाइप, टाइपराइटर तथा टेलीप्रिंटर द्वारा इतने अधिक वर्णों का मुद्रण कठिन है।

तीसरा कारण है हिन्दी में मोर्सकोड का न होना। इसके न होने से नागरी में तार नहीं भेजे जा सकते। हिन्दी में मोर्सकोड न बनने के भी बहुत कुछ कारण नागरी लिपि की वे ही कमियाँ हैं, जिनका उल्लेख हम यथास्थान पर आवश्यकतानुसार करते चले आ रहे हैं।

देवनागरी लिपि में परिवर्तन के लिये चौथा कारण वर्तमान टाइपराइटर

है । हमारी समिति यह मानती है कि प्रयत्न करने पर कोई कारण नहीं था कि ऐसे टाइपराइटर न बनाये जा सके जो हिंदी के लिए सर्वथा उपयुक्त और उतनी ही त्वरा से टाइप करने में समर्थ होते जितने कि अंग्रेजी टाइपराइटर, पर विदेशी शासन में हिन्दी की जो उपेक्षा हुई, उसके कारण इस ओर प्रयत्न ही नहीं हुए । इने-गिने प्रयत्न हुए भी, वह हिन्दी को ही ठीक करने में लगे न कि टाइपराइटर को । हमारा यह विश्वास कि यदि टाइपराइटर सुधार का प्रयत्न हुआ होता तो आज लिपि-सुधार का इतना महत्व न होता और भी दृढ़ हो गया, जब हमने अपनी विधान परिषद के साथ संयुक्त बैठक के समय श्री अजीत सिंह जी का प्रयत्न देखा । उन्होंने लिपि में सुधार करने की अपेक्षा टाइपराइटर में ही सुधार किया है और उनका प्रयत्न स्तुत्य है । हमने टाइप-राइटर पर एक स्वतंत्र अध्याय में विस्तार-सहित विचार और योजनाओं का उल्लेख किया है । जो कुछ भी हो, वर्तमान टाइपराइटरों की दशा नितान्त शोचनीय है । न तो उनमें गति है और न साधारण काम-काज में आने वाले चिन्ह और न संकेत ही हैं । प्रचलित टाइपराइटरों की मुद्रियों पर जो वर्णक्रम है वह और भी दोषपूर्ण, अवैज्ञानिक तथा अव्यावहारिक है । हमने प्राय: सभी प्रचलित टाइपराइटरों की मुद्रिओं के बोर्डों को देखा और किसी को भी संतोषजनक नहीं पाया । मात्राओं के कारण गति-मंदता और भी बढ़ जाती है । कार्यालयों में जो लोग हिन्दी टाइपिस्ट का काम करते हैं वे इस बात का बराबर अनुभव करते हैं कि इन वर्तमान टाइपराइटरों पर गति को बढ़ाना परिश्रम साध्य भी नहीं है । हमारी समिति ने इन टाइप-राइटरों पर टाइप करने वाले टाइपिस्टों में से सचिवालय के टाइपिस्ट श्री फूलवदन सिंह से भी कठिनाइयों को लिखित माँगा । कहने का तात्पर्य यह कि इन दोषों के रहते हुए साधारण काम-काज का उत्तमोत्तम रूप से हिन्दी में होना कठिन हो गया ।

परिवर्तन की उपयोगिता

जो कुछ भी हमने अब तक विचार किया और जो कठिनाइयाँ सम्प्रति जनता और कार्यालयों को हैं तथा जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है, उसको देखते हुए यह असंदिग्ध है कि यदि वे दोष दूर कर दिये जायँ तो नागरी

छापे की दृष्टि से भी सर्वाङ्ग सुन्दर और उपयोगी लिपि हो जायगी। इन दोषों को तथा कतिपय अन्य दोषों को, जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे, दूर कर देने पर देवनागरी लिपि की उपयोगिता प्रधानतः चार क्षेत्रों में बढ़ जाती है।

देवनागरी लिपि की उपयोगिता के क्षेत्र

१—पहला क्षेत्र है साधारण व्यवहार। साधारण व्यवहार से हमारा तात्पर्य है हाथ से लिखने वालों द्वारा लिपि का व्यवहार। हाथ से लिखने वाले भी कम नहीं हैं तथा इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण अंश उन बच्चों का है जो विद्यारंभ करने जाते हैं। हमारे अध्यक्ष आचार्य नरेंद्रदेव जी का प्रसंगानुकूल बराबर इस बात पर जोर रहता था कि वे परिवर्तन अवश्य हों जो कि बालकों को सीखने में सरलता प्रदान करने वाले थे। बालकों के हित की दृष्टि से ही कई बार उन्होंने ऐसे परिवर्तनों का जोरदार समर्थन किया। साधारण व्यवहार में उपयोगिता बढ़ाने की ही दृष्टि से डा० गोरख प्रसाद तथा काका साहब का प्रस्ताव था कि हाथ से लिखने में शिरोरेखा तथा अनावश्यक शोशे छोड़ दिये जायँ। इसका फल यह बताया गया कि लिखाई इतनी तेज होने लगेगी कि उर्दू और रोमन लिपि वाले इसकी बराबरी कर ही नहीं पावेंगे। डाक्टर गोरख प्रसाद का कहना था कि उन्होंने इस प्रकार लिख और लिखवा कर कई बार परीक्षा की है। शिरोरेखाहीन लिखावट में वे केवल इतनी ही शर्त रखना चाहते हैं कि लिखावट ऐसी हो कि दूसरे भी उसे बेधड़क पढ़ सकें। उन्होंने अपने परीक्षण में यही शर्त रखकर लिखने की त्वरा का अनुमान लगाया था। जो शब्द नहीं पढ़े जा सके, उन्हें गलत माना गया। उनके इस परीक्षण के अनुसार बिना गलतियों वाला जो फल निकला था वह ३९ शब्द प्रति मिनट के ढंग से लिखा गया था। सम्प्रति जो अच्छे हिन्दी टाइपिस्ट गिने जा सकते हैं। उनकी भी त्वरा ३५ और ४० शब्द ही प्रति मिनट के हिसाब से टाइपराइटर पर होती है। इस सुधार को समिति ने लाभदायक होते हुए भी अनिवार्यतः नहीं माना। समिति अपने द्वारा अनुरोधित सुधारों में एकरूपता की दृष्टि से ऐसे सुधारों को नहीं लाना चाहती थी, जिन्हें छपाई में दूसरा रूप ग्रहण करना पड़ता। डा० गोरख प्रसाद प्रभृति का यह सुधार कुछ वैसा ही था। छपाई

में वे लोग भी शिरोरेखाहीन छपाई के पक्ष में नहीं थे। अस्तु लिखने में कुछ और छापे में कुछ ऐसी बात को समिति अनिवार्य मान्यता न प्रदान कर सकी। स्वयं उन लोगों का भी इस बात पर विशेष आग्रह न था। काका साहब ने भी जो स्वयं शिरोरेखा हीन लिखने के बहुत पक्षपाती हैं, कहा कि मेरा इस बात पर आग्रह नहीं है। समिति माने तो अच्छा, न माने तो भी अच्छा है। हाँ, यह अवश्य था कि यदि छपाई में भी शिरोरेखा हीन छपाई की बात मानी जाती तो नागरी रूप साम्य में गुजराती के बहुत निकट जा बैठती। फिर भी शिरोरेखा हीन लिखने की सिफारिश न करते हुए भी समिति इस बात को मानती है कि शिरोरेखा हटा देने पर त्वरा बढ़ जाती है और इस ढंग पर भी लिखा जाना अच्छा है। तो आगे जो भी सुधार के अनुरोध हम करने जा रहे हैं उनसे साधारण व्यवहार में भी पर्याप्त आसानी हो जायगी और देवनागरी की उपयोगिता पहले से कई गुना अधिक बढ़ जायगी।

२—इन सुधारों या परिवर्तनों की उपयोगिता का दूसरा क्षेत्र है मुद्रण। जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, अभी तक मुद्रण के प्रत्येक फाऊंट में लगभग ७०० से अधिक तरह के अक्षरों का रखना आवश्यक होता है। कर्न अक्षरों अर्थात् जिनमें चूल कटे होते हैं, ऐसे अक्षरों का प्रत्येक फाऊंट में रखना आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ क दो प्रकार का होता है। एक चूल कटा और दूसरा बिना चूल कटा। शक छापते समय या संग्रथन करते समय तो चूल कटा क नहीं लगता है और अर्क छापते समय चूल कटे 'क' की आवश्यकता पड़ती है। छोटे टाइप भी बन सकें इसका ध्यान रखकर भी कतिपय सुझाव अनुरोधित हुए हैं। अतएव मुद्रण में इन परिवर्तनों का खास महत्व है और इसे यहाँ ब्योरे-वार देख लेना नितांत प्रासंगिक होगा। मुद्रणालय के किन क्षेत्रों में इन परिव-र्तनों की उपयोगिता सिद्ध होगी, उनका उल्लेख हम क्रमशः करना चाहते हैं।

अ—हाथ द्वारा संग्रथन प्रणाली

हाथ द्वारा कम्पोजिंग में अभी तक चार खाने का केस हुआ करता है और उसमें उपर्युक्त ७०० से अधिक तरह के अक्षरों और चिन्हों की व्यवस्था करनी पड़ती है। जो संग्रथक इन केसों पर काम करता है उसे अपने हाथ को चार भिन्न दिशाओं में घुमाना पड़ता है। यह सत्य है कि अभ्यास बहुत बड़ी चीज

है। अभ्यास हो जाने पर कठिन से कठिन काम सरल हो जाता है। पर जो वैज्ञानिक सत्य है उसमें तो किसी को सन्देह करने की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। समिति द्वारा अनुरोधित परिवर्तनों को मान लेने पर यह केस जिसमें अक्षर रखे जाते हैं, केवल दो खाने का रह जायगा। स्पष्ट है कि अक्षर संख्या कम हो जायगी। सात सौ के स्थान पर केवल १५० प्रकार के अक्षर और चिन्ह रह जायेंगे। वैसी दशा में संग्रथक को शारीरिक और बौद्धिक दोनों परिश्रम कम हो जायेंगे और वह आसानी से संग्रथन का काम सीख और कर सकेगा। यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि ऐसा करने के लिये समिति को न तो अक्षरों का रूप बदलना पड़ा है और न उनकी संख्या कम करनी पड़ी है। यह कार्य और सुविधा तो बिना इसके ही मिल गई। इसका विस्तृत विवरण आगे हमने दिया है। यहाँ यह जान लेना पर्याप्त है कि हमारे परिवर्तनों से अब भावी ले आउट केवल दो केस का होगा और उसमें केवल १५० तरह के अक्षरों की सिफारिश की गई है। हाँ, इस कमी से हमारे स्वर और व्यंजन संस्था पर बिलकुल प्रभाव नहीं पड़ा है। हमने जहाँ उन्हें बदला है या कम किया है, वह दूसरे हितों को दृष्टि में रखकर। छोटे टाइप में भी कम्पोजिंग और छपाई हो सके इस बात को भी ध्यान में रखकर एकाध अक्षरों के लूपों को भी कम करने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु इस दिशा में तब तक पूरी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती जब तक और क्रांतिकारी परिवर्तन न किये जायँ। सभी दृष्टियों से विचार करने पर हमारी समिति अभी उन परिवर्तनों का अनुरोध न उपस्थित कर सकी। बिना उन परिवर्तनों को अपनाये शिरोरेखा हीन छपाई में भी यह कम अर्थात् ८ प्वाइंट से कम नाप वाले अक्षरों की छपाई हो सकती है। अतएव सम्प्रति यह समिति शिरोरेखा सहित छपाई का ही अनुरोध करती है।

आ—मोनो टाइप संग्रथन

हमारे परिवर्तनों की अपेक्षा मोनो और लाइनो टाइप को सर्वाधिक थी। अभी तक मोनो टाइप की जो कठिनाइयाँ थीं वे बहुत कुछ अक्षरों की अधिकता के कारण थीं। इस अधिकता की कमी हो जाने पर हम मोनो टाइप-उपयोगिता

के अधिक निकट पहुँच गये हैं, किन्तु हम इसे स्वीकार करना चाहते हैं कि पूर्णरूपेण मोनो टाइप के लिये उपयोगी तो यह लिपि तभी होगी जब इसमें १० प्रतिशत की कमी और की जाय।

इ—लाइनो टाइप संग्रथन

लाइनो टाइप के व्यवहार में कुल ६० अक्षरों की आवश्यकता होती है। हमारी समिति ने जो प्रस्ताव किये हैं वे इसके लिए सर्वथा उपयुक्त होंगे ऐसा हमारा विश्वास है। हमने इसलिए अपनी समिति की दो बैठकें प्रयाग में की थीं और अपने सुझावों को उन सब प्रणालियों की कसौटी पर खरा उतरने की दृष्टि से ही विशेषज्ञों से परामर्श किया था। इस बैठक में सर्वश्री महादेवजोशी, श्रीकृष्ण प्रसाद दर और एच० के० घोष उपस्थित थे। डॉ० गोरखप्रसाद का कहना था कि यदि हमारी सिफारिशें मानकर मात्राओं को कुछ दाहिनी ओर हटाने की स्वतन्त्रता दे दी जाय तो इस मशीन का काम इतना सच्चा होता है कि कुछ अक्षर अर्द्ध अक्षर में पाई जोड़कर बनाये जा सकते हैं और इस प्रकार ९० चाभियों से काम चल सकता है। आधुनिक युग में अब जो भी छपाई होती है या होगी उसमें लाइनों टाइप का ही अधिक व्यवहार होगा। श्री श्रीनिवास जी का सिद्धान्त है कि वर्णों के अन्त अर्थात् दाहिनी और आधार स्वरूप एक पाई होनी चाहिए। हमने भी जिन अक्षरों के दो रूप मिलते हैं अर्थात् खड़ी पाई-युक्त अंत वाले अक्षरों को ही चुना है। और यही कारण है कि हम लाइनो टाइप के लिये देवनागरी की उपयोगिता पूर्णतः सिद्ध कर सके।

३. टेलीप्रिंटिंग या दूरालेखन

दूरालेखन के विषय में भी विधान-परिषद द्वारा नियुक्त समिति में कुछ निश्चय होंगे, ऐसी आशा की जाती थी। हमें अभी तक वे निश्चय देखने को नहीं मिले। संयुक्त बैठक के अवसर पर भी इस विषय में कुछ विशेष बात न हो सकी थी। टेलीप्रिंटर से कम्पोज हुआ मैटर जनता के सामने नहीं आता। वह तो केवल संग्रथक के सम्मुख आता है जो उसे उतारता है। इसलिए टेलीप्रिंटर के लिए डा० साहब का सुझाव था कि हलंत का इतना अधिक प्रयोग किया जाय कि रेफ को छोड़कर आधे अक्षरों की आवश्यकता पड़े ही नहीं।

थोड़े से अभ्यास के बाद कम्पोजीटर-को ऐसे मैटर कम्पोज करने में कोई अड़चन न पड़ेगी। डा० साहब का मत था कि अंग्रेजी में टेलीप्रिंटर से ७६ अक्षर छापे जाते हैं, किन्तु इस प्रणाली द्वारा देवनागरी का टेलीप्रिंटर ४४ अक्षरों से ही पूरा काम करेगा। हमने उनकी योजना पर कोई निश्चय नहीं किया। इसका प्रधान कारण यह था कि यह विषय हमारे अधिकार क्षेत्र के बाहर का था।

४. टाइपराइटिंग या टंकण

इस दिशा में भी हमारे परिवर्तनों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा।

का० ना० प्र० सभा द्वारा प्रस्तावित प्रति-संस्कृत देवनागरी लिपि

जिन दोषों को दूर करना हमारा उद्देश्य था उनका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। यहाँ हम काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रस्तावित प्रति-संस्कृत देवनागरी लिपि पर विचार करेंगे। उसके बाद हम साहित्य सम्मेलन के प्रस्तावों की छान बीन करेंगे। संस्थाओं की ओर से स्वीकृत होने के कारण ये प्रस्ताव अत्यधिक महत्व रखते हैं। इन प्रस्तावों के पीछे न केबल बुद्धि है वरन् हिन्दी का एक बड़ा जनमत भी लगा होगा—ऐसा अनुमान करने का पर्याप्त कारण है। नागरी-प्रचारिणी-सभा का प्रस्ताब संस्था की ओर से आया हुआ होकर भी प्रधानतः एक व्यक्ति की कृति है। सभा का प्रस्ताव नीचे दिया जा रहा है। इसके पहले इतना यहाँ और लिख देना आवश्यक है कि सभा ने किस प्रसंग में यह प्रस्ताव किया और उसके लिए क्या अवसर था। सभा ने लिपि में सुधार की आवश्कताओं का अनुभव करके ही एक उपसमिति संगठित की थी। इस उपसमिति का क्या मंतव्य और बिचार था, पहले इसे देख लेना चाहिए।

का० ना० प्र० सभा द्वारा नियोजित लिपि उपसमिति के मंतव्य और विचार

२४-२५, ज्येष्ठ संवत २००२ को समिति ने अपने प्रथम अधिवेशन में सर्वसम्मति से यह निश्चय किया कि—

(१) उपयोगिता और प्रचार की दृष्टि से वर्तमान नागरी लिपि में सुधार और पुनः संस्कार करने की आवश्यकता है।

(२) (क) हिन्दी भाषा की जिन उच्चरित ध्वनियों के लिए प्रचलित

वर्णमाला में वर्ण नहीं हैं उनके लिए नवीन संकेत स्थिर करना।

(ख) भारत की विभिन्न प्रांतीय भाषाओं की विशेष ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए संकेत बनाना।

(ग) अन्य विदेशी भाषाओं की विशेष ध्वनियों के लिए संकेत स्थिर करके नागरी लिपि को ऐसा व्यापक रूप देना जिसमें समस्त भाषाएँ लिखी जा सकें।

(३) आवश्यकतावश नागरी लिपि का पुनः संस्कार करते समय निम्न-लिखित बातों पर ध्यान रखा जाय :—

(क) लिपि के प्रचलित रूप से प्रति संस्कृत लिपि का यथा संभव अपार्थक्य और अनुच्छेद बनाये रखना।

(ख) लेखन-सौंदर्य और मुद्रण-सौंदर्य के लिए प्रयत्न करना।

(ग) संयोग स्थलों में संयुक्त वर्णों की ऐसी आकृति रखना जिसके पहचानने में भ्रान्ति न हो।

(घ) सौंदर्य की रक्षा करना।

(४) किसी सुधार और संस्कार पर सभा की स्वीकृति दिलाने के पहले जितने महत्वपूर्ण प्रयत्न अब तक लिपि को उपयोगी बनाने के लिए किये गये हैं उन्हें एकत्र करके उन पर विचार करना।

इस निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए देश के प्रमुख हिन्दी पत्रों में यह प्रार्थना प्रकाशित की गई थी कि इस दिशा में कार्य करने वाले सज्जन और संस्थाएँ अपने-अपने प्रयत्न की सूचना और सामग्री समिति के पास भेजने की कृपा करें।

इसके उपरान्त समिति ने अपने निम्नलिखित विचार प्रकट किये :—

समिति के विचार

(१) अभी केवल हिन्दी और संस्कृत के लिए उपयुक्त लिपि का ही सुधार किया जाना चाहिए।

(२) पठन-पाठन और लेखन में सरलता लाने का उद्देश्य सिद्ध करने के लिए लिखित और मुद्रित लिपि का रूप एक ही होना चाहिए।

(३) यद्यपि प्रचलित रीति के अनुसार संयुक्ताक्षरों को ऊपर-नीचे लिखने तथा मात्राओं को ऊपर-नीचे आगे-पीछे लगाने की स्वतंत्रता हस्तलिखित में बरती जा सकती है, तथापि मुद्रण सौंदर्य के लिए यह आवश्यक है कि नागरी लिपि के संयुक्ताक्षर और मात्राएँ दाहिनी और बगल में एक ही पंक्ति में लगाई जायँ। इसके पश्चात समिति ने आगत और प्राप्त मुख्य-मुख्य प्रयत्नों और योजनाओं पर विचार किया । स्वरों और व्यंजनों के सम्बन्ध में जो सुझाव और सुधार इनमें दिखाई दिये उनका संक्षेप निम्नलिखित ढंग से अंकित किया जाता है :—

(क) स्वरों के सम्बन्ध में एक को छोड़कर प्राय: सभी योजनाओं में अ की बारह खड़ी बनाई गई है ।

(ख) संयुक्त व्यंजनों को प्राय: एक ही पंक्ति में रखने की विधि स्वीकृत की गई है ।

अब नीचे हम वह अंश देते हैं जो सभा की ओर से प्रस्ताव के रूप में उपर्युक्त समिति द्वारा स्वीकृत हुआ था ।

सुधार के इन प्रयत्नों में केवल श्री श्रीनिवास का प्रयत्न समिति को विशेष संगत प्रतीत हुआ, उन्होंने समूचे अ की बारहखड़ी नहीं की है जो विज्ञान और व्यवहार दोनों की दृष्टि से भ्रामक और अशुद्ध है । ये अ के असंकेतित अतएव निरर्थक अंश उ के साथ भिन्न-भिन्न उत्तरार्द्ध (मात्राओं) का प्रयोग करके स्वरों का बोध कराते हैं। ऐसा करने से स्वरों में समानता भी आ गई है और प्रत्येक स्वर का लिपिगत रूप भी भिन्न हो गया है। इनकी स्वर लिपि में एकमात्रिक ह्रस्व और द्विमात्रिक दीर्घ परम्परा का निर्वाह भी है, श्रीनिवास प्रत्येक वर्ग की खड़ी रेखा पूर्ण या अपूर्ण को स्वर की मात्रा मानते हैं और उनके प्रयोग से वर्णों को सस्वर और अप्रयोग से स्वरहीन समझते हैं । इसी प्रकार प्रत्येक वर्ग के प्रथम और चतुर्थ वर्णों का बोध कराते हैं, पंचम वर्णों की आकृति भी ये भिन्न नहीं रखते, अपने-अपने वर्ग के किसी अल्पप्राण वर्ण में अनुस्वार का चिह्न लगा कर उन्हें व्यक्त करते हैं जैसे 'प' में अनुस्वार का चिह्न (.) लगाकर म होता है । यद्यपि ये कल्पनाएँ नवीन हैं और प्राचीन

रूपों से इनमें पार्थक्य बहुत है, तथापि टाइपराइटर या लाइनो टाइप द्वारा मुद्रण में इनसे बड़ी सुगमता आ जाती है, इस सम्बन्ध के कतिपय अन्य सुझावों से इनका यह सुझाव सर्वथा सरल और व्यवस्थित है, इसमें सन्देह नहीं। इन सुझावों में समिति को दो बातें खटकती हैं । एक तो महाप्राण चिह्न इतना सूक्ष्म है कि उसमें स्पष्टता न होने पर माथ बांप हो जायगा और दूसरे पंचम वर्ण लिखने में अनुस्वार का चिह्न किस अल्पप्राण में जोड़ा जाय यह अनिश्चित है, श्री श्रीनिवास से समिति अनुरोध करती है कि वे इन दोषों को दूर करने की चेष्टा करें।

अन्त में समिति सभा को यह परामर्श देती है कि वह श्री श्रीनिवास द्वारा प्रति संस्कृत इस लिपि को देश के अधिकारी विद्वानों, विश्वविद्यालयों, साहित्य

संस्थाओं, मुद्रण कार्यालयों तथा टाइपराइटर और लाइनोटाइप निर्माताओं के पास आलोचना सम्मति या समुन्नति की प्रार्थना के साथ भेजकर सबका मत संग्रह करे और अनुकूल मत प्राप्त होने पर उसके प्रचार का उपाय करे।

यही लिपि नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हमारे पास आयी थी। इसके प्रस्तुत करने वाले हैं श्री श्रीनिवास जी। उन्हें हम लोगों ने इस लिपि के सम्बन्ध में साक्ष्य देने के लिए बुलाया था। वे समिति के सम्मुख ता० १७ मई ४८ को उपस्थित हुए थे। उन्होंने अपने जो विचार प्रगट किये उन्हें हम नीचे लिख रहे हैं—

श्री श्रीनिवास जी का आग्रह था कि परिवर्तन से हमें घबराना न चाहिए और हमारी लिपि में परिवर्तन बराबर होता ही आ रहा है। इन्हीं परिवर्तनों के कारण ही हमारी लिपि इतनी वैज्ञानिक हो सकी है और इसे पूर्णता पर पहुँचाने के लिए पुन: परिवर्तन की आवश्यकता है। उनके अनुसार स्वरों की आकृति में सरलता अपेक्षित है। किन्तु इस सरलता के लिए वे 'अ' की बारह-खड़ी की सीमा पर जाना नहीं चाहते। इस सम्बन्ध में उनके ऐसे ही विचार हैं और ६ प्वाइंट या उससे भी छोटे अक्षरों की छपाई तथा लिखने और बच्चों को समझाने में आसानी लाने के लिए वे अपने सुझावों को अत्यधिक उपयोगी समझते हैं। उन्होंने अपना साक्ष्य देते समय इन अक्षरों को लिखकर दिखाया और उनके वैज्ञानिक आधार और उपयोगिता की व्याख्या की। उन्होंने यह भी बताया कि हिन्दी की वर्णमाला में कुछ ध्वनियों की कमी है और उन ध्वनियों के आधार पर नवीन आकृतियों की योजनाओं को भी स्पष्ट किया। श्री श्रीनिवास जी के विचार में पर-प्रांतीय-पड़ोसी भाषाओं के बोलने वालों को नागरी लिपि में लिखी गई भाषा में कुछ असुविधाएँ भी होती हैं और उनको दूर किया जाना भी बहुत आवश्यक है। उन्होंने तमिल भाषा-भाषी का उदा-हरण देते हुए बताया कि वह हिन्दी के 'ई' को देखकर 'इई' का भ्रम करता है। उनका विश्वास है कि यदि उनकी योजना स्वीकार कर ली गई तो सम्प्रति काम में लाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के ६६० अक्षरों और संकेतों के स्थान पर बहुत कम अक्षर और चिन्हों की आवश्यकता पड़ेगी तथा इसके साथ

ही एक संकेत के लिए टाइपराइटर में एक ही मुद्री की जरूरत पड़ेगी ।

अब हम नीचे उनके सुझावों का उल्लेख करेंगे जिन्हें वे अत्यावश्यक मानते हैं । उनके सिद्धांतों और सुझावों का उल्लेख कर लेने के बाद ही समिति के विचारों का उल्लेख समीचीन होगा ।

(१) प्रत्येक स्वर वर्ण का पूर्वार्द्ध समान रूप से 'उ' हो जाना निमित्त मात्र रहें ।

(२) आंग्ल शब्द at और all में जो स्वर उच्चरित होते हैं उनके लिए भी वर्ण बढ़ाये जायँ ।

(३) स्वर वर्णों का उत्तरार्द्ध भिन्न हो जिसे उस स्वर की मात्रा माना जाय ।

(४) 'अ', 'आ' स्वर वर्णों का उत्तरार्द्ध (मात्रा) उनके पूर्वार्द्ध के बराबर रखा जाय किंतु जो स्वर जिह्वा की नोक से उच्चरित होते हैं जैसे ई, ए, उनका उत्तरार्द्ध (मात्रा) पंक्ति से ऊपर उठा हो तथा जो स्वर जिह्वामूल से उच्चरित होते हैं जैसे उ, ओ उनके वर्णों का उत्तरार्द्ध (मात्रा) नीचे उतरा हो, जैसे रोमन अक्षरों में a, b, g, के उत्तरार्द्ध क्रमशः पंक्ति से सम, ऊपर उठे तथा नीचे उतरे होते हैं ।

(५) जिस स्वर या मात्रा में ' ' चिह्न लगाया जाय उसे ह्रस्व अथवा एक चिह्न माना जाय । जिसमें यह चिह्न न हो उनको दीर्घ अथवा द्विमात्रिक समझा जाय ।

(६) स्वर्ण वर्ण में ध्वनिक्रम के अनुसार उपयुक्त मात्राओं को लगाकर संध्यक्षर बनाया जाय ।

(७) मात्रा, अस्वर व्यंजन (वह व्यंजन जो खड़ी रेखा-रहित है) के पश्चात लगाई जाय । पीछे, ऊपर और नीचे नहीं ।

(८) प्रत्येक अ कारन व्यंजन का उत्तरार्द्ध पूर्ण खड़ी रेखायुक्त हो । रेखा-रहित होने पर शुद्ध व्यंजन अथवा अस्वर माना जाय ।

(९) संयुक्त अक्षर ध्वनि क्रम से वर्ण के पश्चात उपयुक्त मात्रा रखकर

संस्थाओं, मुद्रण कार्यालयों तथा टाइपराइटर और लाइनोटाइप निर्माताओं के पास आलोचना सम्मति या समुन्नति की प्रार्थना के साथ भेजकर सबका मत संग्रह करे और अनुकूल मत प्राप्त होने पर उसके प्रचार का उपाय करे।

यही लिपि नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हमारे पास आयी थी। इसके प्रस्तुत करने वाले हैं श्री श्रीनिवास जी। उन्हें हम लोगों ने इस लिपि के सम्बन्ध में साक्ष्य देने के लिए बुलाया था। वे समिति के सम्मुख ता० १७ मई ४८ को उपस्थित हुए थे। उन्होंने अपने जो विचार प्रगट किये उन्हें हम नीचे लिख रहे हैं—

श्री श्रीनिवास जी का आग्रह था कि परिवर्तन से हमें घबराना न चाहिए और हमारी लिपि में परिवर्तन बराबर होता ही आ रहा है। इन्हीं परिवर्तनों के कारण ही हमारी लिपि इतनी वैज्ञानिक हो सकी है और इसे पूर्णता पर पहुँचाने के लिए पुनः परिवर्तन की आवश्यकता है। उनके अनुसार स्वरों की आकृति में सरलता अपेक्षित है। किन्तु इस सरलता के लिए वे 'अ' की बारह-खड़ी की सीमा पर जाना नहीं चाहते। इस सम्बन्ध में उनके ऐसे ही विचार हैं और ६ प्वाइंट या उससे भी छोटे अक्षरों की छपाई तथा लिखने और बच्चों को समझाने में आसानी लाने के लिए वे अपने सुझावों को अत्यधिक उपयोगी समझते हैं। उन्होंने अपना साक्ष्य देते समय इन अक्षरों को लिखकर दिखाया और उनके वैज्ञानिक आधार और उपयोगिता की व्याख्या की। उन्होंने यह भी बताया कि हिन्दी की वर्णमाला में कुछ ध्वनियों की कमी है और उन ध्वनियों के आधार पर नवीन आकृतियों की योजनाओं को भी स्पष्ट किया। श्री श्रीनिवास जी के विचार में पर-प्रांतीय-पड़ोसी भाषाओं के बोलने वालों को नागरी लिपि में लिखी गई भाषा में कुछ असुविधाएँ भी होती हैं और उनको दूर किया जाना भी बहुत आवश्यक है। उन्होंने तमिल भाषा-भाषी का उदा-हरण देते हुए बताया कि वह हिन्दी के 'ई' को देखकर 'इई' का भ्रम करता है। उनका विश्वास है कि यदि उनकी योजना स्वीकार कर ली गई तो सम्प्रति काम में लाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के ६६० अक्षरों और संकेतों के स्थान पर बहुत कम अक्षर और चिन्हों की आवश्यकता पड़ेगी तथा इसके साथ

ही एक संकेत के लिए टाइपराइटर में एक ही मुद्री की जरूरत पड़ेगी।

अब हम नीचे उनके सुझावों का उल्लेख करेंगे जिन्हें वे अत्यावश्यक मानते हैं। उनके सिद्धांतों और सुझावों का उल्लेख कर लेने के बाद ही समिति के विचारों का उल्लेख समीचीन होगा।

(१) प्रत्येक स्वर वर्ण का पूर्वार्द्ध समान रूप से 'उ' हो जाना निमित्त मात्र रहें।

(२) आंग्ल शब्द at और all में जो स्वर उच्चरित होते हैं उनके लिए भी वर्ण बढ़ाये जायँ।

(३) स्वर वर्णों का उत्तरार्द्ध भिन्न हो जिसे उस स्वर की मात्रा माना जाय।

(४) 'अ', 'आ' स्वर वर्णों का उत्तरार्द्ध (मात्रा) उनके पूर्वार्द्ध के बराबर रखा जाय किंतु जो स्वर जिह्वा की नोक से उच्चरित होते हैं जैसे ई, ए, उनका उत्तरार्द्ध (मात्रा) पंक्ति से ऊपर उठा हो तथा जो स्वर जिह्वामूल से उच्चरित होते हैं जैसे उ, ओ उनके वर्णों का उत्तरार्द्ध (मात्रा) नीचे उतरा हो, जैसे रोमन अक्षरों में a, b, g, के उत्तरार्द्ध क्रमशः पंक्ति से सम, ऊपर उठे तथा नीचे उतरे होते हैं।

(५) जिस स्वर या मात्रा में ' ' चिह्न लगाया जाय उसे ह्रस्व अथवा एक चिह्न माना जाय। जिसमें यह चिह्न न हो उनको दीर्घ अथवा द्विमात्रिक समझा जाय।

(६) स्वर्ण वर्ण में ध्वनिक्रम के अनुसार उपयुक्त मात्राओं को लगाकर संध्यक्षर बनाया जाय।

(७) मात्रा, अस्वर व्यंजन (वह व्यंजन जो खड़ी रेखा-रहित है) के पश्चात लगाई जाय। पीछे, ऊपर और नीचे नहीं।

(८) प्रत्येक अ कारन व्यंजन का उत्तरार्द्ध पूर्ण खड़ी रेखायुक्त हो। रेखा-रहित होने पर शुद्ध व्यंजन अथवा अस्वर माना जाय।

(९) संयुक्त अक्षर ध्वनि क्रम से वर्ण के पश्चात उपयुक्त मात्रा रखकर

बनाया जाय। पंक्ति में पहले स्वर व्यंजनों को रखा जाय, फिर मात्रा को, ऊपर नीचे नहीं।

(१०) प्रत्येक अल्पप्राण वर्ण में एक-सा चिह्न ' ' लगाकर उस वर्ण का महाप्राण वर्ण व्यक्त किया जाय, जैसे प से फ होता है।

(११) प्रथम तीनों वर्णों के तीसरे वर्णों में और पश्चात के दोनों वर्णों के प्रचलित प्रथानुसार प्रथम वर्णों में अनुस्वार ' ˙ ' चिह्न लगाकर उस वर्ग का पंचम वर्ण बनाया जाय।

जैसे—प से म होता है।

(१२) क का रूप क (जैसा क्त में) श का रूप श्र और र का रूप ्र (जैसा श्र में होता है) केवल एक रूप प्रत्येक स्थल पर माना जाय।

(१३) 'उ' 'ह' में रूप लाघव किया जाय और पूर्ण खड़ी रेखा-युक्त किया जाय।

(१४) 'क', 'ट', 'ड', 'द' और 'ह' प्रत्येक अकारान्त वर्ण पूर्ण खड़ी रेखा-युक्त रखा जाय।

(१५) f, Zh और Z के लिए वर्ण बढ़ाये जायँ।

श्री श्रीनिवास जी का सिद्धांत है कि उपयुक्त सिद्धांतों के अनुकूल केवल १२ स्वर चिह्नों से संस्कृत, हिन्दी तथा भारत एवं भारत की सभी भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी, फारसी और अरबी के उच्चारण भी शुद्ध व्यक्त किये जा सकेंगे। इसके प्रति संस्कृत देवनागरी लिपि का मुद्रण तथा यंत्रों द्वारा व्यवहार सहज ही किया जा सकता है। इसमें मुद्राओं की संख्या कम होने से हाथ से जोड़ने (कम्पोजिंग) में भी पहले की अपेक्षा सरलता तथा त्वरा दोनों प्राप्त हो जायेगी।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रस्तावित लिपि तथा उसके समर्थन में श्री श्रीनिवास जी का साक्ष्य हम लोगों ने ऊपर देख लिया। अब हम इस लिपि के सम्बन्ध में समिति की राय का उल्लेख करते हैं।

समिति के विचार

हम उनके सुझावों पर अपने विचार उसी क्रम से व्यक्त कर रहे हैं, जिस

क्रम से उनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। स्वरों की आकृति के विषय में जिस एकरूपता की आवश्यकता का अनुभव श्री बाबा जी ने किया है उसकी उपयोगिता समिति आवश्यक नहीं समझती। जब तक व्याकरण विधान के आधार पर हम विभिन्न स्वरों की स्वतंत्र सत्ता मानते रहेंगे तब तक उनका विभिन्न रूपों में प्रकट किया जाना भी वैज्ञानिक और सरल होगा। समिति 'अ' 'इ' 'ए' की स्वतंत्र सत्ता मानती है और 'ए' को भी भिन्न रूप से लिखा जाना आवश्यक समझती है। समिति जहाँ कहीं भी प्रचलित अक्षरों के रूप में परिवर्तन का विरोध करेगी वहाँ वह अपने उस सिद्धान्त के अनुसार ही काम करेगी जिसके अन्तर्गत उसने रूप परिवर्तन को अनावश्यक और अहितकर माना है और इस बात का अनुरोध किया है कि यथासम्भव रूप परिवर्तन न किया जाय। इस दृष्टि से हमारा सभा के भी विचारों से साम्य है। सभा का भी विचार है कि लिपि के प्रचलित रूप से प्रति-संस्कृत लिपि का यथासम्भव अपार्थक्य और अनुच्छेद बनाये रखा जाय। अतएव समिति का निश्चित मत है कि 'अ' 'इ' 'ऊ' और 'ए' के वर्तमान रूप को ही स्वीकार किया जाय।

२—इस समय यह बात अत्यंत विचारणीय है कि प्रस्तुत समस्या का समाधान अक्षरों की अधिकता को, जिसका उल्लेख कठिनाइयों की श्रेणी में मुद्रण विशेषज्ञ सबसे पहले करते हैं, बनाये रखने में है अथवा उनमें कमी करने में है। यदि हम यह मानते हैं कि मुद्रण की सुविधा के लिए हमारे अक्षरों में कमी आवश्यक है तो हमारे सामने जो प्रश्न उपस्थित होता है वह कमी का है न कि उसमें और भी अधिक संकेतों के बढ़ाने का। सच तो यह है कि हमारा उद्देश्य आदर्श रूप में तभी प्राप्त होगा जब हम अपनी वर्णमाला में न्यूनतम परिवर्तन से ही सब आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त कर लें। नये संकेतों का समावेश का प्रश्न तो तब उठाना चाहिए जब हमें मुद्रण की आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हो जायँ और फिर भी स्थान की दृष्टि से अधिक संकेतों की आवश्यकता पूरी होने की सम्भावना बनी रहे। यह समिति ऐसा मानती है कि ये नवीन ध्वनियाँ विशेष चिह्नों के प्रयोग से उसी प्रकार व्यक्त कर ली जायें जिस प्रकार रोमन लिपि में हमारी भाषा की ध्वनियाँ व्यक्त की जाती हैं। किन्तु हमारे

टाइपराइटर पर हमारी स्वीकृत वर्णनाला को स्थान मिल जाने के पश्चात यदि स्थान बचा रहे तथा मुद्रणालयों में छपाई की आवश्यक सुविधाएँ मिल जाने के अनंतर यदि मुद्रण-विशेषज्ञ इनके समावेश में कठिनाई का अनुभव न करें तभी इन पर विचार किया जाना सम्भव और उचित होगा।

३—श्री श्रीनिवास जी के इस सुझाव का विचार, कि स्वर वर्णों का उत्तरार्द्ध भिन्न हो जिसे उस स्वर की मात्रा माना जाय, यहाँ आवश्यक इसलिए नहीं है कि हम उनके प्रथम सुझाव पर विचार करते समय यह स्पष्ट कर चुके हैं कि स्वरों की स्वतंत्र सत्ता को यह समिति स्वीकार करती है। ऐसी दशा में स्वरों के स्वीकृत रूप के उत्तरार्द्ध में खड़ी पाई नहीं रह जायगी और तब यह सुझाव उपादेय न होगा।

४—मात्रा-विधान के सन्बम्ध में समिति नागरी के प्रचलित मात्रा-विधान को ही उत्तम समझती है किंतु मुद्रण की सुविधा के लिए इसमें परिवर्तन आवश्यक है। परिवर्तन कैसा हो, यही द्रष्टव्य है। श्री श्रीनिवास जी के परिवर्तन में प्रचलित रूप से भेद हो जाता है और इस दिशा में भी समिति प्रचलित रूप से बहुत अधिक पार्थक्य और उच्छेद और हानिकर समझती है। किंतु परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव करने के कारण समिति ने जो परिवर्तन किये हैं उसका उल्लेख आगे चलकर किया गया है।

५—श्री श्रीनिवास जी के एकमात्रिक, द्विमात्रिक आदि का भेद समिति को मान्य नहीं हुआ। प्रस्तुत लिपि के वर्णों के रूप पर विचार करते समय यह निश्चय हुआ कि यथासम्भव वर्णों का रूप परिवर्तन ग्राह्य नहीं हो सकता। एकमात्रिक, द्विमात्रिक आदि का सिद्धांत हमें अक्षरों के उन रूपों को ग्रहण करने के लिये बाध्य करना है जो प्रचलित रूपों से प्रायः भिन्न हैं। हिंदी की प्रकृति जैसी रही है उसके अनुसार तो संस्कृत का प्लुत भी हिंदी व्याकरण में स्थान न पा सका और हिंदी ह्रस्व और दीर्घ को ही लेकर अब तक उन्नति के पथ पर अग्रसर होती आई है। अब उसमें दो और सूक्ष्म भेद करके वैज्ञानिकता के नाम पर नागरी को बालबोध के अनुपयुक्त बनाना समिति को ठीक न लगा।

७—श्री श्रीनिवास जी का यह सुझाव कि मात्रायें उच्चारणक्रम से वर्णों

के पश्चात् दाहिनी ओर लगाई जायँ न कि ऊपर नीचे और बायें, समिति को भी आंशिक रूप से स्वीकार है। समिति का भी विचार है कि इन मात्राओं के स्थान में परिवर्तन करने से छापे में बहुत सुविधा प्राप्त हो जायगी। यहाँ हम केवल यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि मात्राओं को ऊपर नीचे तो लगाना ही होगा चाहे वह थोड़ा दाहिनी ओर हटकर ही क्यों न लगें।

८—इस विषय में जैसा कि आवश्यकतावश पूर्व पृष्ठों में भी उल्लेख हो चुका है, श्री श्रीनिवास जी से हम पूर्णतया सहमत न हो सके। हाँ, यह हमने आवश्यक समझा कि देवनागरी में प्रचलित अक्षरों के उन रूपों को यहाँ स्वीकृत किया जाय तथा मान्यता प्रदान की जाय जिनके उत्तरार्द्ध खड़ी पाई-युक्त हों।

९—समिति इस बात को मानती है कि संध्यक्षर बनाते समय ध्वनिक्रम का ध्यान रखा जाय और उसी क्रम से वर्णों का रूप आधा या पूरा होना चाहिए। वस्तुतः यह बड़ी अशोभन बात थी कि संयुक्त रूप में कहीं वे अक्षर जो पूर्ण रूप से उच्चरित होते हैं उनका रूप आधा और जो अर्ध उच्चरित होते हैं उनका पूरा रूप लिखा रहता है यथा उद्धव।

१०—श्री श्रीनिवास जी के इस सिद्धांत से कि प्रत्येक अल्पप्राण वर्ग में एक-सा चिह्न लगा कर उसका महाप्राण रूप बनाया जाय, समिति सहमत न हो सकी। ऐसा करने से जो कठिताइयाँ उपस्थित हो जायँगी उनका ही उल्लेख हम यहाँ करेंगे। सैद्धांतिक विरोध को हम यहाँ स्थान नहीं दे रहे हैं। इस सुझाव को मान लेने का अर्थ होता है कि क, ब, ट, त, प में महाप्राण का चिह्न लगा कर ख, छ, ठ, थ, फ बनाये जायँ और ग, ज, ड, द, ब में महाप्राण के चिह्न लगा कर घ, झ, ढ, ध, भ बनाये जायँ। ऐसा करने में सर्वप्रथम कठिनाई तो यह उत्पन्न होती कि प को छोड़कर इस प्रकार बनाये गये सभी महाप्राण अक्षर इस समय के प्रचलित महाप्राण वर्णों से रूप में सर्वथा भिन्न होते। टाइप राइटर पर यह कठिनाई उत्पन्न हो जाती कि अभी तक एक ही बार में टाइप-होने वाले महाप्राण वर्ण तब दो बार दो मुद्रियों के दबाने से बनते और टाइप-राइटर की त्वरा में वृद्धि के बदले हम उसकी त्वरा और भी कम कर देने के दोषी बनते। हमारे सामने जो समस्या टाइपराइटर से सम्बद्ध है वह अक्षरों के

बचत की उतनी नहीं जितनी त्वरा उत्पन्न करने की । त्वरा की दृष्टि से 'भ' का सम्पूर्ण रूप में एक बार ही टाइप किया जाना आवश्यक, उपादेय और तीव्र होगा उतना 'ब' में महाप्राण का चिह्न लगा कर 'भ' को दो बार में टाइप करना नहीं । एक बात और भी थी । इस सिद्धांत के अनुसार बनाये गये महाप्राणवर्णों के आधे रूप और इन्हीं के अल्पप्राण पूरे रूपों में समता होने के कारण यह नहीं बताया जा सकता कि कौन 'ब' है और कौन आधा 'भ' ।

११—पंचम वर्णों के विषय में जो सुझाव श्री श्रीनिवास जी ने दिये, प्रचलित रूप से एकदम पार्थक्य और उच्छेद होने के कारण समिति को ग्राह्य नहीं हुए । साथ ही उनके अनुस्वार-युक्त और अननुस्वार-युक्त रूपों में बहुत भ्रम उत्पन्न होता ।

१२—वह प्रश्न बहुत ही विवादग्रस्त रहा कि 'र' का क्या रूप हो । कई बार इसमें परिवर्तन हुए और अंततः समिति ने अपनी अंतिम बैठक में 'र' का '्र' रूप ही स्वीकार किया ।

१३—उ और ह के रूप लाघव का भी प्रश्न विचाराधीन रहा । उ में तो कोई परिवर्तन न हो सका किन्तु ह में कुछ रूप लाघव आवश्यक समझा गया ।

१४—क, ट, ड, द और ह जैसे अकारान्त वर्णों को पूर्ण खड़ी रेखा-युक्त रख जाने के विषय में समिति के विचारों का उल्लेख प्रसंगवश पहले ही किया जा चुका है कि समिति इसे अनिवार्यता देने में असमर्थ हुई । किन्तु उन वर्णों का वह रूप अवश्य स्वीकार किया जो पहले से खड़ी पाई-युक्त रूप में प्रचलित थे ।

१५—दूसरी भाषाओं के अक्षरों के लिए नवीन ध्वनि-संकेतों के स्थिर करने के विषय में भी समिति के विचारों का उल्लेख हो चुका है । जहाँ तक उनके लिपिगत सुझावों की बात थी, समिति के विचारों का उल्लेख कर दिया गया । समिति ने क्या स्वीकार किया और उसके क्या अनुरोध होंगे इनका स्वतंत्र रूप से उल्लेख आगे के आठवें अध्याय में किया गया है । अभी उसमें साहित्य सम्मेलन के प्रस्तावों की छानबीन करनी है, विशिष्ट व्यक्तियों और विशेषज्ञों के भी सुझावों का परीक्षण करना है, अतएव उन्हें देखने के बाद ही स्वतन्त्र मत स्थिर किया जा सकता है । श्री श्रीनिवास जी की टेलीप्रिंटर-सम्बन्धी योजना पर विचार यहाँ इसलिए नहीं किया गया कि वह समिति के अधिकार क्षेत्र की सीमा के बाहर की बात थी ।

४ : बंबई सरकार की लिपि-सुधार-समिति द्वारा मराठी व गुजराती लिपियों का सुधार-सम्बन्धी अभिमत ।

[२० मई सन् १९४९ में मराठी और गुजराती लिपियों में सुधार हो, इसलिए एक लिपि-सुधार-समिति भी काका कालेलकर जी की अध्यक्षता में नियुक्त की गई थी। उन्होंने एक प्रश्नावली तैयार कर विद्वानों के पास भेजी थी जिसके उत्तर उस समिति को प्राप्त हुए थे । उक्त समिति की रिपोर्ट में पृष्ठ ३ पर लिपि-आन्दोलन का इतिहास संक्षेप में दिया गया है । उसमें से आवश्यक अंश लेकर यह लेख प्रस्तुत किया गया है। नागरी लिपि-सुधार कार्य में साहित्य सम्मेलन प्रयाग की नियुक्त समिति में भी श्री कालेलकर जी ही अध्यक्ष थे अतः मराठी और गुजराती, जो देवनागरी लिपि की ही अलग पद्धतियाँ हैं, उनमें सुधार करने से नागरी लिपि के लिए भी वे उपादेय सिद्ध हो सकते हैं।]

लिपि-सुधार क्यों ?

जिस नागरी परिवार में मराठी (बालबोध) और गुजराती इन दोनों लिपियों का समावेश हो जाता है उस नागरी लिपि में राष्ट्र-भाषा हिन्दी लिखी जाती है । इसलिए यदि सुधार पहले वहीं किया गया तो वह सर्वत्र स्वीकृत होगा या उसको स्वीकार किया जावे, ऐसी सूचना भी की गई थी । इस तरस के प्रयत्न पहले भी हुए है और उसमें महाराष्ट्र और गुजरात इन दोनों प्रान्तों ने भाग लिया है । वहाँ पर जो सुझाव किये गये तथा उनके अनुसार जो सुधार स्वीकृत हुए, उनको ध्यान में रखते हुए प्रचलित कार्य हो रहा है । ऐसा होने पर भी अखिल भारतीय स्वरूप की समिति निर्माण कर काम करना आज की परिस्थिति में ठीक नहीं है । उत्तर प्रदेश की सरकार के द्वारा एक समिति 'नागरी लिपि-सुधार-समिति' के नाम से केवल उत्तर प्रदेश

के लिए नियुक्त की गई और उसका कार्य भी पूरा हो चुका है । हिन्दी की ही तरह नागरी लिपि का उपयोग करने वाले गुजरात और महाराष्ट्र प्रान्त की इस द्विभाषी सरकार द्वारा लिपि-सुधार के प्रश्न को हाथ में लेना उपयुक्त ही था। अनुभव यह बतलाता है कि स्थानीय सुविधाएँ तथा असुविधाएँ विचार स्वतंत्र रूप से जिन-जिन प्रान्तों में किया जाता है वहाँ-वहाँ सुधार का कार्य भी आगे बढ़ता है, तथा जनमत का झुकाव किस ओर है, इसे भी हम जान पाते हैं। यदि एक प्रान्त इस प्रकार किसी कार्य में आगे बढ़ता है तो दूसरे प्रान्त पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता ।

महाराष्ट्र में देवनागरी लिपि-सुधार

महाराष्ट्र में न्यायमूर्ति रानडे के जमाने से बड़े-बड़े व्यक्तियों के द्वारा लिपि में सुधार किया जाय, इस विषय को लेकर काफी प्रयत्न हुए । इसके बारे में महाराष्ट्र-साहित्य-परिषद, पुणे द्वारा लिपि-सुधार-समिति नियुक्त की गई तथा मराठी साहित्य सम्मेलन अधिवेशनों में लिपि-सुधार के बारे में प्रस्ताव भी पास किये गये। महाराष्ट्र के कई मुद्रणालयों के संचालकों द्वारा लिपि-सुधार का प्रश्न उठाया गया तथा नये टाइप ढलवा कर लोकमत को आजमाने का प्रयोग भी किया गया। लोगों के ध्यान में यह आया ही नहीं कि परिवर्तन कैसे होता रहा। इसी तरह इन लोगों ने अपने सुधारों का प्रयोग जारी रखा। लोकमत में प्रत्यक्ष रूप से इस दिशा में पर्याप्त जागृति करने का कार्य श्री विनोबा भावे ने अपने पत्र "लोक नागरी" में आरंभ किया। उसके भी पूर्व श्री स्वातंत्र्यवीर सावरकर के द्वारा भी इस विषय में काफी प्रयत्न किया गया था।

गुजराती समाज में नागरी लिपि-व्यवहार की प्रवृत्ति

लिपि-सुधार के बारे में जितनी चर्चाएँ वा आन्दोलन महाराष्ट्र में चले, उतने गुजरात में नहीं हुये, किन्तु गुजरात में छापाखानों का आरंभ जब से हुआ तब से एक महत्वपूर्ण कार्य अर्थात् शिरोरेखा-विरहित छपाई का कार्य आरंभ हुआ। पहले गुजरात में भी महाराष्ट्र की मोडी लिपि की तरह गुजराती लिपि कागज के के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ही पूरी शिरोरेखा खींचकर उन पर

अक्षर लटकाए जाते थे। शिला प्रेस (लिथो प्रेस) पर भी पहले वैसे ही अक्षर खोदे जाते थे। फिर लोगों ने सोचा कि यदि इस शिरोरेखा को भी हटाया जाय तो कोई हर्ज नहीं। अतः इसके बाद गुजराती अक्षर शिरोरेखा-रहित लिखे जाने लगे। ए ऐ के अे अै ये रूप गुजराती लिपि का द्वितीय सुधार माना जा सकता है। भारत में अन्यत्र पुरानी पोथियों में ये ही रूप मिलते हैं। इसके अतिरिक्त नागरी अक्षरों को सुन्दर बनावट का रूप देकर उनको सुलभता से लिखने योग्य बनाने का श्रेय गुजराती को दिया जा सकता है। इसके बाद की प्रगति याने गुजराती का नागरीकरण है। इस विषय में सक्रियता से व्यापक प्रमाण में महात्मा गाँधी जी ने विशेष कार्य किया। अपनी आत्मकथा का एक विशेष अच्छा संस्करण उन्होंने नागरी में छपवाया और उसकी कम कीमत रखकर नागरी का प्रचार किया। नागरी लिपि में छपे हुए उस आत्मकथा के संस्करण की भूमिका में गाँधी जी ने घोषित किया था कि वे लिपि सुधार का समर्थन करने वालों का पक्ष लेने वाले हैं। गांधी जी "अ" की स्वराक्षरी लोकप्रिय करने वाले थे। उसी का अवलंब "नवजीवन" के हिन्दी मराठी और गुजराती में प्रकाशित पुस्तकों में किया गया है। "कुमार" और "प्रस्थान" मासिकों के कार्यालयों की ओर से इस कार्य में जो सक्रिय भाग लिया गया वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने विशेष चर्चा न करते हुए इस कार्य को आगे बढ़ाया था।

लिपि-सुधार के बारे में कुछ मतों का अनुशीलन

गुजराती समाज में नागरी-लिपि के व्यवहृत करने की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। पुरानी सरकारी पाठ्यपुस्तकों के पाठों के शीर्षक और कविताएँ नागरी में ही छापी जाती थीं। गुजराती साहित्य परिषद की ओर से कई अधिवेशनों में नागरीकरण का प्रस्ताव पास हुआ और उसे मान्यता दी गई। सारांश यह कि विशेष आन्दोलन किए बिना गुजरात ने लोकमत को नागरी की शिक्षा दी। कुछ लोगों का कथन है कि लिपि में जो कुछ भी सुधार करने हों उनको तुरंत कर लेना उचित होगा। उनका कहना है कि लिपि सुधार का कार्य शल्य क्रिया की तरह है। शल्य क्रिया एक बार बड़ी खूबी तथा सफाई से कर देने पर जो वेदनाएँ

होती हैं वे जखम के अच्छे हो जाने के बाद फिर नहीं होतीं। तत्वतः यह सच होने पर भी जनमत ऐसी बातों को सहसा मान्यता देने में तत्पर नहीं रहता। किसी भाषा को एकदम नई लिपि में लिखने का आरंभ करना आजकल के युग में असंभव है। सरकार को भी जनमत के आगे जाकर कार्य करना कठिन हो जाता है।

जनमत और सुधार

लिपि-सुधार की बात ही ऐसी है कि प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व के द्वारा समाज में उसका प्रचार न किया जाय तब तक वह ग्राह्य नहीं हो सकती। एक बार जनमत के तैयार होते ही सरकारी प्रेरणा व सहकार्य से उसे सार्वजनीन बनाया जा सकता है। इसके बाद वह प्रयोग सुलभ भी हो जाता है परन्तु उसके पहले सुधार के अनुकूल जनमत बना लेना आवश्यक है। इसीलिए इस समिति पर यह उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि वह अपने कार्य क्षेत्र में किस क्रम से इन सुधारों को कार्यान्वित करे।

लिपि-सुधार के कारणों पर विचार

यांत्रिक प्रगति के युग में मुद्रण, टंकलेखन, दूरालेखन आदि विषयों में अपनी लिपियाँ पीछे न रहें, और साक्षरता प्रसार में गतिशीलता आ जाय, इस तरह दोनों बातों को ध्यान में रखकर कम से कम जो सुधार आवश्यक हैं उन पर यहाँ हमने विचार किया है। टेलीप्रिंटर—दूरालेखन के बारे में योजना सुझाने का कार्य भी हमारा था। समय की कमी और इस सुधार का क्षेत्र विभिन्न होने से हमने उसका विचार नहीं किया है।

लिपिग्रहण के मनोवैज्ञानिक और शैक्षणिक दृष्टिकोण

मतभेदों से और नाना प्रकार के दलों से क्षत-विक्षत बने हुए समाज में लिपि के बारे में एकदम नया पक्ष स्थापित करना इष्ट नहीं जान पड़ता। जनता की प्रगति के लिए लिपि सुधार की आवश्यकता विशेष रूप से प्रतीत न हुई होती तो आज यह प्रश्न हमने अपने हाथों में लिया ही न होता। स्वराज्य प्राप्ति के साथ लोक-जागृति का उत्तरदायित्व आ पड़ा है। आज अंग्रेजी को हटाकर उसके स्थान में देशी भाषाओं में राज्य का कार्य चलाना है, मुद्रण की

सुलभता व सौंदर्य जिस प्रकार अंग्रेजी में है वही देशी लिपियों में ले आने के सिवा अन्य कोई चारा नहीं है। इससे साक्षरता प्रसार में भी मदद मिलेगी। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए कुछ आवश्यक सुझाव हमने दिये हैं। मुद्रण के साथ ही साथ टंक लेखन के प्रश्न का भी हमने विचार किया है।

लिपिग्रहण विषयक मनोविज्ञान के सिद्धान्त का संबंध साक्षरता प्रसार के साथ भी जुड़ा हुआ है। वैसे ही उसका शिक्षण विज्ञान से भी संबंध जुड़ा हुआ है। इसीलिये ध्वनि विज्ञान के सिवा इन दोनों विज्ञानों की दृष्टि से लिपि-सुधार की समस्या पर विचार करना पड़ता है। हमारे यहाँ पर लिपि की उत्पत्ति बहुत पुरानी तथा दैवी मानी गई है। फिर भी हम.रे समाज का निरक्षरता का कलंक अभी दूर नहीं हुआ है। उसे दूर करने के लिये कटिबद्ध होकर तत्पर रहना चाहिए। लिपि-सुधार का वैज्ञानिक ढंग से विचार कर कठिनाइयों ने कई आमूलाग्र सूचनाएँ अवश्य दी हैं और वे आवश्यक भी हैं। पर उन्हें स्वीकारने से लिपि का स्वरूप इतना बदल जावेगा कि फिर से सब पर एक नयी लिपि सीखने की नौबत आ जायगी। इसलिये ऐसे प्रयत्न करने वालों के प्रति आदर की भावना रखते हुए भी हम उन सूचनाओं को स्वीकार नहीं कर सके हैं।

वैयाकरण और बारहखड़ी

लिपि-सुधार का विरोध करनेवाले कई वैयाकरणों की भूमिका सुसंगत नहीं जान पड़ती। जैसे "अ" की बारहखड़ी के 'इ, उ, ए,' के 'अि, अु, अे,' स्वरूपों का विरोध करने वाले ओ और औ के रूपों का यथोचित समाधान नहीं कर सकते। फिर भी उनका आग्रह रहता है कि पुराने रूप जारी रखे जायँ। पुरानी पोथियों में व मोडी में 'अे, अै,' इस प्रकार के रूप मिलते हैं उसे ये लोग भूल जाते हैं। कहीं-कहीं तो अि व अु ये रूप भी प्राचीन ग्रंथों में मिलते हैं। "अ" की बारहखड़ी वैज्ञानिक है—ऐसा समर्थन करनेवाले आधुनिक वैयाकरणी भी मिलते हैं।

मुद्रण के सिद्धान्त और समीक्षा

मुद्रण के महत्वपूर्ण सिद्धान्त इस प्रकार हैं—-

१—प्रचलित तीन मंजिल की छपाई के स्थान पर इकमंजिला छपाई जारी की जाय।

२—ध्वनि की संज्ञाएँ उच्चारण के क्रम के अनुसार लिखी जायँ।

३—विभिन्न ध्वनियों के बारे में उच्चारण साम्य जहाँ पाया जाय, वहाँ अक्षरों की आकृति में भी परिवर्तन करके लिपि की वैज्ञानिकता बढ़ाई जाय। जैसे :— अु, प, फ, ट, ठ, इनमें महाप्राण की ध्वनि का संकेत (़) स्पष्ट दिखाई देता है। उसे सर्वत्र प्रचारित किया जाय।

किंतु ऊपर बतलाये गए प्रकार से सभी महाप्राण अक्षरों में एक ही प्रकार की योजना जारी की जाय इस मत का प्रतिपादन आज जनता स्वीकार नहीं करेगी। दूरालेखन (टेलीप्रिंटर) के लिए जब महाप्राण अक्षरों में ही बदल करना पड़ेगा तब इसका महत्व लोगों के ध्यान में आ सकेगा। तभी 'म्ह, न्ह, ण्ह, इन महाप्राणयुक्त ध्वनियों के संयुक्तारों का लोप होकर उनके लिये स्वतंत्र चिह्न का निर्माण हो जावेगा। 'अु, ज्ञ, ण्रु, द्य, व्य, ण्य' आदि संयुक्ताक्षरों का सवाल इसी कोटि में आता है। कई बार ऐसा होता है कि मूल में ये संयुक्ताक्षर रहते नहीं हैं वरन् केवल उनके उच्चारण में उनका तालव्यीकरण रहता है। अतः उनका संयुक्ताक्षर न बनाकर नये चिह्नों के इस "य" श्रुति का लेखन होना चाहिए। आज की प्रचलित लिपि में ऐसी कोई सुविधा नहीं है। विनोबा भावे जी ने मराठी की सुविधा के लिए खड़ी मात्राओं को गठान देकर यह श्रुति तैयार की है। इस नये संकेत से 'करण्यांत' जैसे शब्दों के बारे में संयुक्ताक्षरों का भ्रम दूर हो जावेगा।"[1]

१—'करण्यांत' मराठी शब्द है। इसका अर्थ है—करने में।

५ : राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव

[राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की नींव राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी की प्रेरणा से सन् १९३५ में पड़ी और पूज्य गाँधी जी के निर्देशन में इस समिति ने राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि का प्रचार-कार्य प्रारम्भ किया और उसकी तद्विषयक साधना आज भी अबाधगति से चल रही है । समिति की राष्ट्र-लिपि-पोषक मान्यताओं प्रस्तावों और सुझावों को यहाँ दिया जाता है ।]

भारतीय संविधान परिषद को बधाई

"राष्ट्र-भापा प्रचार समिति हिन्दी नगर वर्धा की यह वार्षिक बैठक भारतीय संविधान परिषद द्वारा हिन्दी को राज-भाषा और देवनागरी को राजलिपि स्वीकार किये जाने के निर्णय पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती है और जिन व्यक्तियों तथा संस्थाओं के प्रयत्न और सहयोग के परिणामस्वरूप भारतीय संविधान परिषद का यह निर्णय हुआ, उन सभी को हार्दिक बधाई देती है और उनका अभिनन्दन करती है ।"

देवनागरी अंकों के प्रयोग का अनुरोध

"यह सभा मानती है कि विधान परिषद के लिए राजलिपि देवनागरी स्वीकार करने के साथ-साथ उसके अंतर्गत प्रचलित देवनागरी अंकों को ही स्वीकार करना उचित और स्वाभाविक होता । इस सभा को आशा है कि जब कभी विधान परिषद के भाषा सम्बन्धी हिस्से पर पुनर्विचार होगा, तो देश इस सम्बन्ध में उचित निर्णय कर सकेगा । यह सभा राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि के प्रचार में लगी हुई सभी संस्थाओं और आज की इस अनुकूल परिस्थिति में हिन्दी और देवनागरी के प्रचार के उद्देश्य से बनने वाली भारतीय-हिन्दी-परिषद जैसी नई संस्थाओं से सहयोग की आशा करती है और उन्हें अपने सहयोग का विश्वास दिलाती है । इस सभा को भरोसा है कि देश में अब ऐसा

वायुमण्डल तैयार होगा कि राष्ट्र-भाषा प्रचार क्षेत्र के सभी कार्यकर्त्ता तथा संस्थाएँ एक दूसरे के सहयोग से काम कर सकें।"

राष्ट्र-भाषा का साहित्य सृजन अभियान

"यह सभा मानती है कि पिछले १३ वर्षों से राष्ट्र-भाषा हिन्दी और देवनागरी लिपि के प्रचार में लगी इस समिति की जिम्मेदारी, विधान परिषद द्वारा राष्ट्र-भाषा हिन्दी की स्वीकृति के बाद अब विशेष रूप से बढ़ गई है। इसलिए यह सभा अपनी सभी प्रान्तीय समितियों और उनके अन्तर्गत काम करने वाले सभी राष्ट्रकर्मियों से विशेष आग्रह करती है कि राष्ट्र-भाषा शिक्षण के सामान्य कार्य के साथ-साथ वे अब साहित्य निर्माण के ठोस कार्य में उत्साह के साथ लग जायँ। साहित्य निर्माण के इस कार्य में प्रान्तीय साहित्यिकों तथा साहित्यिक संस्थाओं की मदद अवश्य ली जाय।"

(राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति वर्धा की वार्षिक बैठक दिनांक ४-५ दिसम्बर, १९४९ की रिपोर्ट से।)

× × ×

राष्ट्र-लिपि नागरी ही

"३० दिसम्बर १९५१ को जो बैठक वर्धा में हुई थी, उसमें राष्ट्र-भाषा समिति ने अपनी भाषा और लिपि सम्बन्धी नीति को स्पष्ट किया था, फिर भी कुछ शंकायें उठाई गईं, इसलिए यह समिति आज पुनः घोषणा करती है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी के रूप के बारे में उसकी एक ही नीति आरम्भकाल से चली आई है। इस भाषा की लिपि नागरी है।"

समस्त भारतीय भाषाओं के सहयोग से नागरी का भावी रूप निर्धारण

"इस समिति की धारणा है कि भारतीय संविधान ने भी नागरी लिपि में लिखित हिन्दी के इसी रूप की कल्पना की थी और वह मानती है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी का जो रूप आगे विकसित होगा उसके निर्माण में देश की समस्त भाषाओं का सहयोग होगा।

(राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति वर्धा की वार्षिक बैठक दिनांक १५ जून १९५२ से।)

६ : लखनऊ की देवनागरी लिपि सुधार परिषद

[२९ व ३० नवम्बर १९५३ को भारत के उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन की अध्यक्षता में देवनागरी लिपि सुधार परिषद की बैठक लखनऊ में हुई। परिषद के स्वागताध्यक्ष उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पं० गोविन्द वल्लभ पन्त थे, तथा परिषद का उद्घाटन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री के० एम० मुंशी ने किया था। राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और प्रधान मंत्री पं० नेहरू ने अपने सन्देश भेजकर परिषद को सूचनाएँ दी थीं। इसके अतिरिक्त परिषद में अनेक प्रान्तों के मुख्य मंत्री, शिक्षा-मंत्री भी उपस्थित थे तथा केन्द्रीय सरकार के गृह व सूचना मंत्री एवम् अन्य उच्चाधिकारी भी थे। अनेक वैज्ञानिक, साहित्यिक व भाषा शास्त्रज्ञ भी परिषद में सम्मिलित हुए थे। विविध प्रान्तों के १०० से अधिक प्रतिनिधि, १४ मुख्य मंत्री और ४० मन्त्रियों ने परिषद में लिपि-सुधार के सम्बन्ध में अपनी स्वीकृति प्रदान की, इससे परिषद का महत्व स्वतः प्रमाणित हो जाता है। इसके बारे में पूना से प्रकाशित मराठी पत्र 'केसरी' शुक्रवार दिनांक ११ दिसम्बर १९५३ पृष्ठ ५ पर प्रकाशित "लखनौची देवनागरी लिपि-सुधारण परिषद" निबन्ध का हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।]

भाषा और लिपि का महत्व

भाषा जिस प्रकार भाव व्यक्त करने का साधन है, उसी प्रकार भाषा का प्रमुख वाहन है। अतः देश में विगत कई बर्षों से अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के साथ-साथ राष्ट्रलिपि देवनागरी का भी प्रचार हो रहा है, किन्तु फिर भी यदि देश की सभी भाषायें देवनागरी लिपि में लिखी जायँ तो सब भाषाभगिनी एक दूसरे के सन्निकट तो आयेंगी ही साथ ही पारस्परिक परिचय के लिए, शुद्ध अन्तःकरण की पहचान के लिए तथा देश में एकता की भावना को दृढ़ करने के लिए राष्ट्रभाषा के प्रचार की अपेक्षा

देवनागरी लिपि के प्रचार पर बहुत पहले से ही जोर दिया जा रहा है।

देवनागरी में लिखी जाने वाली हिन्दी को भारतीय संविधान ने राज भाषा रूप में मान्यता दी है तथा उसको व्यवहार में प्रारम्भ करने के लिए १५ वर्ष की काल-मर्यादा निर्धारित की है। उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, मध्यप्रदेश व मध्य भारत राज्यों में अभी-अभी राजभाषा हिन्दी में काम-काज शुरू हुआ है। अन्य राज्यों में आज नहीं तो कल उनकी प्रादेशिक भाषाओं में सरकारी काम-काज शुरू होगा। नवनिर्मित आन्ध्र राज्य ने तेलुगू में अपना काम-काज शुरू किया है, इसी कारणवश राजकीय कारबार की दृष्टि से भाषा और लिपि दोनों ही किस प्रकार योग्य और सुगम होंगी, इस विषय पर लोगों का ध्यान केन्द्रित हुआ है। लखनऊ में आयोजित देवनागरी लिपि सुधार सम्मेलन और उसमें किये गये निर्णय इसी के प्रतीक हैं!

नागरी लिपि का प्रचार

देश की सब भाषाओं में देवनागरी लिपि स्वीकार कये जाने का आन्दोलन नया नहीं है। कई वर्ष पूर्व न्यायमूर्ति शारदाचरण मित्र के नेतृत्व में 'लिपि-विस्तार परिषद' की स्थापना के साथ-साथ सब भाषाओं का साहित्य देवनागरी लिपि में प्रसृत करने का उपक्रम किया गया था। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा व प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन—दोनों संस्थाओं ने हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का सतत प्रचार जारी रखा था और आज भी ये संस्थायें प्रचार कर रही हैं। सन् १९०५ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सभा-गृह में श्री रमेशचन्द्र दत्त की अध्यक्षता में "ए स्टैन्डर्ड कॅरेक्टर फॉर इंडियन लैंग्वेजेस्' विषय पर लोकमान्य तिलक का भाषण हुआ था। उसमें उन्होंने यह सन्देश दिया है कि सभी भारतीय भाषाओं में देवनागरी लिपि ही आत्मसात् करनी चाहिए। इस पर से यह ध्यान में आ जायगा कि एक लिपि आन्दोलन कितना पुराना है?

संविधान की स्वीकृति

अत: संविधान द्वारा देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को राष्ट्र-भाषा स्वीकृत किये जाने पर देवनागरी को अद्यावत करने की दृष्टि से मुद्रण,

टंकलेखन, तार, टेलीप्रिंटर आदि के योग्य आवश्यक सुधार के प्रयत्न शुरू हुये। उत्तर-प्रदेश सरकार ने आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में सन् १९४७ में एक समिति का निर्माण किया। बम्बई सरकार ने मराठी-गुजराती लिपि-समन्वय की दृष्टि से विचारविमर्श के लिए एक समिति नियुक्त की। टंक लेखन और लघु लेखन के लिये काका कालेलकर की अध्यक्षता में केन्द्रीय सरकार द्वारा एक समिति नियुक्त हुई। इन सब समितियों की सिफारियों के गुण दोष दोनों पर लखनऊ परिषद में विचार हुआ तथा मार्ग दर्शन-समिति के द्वारा सुझाये गये संशोधन सम्बन्धी सब प्रस्ताव खुले अधिवेशन में स्वीकृत हुये।

सुविधा के लिये सौन्दर्य भंग नहीं

सम्मेलन में दिये गये भाषणों में सभापति डॉ० राधाकृष्णन स्वागताध्यक्ष पं० पंत, उद्घाटक श्री मुन्शी सभी का एक रुख दिखाई देता था। "मुद्रण में सुलभता के लिए, यांत्रिक सुविधा के लिए लिपि-सौन्दर्य नष्ट नहीं करना चाहिये"—ऐसा सभी ने कहा। प्रधान मंत्री श्री नेहरू और राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने भी अपने सन्देशों में यही आदेश दिया था। सम्मेलन द्वारा स्वीकृत सुधारों को देखने से पता चलता है कि उन आदेशों का पूर्णतः पालन हुआ है।

लिपि कैसी हो ?

किंसी भी लिपि में उच्चरित एक ध्वनि के लिये एक ही लिपि चिह्न होना चाहिये, परन्तु वह लिखने में सरल, दिखने में सुन्दर और गतिशील होना चाहिये। देवनागरी लिपि में ये सब गुण विद्यमान हैं, किन्तु फिर भी कुछ ध्वनियों की पूर्ति के लिये वर्णमाला में संशोधन आवश्यक है। डॉ० राधा-कृष्णन के कथनानुसार नागरी नागरी लिपि में 'ए' व 'ओ' के ह्रस्व स्वर नहीं हैं। 'द्राविड़ कझागम्' में तमिल 'झ' का उच्चारण नागरी के 'झ' से नहीं होता। तमिल में प्रयुक्त कठोर 'र' की देवनागरी में कमी है। उसी प्रकार घ, ध, म, भ, 'ख' व 'र, व' का लिपि भेद नवसिखिये के ध्यान में शीघ्र नहीं आता। अतः सम्मेलन में इन सब ज्ञातव्यों पर विचार किया गया।

रोमन लिपि का पक्षपात

डॉ० राधाकृष्णन ने रोमन लिपि की सुगमता का निर्देश करते हुये कहा कि रोमन लिपि को आत्मसात करने से भारतीय और यूरोपीय संस्कृतियों का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रस्थापित होगा । पश्चिमात्य और पूर्व मध्य के राष्ट्रों के घनिष्ठ सम्बन्धों को बनाये रखने के लिये देवनागरी के साथ-साथ फारसी और रोमन लिपियों का अभ्यास प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने आवश्यक बतलाया, किन्तु सम्मेलन में अपने भाषण के दौरान में भारतीय भाषायें ही नहीं किन्तु उर्दू की भी देवनागरी में लिखे जाने की संभावना श्री कालेलकर ने प्रतिपादित की। काकाजी का यह प्रतिपादन क्या पं० नेहरू को प्रत्युत्तर नहीं है ।

डॉ० रघुवीर ने इसी सम्बन्ध में बोलते हुए कहा कि —"संस्कृत, पाली, प्राकृत, हिन्दी, मराठी, व नेपाली साहित्य नागरी में लिखा जाता है । लंका, ब्रह्मदेश, हिन्दचीन, इन्डोनेशिया के बौद्ध समाज को देवनागरी लिपि ज्ञात है । जापान में ११ विद्यापीठों में देवनागरी लिपि सिखाई जाती है । इंग्लैंड में आज देवनागरी के १० मुद्रणालय हैं । पेरिस, हालैंड, जर्मनी व इटली में भी देवनागरी लिपि होने की व्यवस्था है, देवनागरी लिपि में सुधार करते समय इन सब बातों पर विचार किया जाना चाहिए ।"

"विदेशों में देवनागरी लिपि का इतना प्रचार होने पर भी देशी भाषायें उसे क्यों स्वीकृत नहीं करती ? यांत्रिक सौन्दर्य के लिये लिपि में सुधार मत करो । लिपि की सुविधानुसार यंत्र तैयार किये जा सकते हैं । जापान में जापानियों ने तीन हजार शब्दों का टाइपराइटर तैयार किया है ।"—ऐसा संकेत डॉ० रघुबीर ने दिया ।

लिपि की जबरदस्ती नहीं होगी

अपने प्रारम्भिक भाषण में स्वागताध्यक्ष पं० पन्त ने कहा—"किसी भी प्रादेशिक भाषा पर देवनागरी लिपि लादना परिषद का प्रयोजन नहीं है परन्तु आज जिन स्थानों पर देवनागरी प्रचलित है, वहाँ वह अधिक सुगम हो, यही इस सम्मेलन का उद्देश्य है ।" संविधानानुसार देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी राज्यभाषा हो चुकी है । १५ वर्षों में चाहे कुछ भी हो, परन्तु

परस्पर प्रान्तों को व केन्द्रीय सरकार को देवनागरी लिपि द्वारा हिन्दी में व्यवहार करना होगा। प्रादेशिक भाषाओं ने यदि अपनी लिपि कायम भी रखी तो भी हिन्दी और देवनागरी लिपि दोनों का ज्ञान वहाँ अपरिहार्य है। इसलिये देवनागरी को सर्वसुलभ बनाने की दृष्टि से उसमें सुधार करना इस सम्मेलन का उद्देश्य है।

दो विरोधी दल

परिषदद में सुधार सम्बन्धी विचार करने वालों में दो विरोधी दल थे। कुछ लिपि में आमूलाग्र परिवर्तन करने की माँग करने वाले थे तो 'पुराना ही सोना' कहने वाले भी कुछ थे, जो किसी भी प्रकार के परिवर्तन के प्रति तीव्र प्रतिकार प्रदर्शित करने वाले थे। इस कारण से कुछ सामान्य परिवर्तन करने के बाद सम्मेलन में नागरी का वर्तमान रूप ही कायम रखा गया।

स्वर खड़ी का विरोध

श्री काका साहेब कालेलकर ने स्वरों के लिए 'अ' की सावरकरी बारहखड़ी स्वीकृत करने का सुझाव रखा। श्री काका साहेब गाडगिल ने भी उसका समर्थन किया था, किन्तु वह अस्वीकृत हो गया। किन्तु आज सात अहिन्दी प्रान्तों में राष्ट्र भाषा प्रचार समिति ने 'सावरकरी' बारहखड़ी प्रचारित की है, अतः हिन्दी जाननेवाली आगामी पीढ़ी को अपने आप ज्ञात होने वाली है।

देवनागरी अंकों का सुधार

लिपि में अंक सुधार के बारे में काफी गरमागरम बहस हुई। केन्द्रीय सरकार के शिक्षण विभाग के उपमन्त्री प्रोफेसर हुमायूँ कबीर ने भारतीय संविधान का उल्लेख कर अँग्रेजी अंकों को भारतीय अंकों के आंतरराष्ट्रीय स्वरूप बतलाते हुये देवनागरी अंकों की स्वीकृति के बारे में अपना तीव्र विरोध दर्शाया और इस बात का भी संकेत किया कि देवनागरी अंकों को स्वीकार करने से भारतीय संविधान का भी उल्लंघन होगा। श्री काका कालेलकर ने कबीर जी का समर्थन किया पर मध्य प्रदेश के वयोवृद्ध मुख्यमंत्री पं० रविशंकर शुक्ल ने तत्काल उठकर बतलाया कि भारतीय संविधान की ३४३ वीं धारा निर्देशन अनुसार राष्ट्रपति को देवनागरी अंकों के उपयोग करने का आदेश देने

का कैसा अधिकार है ? उसी प्रकार संविधान के हिन्दी अनुवाद पर संविधान परिषद के सभी सभासदों ने हस्ताक्षर किये हैं और उसमें देवनागरी लिपि के ही अंक हैं, यह भी द्रिखा दिया।

सम्मेलन-सम्मत सुधार

१. नागरी में सब स्वर पूर्ववत् रहने दिये गये। 'अ' का स्वरूप हिन्दी की अपेक्षा मराठी निश्चित किया गया।

२. मात्रायें पहले की ही भाँति कायम रहने दी गईं। केवल ह्रस्व 'ि' में परिवर्तन किया गया। दीर्घ 'ी' के अनुसार वह मात्रा भी दाहिनी ओर रहेगी, किन्तु वह दीर्घ 'ी' की अपेक्षा छोटी रहेगी। जैसे ह्रस्व 'कि' व दीर्घ 'की' (पर इस सुधार से गड़बड़ बढ़ जाना ही अधिक संभव प्रतीत होता है।)

३. अंक पूर्ववत् कायम रहने दिये गये। केवल ६ अंक का स्वरूप हिन्दी के बदले में मराठी ९ के अनुसार रहेगा।

४ अँग्रेजी के सभी विराम चिन्ह कायम रहने दिये गये। पूर्ण विराम के लिये (.) चिन्ह का उपयोग न करते हुए संस्कृत व हिन्दी के अनुसार (।) दण्ड देने का निश्चय हुआ। उसी प्रकार अँग्रेजी का (:) अपूर्ण विराम भी निकाल दिया गया।

५. 'ं' अनुस्वार की ही भाँति "ँ" अर्धचन्द्र अनुस्वार भी कायम रहने दिया गया।

६. व्यञ्जनों में 'झ', 'ण', 'क्ष', 'ज्ञ', 'ल', 'छ', 'ख', 'भ', 'ध', 'ह' आदि अक्षरों में संशोधन सुझाये गये। आजकल हिन्दी और मराठी में यह अक्षर दो प्रकार से लिखे जाते हैं। उनमें से कुछ के मराठी और कुछ के हिन्दी रूप कायम किये गये। 'ख' अक्षर लिखते समय 'र' का अन्तिम भाग 'व' में जोड़ा जाय, ऐसा निश्चय किया गया। हिन्दी के 'छ' की अपेक्षा मराठी 'छ' निश्चित किया गया। हिन्दी में 'झ' अक्षर 'भ' की तरह लिखा जाता है। उसे बदलकर मराठी 'झ' निश्चित किया गया। हिन्दी 'ण' रद्द करके मराठी 'ण' निर्धारित किया गया। परन्तु 'ळ' के बारे में हिन्दी 'ल' ही रहने दिया गया। 'ध' व घ और भ व म में अधिक स्पष्ट अन्तर हो इसलिये यह निश्चय

हुआ कि ध व भ पर अच्छी गाँठ दी जाय अर्थात् कराठी लिपि का 'ध' व 'भ' निर्धारित किये गये। मराठी लिपि का 'क्ष' ही निश्चित हुआ। परन्तु 'ज्ञ' के बारे में हिन्दी रूप ही निश्चित किया गया। नरेन्द्रदेव समिति ने 'न' की सिफारिश की थी, परन्तु सम्मेलन में 'र' ही कायम हुआ। 'ल' व्यंजन भी कायम रखा गया।

७. अक्षरों की शिरोरेखा कायम रखी गई। यह सुझाव दिया गया कि गुजराती में शिरोरेखा नहीं है अतः उसके लेखन में गतिशीलता बढ़ती है, इसलिये देवनागरीलिपि की शिरोरेखा हटा दी जाय, परन्तु उससे लिपि-सौन्दर्य नष्ट होता है। इस विरोध के कारण अन्ततः शिरोरेखा कायम रखी गई।

अभी भी संशोधन आवश्यक हैं

देवनागरी में किये गये ये सुझाव स्वागत करने योग्य हैं, किन्तु यदि सब भाषाओं ने देवनागरीआत्मसात् की तो उसमें कई संशोधन करने होंगे। 'उद्या' व 'उद्यान' दोनों में 'द्या' के उच्चारण में जो ध्वनिगत अन्तर है। वह एक जोड़ाक्षर से स्पष्ट नही होता "त्याने ही गोष्ट 'उघड' केली", "तें दूध घेऊं नको, कारण भांडें 'उघंड' होतें"—इन दोनो वाक्यों में प्रयुक्त 'उघड' शब्दों के उच्चारण में अन्तर स्पष्ट होना जरूरी है।

हैदराबाद में पुनः बैठक

दक्षिण की द्राविड़भाषाओं, पंजाबी, अन्य प्रादेशिक भाषाओं में प्रचलित ध्वनि स्पष्ट होने की दृष्टि से देवनागरी में और भी परिवर्तन करने पड़ेंगे। इस दृष्टि से संसद के उपसभापति श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने प्रस्ताव रखा कि भाषा पंडितों की एक बैठक दक्षिण में, कराने के लिये परिषद का आगामी अधिवेशन हैदराबाद में हो, और वह स्वीकृत भी हो गया।

लखनऊ की परिषद में मंत्री और सरकारी उच्चाधिकारियों की अधिक संख्या होने के कारण लिपि के सम्बन्ध में संशोधनात्मक दृष्टिकोण से विचार किये हुये महाराष्ट्र और कर्नाटक ही नहीं, दक्षिणी भाषाओं के प्रतिनिधि अपवाद स्वरूप ही थे। हैदराबाद में होने वाली बैठक के अवसर पर ऐसे संशोधकों के विचारों का भी उपयोग किया जायगा, ऐसी आशा है। श्री आयंगर ने

प्रस्ताव रखा कि दक्षिणी भाषाओं को देवनागरीलिपि को स्वीकार करना चाहिये, किन्तु उससे भी पहले देवनागरी के निकट विद्यमान गुजराती व बंगाली भाषाओं को तो कम से कम देवनागरी लिपि अपनाना ही चाहिये, ऐसी आशा है।

७:

देवनागरी लिपि सुधार

—डाँ० भगीरथ मिश्र एम० ए०, पी-एच० डी०

[डा० भागीरथ मिश्र एम० ए०, पी-एच० डी, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर एक सुप्रसिद्ध कवि और समालोचक हैं। विशेष कर भाषा, काव्यशास्त्र और समीक्षा के क्षेत्र में उनके विचार हिन्दी साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं। देवनागरी लिपि सुधार-संबंधी यह लेख इसी ग्रंथ के लिए लिखा गया है, जो एक स्वतन्त्र चिन्तन और एक दृष्टिकोण लिए हुए है।]

वर्ग रूपों में परिवर्तन

शब्द और ध्वनि के चित्र, अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक समझ कर बनाए गये हैं। यही चित्र वर्णमालायें या लिपियाँ हैं। उच्चारण और प्रयोग के अनुसार जिस प्रकार ध्वनि और अर्थ में परिवर्तन हुआ करता है, उसी प्रकार लिपि में भी प्रयोग के साथ कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है। भारतवर्ष की अधिकांश लिपियों का मूल ब्राह्मी लिपि में माना जाता है। ब्राह्मी लिपि से देवनागरी लिपि का विकास हुआ। देवनागरी वर्णमाला के अनेक अक्षर जो वैदिक एवं संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त मिलते हैं, बाद को छूट गये, क्योंकि वे उच्चारण और सुविधा की दृष्टि से अनावश्यक हो गये। संस्कृत काव्य में ही आगे चल कर—ॠ, लृ, ,ॡ—अक्षरों का प्रयोग नहीं मिलता। प्राकृत और अपभ्रंश की परम्परा पर विकसित हिन्दी के आदि और मध्यकालीन साहित्य में—ङ, ञ, श, ष, ण, क्ष, और ज्ञ, व्यंजनों के प्रयोग बहुत कम मिलते हैं। अधिकांशतः ङ् और ञ् के स्थान पर अनुस्वार, श और ष के स्थान पर स, ण के स्थान पर न, क्ष के स्थान पर च्छ या छ ओर ज्ञ के स्थान पर ग्य का प्रयोग मिलता है। ऋ के स्थान पर रि है तथा ॠ, लृ, ॡ आदि वर्ण अप्रयुक्त हैं। ख के रूप में र व का भ्रम बचाने के लिए अधिकांशतः ख के स्थान पर ष

का प्रयोग मिलता है। ये परिवर्तन किसी सत्ता के दबाव वश नहीं वरन् किसी व्यक्ति ने चालू किये और दूसरे ने उसका अनुगमन किया। यदि हम हस्त-लिखित ग्रंथों से वर्णमाला के विभिन्न अक्षरों के रूपों का अध्ययन करें, तो बड़ी विविधता और परिवर्तन देखने को मिलते हैं। उदाहरणत—झ के लिए झ; कु के लिए कु; सु के लिए सु; ध के लिए ध; भ के लिए भ आदि रूप प्रचलित मिलते हैं। परन्तु इन परिवर्तनों और संशोधनों के आते रहने पर भी कभी पाठकों और लेखकों को कोई कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा और सुविधा एवं आवश्यकता के अनुसार उन्हें अपनाया गया।

टंकन मुद्रण में देवनागरी की कठिनाइयाँ और उनका निराकरण

देवनागरी लिपि में सुधार और संशोधन की चर्चा टाइप और मुद्रण (छापा) की कठिनाई के कारण विशेष रूप से चली। इसमें संदेह नहीं कि देवनागरी की वर्णमाला—स्वर, व्यंजन, उच्चारण स्थान आदि के आधार ध्वनियों की व्यवस्था के कारण संसार की समस्त लिपियों से अधिक वैज्ञानिक है। यह तथ्य प्रायः विद्वानों ने स्वीकार किया है पर जो लिपि चिह्न हैं उनमें कई कठिनाइयों को प्रकट किया गया। पहली कठिनाई लिलने की थी। अंग्रेजी की तुलना में यह जल्दी नहीं लिखी जा सकती। दूसरी कठिनाई टाइप की थी जिसमें अर्द्धाक्षरों और मात्राओं की बड़ी संख्या होने से अक्षरपट में उनका आना कठिन था। इ की मात्रा पहले लगती है, अतः इसका विशेष ध्यान रखना पड़ता था। इसी प्रकार की मुद्रण की कठिनाई थी जिसमें वर्णों की बहुत बड़ी संख्या, संयुक्ताक्षर और मात्रायें कठिनाइयाँ उपस्थित करते थे। मात्राओं के टूट जाने का भय रहता है। आदि-आदि।

इन कठिनाइयों से बचने के लिए जब कुछ लोगों ने रोमन लिपि को स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा, तब देवनागरी लिपि में सुधार और संशोधन का प्रश्न बड़ा गंभीर हो गया। इसके परिणामस्वरूप अनेक संशोधन विभिन्न व्यक्तियों और संस्थाओं के द्वारा प्रस्तुत किये गये। हिन्दी के राष्ट्र-भाषा घोषित हो जाने पर देवनागरी लिपि के प्रश्न ने विशेष महत्व धारण किया। कुछ लोग रोमन लिपि के पक्ष में थे और अधिकतर देवनागरी लिपि के। अतः कुछ

कठिनाइयों को दूर करने के लिए संशोधन और सुधारों को आमंत्रित किया गया।

आचार्य नरेन्द्रदेव लिपि-सुधार-समिति के प्रस्तावित संशोधनों का स्वरूप

इन समस्त संशोधनों और सुधारों पर विचार करने के लिए आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में नरेन्द्रदेव लिपि-सुधार-समिति बनी। इस समिति के समक्ष आये हुये प्रस्तावों और सुझावों में बड़े-बड़े परिवर्तन रखे गये। उनमें से कुछ तो आमूल परिवर्तन करके जैसे नयी लिपि को ही जन्म देना चाहते थे। उस समिति ने जिन संशोधनों को स्वीकार किया वे निम्नलिखित हैं।

(१) स्वरों में ऋ का रूप अब केवल अ रहेगा।

(२) व्यंजनों में छ, झ, ण, ध, भ, र, ल और ह के केवल निम्नांकित ही रूप स्वीकृत हुए :—

छ, झ, ण, ध, भ, ल, र, और ह।

(३) मात्राओं में ह्रस्व 'इ' की मात्रा का रूप ी होगा। शेष जैसे हैं वैसे ही रहेंगे।

(४) क्ष और त्र के स्थान पर क्ष और त्र से काम लिया जायेगा।

(५) अंकों में ९ का रूप ९ माना गया।

(६) विशेष अक्षर् श्र, ओ३म् तथा ळ होंगे।

(७) विराम चिह्न जो अंग्रेजी में प्रचलित हैं वे सब ले लिये जायें। केवल पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई स्वीकार की जाय।

(८) संयुक्ताक्षरों का संयुक्त स्वतंत्र रूप यथासंभव निकाल दिया जाय।

(९) मुद्रण और टाइप की सुविधा के लिए आवश्यकतानुसार मात्राओं को थोड़ा हटा कर केवल दाहिनी ओर लगाया जाय।

(१०) शिरोरेखा लगाई जाये।

(११) जिन वर्णों के उत्तरार्द्ध में खड़ी पाई-युक्त नहीं है उनका आधा रूप 'क' और 'फ' को छोड़ कर हल के द्वारा प्रकट किया जाय। जिनके उत्तरार्द्ध खड़ी पाई युक्त हैं, उनका आधा रूप पाई निकाल कर बनाया जाय।

(१२) किसी व्यंजन के नीचे दूसरा वर्ण न लगाया जाय।

(१३) केवल मशीन की सुविधा के लिए कोई अवांछनीय परिवर्तन न किये जायें। मशीन स्वयं आवश्यकतानुसार बनाई जा सकती है।

[१४] लिपि में आमूल या बहुत अधिक परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं।

लखनऊ लिपि-सुधार सम्मेलन का आयोजन

इस सुधार-समिति के सुझावों से समस्या समाप्त नहीं हुई। उसमें काफी अधिक परिवर्तन लोगों को स्वीकार न हुए और उन्हें लागू करने का प्रश्न भी आया। साथ ही यह समिति अखिल भारतीय विशेषता भी नहीं रखती। अतएव उत्तर प्रदेश की सरकार ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अनुरोध पर एक समस्त भारत के मुख्यमंत्रियों की एक सभा आमंत्रित की उसमें विद्वानों को भी आमंत्रित किया गया था। सभा के अध्यक्ष थे उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन। यह सभा लखनऊ में २८-२९ नवम्बर सन् १९५३ में हुई थी। इस सभा में दो दिन के वाद-विवाद, चिन्तन और विचार विनिमय के बाद जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए वे इस प्रकार हैं—

(१) वर्तमान देवनागरी के अक्षरों के निम्नलिखित रूपों को प्रामाणिक माना जाय—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ए ऐ ओ औ अं अः

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्ष ज्ञ ळ

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०

(२) शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहे।

(३) अ—ह्रस्व इ की मात्रा को छोड़कर शेष मात्राओं के वर्तमान स्वरूप यथावत् रहें।

आ—ह्रस्व इ की मात्रा अक्षर के बायीं ओर न लिखकर दाहिनी ओर लिखी जाय।

इ—ह्रस्व इ की मात्रा भी वैसी ही होनी चाहिए जैसी दीर्घ ई की है, अन्तर दोनों में यह रहेगा कि ह्रस्व की मात्रा ऊपर से नीचे आती हुई शिरो-

रेखा पार करते ही समाप्त हो जायगी, जैसे—

ि (की)

(४) क—फुलस्टाप और कोलन को छोड़ कर शेष विरामादि चिह्न वही ग्रहण किये जायें जो अंग्रेजी में प्रचलित हैं—

- — , ; ! ?

ख—पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का प्रयोग किया जाय।

(५) संयुक्ताक्षर दो प्रकार से बनाये जायँ—(१) जहाँ सम्भव हो, अक्षर के अन्त वाली खड़ी रेखा को हटाकर या (२) संयुक्त होने वाले प्रथम अक्षर के अन्त में हल् लगाकर। क, फ और ह को यदि किसी अक्षर के आरंभ में संयुक्त करना हो तो इनके लिए बिना हल का प्रयोग किये, इस समय प्रचलित ढंग ही काम में लाया जाय।

(६) अनुस्वार और आनुनासिक के दो रूपों (ं ँ) में से एक को त्याग देने का सुझाव स्वीकार नहीं किया गया।

(७) यह भी निश्चय हुआ कि अंकों के सम्बन्ध में परिवर्तन का जो प्रस्ताव है वह संविधान के अधिनियमों के अधीन होगा।

नगण्य परिवर्तन

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जो परिवर्तन सुधार के रूप में किये गये हैं वे विशेष नहीं, नगण्य हैं। प्रधान परिवर्तन इ की मात्रा में है। ख का रूप भी नया हो गया है जिससे कि र व के साथ उसका भ्रम न हो सके। र के अर्द्ध रूप तथा इसके पूर्व अर्द्धाक्षर आने पर जो इसका रूप (्) हो जाता है उसके स्थान पर हलन्त एवं पूर्ण रूपों का ही प्रयोग माना गया। ध और भ में घुंडी देने से इनमें अब घ और म का भ्रम दूर हो गया। इस प्रकार परिवर्तन नगण्य ही हैं।

नगण्य परिवर्तनों में आपत्तियाँ

इन परिवर्तनों में भी कुछ आपत्तियाँ उठाई गईं। वे प्रमुखतया दो प्रकार की ही हैं। प्रथम तो इ की मात्रा के सम्बन्ध में है और द्वितीय हल के बहुत अधिक प्रयोग के सम्बन्ध में। इ की (ि) मात्रा के थोड़ा नीचे बढ़ जाने से (ी) की मात्रा का भ्रम हो सकता है। इसका उपाय यह हो सकता है कि

इसे केवल (्) इस प्रकार रहने दिया जाये। जब ऊपर की रेफ़ (ॅ) हटा दी गई है, तब इसके साथ किसी प्रकार भ्रम की गुंजाइश अब नहीं रह गयी। र का हलन्त प्रयोग तो चलना ही चाहिए ; क्योंकि रेफ (ॅ) का प्रयोग न तो सुन्दर ही है और न सुविधापूर्ण ही । हाँ र के पहले आने वाले अर्द्धाक्षरों के साथ र का रूप पुराना रखा जा सकता है । प्रकार के स्थान पर प्रकार, जिसमें र (‸) इस रूप में मिलता है, स्वीकार किया जा सकता है। इसे स्वीकार करने पर एक बहुत बड़ी आपत्ति दूर हो जायेगी।

मेरा अपना विचार

मेरा अपना विचार है कि प्रयोग के उपरान्त इनमें और सुविधाजनक रूपों का विकास हो सकता है। अतः हमें इन सुधारों का स्वागत करना चाहिए साथ ही और भी जो सुविधापूर्ण संशोधन हैं, उनके लिए भी तैयार रहना चाहिए।

---

८ : बंबई राज्य में लिपि-सुधार का प्रयोग

(देवनागरी में संशोधन)

[बंबई राज्य सरकार ने सन् १-२-५५ को अपने राज्य विभाग के डॉयरेक्टर ऑफ पब्लिसिटी के द्वारा देवनागरी लिपि के बारे में निम्नलिखित निर्णय लिया था । अब बंबई सरकार अस्तित्व में नहीं है। गुजरात और महाराष्ट्र ये दो अलग-अलग राज्य बन गये हैं । पर ऐतिहासिक दृष्टि से इस लिपि-विषयक दृष्टिकोण में क्या-क्या होता गया, उसका महत्व है । यों अपना निर्णय पुनः वापस लेकर मराठी और हिन्दी के लिये वही सर्वमान्य अ की बाराक्षरी वर्धा राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति तथा मराठी साहित्य परिषद पुणे द्वारा मान्य ही रूप आज महाराष्ट्र राज्य में प्रचलित है ।]

बंबई सरकार का निर्णय

बंबई सरकार ने नवंबर सन् १९५३ में लखनऊ में देवनागरी लिपि सुधार परिषद ने जो संशोधन किये थे, उन्हें मान्यता दे दी है । राज्य में हिन्दी का व्यवहार करने के लिये बंबई सरकार इस दिशा में सुधरी हुई नागरी लिपि को व्यवहृत कर इस परिषद के निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिये कदम उठाना चाहती है । उसके निर्णयानुसार बंबई सरकार ने हिन्दी पुस्तक प्रकाशकों को तथा हिन्दी पाठ्यक्रम समिति को अपनी पुस्तकों में इसी संशोधित देवनागरी लिपि का व्यवहार करने का आदेश दिया है ।

संशोधित लिपि के व्यवहार का आदेश

निम्नलिखित देवनागरी वर्णों के स्वरूपों को प्रतिमित (Standerd) स्वरूप माना जाय ।

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र,

ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, ज्ञ, ळ, १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ० ।

अंकों में सुझाये गये संशोधन संविधान की व्यवस्थानुरूप होते रहेंगे।

हिन्दी में शिरोरेखा जारी रखी जायगी।

निम्नलिखित कुछ अन्य सुधार लिपि-सुधार-परिषद ने सुझाये थे, जिसे बंबई राज्य सरकार ने मान्यता दे दी है।

(१) भाषाओं के प्रचलित स्वरूप कायम रहेंगे, केवल ह्रस्व 'इ' की भाषा में परिवर्तन सुझाया गया है।

(२) ह्रस्व "इ" की मात्रा दाहिनी ओर लगाई जाय जो पहले बाँई ओर लगाई जाती थी। उसका स्वरूप दीर्घ "ई" की तरह रहे, केवल उसकी मात्रा ऊपर से नीचे आती हुई शिरोरेखा पार करते ही समाप्त हो जायगी, जैसे :—
ि (कि)

(३) अंग्रेजी में प्रचलित सभी विरामादि चिह्नों का प्रयोग किया जाय। केवल फुलस्टाप (पूर्ण विराम) तथा कोलन को इस रूप में रखा जाय। केवल एक खड़ी पाई का प्रयोग पूर्ण विराम के लिये किया जाय। अन्य विरामादि चिह्न—' ; ! ? ये ही रहेंगे।

(४) मुद्रीपटल में जहाँ तक संभव हो टाइपरायटर में (Key Board) की बोर्ड में निम्नलिखित चिह्नों को सम्मिलित कर लिया जाय। . / ˙ ˋ ˰ %
" „ ( ) + × ÷ ★ = +

(५) संयुक्ताक्षर दो प्रकार से बनाये जायँ। (१) जहाँ सम्भव है वहाँ अक्षर के अन्त वाली खड़ी रेखा को हटाकर या (२) संयुक्त होने वाले प्रथम अक्षर के अन्त में हलन्त (्) लगाकर (३) क, फ और ह को यदि किसी अक्षर के आरंभ में संयुक्त करना हो तो इसके लिये बिना हलन्त का प्रयोग किये, इस समय की प्रचलित पद्धति ही काम में लाई जाय।

(६) बंबई सरकार ने परिषद की ओर से सुझाये गये अनुस्वार और अनुनासिक इन दो में से एक को (ं ँ) को छोड़ना स्वीकार नहीं किया है।

६ : बम्बई राज्य और लखनऊ लिपि-सुधार

[बम्बई राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा देवनागरी के लखनऊ लिपि सुधार का जो सदोष शैक्षणिक प्रयोग सन् १९५८-५९ में किया गया था, उसके सम्बन्ध में माध्यमिक शिक्षक संघ, पूना के तत्त्वावधान में तत्वभूषण, शिक्षा विशारद, डा० भगवानदास तिवारी द्वारा जो भाषण दिया गया था, वह राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की मासिक पत्रिका राष्ट्र-भारती, वर्ष १०, अंक ६, जून १९६० के पृष्ठ क्रमांक ३३६ से ३३९ पर प्रकाशित हुआ था। लेखक ने देवनागरी लिपि में, तमाम प्रादेशिक भाषाओं को ध्यान में रखकर सुधार करने का जो सुझाव दिया है, वह विचारणीय तथा स्वागत योग्य है।]

नागरी सर्वगुण आगरी

देवनागरी लिपि विश्व की समृद्धतम आदर्श लिपि है, इसलिए भारतीय सांस्कृतिक समन्वयकारिणी वृत्ति के आधार पर केन्द्रीय शासन के हिन्दी-आयोग ने राष्ट्र-भाषा हिन्दी की विशदता और व्यापकता का उल्लेख करते हुए भाषाओं के पारस्परिक सान्निध्य और एकीकरण की कामना से आर्य एवम् अनार्य परिवार की सभी भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त विभिन्न लिपियों के स्थान पर देवनागरी लिपि के ही प्रयोग का सुझाव दिया था। भले ही 'अपनी भाषा-अपनी लिपि' के मोह के कारण उक्त सुझाव देश-व्यापी बृहद् पैमाने पर कृत-कार्य न हुआ हो, किन्तु इससे देवनागरी लिपि की सुगमता, श्रेष्ठता, वैज्ञानिकता, व्यावहारिकता, रूप-सौष्ठव तथा स्वरयंत्रों से निस्सृत विभिन्न ध्वनियों को यथातथ्य लिपिबद्ध करने की अपूर्व क्षमता असंदिग्ध सिद्ध हो जाती है। यही कारण है कि वैदिक-कालीन संस्कृत से लेकर अर्वाचीन हिन्दी और मराठी-जैसी सुसम्पन्न भाषाओं में अनेक शताब्दियों से देवनागरी लिपि का सतत अबाध प्रयोग हो रहा है।

देवनागरी लिपि सुधार सम्मेलन, लखनऊ

वैज्ञानिक और व्यावहारिक सुविधा के आधार पर लिपियों में संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन होते हैं, अतः दिनांक २८ व २९ नवम्बर १९५३ को लखनऊ राजभवन में देवनागरी लिपि सुधार सम्मेलन के दूसरे खुले अधिवेशन में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए हैं, उन्हें मान्यता प्रदान कर बम्बई राज्य के शिक्षा-विभाग ने इस वर्ष सन् १९५८-५९ में केवल हिन्दी भाषा की कुछ पाठ्य पुस्तकों में संशोधित देवनागरी लिपि का प्रयोग किया है।

"४ से ६ सप्ताह तक के लिए अहिन्दी माध्यम वाली संस्थाओं के लिए अभ्यासक्रम नामक पुस्तिका में पृष्ठ क्रमांक ९ पर परिशिष्ट के अन्तर्गत 'देवनागरी लिपि सुधार, लखनऊ २८ व २९ नवम्बर सन् १९५३ द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव' में निम्नलिखित परिवर्तन हुये हैं—

स्वर

अ, आ, ओ, औ, अं, अः के स्थान पर क्रमशः अ, आ, ओ, औ, अं, अः प्रमाणित रूप माने गये हैं। लेखन, मुद्रण और टंकन में उपरोक्त स्वरों के दोनों रूप प्रचलित हैं, और धारावाहिक लेखन की सुगमता के कारण पूर्ववर्ती रूपों के स्थान पर परवर्ती रूप प्रधानता पाते जा रहे हैं।

मात्राएँ

मात्राओं की दृष्टि से 'इ' की मात्रा के रूप और 'र' के साथ 'उ', 'ऊ' की मात्रा के प्रयोग में परिवर्तन हुए हैं।

'इ' की मात्रा

सम्मेलन के सुझाव ३ (ब) के अनुसार 'इ' की मात्रा अक्षर के बाईं ओर न लिखकर दाहिनी ओर लिखी जाय, तथा ३ (स) के अनुसार 'इ' की मात्रा भी वैसी ही होनी चाहिए जैसी दीर्घ 'ई' की है। अन्तर दोनों में यह रहेगा कि ह्रस्व 'इ' की मात्रा ऊपर से नीचे आती हुई शिरोरेखा पार करते ही समाप्त हो जायेगी जैसे—ी (कि)

'इ' और 'ई' दोनों स्वरों के ह्रस्व और दीर्घ उच्चारण के अनुरूप 'इ' की प्रस्तावित मात्रा लघुता के प्रतीक रूप में समीचीन है; किन्तु शिरोरेखा पार

करते समय 'इ' की मात्रा कहाँ समाप्त हो, इसका कोई निश्चित माप-दण्ड ही नहीं है। संशोधित लिपि में प्रकाशित पुस्तकों में 'इ' की मात्रा कहीं वर्ण की ऊँचाई की तिहाई और कहीं आधी है। धारावाहिक लेखन में अधिकांश छात्र प्राय: 'इ' की प्रस्तावित मात्रा को इस प्रकार लिख देते हैं कि 'इ' और 'ई' की मात्रा का अन्तर खोज निकालना कठिन हो जाता है। सामान्यत: सभी छात्रों को 'इ' की नई मात्रा सतर्क होकर लिखनी पड़ती है।

लिपियों में वैज्ञानिक दृष्टि और व्यवहारिकता

यह सत्य है कि देवनागरी लिपि में 'इ' की मात्रा व्यंजन के बायीं ओर लिखी जाती है, अत: पढ़ते समय वैज्ञानिक दृष्टि से 'इ' स्वर का उच्चारण पहले और व्यञ्जन का उच्चारण उसके बाद में होना चाहिए किन्तु ध्वनिलिपि को छोड़कर विश्व की कोई भी लिपि पूर्ण वैज्ञानिक नहीं है। उदाहरणार्थ विश्व-विख्यात आंग्ल-भाषा के 'यू' स्वर का उच्चारण लीजिये। एक सा लिखित प्रयोग होने पर भी बी यू टी—बट, पी यू टी—पुट उच्चारण होते हैं। मराठी में ही 'दिसतं तसं नसतं' के तीनों लिखित शब्दों के अन्त में प्रयुक्त अनुस्वार उच्चरित नहीं होते। ऐसे लिपि और उच्चारण-भेद की अपराधिनी बेचारी 'इ' की मात्रा कभी नहीं हुई।

वस्तुत: कोई भी शास्त्र जब व्यावहारिक क्षेत्र में प्रयुक्त होता है; तब उसमें वैज्ञानिकता उतनी आपेक्षित नहीं रहती, जितनी व्यवहारिकता। सामाजिक मान्यतायें भी कभी-कभी शास्त्रीय सिद्धांत सम्पन्न वैज्ञानिकता को ताक में रखकर लिपि और उच्चारण में भेद कर देती हैं। आज हिन्दी में ही अनेक प्रचलित शब्द, जैसे दाल्-भात् व्यंजनांत हो चुके हैं, किन्तु प्रामाणिक क्रियात्मक सुझाव के अभाव में हम इन व्यञ्जनांत उच्चरित शब्दों को स्वरान्त ही लिखते जा रहे हैं। 'इ' की मात्रा के सुधरकों को व्यञ्जनांत शब्दों के लिखित रूपों की ओर भी ध्यान देना चाहिए था।

देवनागरी लिपि में मात्राओं की प्रकृति

ऐसा प्रतीत होता है कि वैज्ञानिक संशोधन के जोश में देवनागरी लिपि-सुधारक देवनागरी लिपि की मात्राओं की प्रकृति को भूल गये। देवनागरी लिपि

में मात्रायें वर्ण के चारों ओर लगती हैं। 'इ' की मात्रा बाँयी ओर, 'आ', 'अः' की मात्रायें दाहिनी ओर, 'ए', 'ऐ', 'अं' की मात्रायें ऊपर की ओर, 'उ,' 'ऊ', 'ऋ,' 'ॠ' की मात्रायें नीचे की ओर, तथा 'ओ,' 'औ,' और 'ई' की मात्रायें ऊपर और दाहिनी ओर लगाई जाती हैं, जिनसे उनके लेखन और वाचन में कोई असुविधा न हो।

मात्रायें स्वर नहीं स्वर-संकेत हैं

मात्रायें स्वर नहीं स्वर-संकेत हैं, जिनका सम्बन्धित वर्णों के साथ परम्परागत सुनिश्चित उच्चारण होता है। इसीलिये आजतक 'कि' कभी भी 'इक' नहीं पढ़ा गया। वस्तु, प्रयोग, प्रचार, मान्यता और सुगमता की दृष्टि में 'इ' की मात्रा का पूर्व रूप, वर्तमान लँगड़े रूप की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर है, इसमें सन्देह नहीं।

एकांगी सुधार

जिस प्रकार उच्चारण की लघुता और दीर्घता के आधार पर 'इ', 'ई' की मात्राओं को आंशिक समान रूप दिये गये हैं, उसी प्रकार 'उ', 'ऊ' की मात्राओं में भी सुधार होना चाहिए था। नये सुधारवादी सिद्धान्त के अनुसार 'उ' की मात्रा को लघु (‌ु) और 'ऊ' की मात्रा को दीर्घ (‌ू) रूप देना चाहिए था, जो नहीं दिये गये। साथ ही यदि उच्चारण के अनुसार वर्ण के बाद मात्राओं का लिपि में प्रयोग होना चाहिए तो सुधारकों को वर्णों के ऊपर नीचे लगने वाली सभी मात्राओं को नये रूप देना चाहिये था। यदि वर्ण के ऊपर-नीचे और दाहिनी ओर मात्रायें लग सकती हैं, तो बाँई ओर लगने वाली 'इ' की मात्रा पर ही इतनी कोप-दृष्टि क्यों ?

व्यञ्जन

लिपि सुधार सम्मेलन ने व्यञ्जनों के क्षेत्र में जो संशोधन किये हैं। वे लेखन, मुद्रण और टंकन की दृष्टि से कुछ अंशों में स्वागत करने योग्य हैं। संशोधन के अनुसार ख, झ, ध, भ, को क्रमशः ख, झ, ध, भ नये रूप दिये गये हैं; जिनसे लेखन तथा मुद्रण में स्पष्टता आ गई है; और र व और ख, घ और ध तथा म और भ सम्बन्धी भ्रान्ति का निराकरण हो गया है।

फिर भी संशोधित व्यंजनों के पूर्व रूपों में सूक्ष्म किन्तु स्पष्ट भेद अवश्य था। हाँ इन व्यंजनों के मुद्रण के कम्पोजीटर में अज्ञान और प्रूफरीडर की लापरवाही ने अवश्य भयंकर भूलें की हैं। कम्पोजीटर औद प्रूफरीडर के दोषों को लिपि सम्बन्धी दोष मानकर यदि यह संशोधन हुआ है, तो कोई बात नहीं है।

'ऋ' व्यंजन को हटाकर मराठी में प्रयुक्त 'ळ' देवनागरी वर्णमाला में समन्वित कर लिया गया है। इस समन्वयकारिणी वृत्ति के लिए लिपि सुधारक बधाई के पात्र हैं।

संयुक्ताक्षर

परिशिष्ट में ५ वें प्रस्ताव के अनुसार—(१) संयुक्त होने वाले प्रथम अक्षर के अन्त में हलन्त (्) लगाकर संयुक्त अक्षर बनाये जाँय। क, फ और ह को यदि किसी अक्षर के आरम्भ में संयुक्त करना हो तो इसके लिये बिना हलन्त का प्रयोग किये, इस समय प्रचलित ढंग ही काम में लाया जाय।

मान्य अपवाद की जगह नया अपवाद पैदा करना सुधार नहीं है

परिशिष्ट के अन्त में सूचना १ के अनुसार 'श' और 'र' से बना हुआ जोड़ाक्षर 'श्र' ऐसा लिखना चाहिए न कि 'श्र'। वैसे ही 'त' और 'र' का जोड़ाक्षर 'त्र' ऐसा लिखना चाहिये न कि 'त्र'।

सम्मेलन के संयुक्ताक्षर निर्माण सम्बन्धी पूर्व प्रस्ताव के अनुसार 'श' और 'र' से बना हुआ जोड़ाक्षर 'श्र' ऐसा लिखना चाहिये न कि 'श्र'। वैसे ही 'त' और 'र' का जोड़ाक्षर 'त्र' ऐसा लिखना चाहिये न कि 'त्र'।

यदि 'श्र' और 'त्र' सम्मेलन द्वारा निर्धारित नियमों के अपवाद हैं तो 'श्र' और 'त्र' जो संस्कृत और मराठी में युग-युगों से प्रचलित संयुक्ताक्षर हैं, अपवाद स्वीकार करने में लिपि सुधारकों को आपत्ति नहीं होनी चाहिये थी। समझ में नहीं आता कि 'मान्य अपवाद' की जगह 'नया अपवाद' पैदा करना कौन सा सुधार है?

सुझाव के अनुसार संयुक्ताक्षर लिखने में बार-बार हलन्त के प्रयोग से शब्दों के अनावश्यक विस्तार द्वारा लेखन, मुद्रण, टंकन में लिपि की संक्षिप्तता (यथा

—कार्यक्रम—कार्‌यक्रम) और सौन्दर्य (यथा—लिपि-लीपी) पर भारी आघात हुआ है, जो उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

संकुचित अर्थ में गलत प्रयोग

देवनागरी लिपि सुधार सम्मेलन, लखनऊ के सुझावों को मान्यता प्रदान कर बम्बई राज्य के शिक्षा विभाग ने सन् १९५८-५९ में केवल हिन्दी भाषा की कुछ पाठ्य पुस्तकों में ही संशोधित देवनागरी लिपि का प्रयोग किया है ; मराठी और संस्कृत की पाठ्य-पुस्तकों में नहीं । कदाचित बम्बई राज्य का शिक्षा-विभाग मराठी और संस्कृत की लिपि को देवनागरी लिपि नहीं मानता, अन्यथा संशोधित लिपि का प्रयोग मराठी, संस्कृत, तथा उनके माध्यम से पढ़ाये जानेवाले समस्त विषयों की पाठ्य पुस्तकों में भी होना चाहिये था।

समझ में नहीं आता कि हिन्दी के हिमायतियों को क्या हो गया है ? एक एक ओर तो वे हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित कर उसे राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता का महत्वपूर्ण आधार घोषित करते हैं ; और दूसरी ओर संस्कृत और मराठी की ओर से आँखें मूँद 'देवनारी लिपि सुधार' के नाम पर 'हिन्दी लिपि सुधार' कर उसे मराठी और संस्कृत से दूरारूढ़ बनाने की कोशिश कर रहे हैं। यह समीचीन नहीं है। देवनागरी लिपि पर किये गये ऐसे संकुचित एकांगी प्रयोगों से हिन्दी, मराठी, संस्कृति की परम्परागत प्राचीन सांस्कृतिक एकता के लिये भारी खतरा है।

सदोष शैक्षणिक प्रयोग

बम्बई राज्य की माध्यमिक शालाओं में छात्र प्रतिदिन हिन्दी और मराठी पढ़ते हैं। हाईस्कूल की उच्च कक्षाओं में संस्कृत भी पढ़ाई जाती है । आज सभी क्षात्रों को प्रायः मराठी, मराठी-माध्यम से पढ़ाये जाने वाले सभी विषयों तथा संस्कृत में प्राचीन लिपि और केवल हिन्दी के लिये नवीन संशोधित लिपि का प्रयोग करना पड़ता है। विभिन्न भाषाओं में प्रयुक्त एक ही लिपि के दो रूप भाषा विज्ञान, मनोविज्ञान, शिक्षा शास्त्र और व्यवहार की दृष्टि से सर्वथा दोषपूर्ण हैं। इसमें दो मत नहीं हो सकते।

बम्बई राज्य की शासकीय सूचना के अनुसार ५ वीं से ७ वीं कक्षा तक के

विद्यार्थियों के लिए लिखित कार्य और परीक्षा में केवल मात्र नवीन लिपि का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया है। ८ वीं और ९ वीं कक्षाओं के लिये आंशिक तथा १० वीं और ११ वीं कक्षाओं के लिये स्वेच्छापूर्वक देवनागरी लिपि के पूर्ववर्ती और परवर्ती रूपों को प्रयुक्त करने का अधिकार दिया गया है। यह प्रयोग-पद्धति भी दोषपूर्ण है।

शैक्षणिक क्षेत्र में लिपि संशोधन का प्रयोग पहली कक्षा से प्रारम्भ होना चाहिए, न कि पाँचवीं से। फिर जब उत्तर प्रदेश में ही लखनऊ लिपि सुधार का प्रयोग असफल सिद्ध हो चुका था, तो बम्बई राज्य में उसका पुनः प्रयोग नहीं होना चाहिये था, क्योंकि ऐसे प्रयोगों का सारे राज्य के छात्रों पर दुष्परिणाम होता है।

मेरा विनम्र निवेदन है कि केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों को शैक्षणिक क्षेत्र में लिपि-सुधार सम्बन्धी ऐसे व्यापक प्रयोग खूब सोचे-समझे बिना कभी नहीं करना चाहिए उपरोक्त तथ्यों पर गम्भीरता पूर्वक निष्पक्ष विचार करने से यह सिद्ध हो जाता है कि देवनागरी लिपि-सुधार सम्मेलन, लखनऊ के प्रस्तावों को प्रयुक्त करते समय बम्बई राज्य के शिक्षा विभाग ने शीघ्रता की है, जिसका दुष्परिणाम सम्पूर्ण राज्य के लाखों छात्रों को कम-से-कम तीन वर्ष तक तो भुगतना ही पड़ेगा।

देवनागरी लिपि सुधारकों के लिये विचारणीय प्रश्न

१—केवल हिन्दी की ही लिपि देवनागरी लिपि नहीं हैं। मराठी और संस्कृत की लिपि भी देवनागरी लिपि है; अतः देवनागरी लिपि सुधारकों को सबसे पहले यह सोचना चाहिए कि क्या उनके द्वारा प्रस्तावित लिपि-सुधार हिन्दी, मराठी और संस्कृत तीनों भाषाओं में देशव्यापी पैमाने पर प्रयुक्त होगा या नहीं ?

२—क्या संशोधित देवनागरी लिपि को सभी प्रान्तीय सरकारें मान्यता प्रदान कर शिक्षण संस्थाओं में अनिवार्य करेंगी ? और उसका प्रयोग सभी राज्यों में प्राथमिक शालाओं की पहली कक्षा से लेकर विश्वविद्यालयों की उच्चतम परीक्षाओं तक के लिए मान्य होगा ?

३— क्या लेखन, मुद्रण, और टंकन में संशोधित देवनागरी लिपि सुविधा-पूर्वक व्यवहृत हो सकेगी और उसके प्रयोग से लिपि की संक्षिप्तता और रूप सौष्ठव सुरक्षित रह सकेंगे ?

४—क्या संशोधित देवनागरी लिपि को हिन्दी, मराठी, संस्कृतादि भाषा भाषी जन मान्यता प्रदान करेंगे ? और क्या उन भाषाओं का सम्पूर्णसाहित्य ग्रन्थ, पत्र-पत्रिकाएँ आदि एकदम से संशोधित लिपि में प्रकाशित हो सकेंगे ? क्या जनता उसे अपनायेगी और प्रकाशक उसे मानेंगे ?

५—जिस प्रकार संशोधित लिपि में प्रकाशित ग्रंथों के अध्ययन के लिये छात्रों को आज संशोधित लिपि सीखनी पड़ रही है ; उसी प्रकार पूर्ववर्ती लिपि में प्रकाशित ग्रन्थों के अध्ययन के लिये क्या छात्रों को भविष्य में प्राचीन लिपि नहीं सीखनी पड़ेगी ? अथवा शासन और प्रकाशक प्राचीन ग्रन्थों के नये संस्करण नवीन लिपि में प्रकाशित करेंगे ?

६—यदि संशोधित देवनागरी लिपि जन साधारण के व्यावहारिक दैनिक जीवन में लोकप्रिय न हो तो क्या शासन संशोधित लिपि प्रयोग के लिये जनता को बाध्य करेगा ? और क्या लिपि सम्बन्धी मामलों में ऐसा शासकीय हस्तक्षेप (दबाव) उचित है ?

६—क्या संधोधन-सम्बन्धी सुझावों से देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता, व्यावहारिकता, शिक्षाशास्त्र, भाषाविज्ञान, लिपिशास्त्र, ध्वनिशास्त्र, सुगमता, सुबोधता तथा स्पष्टता सम्बन्धी सभी समस्याओं का निराकरण हो सकेगा ?

लिपि सुधारकों को देवनागरी लिपि में कोई भी सुधार करने के पूर्व-उपर्युक्त सभी पहलुओं पर गम्भीरता एवम् दूरदर्शितापूर्वक विचार करना आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है।

मैं देवनागरी लिपि सुधारक विद्वज्जनों, भारत की सभी प्रान्तीय सरकारों और हिन्दी, मराठी, संस्कृत भाषा-भाषियों से अपील करता हूँ कि वे बम्बई राज्य के शिक्षा विभाग की भाँति "देवनागरी लिपि सुधार" को "हिन्दी लिपि सुधार" न समझें। देवनागरी लिपि सुधार किसी एक भाषा में नहीं, किसी एक प्रान्त में नहीं, बल्कि हिन्दी, मराठी, संस्कृत–तीनों भाषाओं में तथा उनके

माध्यम से पढ़ाये जाने वाले सम्पूर्ण विषयों की पाठ्य पुस्तकों में, उनके सम्पूर्ण साहित्य के लेखन, मुद्रण, टंकन में सम्पूर्ण देश में एक साथ क्रियान्वित होना चाहिए।

बम्बई राज्य में देवनागरी लिपि का प्रयोग करने वाले समस्त हिन्दी, मराठी और संस्कृत भाषाविदों से मेरा अनुरोध है कि बम्बई राज्य में लखनऊ लिपि-सुधार का एकांगी शैक्षणिक प्रयोग हिन्दी, मराठी, संस्कृत की सांस्कृतिक एकता के लिए घातक है। अतः आज हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम बम्बई राज्य में देवनागरी लिपि के दुरंगे प्रयोग से दुविधा में पड़ी हुई देश की वर्तमान पीढ़ी को गुमराह और भ्रमित होने से बचाएं। साथ ही भारतवर्ष के सभी प्रान्तों की जनता से निवेदन करें कि शैक्षणिक क्षेत्र में देवनागरी लिपि सुधार सम्बन्धी ऐसे संकीर्ण एकांगी प्रयोगों द्वारा देश की नई पौध को जोशीले सुधारकों के बुद्धिवाद का शिकार न होने दें।

[दिनांक १० अगस्त १९५९ को हिन्दी अध्ययन सभा, काकाकुआ मॅन्शन लक्ष्मीरोड, पूना—२ में लिखित और माध्यमिक शिक्षक संघ पूना के तत्वावधान में दिया गया भाषण।]

———

१० : राजभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी

—डॉ० एम्०एस्० नटराजन, एम्०ए०, पीएच्०डी०

[डॉ० एम्० एस्० नटराजन, एम०ए०, पीएच०डी, डायरेक्टर, दीवानचंद पोलीटिकल इन्फर्मेशन ब्यूरो, नई दिल्ली ने तमिलभाषी होते हुए भी पुष्ट तर्क और गठी हुई भाषा में राजभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी का जोरदार समर्थन किया है। उनके सुलझे हुए विचार निष्पक्ष और व्यावहारिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं।]

राष्ट्रलिपि देवनागरी का सांस्कृतिक पक्ष

सारे भारत में यह धारणा बन चुकी है कि भारत भर में एक भाषा और एक लिपि शासन की दृष्टि से आवश्यक है। हिन्दी ही ऐसी भाषा है जो भारत की सर्वथैव योग्य प्रकार से राष्ट्रभाषा कहला सकती है, फिर उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि कतिपय हिन्दुस्तानी के समर्थकों में यह मत प्रचलित है कि राष्ट्रलिपि देवनागरी ही हो। वस्तुतः सांस्कृतिक दृष्टि से और भारत की स्वाभाविक प्रणाली के अनुसार भारत की देवनागरी लिपि सब प्रकार से योग्य और उपयुक्त है। गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी की ही तरह वह हमारी परम्परा में आने वाली है। कुछ थोड़े से उर्दूदाँ लोगों को यदि उर्दू लिपि में लिखने की छूट यदि राज्य की ओर से प्रदान की जाय तो उससे भी अधिक सुविधा माँगने का हक तमिल, बंगाली, उड़िया आदि की लिपियों को भी है और उनकी माँग न्यायपूर्ण ही मानी जायगी।

भारतीय भाषाओं में प्रकृतिमूलक साम्य

इस देश में बीस मुख्य भाषाएँ प्रचलित हैं पर मुख्य लिपियाँ बहुत कम हैं, दक्षिण की तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ को छोड़कर बाकी अन्य प्रान्तीय भाषाएँ आर्य कुल की हैं, तथा कुछ थोड़े-से हेर-फेर के साथ यदि देखा जाय

तो मालूम होगा कि उनकी मूल प्रकृति एक ही है। इसलिये इनकी लिपियाँ भी देवनागरी से मिलती-जुलती हैं और ये भाषाएँ देवनागरी को अपना सकती हैं। आर्येतर परिवार की लिपियों में भी देवनागरी लिपि से बहुत-कुछ साम्य है। कम से कम यह तो माना जा सकता है कि द्राविड़ परिवार की भाषाओं ने सदियों तक संस्कृत के शब्दों को लेकर अपने आपको पुष्ट किया है तथा संस्कृत के कुछ अक्षरों को अधिक रूप में अपनाते हुए देवनागरी के साथ अपने ऐक्य को घोषित किया है।

देवनागरी लिपि-व्यवहार के व्यापक लाभ

सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि देवनागरी को अपनाकर धीरे-धीरे प्रचार करने से, तथा शिक्षा के माध्यम से लोगों को इस मत में दीक्षित किया जा सकता है कि प्रान्तीय भाषाओं को भी यदि देवनागरी लिपि में लिखा जाय तो विचारों का, चिन्तन प्रणाली का आदान-प्रदान होने में एवम् राष्ट्रैक्य प्रस्थापित करने में बहुत सहायता मिल सकती है।

देवनागरी लिपि में सुधार की आवश्यकता

सारे भारतवर्ष में देवनागरी को प्रचलित करने के पहले इस बात को मान लेना होगा कि प्रचलित देवनागरी लिपि में से कुछ अक्षरों में हेर-फेर तथा उनके अनुसंधान की गुञ्जाइश रहेगी। तामिल तथा कुछ अन्य भाषाओं के कुछ अक्षर जिनके लिए देवनागरी में कोई चिह्न विद्यमान नहीं हैं, उनको नये रूप में निर्माण करना होगा। इसके साथ ही प्रचलित संकीर्ण लिपि को और अधिक सरलतम बनाने की भी कोशिश करनी होगी। यदि किसी प्रकार एक लिपि का माध्यम सर्वत्र मान लिया गया तो करोड़ों की संख्या में पढ़ने वालों को बड़ी सुविधा रहेगी और वह एक बड़े कल्याण का विषय होगा। विशेषतः बच्चों के लिये तो यह एक महान उपकारक घटना होगी। एक लिपि का महत्व प्रदर्शित करने वालों के विचार एकदम नये या अजनबी नहीं हैं। ४० वर्षों पूर्व इसकी उपयुक्तता मानी जा चुकी है। इस कार्य के लिये योग्य प्रचार की आवश्ककता है और यदि वह किया जाय तो पुरानी से पुरानी लिपि में लिखी जाने वाली तामिल भाषा-भाषियों की भाषा को भी देवनागरी लिपि में लिखने की प्रेरणा

दी जा सकती है। नागरी की तरह तामिल भाषा की तामिल लिपि भी प्राचीन है। देवनागरी को अपनाने से तामिल भाषा का समृद्ध साहित्य करोड़ों निवासियों के सामने लाया जा सकता है।

दकियानूसी प्रयोगकर्त्ताओं को चेतावनी

देवनागरी लिपि में थोड़े से परिवर्तन की बात आते ही उत्तर प्रदेशीय पुराने दकियानूसी पण्डित उसका विरोध करते हैं। यह देश के हित की दृष्टि से अच्छा नहीं है। उनको चाहिये कि वे सचाई और व्यवहार को देखें और अपना विरोध हटा लें। उनको समझना चाहिये कि आज भी ९२% लोग देवनागरी लिपि में नहीं लिखते, पर कल की हिन्दी या दो पीढ़ी के बाद के लोगों की हिन्दी—राष्ट्रभाषा हिन्दी—याने राष्ट्र की हिन्दी होने वाली है जो सभी प्रकार से परिपक्व और समृद्ध होकर सामने आवेगी। वह भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं का सब कुछ लेकर बलवती तथा पुष्ट होगी।

११ :

देवनागरी लिपि में "ख" (क़) अक्षर पर कुछ विचार

—डॉ० रा० प्र० पारनेरकर, पी-एच० डी०

[इस लेख के लेखक विद्वद्रत्न डाँ० रामचन्द्र प्रल्हाद पारनेरकर पी-एच० डी०, जह्वेरी इन्दौर के एक मूर्धन्य पंडित, दार्शनिक, विचारक और अध्यात्म क्षेत्र के उद्भट गुरुदेव हैं। प्रस्तुत लेख मराठी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में सन् १९३६ में विद्वानों के सामने पढ़ा गया था। आपको पूर्णवाद दर्शन पर संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी से पी०-एच० डी० की उपाधि मिली है। यह लेख हिन्दी में "राष्ट्र भारती" की जनवरी १९५९, संख्या १, वर्ष ९, राष्ट्र भाषा-प्रचार-समिति वर्धा में प्रकाशित हो चुका है। 'ख' अक्षर के इस नये (क) रूप के बारे में प्रदर्शित विचार चिंतनीय और महत्वपूर्ण हैं।]

देवनागरी लिपि की शुद्धता

देवनागरी लिपि आर्यों के द्वारा व्यवहृत होने वाली लिपि के अर्थ में लोग पहिचानते हैं। उसका नाम देवनागरी पड़ने का कारण इसकी लिपि-सुलभता और सौन्दर्यपूर्ण होना है। देवताओं को जिस प्रकार छोटे-बड़े सम भाव से देखते हैं उसी प्रकार देवनागरी लिपि सब के लिये समभाव से अपनायी जा सकने वाली लिपि होने से उसका नाम 'देवनागरी' पड़ा है। इसकी सुधरता और सौंदर्य इसमें है कि उच्चारण की दृष्टि से जो उच्चारण हम करते हैं वैसा ही उसको लिखते भी हैं। लिपि विज्ञान की दृष्टि से भी इस लिपि की पूर्ण प्रगति हो चुकी है। देवनागरी के स्वर और व्यंजन मिलाकर कुल ९० अक्षर हैं। वैयाकरणी इन अक्षरों के दो प्रमुख भेद बतलाते हैं। (१) श्वास अघोष वर्ण और (२) नाद-अघोष वर्ण। व्याकरण के नियमानुसार व्यंजनों की दो ध्वनियाँ हैं। (१) अल्पप्राण और (२) महाप्राण। क, ख, ग, घ, प, फ, आदि व्यंजन

हैं। इनमें प्रत्येक वर्ण की प्रथम और तृतीय वर्ण की अल्प प्राण ध्वयियाँ हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ वर्ण की महाप्राण ध्वनियाँ हैं। यथा—क, ग, च, ज, त, द, ट, ड, प, ब आदि अल्पप्राण और ख, घ, छ, झ, थ, ध, ठ, ढ, फ, भ, आदि महाप्राण व्यंजन हैं। इनमें हमने देखा कि महाप्राण ध्वनियाँ मूल वर्ण में ह् मिलाकर बनी हैं। जैसे क्+ह्=ख; ग्+ह्=घ; च्+ह्=छ; ज्+ह्=झ; प्+ह्=फ; ब्+ह्=भ। ये सभी रूप 'ह्' कार युक्त हैं। इनका प्रत्येक का अपना-अपना स्वतंत्र आकृति वाला ध्वन्यात्मक रूप है। इनको ऐसे लिखना वैज्ञानिक ही माना गया है। अतः बहुधा देवनागरी में इसी प्रकार को लेकर 'ह्' अक्षर की आकृति का कोई हिस्सा मिला हुआ रूप ही इन महाप्राण ध्वनियों में व्यक्त हुआ है। जैसे 'फ' इस अक्षर में प+ह्+अ से मिलाकर बना है। इसमें दो परस वर्ण और एक स्वर है। 'प' में ह् का ऊपरी भाग मिलाने पर उसका उच्चारण प्ह् होगा। किन्तु फ का उच्चारण ऐसा न होने से उसके ऊपर का शीर्षक भाग निकाल देने पर वह 'फ' इस प्रकार आकृति वाला अक्षर बन गया। मुझे इन अक्षरों के बारे में कुछ नहीं कहना है पर एक अक्षर 'ख' ऐसा है जिसके स्वरूप पर मुझे कुछ निवेदन करना है।

'ख' वर्ण-मूलक भ्रान्तियाँ—

वस्तुतः देखा जाय तो देवनागरी लिपि में एक उच्चारण के लिए एक ध्वनिमात्र (वर्ण) की योजना है जो पूर्णरूपेण वैज्ञानिक है। पर हम देखते हैं कि 'ख' में दो वर्णों का योग है। "र" तथा "व" ये दो स्वतंत्र वर्ण देवनागरी लिपि में हैं जिनकी अलग-अलग ध्वनियाँ एवम् उच्चारण हैं। प्रश्न है कि "ख" अक्षर के साथ ऐसा क्यों हुआ? उत्तर दिया जा सकता है कि जैसे मूल शब्दों का घिसने-घिसते अपभ्रष्ट रूप बन जाता है उसी तरह "ख" अक्षर का भी हुआ हो। चाहें जो कुछ भी हो "ख" वर्ण के सीखने में, तथा पढ़ने-पढ़ाने में कठिनाइयाँ अनेक प्रकार से उपस्थित हो जाती हैं। छोटे बच्चे तो "ख" अक्षर सीखने में विशेष कठिनाई, तथा पढ़ने में विशेष अड़चन महसूस करते हैं। विद्वानों का ध्यान इस ओर बहुत कम गया है। कोई नया अपरिचित शब्द सामने आने पर उसे "र" और "व" दो उच्चारणों से अलग-अलग पढ़ा जाय अथवा "ख" के

रूप में पढ़ा जाय। यह समझ में नहीं आता यदि शब्दकोश में देखना हो तो "ख" से आरम्भ किये गए शब्द संग्रह से उसे देखें या "र" या "व" से आरम्भ किये गए शब्द-संग्रह से उसे देखा जाय ? इसमें समय का अपव्यय और रस भंग होता है। विषय के साथ तादात्म्य छूट जाता है और विचारों का प्रवाह रुक जाता है। इतना परिश्रम बचाया जाय इसलिए केवल संदर्भ से अर्थोपलब्धि कर ली जाय तो वह मनोरंजनार्थ पढ़े गए राजमार्ग की तरह होगा। इस प्रकार के लोग पाठकों के भीतर शब्दार्थ के जिज्ञासु भी नहीं रहते। फिर भी विद्वान जिज्ञासु के लिए और वाचन पर अंक हासिल करने हों तो ऐसे छात्र के लिए इसकी संपूर्ण छानबीन आवश्यक है। अब मैं कुछ उदाहरण आपके सम्मुख रखूंगा—

(१) खाना = खाना, भक्षण करना
(२) रवाना = जाना
} इन दो शब्दों में साम्य है।

अर्थ अलग-अलग हैं। जैसे (१) खाना हो गया (२) रवाना हो गया। पहले वाक्य का अर्थ खाने की क्रिया समाप्त हो जाने से अभिप्रेत है, दूसरे वाक्य का अर्थ चल देने का याने गति का द्योतक है। कुछ अन्य उदाहरण भी देखिए :—

सुख = आनन्द,
सुरव = अच्छा शब्द,
नखरों से = अदाओं से।
नरवरों से = नरश्रेष्ठों से।

चखाया = खिलाया या स्वाद बतलाया।
चरवाया = गायों को भेड़ों को चरवाया।

'रव' अक्षर की यह गड़बड़ी मराठी और हिन्दी दोनों में उत्पन्न हो जाती है। अत: इसे दूर करने के लिए कोई उपाय वैज्ञानिक ढंग पर ढूँढ़ना होगा। भाई रवाना हो गया ? इस वाक्य को दो अर्थों में समझा जा सकता है। जैसे भाई का गमन हो गया या भाई का खाना हो गया। वैसे फारसी से हिन्दी में आये हुये "रव" युक्त शब्द को उसके नीचे नुक्ता लगाकर लिख दिया जाता है

जैसे अख़बार । पर इससे मूल कठिनाई दूर नहीं हो जाती । मराठी में तो इसकी कठिनाई अधिक प्रतीत होती है।

"ख" का प्रस्तावित नया रूप: "क्, "क"।

अतएव "ख" अक्षर का वैज्ञानिक रूप किस प्रकार का हो सकता है इसे विचार करने पर हमारी प्रचलित सर्वांग सुन्दर वैज्ञानिक देवनागरी में "ख" का रूप कितना अवैज्ञानिक है यह समझ में आ जाता है । व्याकरण की दृष्टि से "ख" का पृथक्करण करने पर क्+ह्+अ याने "ख" दिखाई देता है। इस रूप में "ह" का कोई भी अंग नहीं है । अत: यह अवैज्ञानिक "ख" इस प्रकार लिखा जा सकता है :— ख=क्+ह्+अ में पहले "क" का उच्चारण होता है तथा बाद में ह का । अत: प्रथम आधा 'क' लेकर उसमें आधा 'ह' जोड़ने पर हमारे ख का उच्चारण पूर्ण बनेगा। पूरा 'ह' जोड़ने पर 'कह' दीर्घ उच्चारण होगा जो अग्राह्य है अत: ख को इस प्रकार लिखना "कह्—क्ह" वैज्ञानिक सिद्ध होगा।

प्रस्तावित रूप का पुष्टीकरण

सुविधा की दृष्टि से इसे लिखते समय हाथ नहीं उठाना पड़ता है। इसलिए समय की वचत होती है । अर्थ-बोध और पठन-सुलभ होने से इस प्रस्तावित रूप "क्ह" को ले लिया जाय तो देवनागरी लिपि की एक बड़ी समस्या हल हो जायगी। संयुक्ताक्षर और मुद्रण की दृष्टि से इसमें सुकरता है या नहीं, इस पर भी विचार कर लिया जाय । संयुक्ताक्षर तीन तरह से बनाये जाते हैं :— (१) अक्षर के नीचे अक्षर लिखकर, (२) एक अक्षर से दूसरा अक्षर सटाकर और (३) प्रथम अक्षर का कोई अंग छोड़कर शेष के नीचे या दूसरे से सटाकर संयुक्ताक्षर लिखते हैं जैसे अक्का, जाड्य, निम्न, तप्त, सख्य, तथा वर्ख '(ख) क्ह' से बनने वाले संयुक्ताक्षर नये स्वरूपों से इस प्रकार बनेंगे।

पुराने ख के संयुक्ताक्षर

ख्याति, ख्रिस्त, वर्ख, तख्त।

नये प्रस्तावित क के संयुक्ताक्षर

क्याति, क्रिस्त, वर्क, तक्त

इस तरह हमने देखा कि मुद्रण की दृष्टि से भी वे सुलभ हो सकेंगे। अतः विद्वानों से तथा लिपि-विशारदों से मेरा साग्रह अनुरोध है कि इस सौन्दर्य पूर्ण "क" का स्वीकार कर इसका प्रचार किया जाय।

---

१२ : हिन्दी वर्णमाला में अक्षरों के नीचे नुक्ता देने की झक

—मेजर एन्० बी० गद्रे

[मेजर एन० बी० गद्रे का प्रस्तुत लेख अँग्रेजी साप्ताहिक पत्र 'शिल्प संसार', वर्ष १, अंक २२, शनिवार २४-१२-१९५५ में प्रकाशित The fad of dotted Letters in Hindi alphabets लेख पर आधारित है।

श्री गद्रे जी का यह लेख वैयक्तिकतापूर्ण होते हुए भी बड़ा वैज्ञानिक, मार्मिक और मौलिक है। उन्होंने जिस "मेरे पुत्र" की समस्याओं का उल्लेख किया है वह श्री गद्रे जी का सुपुत्र नहीं, देश के जन-जन की भावी संतान है —संपादक]

भारत सरकार की पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग का भविष्य

भारत सरकार के वैज्ञानिक-पारिभाषिक-शब्दावली-निर्माण मंडल का तीसरा सबसे महत्वपूर्ण विकसित सिद्धान्त यह है कि[१] उसके अनुसार "मेरे पुत्र को" A B C D एक चतुर्भुज है—यह कहना पड़ेगा। युक्लीड को समझे-बूझे बिना ही उसे यह कहना पड़ेगा जिससे यह निर्विवाद है कि जीवन में वह कुछ भी नहीं बन सकता। फिर पानी भरने वाला तो क्या लकड़हारा भी बनना उसके लिए मुश्किल है।

हिन्दी में गणित विषयक शब्दावली

एक बार हिन्दी में गणित विषयक वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली का प्रतिमित (Standerdised) रूप या कोष के प्राध्यापक हुमायूँ कबीर के तत्वावधान में निकल जाने पर तथा ७ जनवरी १९५५ में जब यह वैधानिक

१—देखिये शिल्प संसार पृष्ठ—९६

बन जाता है तब तथ्य की बात यह है कि उसके लिए "क ख ग घ" के साथ संतोष या सुरक्षा प्राप्त नहीं हो सकती। जिस प्रकार आज उसके बड़े भाई पूना, नागपूर या पटना में कन्नी काट जाते हैं।

रोमन लिपि का व्यामोह

भारत में ब्रिटिश शासन के अस्तित्व या उसकी धाक जम जाने से हमारे मन पर पड़े हुए रोमन लिपि का मोह तो समझा जा सकता है जो अब तक हमारे मन पर असर डाले हुए है । किन्तु यदि मेरे पुत्र को "डाकखाना" यह शब्द "डाकख़ाना" के स्थान पर लिखने मात्र से एक वर्ष अनुत्तीर्ण होना पड़े या नौकरी से हाथ धोना पड़े तो पैंतीस करोड़ भारतीयों में से तीस करोड़ तो अवश्य लड़खड़ाने लगेंगे तथा वे मेरे पुत्र का भाग्य-निर्णय बदल नहीं सकेंगे । पाँच करोड़ भाग्यवान व्यक्ति ऐसे होंगे जिनके लिये हिन्दी (उस समय जिसे 'हिन्दुस्तानी' कहा करते थे) दो लिपि वाली भाषा कही जाती थी। जैसे आज पंजाबी का हाल है वे "डाकखाना" इस शब्द के "ख़" का कारण समझ सकते हैं। बाकी तीस करोड़ भारतीय लोगों के लिए यह केवल वैधानिक आदेश मात्र सिद्ध होगा क्योंकि जीवन में शायद ही उन्हें कभी उर्दू वर्णमाला सीखनी पड़ेगी।

रोमन और उर्दू वर्णो के नागरी लेखन में नुक्ता—

उर्दू में कई एक सी प्रतीत होने वाली ध्वनियों के लिये निर्णायक दो वर्ण अलग-अलग रूप से लिखे जाते हैं जैसे अँग्रेजी में 'K' ध्वनि को बतलाने वाले 'Q' और 'c' या 'w' और 'v' के लिए या 'c' और 's' के लिए, या 'g' और 'J' के लिए या 'ph' और 'F' 'JH' और 'Z' ये वर्ण हैं। नागरी हिन्दी लिपि में नुक्ता देने से उर्दू की ध्वनियाँ शुद्ध रूप में लिखकर बतलायी जा सकती हैं। उसी तरह अँग्रेजी ध्वनियाँ भी देवनागरीं लिपि में लिखकर बतलाई जा सकती हैं। 'सर' (Sir) को हम बिना नुक्ता के लिख सकते हैं किन्तु सर्कल (Circle) को नुक्ता देकर लिखना पड़ेगा। उसी तरह फायल (Phial) नुक्ता न देकर लिख सकते हैं । किन्तु (File) को नुक्ता देकर लिखना पड़ेगा। हमारे संविधान के अनुसार हमारी राष्ट्र भाषा की एक ही लिपि देवनागरी है अतः

नुक्तों की आवश्यकता ही अब हट गयी है । यदि परंपरा को अपनाया जायगा तो ८० प्रतिशत भारतीय लोगों को हिन्दी का प्रयोग करने में नुक्तों का कोई उपयोग नहीं प्रतीत होगा । किन्तु कानून कानून है और यदि मेरे पुत्र को आत्म-हत्या नहीं करनी है तो हिन्दी नागरी वर्णमाला के नुक्तों को उसे सीखना पड़ेगा । इस तत्व को ध्यान में रखते हुए कुछ अपवाद भी देखे जा सकते हैं । 'त' और 'ध' के नीचे नुक्ता नहीं दिया जाता तो भी उर्दू में दोनों के लिए अलग-अलग वर्ण विद्यमान हैं । 'ज' और 'झ' से उर्दू तथा हिन्दी में 'ज' की ध्वनि बिल्कुल अलग है । 'ज' यह ध्वनि के साथ साम्य रखती है तथा साम्य कई अन्य एशियाई तथा यूरोपीय भाषाओं की ध्वनि के साथ माना जा सकता है । किन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि नागरी हिन्दी में यह अन्तर बतलाने के लिए केवल फारसी अरबी शब्दों के लिये ही उसका उपयोग किया जाता है । इस प्रकार गजल लिखते समय तो ज़ के नीचे नुक्ता लिखा जाता है पर अंग्रेजी म, झ, ल या ड, झ, न, के लिये उसका उपयोग तक नहीं किया जाता और न मराठी 'तुझा-माझा' के लिए भी इसका प्रयोग होता है ।

प्राचीन नागरी लिपि में नुक्ता नदारद

मुझे आश्चर्य इस बात का है कि हिन्दी नागरी लिपि में नुक्ता देने की यह प्रणाली व्याकरणानुसार कब से प्रचलित हो गयी या यह कितनी पुरानी है इसका पता कैसे लगाया जाय ? मराठी में लिखे हुए कई पत्र या पोथियाँ मिलती हैं जिन्हें सोलहवीं या सत्रहवीं शती में लिखा गया है तथा जिनमें लिखित शब्द अस्सी या नब्बे प्रतिशत अरबी फारसी से अनुप्राणित हैं पर वहाँ कहीं भी नुक्ता देने की पद्धति नहीं प्रचलित है । मराठी के बखरों में भी नुक्ते आपको कहीं भी नहीं मिलेंगे । यदि अकबर और औरंगजेब के दरबार में बीरबल ने या कवि भूषण ने नागरी-फारसी के शब्दों को नुक्तों के बिना लिखा हो तो मुझे इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं होगा । मैं यह मानता हूँ कि आज भी बिहारी, बनारसी या जयपुरी, इन्दौरी इन नुक्तों की इतनी पर्वाह नहीं करते । किन्तु आज कल हिन्दी लखनऊ तथा होशियारपुर से अनुशासित अधिक जान पड़ती है तथा पूर्वी केन्द्रों का उस पर उतना अनुशासन नहीं है । अतः

नुक्तों की भरमार सारे भारत के लिए नागरी हिन्दी के व्यवहार में लाजिमी या अनिवार्य है।

अब नुक्ता निहायत जरूरी है

संभवतः हमें मराठी में भी अब इन नुक्तों को अपनाना पड़ेगा और इस प्रकार लिखना पड़ेगा यथा—

"माझ़ा सांज़ा नव्या ख्या चा। (Dento Palatal)

तूझी भाजी छान रसाची।" (Pure palatal)

ऐसा करने से अन्य भाषाएँ भी इसका अनुसरण करने लगेंगी और कोई महत्व-पूर्ण कार्य सिद्ध होगा जो आज केवल महत्वहीन कार्य बन गया है।

---

१३ : देवनागरी लिपि

—प्रा० सुरेशचन्द्र त्रिवेदी
हिन्दी-विभाग सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ, वल्लभ विद्यानर

सर्वांग सम्पूर्ण राष्ट्रलिपि

यद्यपि संसार की कोई चीज सर्वांग संपूर्ण नहीं होती है, फिर भी मानव सदैव संपूर्णता, सुंदरता, सरलता, आदि का ही अधिकाधिक आग्रह रखता है। देवनागरी लिपि भी सर्वांग शुद्ध या संपूर्ण नहीं है, फिर भी वह सर्वाधिक सरल, सुंदर, वैज्ञानिक एवं पूर्ण है, और यही कारण है कि उसे राष्ट्रलिपि पद पर स्थापित किया गया है।

यों तो इस विशाल भारत में अनेक भाषायें विभिन्न लिपियों में लिखी जाती हैं, पर उनमें बहुत-सी भाषायें मुख्यतः देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। उत्तरापथ और दक्षिणापथ की लिपियों में निश्चय ही बहुत अंतर है। तमिल, तेलुगु, कन्नड़, एवं मलयालम भाषायें द्रविड़ लिपियों में लिखी जाती हैं, जबकि महाराष्ट्री, राजस्थानी, हिन्दी तथा उत्तर भारत की अन्य भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। पंजाबी गुरुमुखी में लिखी जाती है। बँगला और गुजराती की लिपियाँ देवनागरी का ही एक विकसित रूप हैं।

दक्षिण भारत की भाषाओं में संस्कृत शब्द

यद्यपि भारत की सभी भाषाओं में ५० प्रतिशत से भी अधिक शब्द संस्कृत के हैं, और उनके व्याकरण कारक-क्रिया आदि के रूपों में बहुत थोड़ा वैभिन्य है, फिर भी वे लिपि की विभिन्नता के कारण दुर्बोध, कठिन और समझ में न आ सकें वैसी—हो जाती हैं। तमिल, कन्नड़, तेलुगु एवं मलयालम के शब्द भंडार में संस्कृत शब्दों का आधिक्य है, फिर भी लिपि भेद से हम उनके साहित्य का आस्वाद नहीं ले पाते हैं। अतः साहित्यिक आदान-प्रदान के विचार

से भारत की सभी भाषाओं का साहित्य यदि देवनागरी लिपि में लिखा जाय तो बहुत ही उपकारक सिद्ध होगा।

राष्ट्रीयता का प्रश्न

दूसरी बात यह है कि हमारे संविधान ने राष्ट्रभाषा-हिन्दी और देवनागरी लिपि को राष्ट्रलिपि के रूप में स्वीकार कर लिया है। राष्ट्रभाषा, राष्ट्रलिपि, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगीत का सम्मान करना हमारी राष्ट्रीयता है। हमारा कर्तव्य है कि हम राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रलिपि का अधिकाधिक व्यवहार करें।

राष्ट्रीय एकता के विचार से भी हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रयोग करना वांछनीय है - राष्ट्र को एक करने में विभिन्न प्रांतों की भाषाओं को एकता के सूत्र में बाँधने में देवनागरी लिपि ही अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकेगी—ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। यदि सभी राज्य सरकारें अपना व्यवहार देवनागरी लिप में करना शुरू कर दें तो कितना अच्छा हो। मैं गुजारती के कवि श्री निरंजन भगत को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपना काव्य 'छंदोलय' इस प्रकार देवनागरी में छपवाया है। प्राचीन गुजराती का स्वरूप देवनागरी से अधिक भिन्न नहीं था। सुंदरता के विचार से गुजराती लिपि ने नागरी लिपि की शिरोरेखा का त्याग कर दिया तथा उसके कुछ वर्णों के रूप में परिवर्तन हो गया। बँगला लिपि भी देवनागरी से भिन्न नहीं है। जहाँ गुजराती लिपि में अक्षरों की बनावट वर्तुलाकार हुई, बँगाल में कोणाकार होने लगी। मूल में यह सभी लिपियाँ २२०० वर्ष पुरानी ब्राह्मी लिपि से निकली हैं। इनमें सुंदरता एवं त्वरा के विचार से समय-समय पर परिवर्तन अवश्य होते रहे। भूतपूर्व बड़ौदा राज्य (रियासत) के राजा प्रताप सिंह राव गायकवाड़ ने तो अपने राज्य का सारा कारोबार गुजराती भाषा और देवनागरी लिपि में ही करने का नियम रखा था।

लिपि के वैज्ञानिक आधार

किसी भी लिपि का वैज्ञानिकता का आधार निम्नलिखित बातों पर है— (१) स्पष्टता (२) सुन्दरता (३) त्वरा (४) उच्चारण और लेखन में अधिकाधिक एकरूपता (५) लेखन, मुद्रण, टकण, आदि की सुकरता, सरलता।

यदि इन तत्वों के आधार पर देवनागरी लिपि का विचार किया जाय तो निश्चय ही कहना पड़ेगा कि देवनागरी लिपि अधिक वैज्ञानिक होते हुए भी उसमें कुछ ऐसे सुधार आवश्यक हैं—जिनसे उसमें मुद्रण, टंकणादि की सरलता हो और त्वरा भी आ जाय। किन्तु मैं सुधार के नाम पर लिपि के स्वरूप एवं सौंदर्य को नष्ट करने के पक्ष में नहीं हूँ। लिपि के सुधार के नाम पर आज तक अनेक प्रयोग हुए हैं उनमें कुछ तो सराहनीय हैं, शेष केवल लिपि को भ्रष्ट करने के प्रयत्न मात्र हैं।

मुद्रण सौन्दर्य के लिए अन्धानुकरण

रोमन लिपि की मुद्रण सुकरता के अंधानुकरण में कुछ विद्वानों का सुझाव है कि नागरी लिपि में स्वर एवं व्यंजनों की मात्राएँ तथा संयुक्ताक्षर भी एक सीधी लकीर में ही हों—जैसे अ आ अि अी अु अू आदि। मुद्रण सुकरता इससे भले ही होती हो, किन्तु लिपि का सौंदर्य नष्ट अवश्य हो जाता है। इसी प्रकार शिरोरेखा के विषय में भी वैभिन्य है। यद्यपि व्यवहार में लिखते समय बहुत कम लोग शिरोरेखा का उपयोग करते हैं, फिर भी मुद्रणादि में शिरोरेखा की आवश्यकता सब स्वीकार करते हैं, और करनी चाहिए। त्वरा के विचार से शिरोरेखा हटाने पर भी सौंदर्य-हानि संभव है। मेरे विचार से शिरोरेखा होना आवश्यक है। गुजरात में भी पहले शिरोरेखा देने का प्रचलन था। स्वरों के स्वरूप में भी विभिन्न मत हैं—मेरे विचार से अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ रूप ही विशेष अनुकूल हैं। इन में पुराने स्वरूपों को भी स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

सुधारों का समर्थन

व्यंजनों के स्वरूपों में निम्नलिखित सुधारों का मैं समर्थन करना चाहूँगा—

देवनागरी रूप	सुधरा रूप
ख	ख
झ झ	झ (केवल यही रूप हो)
ण ण ण	ण (केवल यही रूप हो)
ध	ध

भ	भ
ल	ळ
—	ळ (नया जोड़ दिया जाय)
	च़ (नया जोड़ दिया जाय)

संयुक्ताक्षरों के विषय में मैं लखनऊ लिपि सुधार से सहमत नहीं हूँ। प्रेम या प्रीति न लिखकर—प्रेम, प्रीति लिखना ही श्रेयकर समझता हूँ। यह बहुत ही बुद्धिमानी, सुधारवादिता एवं कल्याण का मार्ग होगा—यदि सभी प्रांतीय भाषाओं को देवनागरी लिपि में ही लिखने का प्रारंभ कर दिया जाय।

---

१४ :

देवनागरी लिपि सुधार

—श्री जेठालाल जोशी

[प्रस्तुत लेख विशेष रूप से लिखा गया है। इसके लेखक श्री जेठालाल जी जोशी गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद के प्रमुख संचालक हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार के कार्य में गत पंद्रह-बीस वर्षों से आप लगे हुए हैं। "राष्ट्रवीणा" नाम की एक साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका का संचालन भी आपने किया है। देवनागरी लिपि-सुधार पर आपके विचार विचारणीय हैं। गुजरात के एक गण्यमान्य विचारक तथा कर्मठ राष्ट्रभाषा प्रचारक के नाते गुजरात में तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के प्रमुख कार्यकर्ताओं में से आप भी एक होने से आपका स्थान वरेण्य प्रचारकों में प्रमुख है।]

देवनागरी संशोधन के कारण

देश-विदेश के लिपि विशारदों की राय में "देवनागरी" लिपि विश्व की वर्तमान लिपियों में श्रेष्ठ लिपि है। नागरी लिपि तथा वर्णमाला की यह विशेषता है कि इसमें जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है और जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। अक्षरों का रूप उर्दू की तरह बदलता नहीं। हमेशा एक सा रहता है। रोमन लिपि की ध्वनि-विषयक अपूर्णता इसमें नहीं है। मात्राओं का क्रम भी व्यवस्थित है। रोमन तथा अन्य लिपियों का क्रम उतना अच्छा नहीं है। स्वर तंत्र की रचना के अनुसार इस लिपि के अक्षरों का शास्त्रीय वर्गीकरण है। करीब-करीब सभी भारतीय भाषाओं की ध्वनियों को व्यक्त करने की देवनागरी में क्षमता है।

देवनागरी में यदाकदा किसी न किसी तर्क तथा वैज्ञानिक बात का आश्रय लेकर संशोधन की बात उठ रही है। देवनागरी के प्रयोग तथा संशोधन की बात सोचते समय चार बातों की ओर विशेष ध्यान रखकर चर्चा होती है।—

(१) कम्पोजिंग (२) टाइपिंग (३) टेलीग्राफिक कोड, और (४) टेलीप्रिंटर।

संशोधनों का स्वरूप

दो-चार अक्षरों के बदलने से यंत्र की सुविधा बढ़ जाती है, ऐसा मानना ठीक नहीं है। यंत्र तो अक्षरों के अनुरूप बनाये जा सकते हैं। फिर भी यंत्र की सुविधा को नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि देवनागरी सदियों के उपयोग से अब करीब-करीब स्थिर रूप को प्राप्त होती गयी है।

हर भारतीय भाषा की ध्वनि को व्यक्त करने के लिए अक्षर और चिह्नों की संख्या बढ़ाने से सरलता नष्ट हो जाती है। 'गाय और गरीब', 'कमल और कलम' जैसे अनेक शब्दों के उच्चारण की स्पष्टता के लिए अक्षरों के नीचे नुक्ता लगाने से सरलता कम होती है। अक्षरों के उच्चारण चिह्नों के उपयोग उतने से अस्पष्ट नहीं होते। उसके लिये तो प्रत्यक्ष उच्चारण सुनना और उस ध्वनि का अनुकरण करना ही उत्तम मार्ग है।

अक्षरों के पढ़ने में संदिग्धता न रहनी चाहिये। नागरी में "ख" अक्षर कुछ इस तरह लिखा जाता है कि र व भी पढ़ा जा सकता है। विद्वान एक स्वर से आकृति निश्चित करें।

अक्षरों को हलन्त लिखने की प्रथा कोई सुविधाजनक नहीं है। जैसे मुक्त, रिक्त, मग्न, विग्ध, इत्यादि। मुक्त, रिक्त, मग्न, विग्ध ज्यादा सरल और उपयुक्त हैं। छापने में शिरोरेखा अवश्य रहे। लिखने में शिरोरेखा के बारे में विकल्प रह सकता है। "र्" को संयुक्ताक्षरों के रूप में लिखने का चालू क्रम उपयुक्त है। जैसे सर्व, राष्ट्र, प्रभाव, इत्यादि। सर्व, राष्ट्र, प्रभाव, इस प्रकार लिखने का क्रम जरा भी सुविधाजनक नहीं है।

"स्वराखड़ी" में इ, ई, उ, ऊ की मात्राओं को जैसे व्यंजन में जोड़ते हैं, वैसे ही अ के साथ भी जोड़ी जायँ तो कुछ अक्षर कम हो सकते हैं। गुजराती में "अ" पर "े" "ै" की मात्रा लगाने का क्रम है ही। हिन्दी में भी यह क्रम चालू किया जा सकता है। यदि हिन्दी में "ओ" "औ" लिखा जा सकता है तो अे अै का लिखा जाना अनुचित नहीं माना जाना चाहिये। हाँ, इ, ई के

बारे में कुछ मतभेद हो उसे भी परिचय तथा व्यवहार द्वारा सर्वमान्य किया जा सकता है।

सुधार बार-बार करना अच्छा नहीं है

सुधार तथा संशोधन के नाम पर लिपि में बार-बार सुधार करना अच्छा नहीं है। हमारा पुराना साहित्य देवनागरी में छपा पड़ा है। उस लिपि से हमारी लिपि दूर न जा पड़े, उसका भी ध्यान रखना है। एक-दो जो भी सुधार हों वे नागरी तथा उससे मिलती-जुलती लिपियों में भी अवश्य किये जायें, अन्यथा बच्चों के मस्तिष्क पर अकारण ही बोझ बढ़ेगा।

पूज्य विनोबा भावे तथा देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद से हमें मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तब देवनागरी लिपि के बारे में आपकी स्वस्थ राय जानने का सुअवसर मिला कि देवनागरी लिपि सुन्दर, सरल और लोकसुलभ है, उसमें परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है।

आग्रह नहीं उदारतापूर्वक सम्बन्धित सुधार हों

मेरा नम्र मत है कि सभी विद्वान भिन्न-भिन्न राय का समन्वय कर लें और अपने आग्रहों को छोड़कर देवनागरी की एकरूपता स्वीकार करें। भाषा और लिपि के बारे में हरेक को उदारतापूर्वक त्याग की भावना अपनाना ही श्रेयस्कर है।

———

अध्याय—६

निष्कर्ष

१ : देवनागरी लिपि की उपयुक्तता पर राष्ट्रपिता गांधीजी के विचार

[पूज्य राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी हिन्दी के प्रचारक और समर्थकों में अग्रणी रहे हैं। विशेषतः सन् १९१८ से उन्होंने अपने जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों में से हिन्दी-प्रचार को एक विधायक कार्य माना था। यद्यपि सन् १९३८ से हिन्दी के स्वरूप के सम्बन्ध में उनका और हिंदी के अन्य मूर्धन्य नेताओं से मतभेद हुआ फिर भी उन्होंने हिन्दी और देवनागरी लिपि के हित-साधन की चिन्ता नहीं छोड़ी। एक राष्ट्रभाषा के लिये दो लिपियों का समर्थन करते हुए भी गाँधीजी ने नागरी का महत्व प्रतिपादित किया और एक लिपि की आवश्यकता पर बल दिया। गुजराती भाषा के लिये भी उन्होंने नागरी लिपि का माध्यम स्वीकार किया और उसके अनुसार अपनी गुजराती आत्मकथा नागरी लिपि में प्रकाशित कराई। हिन्दुस्तानी के समर्थक रहकर भी उन्होंने हिन्दी का कभी भी विरोध नहीं किया। प्रस्तुत निबन्ध की सामग्री गाँधीजी की "राष्ट्रभाषा का प्रश्न" पुस्तक के पृष्ठ क्रमांक ६२ और ८८ से ली गई है।]

भारत की तमाम भाषाओं के लिए फायदेमन्द एक लिपि

सचमुच मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत की तमाम भाषाओं के लिए ही लिपि फायदेमन्द है और वह लिपि देवनागरी ही हो सकती है। तमाम संस्कृतजन्य और द्रविड़ भाषाओं की एक लिपि हो। तमाम व्यवहार्य और राष्ट्रीय कामों के लिये यदि इन तमाम लिपियों के स्थान पर देवनागरी का उपयोग होने लगे तो यह एक भारी प्रगति होगी। भारत की भिन्न-भिन्न

भाषाओं की भिन्न-भिन्न लिपियाँ हैं । नवीन लिपि को सीखने में कितनी देर लगती है, इसे सब जानते हैं । इन भिन्न लिपियों में कुछ तो बड़ी सुन्दर हैं। फिर भी जल्द से जल्द सीखी जा सके, ऐसी देवनागरी के समान सरल और योग्य तथा तैयार लिपि दूसरी नहीं हुई । भिन्न-भिन्न प्रान्तों की भाषाओं का अध्ययन करने में लोगों को कठिनाई न हो इसलिए एक लिपि का प्रचार आवश्यक है । वाद-विवाद के बाद यह विचार बन चुका है कि हमारी सामान्य लिपि देवनागरी ही हो सकती है और कोई नहीं । उर्दू को उसका प्रतिस्पर्धी बताया जाता है, किन्तु मैं समझता हूँ कि उर्दू या रोमन किसी में भी वैसी सम्पूर्णता और ध्वन्यात्मक शक्ति नहीं है जैसी कि देवनागरी में है । देवनागरी लिपि अधिकतर प्रांतीय लिपियों की मूल है । रोमन लिपि विज्ञान तथा भावना इन दोनों दृष्टियों से चल नहीं सकती । रोमन लिपि का मुख्य लाभ इतना ही है कि छापने और टाइप करने में यह लिपि आसान पड़ती है, किन्तु करोड़ों मनुष्यों को इसे सीखने में जो मेहनत पड़ती है, उसे देखते हुए इस लाभ का कोई मूल्य हमारे लिए नहीं है । हिन्दुओं और मुसलमानों के लिये देवनागरी का सीखना आसान है । बंगाल के मुसलमानों की मादरी जबान बंगाली है और तमिलनाड के मुसलमानों की तमिल । इसीलिए मैंने 'मुसलमानों के लिए' इस शब्द का जान-बूझकर प्रयोग किया है, देवनागरी को सर्वमान्य बनाने के पीछे इस तरह दृढ़ कारण है । देश के शिक्षित लोग यदि आपस में मिलकर विचार करें और एक लिपि का निश्चय कर लें तो सबके द्वारा उसका ग्रहण किया जाना आसान बात होगी ।

देवनागरी लिपि का उपयोग भावी संतति के लिये भी लाभप्रद है

यह सवाल अनेक वर्षों से लोगों के सामने है कि संस्कृत से निकलने वाली या जिन्हें उसने ग्रहण कर लिया है, उन सब भारतीय भाषाओं की लिपि एक होनी चाहिये । इतने पर भी तीव्र प्रान्तीयता के इन दिनों में एक लिपि के पक्ष में कुछ भी कहना शायद अप्रासंगिक समझा जाय । लेकिन सारे देश में साक्षरता का जो आन्दोलन हो रहा है, उसके कारण एक लिपि का प्रतिपादन करने वालों की बात सुननी चाहिये । मैं भी वर्षों से एक लिपि का प्रतिपादन कर रहा हूँ ।

मुझे याद है कि दक्षिण अफ्रीका में गुजरातियों के साथ भारत-सम्बन्धी पत्र ब्यवहार में मैंने एक हद तक नागरी लिपि का व्यवहार भी शुरू कर दिया था। इसमें शक नहीं कि ऐसा करने से विभिन्न प्रान्तों के पारस्परिक सम्बन्धों में बहुत सुविधा हो जायगी और विविध भाषाओं को सीखने में आज की बनिस्बत ज्यादा आसानी होगी। लाखों की तादाद में निरक्षर लोग हैं। उनको इस बात में कोई दिलचस्पी ही नहीं होती कि पढ़ाई के लिये कौन सी लिपि रखी गई है। देश के शिक्षित लोग आपस में मिलकर यदि विचार करें और एक लिपि का निश्चय कर लें तो सबके द्वारा उसका ग्रहण करना आसान होगा। यदि यह सुखद सम्मिलन हो जाय तो भारत में देवनागरी और उर्दू—ये दो ही लिपियाँ रह जायँगी। मैं सभी भारतीय भाषाओं का प्रेमी हूँ। यथासम्भव अधिक से अधिक लिपियाँ सीखने की मैंने कोशिश भी की है। सत्तर वर्ष की उम्र में भी मुझमें इतनी शक्ति मौजूद है कि अगर वक्त मिले तो मैं और भी भारतीय भाषायें सीख सकता हूँ। ऐसी पढ़ाई मेरे लिये मनोरंजन की ही चीज होगी। लेकिन भाषाओं के प्रति अपने इतने प्रेम के बावजूद मुझे यह कबूल करना ही होगा कि मैं सब लिपियाँ नहीं सीख पाया हूँ। अलबत्ता, अगर यदि एक ही स्रोत से निकली हुई भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जायँ तो बहुत ही थोड़े समय में विविध प्रान्तों की खास-खास भाषाओं का कामचलाऊ ज्ञान मैं प्राप्त कर लूँगा और जहाँ तक देवनागरी का सवाल है, सौन्दर्य या सजावट की दृष्टि से लज्जित होने की कोई बात उसमें नहीं है। अतः मैं आशा करता हूँ कि जो लोग साक्षरता के आन्दोलन में लगे हैं, वे मेरे इस सुझाव पर भी कुछ विचार करेंगे। अगर देवनागरी लिपि को वे ग्रहण कर लें तो निश्चय ही वे भावी सन्तति के लिये समय की बचत करके उनकी दुआएँ पा लेंगे।

---

२ : एक लिपि की आवश्यकता

[भूदान आन्दोलन के प्रणेता सन्तप्रवर विनोबा जी राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी को राष्ट्रीय संस्कृति संगठन के महत्वपूर्ण साधन मानते हैं। केरल में दिये गये उनके भाषण का यह अंश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा प्रकाशित 'राष्ट्रभाषा' पत्रिका के वर्ष १७, अंक २, दिसम्बर सन् १९५७ के अंक (पृष्ठ क्रमांक ६४) से लिया गया है।]

काश ! एक लिपि होती..............

हरेक भाषा के लिये अलग-अलग लिपि सीखनी पड़ती है। अगर एक ही लिपि सारे भारत में होती तो बहुत ही अच्छा होता। योरप में अनेक भाषाएँ हैं, परन्तु लिपि एक ही है। इसका मतलब यह नहीं कि प्रचलित लिपि बिलकुल ही छोड़ दें। वह भी चले और नागरी भी चले। एक मजेदार कहानी सुनाता हूँ। लोकमान्य तिलक ने मांडले जेल में १९१५ में 'गीता-रहस्य' नामक ग्रन्थ लिखा। उसका अनुवाद १९५६ में मलयालम भाषा में हुआ है। वह ग्रन्थ मूलतः मराठी में लिखा है, पर अनुवाद मूल मराठी से नहीं हुआ, उसके बंगाली अनुवाद से मलयालम में अनुवाद हुआ है। अभी यहाँ के एक भाई ने हमको वह दिया है। तो, इतने बड़े महान् ग्रंथ का अनुवाद इस भाषा में ४१ साल के बाद होता है और वह भी इसके बंगाली अनुवाद से! ऐसा नहीं होता, अगर लिपि एक होती।

नागरी में लिखो, पढ़ो

आज हिन्दी, मराठी, गुजराती, नेपाली भाषाएँ नागरी में ही लिखी जाती हैं। अगर आपकी भाषा भी नागरी लिपि में लिखी जाय, तो आप पन्द्रह दिन में हिन्दी सीख सकते हैं। पर इसका आरम्भ कैसे होगा ? तो मित्रों-मित्रों के बीच जो पत्र-व्यवहार चलता है वह मलयालम भाषा और नागरी लिपि में लिखा जाय। हमारा बंगाली, कन्नड़, तेलगू, तमिल आदि भाषा वालों से पत्र-व्यवहार चलता है। हमारा आग्रह रहता है कि वे नागरी लिपि में ही लिखें। पढ़ने में हमको कुछ भी कष्ट नहीं होता। आप भी वैसा करेंगे, तो धीरे-धीरे वह विचार बढ़ेगा। राष्ट्रभाषा हिन्दी सीखने की जितनी जरूरत है उतना ही जरूरी यह है कि अनेक भाषाओं की लिपि एक बने।

३ : हिन्दुस्तान की सब भाषाओं के लिए नागरी लिपि मान्य हो ![1]

["नागरी लिपि परिपूर्ण है, ऐसा नहीं है । उसमें सुधार की जरूरत है । पर पहले नागरी सुधारी जाय और बाद में वह भारतीय भाषाओं में लागू की जाय, इस विचार में मैं खतरा देखता हूँ ।···लिपि-सुधार का मेरा सुझाव है, आग्रह नहीं । लिपि-प्रचार का मेरा आग्रह है । 'आग्रह' के माने यह न समझा जाय कि मैं यह लादना चाहता हूँ ।"—विनोबा]

दक्षिण वाले हिन्दी के विरोध में नही हैं

भारत की राष्ट्रीय एकता और पारस्परिक व्यवहार के लिए राष्ट्रीय भाषा के तौर पर हिन्दी को भारतीयों ने मान्यता दी है । दक्षिण वाले भी वैसे हिन्दी के विरोध में नहीं है । जरा मुहलत माँगते हैं । पर हिंदी यथा-समय केन्द्र-स्थान में अधिष्ठित होगी, यह बात उन्होंने भी मानी है । जितनी मुहलत दक्षिण के लोग मागेंगे उतनी देने का विचार भी सबों ने मान लिया है इसीलिए अब उस बारे में कोई वाद नहीं रहा ।

नागरी का प्रयोग याने अन्य लिपियों का निषेध नहीं

लेकिन जिन कारणों से 'सबकी लिपि' के तौर पर हिंदी को मान्यता दी गई, उन्हीं कारणों से नागरी को मिलनी चाहिए । लेकिन अभी तक वैसी मान्यता नहीं मिली । राष्ट्रभाषा हिन्दी नागरी में लिखी जायेगी इसमें कोई द्विविधा नहीं । लेकिन हिन्दुस्तान की अन्यान्य भाषावें भी नागरी में लिखी जायँ, यह निर्णय अभी होने को बाकी है वैसा निर्णय होने पर दूसरी भाषाओं

---

[1]राजभाषा वर्ष ५ अंक १७. नई दिल्ली. २२ मई १९६० के पृष्ठ क्रमांक ७ से.

के लिए आज जो लिपियाँ चल रही हैं उनका निषेध नहीं होगा । वे लिपियाँ भी चलेंगी इतना ही निर्णय का अर्थ होगा ।

रोमन के विरोध में जार्ज बर्नार्ड शा

कुछ लोग यह स्थान नागरी को देने के बजाय रोमन को देने का सुझाते हैं । मैंने इस पर बहुत सोचा है, और तटस्थ भाव से सोचा है । रोमन लिपि में अनेक गुण हैं । परन्तु कोई शक नहीं कि उसमें अनेक दोष भी हैं और वे दोष इतने समर्थ हैं कि उनसे तंग आकर बर्नार्ड शा ने अंग्रेजी के लिए नई लिपि का आविष्कार चाहा और उसके लिए अपनी सम्पत्ति में से कुछ पैसा भी रखा । बर्नार्ड शा की माँग के अनुसार जो लिपि सुझायी गयी उसका नमूना अभी 'लन्दन टाइम्स' में मुझे देखने को मिला । तो क्या पाया ? रोमन के साथ जिसका कुछ भी साम्य नहीं ऐसी लिपि वह थी, और उसमें नागरी के गुण लाने की चेष्टा की गयी थी और इधर हमारे लोग हिन्दुस्तान की भाषा के लिए रोमन लिपि सुझाना चाहते हैं ।

नागरी में सुधार की गुंजाइश

इसके मानी यह नहीं कि नागरी परिपूर्ण लिपि है, या उसमें सुधार की गुन्जाइश नहीं । नागरी लिपि में सुधार की जरूरत है, ऐसा माननेवालों में मैं भी शुमार हूँ और 'लोक-नागरी' लिपि मेरे नाम से लोगों को थोड़ी बहुत अवगत भी हो गयी है । 'भूदान-यज्ञ' में एकाध कालम मैटर उसमें प्रति सप्ताह दिया भी जाता है । लेकिन नागरी में सुधार किये बिना आज की हालत में वह देश की भाषाओं के लिए लागू नहीं हो सकती या लागू नहीं करनी चाहिए ऐसा मैं नहीं मानता । बल्कि पहले नागरी सुधारी जाय और बाद में वह भारतीय भाषाओं में लागू की जाय, इस विचार में खतरा देखता हूँ । आज की हालत में भी नागरी भारतीय भाषाओं के लिए चल सकती है और चलनी चाहिये । यही मेरी राय है । तदनुसार मैंने 'गीता-प्रवचन' के अनेक भाषाओं के तर्जुमे नागरी लिपि में छपवा दिये हैं । अभी दो-तीन भाषाओं के बाकी हैं, शेष सब हो गये हैं । उनका उपयोग करके अनेक भाषायें आसानी से सीख सकते हैं, ऐसा भी अनुभव आया है ।

जापानी लिपि-समस्या का हल देवनागरी से हो सकता है ।

अगर हमने नागरी को भारत भर में चलाया तो आगे जाकर उसका भारत के बाहर भी उपयोग होने का संभव मैंने देखा । मिसाल के तौर पर, मेरी इस पदयात्रा के दरमियान भिक्षु जापानी इमाई के पास से मुझे जापानी भाषा सीखने का मौका मिला तो मैंने देखा कि जापानी भाषा की रचना हिन्दुस्तान की भाषाओं के समान हैं । याने पहले कर्त्ता, पीछे कर्म, अन्त में क्रियापद यह हमारा वाक्य-विचार, और शब्दयोगी अव्यय संज्ञा के बाद में लगाने का हमारा सम्प्रदाय जापानी भाषा में चलता है । जापानी लोग नई लिपि की तलाश में हैं, क्योंकि उनकी लिपि जो चित्रलिपि में है और असंख्य चित्रों में बनती है, प्रचार के लिए अनुकूल नहीं पड़ती । ऐसी हालत में अगर नागरी अपने देश में हम चलायें तो जापानी के लिए भी वह चलेगी ऐसा सम्भव है । यही बात चीनी भाषा को भी लागू है । इस तरह नागरी एशिया के पूर्व भाग की लिपि आसानी से बन सकती है । लेकिन उतनी व्यापक वह बने या न बने, भारत भर में वह चले तो भी हमारा बहुत कुछ बन जायेगा ।

नागरी लिपि प्रचार का आग्रह

यहाँ सवाल हो सकता है कि अगर ऐसे मेरे विचार हैं, तो नागरी लिपि में सुधार पेश करके लोक-मानस को क्या मैंने द्विविधा में नहीं डाला ? यह आक्षेप मुझ पर लागू हो सकता है, यह मैं कबूल करता हूँ और इसलिए सफाई के वास्ते मैंने यह लेख लिखा है । लिपि-सुधार का मेरा सुझाव है, आग्रह नहीं । लिपि-प्रचार का मेरा आग्रह है । 'आग्रह' के माने यह न समझा जाय कि वह मैं किसी पर लादना चाहूँगा । लादनेवाली बात अहिंसा में आती ही नहीं, यह तो सब समझ सकते हैं ।

---

४ : विभिन्न भारतीय भाषाओं के लिये एक समान लिपि[1]

[हैदराबाद में अखिल भारतीय तेलुगु लेखक सम्मेलन का उद्घाटन करते समय देश के बौद्धिक और सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन द्वारा व्यक्त कुछ विचार।]

साहित्य, परम्परा और प्रगति

इस देश की विभिन्न भाषाओं में जो साहित्यिक संग्रह है उससे प्रगति की परम्परा का तथा अविच्छिन्न धारा का दर्शन होता है। पुरातन में जो अच्छाई है उसे कायम रखना चाहिये। इसके साथ ही जो असम्बद्ध हैं, आत्म-चेतना के विपरीत है उसका परित्याग कर देना चाहिए। यही एक मार्ग है जिससे देश प्रगति कर सकता है।.........

साहित्य में सत्यं, शिवं, सुन्दरम्

साहित्य जीवन की नीरसता को दूर कर सरस बनाता है, मानस का विकास करता है, हृदयों को उत्फुल्ल करता है तथा मानव की साधुता के प्रति हमारे विश्वासों को सुदृढ़ करता है। हम जिन संकटों से गुजर रहे हैं उनका स्वरूप चाहे कैसा ही क्यों न हो, साहित्य अपने आप में एक महान सान्त्वना है। यह मानव को स्वास्थ्य, सुख, ज्ञान और आनन्द प्रदान करता है।

मूलभाषा संस्कृत

तेलुगु के लेखक इस बात पर भी विचार करना चाहते हैं कि उन्होंने संस्कृत की सेवा के लिए क्या कार्य किया है। न केवल आन्ध्र में अपितु देश के अन्य भागों में भी संस्कृत एक मुख्य आधार है। जिससे साहित्य उद्भूत हुआ है।...

---

[1]राजभाषा, वर्ष ५ अंक १७, नई दिल्ली २२ मई १९६० के मुखपृष्ठ से.

भाषा की सरलता

राष्ट्रपति ने आगे कहा कि पुराने समय के लेखक अपने विचारों की अभिव्यक्ति प्रच्छन्न रूप में नहीं करते थे, वे समझते थे कि सत्य केवल सरल और सादी भाषा में ही प्रकट किया जा सकता है। परन्तु आजकल हम अपनी बात को अलंकारों से ढक कर और घुमा-फिरा कर इस प्रकार कहना चाहते हैं जिससे हमारी बात समझने के लिए लोगों को दिमाग लगाना पड़े। इसी बात को हम अपनी विद्वता समझते हैं जो कि भ्रम है।

लेखकों का दायित्व

लेखक परिवर्तनों को ध्यान में रखें। भूतकाल के लेखकों ने समय की माँग को पहचाना था। आजकल भारत, विचारों के एक विभ्रम में गुजर रहा है। हम एक नए भारत के निर्माण के लिए प्रयत्नशील हैं। इसका अभिप्राय यही है कि हम, भूत की जो निरर्थक बातें हैं, उनका परित्याग कर रहे हैं तथा नये विश्व की जो माँगें हैं उनको अंगीकार करना चाहते हैं।

एक लिपि अपनाना शुभ होगा

यदि इस देश की विभिन्न भाषाओं के लिए एक समान लिपि अपना लें तो यह बड़ी शुभ बात होगी। लिपि ऐसी होनी चाहिये जिससे देश की बौद्धिक और सांस्कृतिक ऐक्य में वृद्धि हो।

---

५ : देवनागरी ही क्यों ?

[भारत सरकार ने स्वर्गीय बा० गं० खेर जी की अध्यक्षता में राजभाषा आयोग, जून १९५५ में नियुक्त किया था। १२ अगस्त १९५७ को आयोग की सिफारिशें प्रकट की गईं। हम यहाँ पर "देवनागरी ही क्यों ?" इसके बारे में आयोग द्वारा सुझाये गये महत्व पूर्ण कारण प्रस्तुत कर रहे हैं।]

देवनागरी की उपलब्धि

देवनागरी लिपि सीखने के कई महत्वपूर्ण लाभ हैं तथा सभी भारतीय भाषाओं के लिये उसको सर्वमान्य लिपि के रूप में ग्रहण करना भी लाभदायक माना जावेगा। सर्वसाधारण लिपि सीखने से निकटवर्ती भाषायें सीखने में सहायता होती है। एक नई भाषा बिलकुल नई लिपि सीखने के बदले सर्व-साधारण लिपि में सीखना किफायतपूर्ण होता है, इसलिये महात्मा जी ने सर्व साधारण लिपि के रूप में सभी भारतीय भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि का समर्थन किया था।

देवनागरी का सैद्धान्तिक व व्यावहारिक वर्चस्व

सन् १९५० से भारतीय संविधान के उद्‌घाटन ने जब यह घोषित किया है कि देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी भारतीय गणराज्य की राज्यभाषा होगी, तबसे समस्त भारतीय भाषाओं के लिये एकमात्र लिपि के प्रयोग की दृष्टि से देवनागरी लिपि के अधिकार अन्य लिपियों की अपेक्षा निर्वि-वाद रूप से सर्वाधिक हैं।

यह कहा जा सकता है कि भारतीय ध्वनि-शास्त्र-पद्धति जो देवनागरी तथा अन्य लिपियों के अन्तर्गत विद्यमान है, उसके संक्षिप्त स्वरूप वैज्ञानिक वर्ण-व्यवस्था, स्वर और व्यञ्जनों में भेद और उनके संयोग से विभिन्न ध्वनियों के

उच्चारण के कारण विश्व की ध्वनिशास्त्र पद्धतियों में अग्रगण्य स्थान पाने के योग्य है।

मनुष्य के स्वरोत्पादक अंगों से उत्पन्न विभिन्न ध्वनियों को भारतीय ध्वनि-शास्त्र पद्धति में वर्णमाला के अन्तर्गत जिस क्रमानुसार लिया गया है, वैसा बहुत कम वर्णमालाओं में है। इसमें वर्णमाला के अक्षरों की संख्या कम है, और प्रत्येक वर्ण का ध्येय एक विशेष लक्ष्य की पूर्ति करता है। इसी सद्‌गुण के फलस्वरूप मोनियर विलियम्स (Monier williams) ने देवनागरी लिपि को विश्व की सर्वश्रेष्ठ, संतुलित और पूर्ण वर्णमाला कहा है। यों तो मानव के स्वरोत्पादक अंगों से जो ध्वनियाँ निःसृत होती हैं उनका पूर्ण प्रतिनिधित्व कोई भी लिपि नहीं कर सकती, फिर भी केवल कुछ अक्षरों को संयुक्त कर देवनागरी वर्णमाला भारतीय भाषाओं की सभी ध्वनियों को व्यक्त करने के योग्य हो सकती है।

यह पूछा जा सकता कि क्या भारतीय लिपि, जो बहुत व्यापक है, जिसमें कई शताब्दियों तक देश में साहित्य सृजन हुआ है और जिसकी ध्वनिशास्त्र पद्धति संसार में सबसे अधिक वैज्ञानिक स्वीकृत की जा चुकी है। उसके लिये ध्वनि मूल्य और सामान्य गुणों से परे एक बिलकुल नई लिपि को स्वीकार करना लाभदायक सिद्ध हो सकता है। उसके लिये जो भी व्यक्ति राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को सीखना चाहता है, उसे देवनागरी लिपि भी सीखनी चाहिए।

यहाँ एक और साधारण बात है, जिसका उल्लेख करना हम आवश्यक समझते हैं। प्राचीन काल में भारतीयों ने अपनी भाषाओं के लिये एक सामान्य लिपि "ब्राह्मी" से भिन्न भिन्न लिपियों का प्रादुर्भाव किया। ताड़पत्र और भोज-पत्र के समान लेखन के विशेष माध्यमों के उपयुक्त लेखन सुविधा की दृष्टि से लिपि प्रयोग में परिवर्तन करने की उनमें हिम्मत थी। आज लिपियों की आव-श्यकतायें भिन्न हैं और हमें अन्य बातों के परे यान्त्रिक साधनों और टंकन यंत्र को key board के साथ स्वीकार होने के लिये वाध्य होना पड़ता है। इन आवश्यकताओं में से एक सबसे शक्तिशाली आवश्यकता इस बात की है कि कम

से कम ऐच्छिक माध्यम के रूप में समस्त भारतीय भाषाओं के लिये एक लिपि के प्रयोग पर जोर दिया जाय और यदि हम वास्तव में अपने पूर्व पुरुषों की विद्वता और प्रगतिशीलता के अनुगामी हैं तो हमें इस परिवर्तन पर आक्षेप नहीं करना चाहिए। जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है, उस भाषा की बोलनेवाली जाति की संस्कृति का सजीव प्रमाण तथा उसके विचार पद्धति और व्यवहार का इतिहास है। फिर भी लिपि का प्रश्न बिल्कुल भिन्न है। लिपि केवल भाषा को लिखने के लिये यन्त्रवत् एक सुविधा है। शिशु अपनी माँ से भाषा सीखता है। लिपि पूर्णतः सामान्य रूप से सीखी जाती है। भाषा के प्रति सामूहिक गौरव की जो भावना सम्बन्धित रहती है उस पर लिपि संबंधी संशोधन या प्रतिमानीकरण का वस्तुतः कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता यह केवल एक सुधार की बात है, जिसमें सब कुछ या कुछ नहीं जैसी कोई बात है। देवनागरी लिपि को उन भाषाओं के लिए जो विभिन्न लिपियों में लिखी जाती हैं, स्वीकार करना प्रत्येक दृष्टि से लाभदायक है।

अन्तर्भारतीय लिपि

यह लिपि भारतीय आर्य परिवार की प्रायः समस्त भाषाओं के लिये या कम से कम दो भाषा-भगिनियों यथा बंगाली और गुजराती के लिए प्रयुक्त होती है जिनकी वर्तमान लिपियाँ देवनागरी के अत्यधिक सन्निकट हैं। हिन्दी और मराठी तो पहले से ही देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। बंगला, गुजराती और असमिया (जसकी लिपि बंगला लिपि से साम्य रखती है) भाषाएँ एक सामान्य लिपि में हैं। इस दिशा में प्रयास करने का सर्वश्रेष्ठ अवसर इसी समय है जबकि प्रान्तीय सरकारें भारतीय संविधान द्वारा निर्देशित नियमों के अनुरूप देशव्यापी प्राथमिक शिक्षण की सुविधाओं का प्रचार कर रही हैं। चीन में भाषा सम्बन्धी कठिनाइयाँ भारत की अपेक्षा अधिक गंभीर हैं। उनकी लिपि में उदाहरणार्थ कुछ बहुत गंभीर और जन्मजात कठिनाइयाँ हैं। फिर भी एक बात है जिसकी दृष्टि से चीन की परिस्थितियाँ अधिक अनुकूल हैं। चीन जैसे विशाल देश में जहाँ अनेक प्रकार की विविधताएँ हैं, भिन्न-भिन्न प्रदेशों में विभिन्न बोलियाँ विकसित हुई हैं। उनमें से तो कई परस्पर समझ में भी नहीं

आती हैं। फिर भी देश में प्रयुक्त एक सामान्य लिपि साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपरा की एकता को दृढ़ बंधनों में आबद्ध किए हुए है। हमारे लिए अनुकरण करने पर यह सबक बहुत लाभदायक सिद्ध होगा।

सांस्कृतिक समन्वय का आधार

उक्त सभी बातों को ध्यान में रखकर हम राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं के लिये ऐच्छिक रूप से देवनागरी लिपि को स्वीकृत करने का सुझाव देते हैं, देश की शिक्षण-पद्धति में हिन्दी की शिक्षा के लिये हमने जो सुझाव दिये हैं उनके अनुसार माध्यमिक शालाओं में अध्ययन करने वाले हर-एक छात्र को संबिधान द्वारा मान्य देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी सीखना आवश्यक है। यदि निश्चित समय में प्रत्येक शिक्षित भारतीय ने हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का ज्ञान प्राप्त किया तो विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं को ऐच्छिक लिपि के रूप से देवनागरी लिपि में लिखने की बड़ी सहायता होगी। हमें इस बात में बिलकुल भी सन्देह नहीं है कि यदि हिन्दी के प्रचार-प्रसार करने वाली संस्थाओं और भिन्न-भिन्न भाषाओं के साहित्यिक क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं ने विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के साथ-साथ देवनागरी लिपि के ज्ञान का प्रचार किया और उसे अधिकृत रूप से आगे बढ़ाया तो देश के विभिन्न भाषा-परिवारों में पारस्परिक सौजन्य की अभिवृद्धि होगी।

देवनागरी के देशव्यापी प्रयोग विषयक सुझाव

हम अनेक विचार पूर्ण और उत्तरदायित्व पूर्ण विचारों के लिए, जिनमें भारतीय भाषा परिवारों के बीच में एक सामान्य लिपि द्वारा पारस्परिक सौजन्य की भावना को सबल बनाने की परिपुष्टि की गई है, उससे बड़े प्रभा-वित हुए हैं। इस मत का अनुमोदन करनेवाले व्यक्तियों की एक बड़ी संख्या ऐसे प्रदेशों में है जहाँ प्रादेशिक भाषा के लिखने की प्रचलित लिपि देवनागरी नहीं। हमारा यह मत है कि प्रत्येक स्थिति में इस प्रकार के सुझाव को क्रियान्वित करने के लिये सम्बन्धित प्रदेशों के निवासियों की स्वेच्छा से स्वीकृति अनिवार्य होना चाहिए। इस दृष्टि से देवनागरी लिपि की अनिवार्यता के लिए

किसी भी प्रकार के कदम उठाने के हम पक्षपाती नहीं हैं। हमारा मत है कि किसी भी प्रादेशिक भाषा को देवनागरी लिपि में लिखने की लेखक को ऐच्छिक स्वतंत्रता होनी चाहिये, जिससे विभिन्न प्रादेशिक भाषाएं जिन लिपियों में वर्तमान समय में लिखी जाती हैं, उनके साथ-साथ देवनागरी लिपि भी प्रचलित हो।

६ : राष्ट्रभाषा व नागरी लिपि-संबंधी कुछ विचार

स्वातंत्र्यवीर स्व० श्री वि० दा० सावरकर

[भारत के महान क्रान्तिकारक तथा स्वातंत्र्य-यज्ञ के उद्गाता स्वातंत्र्य-वीर बँ० विनायक दामोदर सावरकर जी को कौन नहीं जानता । बचपन से प्रतिज्ञापूर्वक देश की आजादी प्राप्त करने के लिए जीवन का प्रत्येक क्षण जिसने उत्सर्ग किया है तथा जो अनेक क्षेत्रों में द्रष्टा रहे हैं, उनका देशव्यापी महत्व है । मराठी साहित्य के भीतर उनकी उर्जस्वल प्रतिभा से संपन्न नाटक, उपन्यास, काव्य, समाज-सुधार-विषयक निबंध तथा भाषा शुद्धि-आन्दोलन, राष्ट्रभाषा, नागरीलिपि, अछूतोद्धार आदि विषयों पर उनकी लेखनी से तथा उनके भाषणों में उनकी ज्वलन्त वाणी से अनेक विचार अभिव्यंजित किये गये हैं । प्रस्तुत लेख उनकी अंग्रेजी पुस्तक "Hindu Rashtra Darshan—A collection of the Presidential Speeches delivered from the Hindu mahasabha platform." से अनुवादित किया गया है । आवश्य-कीय अंशों पर यह आधारित है ।[१] इन विचारों का अपना महत्व है क्योंकि क्रान्तिकारकों के बीच सन् १९०७ में राष्ट्रभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी उन्होंने मान्य की थी । इन विचारों के लिए स्वातंत्र्यवीर सावरकर जी के हम ऋणी हैं ।]

गौरवान्वित देवभाषा संस्कृत

संस्कृत हमारी देवभाषा (आकर भाषा) होगी । अतः संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही हमारी राष्ट्रभाषा होगी जो संस्कृत से निकली है और संस्कृत से ही पुष्ट होती रही है । इसके अतिरिक्त हिन्दुओं के लिए संस्कृत एक समृद्ध गीर्वाण-

---

१—देखिये पृ० १०७—१११ Hindu Rashtra Darshan.

वाणी रही है तथा वह संसार की सबसे पुरानी समृद्ध सांस्कृतिक भाषाओं में से सबसे अधिक सुसंस्कृत भाषा है। जितनी भी अन्य धार्मिक बोलियाँ हैं उनमें से एक सर्वश्रेष्ठ धार्मिक भाषा है। पुरानी पोथियाँ, खोदे गये वाक्य, ऐतिहासिक तथा दार्शनिक स्तर पर जितने भी जहाँ कहीं उपलब्ध हुए हैं ; वे सबके सब अपना उत्स संस्कृत में खोज सकते हैं । यही हमारी जाति का मस्तिष्क और प्रातिभ स्रोत रही है । हमारी भारतीय भाषाओं में से बहुत सी भाषाएँ संस्कृतोत्पन्न हैं। उन सबको माता की तरह अपने दुग्ध से पुष्ट किया है। आज भी इन भाषाओं की उन्नति और प्रगति संस्कृत से ही बल लेकर हो सकती है फिर चाहे वे सीधे संस्कृत से निकली हुई हों अथवा संस्कृत से पुष्ट हुई हों। भारतीय युवकों के लिए एक classical महाकाव्यों की भाषा के नाते संस्कृत का अध्ययन उपयुक्त और अनिवार्य ही होगा।

देशव्यापी हिन्दी

हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने से विशेषत: हिन्दुओं के लिये और अन्यों को भी किसी प्रकार से अपने को हीन समझने की कोई जरूरत नहीं है, तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं के लिए भी यह किसी प्रकार उपेक्षा की या वर्चस्व की बात नहीं है। हम अपनी प्रान्तीय भाषाओं से उसी सूत्र से बँधे हुए हैं जिस सूत्र से हम राष्ट्रभाषा हिन्दी से बँधे हुए हैं। अतः अपने-अपने क्षेत्रों में सबका अपने अपने ढंग से विकास होगा । बहुत सी प्रादेशिक भाषाएँ अपनी साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत विपुल और संपन्न भी हैं। पर सर्वांगीण दृष्टि से विचार करने पर तथा सार्वजनीन रूप में मान लेने पर निस्संकोच रूप में हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा तथा वृहत्तर हिन्दू संस्कृति की भाषा होने की क्षमता रखती है। यह भी स्मरणीय है कि हिन्दी किसी आदेश से राष्ट्रभाषा नहीं बनी है। वास्तविकता यह है कि अंग्रेजों के भारत प्रवेश पूर्व और मुस्लिमों के भारत में आगमन पूर्व समस्त भारतवर्ष में अपने सर्वसाधारण व्यावहारिक रूप में हिन्दी का व्यवहार होता रहा है। भारत के हिन्दू यात्री, व्यापारी, तीर्थयात्री, सैनिक और विद्वान पंडित बंगाल से सिंध और कश्मीर से रामेश्वर तक अपने आपको इन विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी के जरिये परिचित कराते थे व अपना काम निकालते थे।

जिस तरह किसी समय संस्कृत राष्ट्रभाषा थी, जिसके ज्ञाता हिन्दू पंडित तथा विद्वान मंडली के सभी सदस्य हुआ करते थे । उसी तरह हजारों वर्षों पूर्व हिन्दू जनता की हिन्दी यह देशव्यापी राष्ट्रीय भाषा रह चुकी है । वे उसको व्यवहृत करते थे। इसीलिये आज भी उसके बोलने वालों की संख्या तथा मातृभाषा के तौर पर अपनाने वाले और समझनेवालों की संख्या बहुत बड़ी है। यह उसी पुराने व्यवहृत होते रहने का ही परिणाम है। अन्य भाषाओं के मातृभाषियों की तुलना में हिन्दी भाषियों की संख्या अधिक परिमाण में है। इसीलिए कम से कम प्रत्येक हिन्दू लड़के के लिये माध्यमिक दर्जे की शिक्षा में हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए जिससे वह बृहद् राष्ट्रव्यापी राष्ट्र भाषा को सीखने में अन्य अध्ययन की बातों को न भूल सके और अपनी मातृभाषा में शिक्षा पाते हुए भी उसे आत्मसात कर सके।

संस्कृतनिष्ठ हिन्दी

'हिन्दी' से हमारा अभिप्राय वास्तविक रूप से संस्कृतनिष्ठ हिन्दी से ही है जैसे कि हम उसे महर्षि दयानन्द सरस्वती के द्वारा 'सत्यार्थ प्रकाश' में पाते हैं। बिना किसी विदेशी शब्द के कितनी सरल तथा सर्व भावाभिव्यंजक शैली इस हिन्दी की है । यहाँ पर यह उल्लेखनीय बात है कि स्वामी दयानन्द ने प्रथमबार एक हिन्दू नेता की तरह विचारपूर्वक स्वेच्छया हिन्दी बृहत्तर हिन्दुओं की भारतीय राष्ट्रभाषा हो सकती है, यह प्रचारित किया। उनकी उस संस्कृत-निष्ठ हिन्दी से वर्णसंकरीय हिन्दुस्तानी से कोई मतलब नहीं जो वर्धास्कीम के अन्तर्गत आती है। यह भाषिक संकीर्णता है । अतः इसका आमूल चूल जोर-शोर से विरोध होना चाहिये । इतना नहीं तो हमें कर्तव्यनिष्ठुर होकर आवश्यक अरबी और अंग्रेजी शब्दों का बहिष्कार करना चाहिये। यह कार्य हिन्दी की तरह हर प्रान्तीय भाषा और बोली पर लागू किया जाय। हम अंग्रेजी या किसी भाषा के विरोधक नहीं हैं। हमारा तो यह मत है कि अंग्रेजी का भी अध्ययन किया जाय जो एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि दुनिया के विशाल साहित्य का दरवाजा अंग्रेजी के अध्ययन से खुलता है। पर हम इस बात के लिए सदा सतर्क रहें कि अनावश्यक रूप से आने वाला विदेशी

शब्दों का लदाव हमारी राष्ट्रभाषा वा प्रान्त भाषा में न आने दिया जाय, जब तक कि उसकी कसौटी पर और व्यावहारिक अनिवार्यता पर वे शब्द कस न लिये जायँ। हमारे बंग भाइयों का सर्वप्रथम और विशेष रूप से स्वागत करना चाहिए कि उन्होंने बंगीय भाषा में और साहित्य में विदेशी शब्दों को प्रवेश नहीं दिया है। अतः बँगला को अनावश्यक विदेशी शब्दों से अछूती रखने के इस कार्य को प्रशंसनीय अवश्य समझा जाय। हमारे अन्य प्रान्तीय भाषाओं के और साहित्य के बारे में हम ऐसा नहीं कह सकते।

राष्ट्रलिपि देवनागरी

हिन्दुस्तान की राष्ट्रलिपि नागरी ही होगी। हमारी संस्कृत की वर्णमाला का क्रम दुनिया की सबसे विकसित ध्वनि लिपियों में एकमात्र संपूर्ण वैज्ञानिक ध्वनि लिपि है। हमारे देश की प्रचलित बहुत-सी भाषायें उसी वर्णमाला का अपनी लिपियों में अनुसरण करती हैं। नागरी लिपि भी उसी वर्णमाला का क्रम स्वीकारती है। अनेक शासकों से राष्ट्रभाषा हिन्दी की तरह नागरी लिपि का भी व्यवहार समस्त भारत में होता रहा है। हिन्दू साहित्य की पुरानी पोथियों में दो हजार वर्षों से इसका व्यवहार विद्वान पढ़े-लिखे लोगों में लोक-प्रियता के साथ शास्त्री-लिपि के नाम से होता रहा है। उसमें इधर-उधर थोड़े परिवर्तनों के साथ संशोधन किया जा सकता है और रोमन लिपि की तरह उसे यांत्रिक सुविधा की दृष्टि से टंकन और मुद्रण-सुलभ बनाया जा सकता है। महाराष्ट्र में इस तरह का एक आन्दोलन चला था। चालीस वर्ष पूर्व श्री वैद्य और अन्य लोगों के द्वारा ऐसा एक आन्दोलन चलाया गया। इसके बाद मेरे द्वारा इस आन्दोलन को प्रोत्साहित किया गया और बल मिला और व्यावहारिक रूप से उसे पर्याप्त लोक-प्रियता प्राप्त हुई और वह यशस्वी भी हुआ। मैं अत्यंत समर्थता से—नागरी लिपि को हमारे देश की राष्ट्रलिपि मानी जाय—इस मत का समर्थन करता हूँ। हमारे अन्य प्रान्तीय भाषाओं में निकलने वाले समाचार पत्रों को चाहिये कि कम से कम कुछ स्तंभों में अपनी प्रान्तीय भाषा को नागरी में मुद्रित कर प्रकाशित करें। सब यह भली-भाँति जानते हैं कि यदि गुजराती और बंगाली नागरी लिपि में छापी जाय तो अन्य

प्रान्तीय पाठक उसे समझ तो लेते ही हैं। एक ही झटके में एक सर्वसाधारण भाषा सारे हिन्दुस्तान भर में प्रचलित करना असंभव और बुद्धिमानी का काम नहीं है। किन्तु सर्वत्र नागरी लिपि का सर्वसाधारण प्रचलन आरंभ करना तो संभाव्य है। यह बात स्मरण रहे कि नागरी लिपि के साथ-साथ ही अन्य प्रान्तीय भाषाओं की लिपियाँ विकसित होती और पनपती रहेंगी ही। हिन्दू ऐक्य की दृष्टि से यह कार्य जितना शीघ्रातिशीघ्र किया जाय उतना ही उपादेय होगा। इसमें सबका हित समान रूप से सिद्ध हो जायगा। हिन्दी राष्ट्रभाषा के अध्ययन के साथ हिन्दू बालकों को नागरी लिपि का अध्ययन भी अनिवार्य कर दिया जाय।

नेताओं के राष्ट्रलिपि-विषयक मतान्तर

इस विषय में आपको दिलचस्पी होगी, जब दो प्रसिद्ध कांग्रेसाध्यक्षों के राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि की समस्या को हल करने के उपायों का उल्लेख करूँगा। पंडित नेहरू का विचार है कि अधिक उच्च अरबी से पुष्ट अलीगढ़ स्कूल की या उस्मानिया विश्वविद्यालय की उर्दू ही भारत की राष्ट्रभाषा होने योग्य है, जिसमें करीब-करीब अट्ठाइस करोड़ हिन्दू भी सम्मिलित हैं। फिर मौलाना अबुलकलाम आजाद के मन की बात छोड़ दीजिये जो केवल हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा के स्थान पर सुझाते हैं जो उर्दू के अधिक निकट है। इधर नेताजी देशगौरव सुभाषचन्द्र बोस इस विषय में कांग्रेसाध्यक्ष की हैसियत से पंडित नेहरू जी के भी आगे बढ़ जाते हैं। उनका सुझाव है कि भारत की राष्ट्र-लिपि रोमनलिपि हो सकती है। यही लिपि भारत के लिये योग्य और उपयुक्त है। काँग्रेस का राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीयता से देखने का यह दृष्टिकोण तो देखिये। रोमन लिपि को राष्ट्रलिपि मानने का अर्थ यह हुआ कि 'वसुमती' 'आनन्द बाजार पत्रिका' और अन्य सभी बँगला समाचार पत्र पत्रिकाएँ हरदिन रोमन लिपि में छपने लग जायँ। "वन्देमातरम्" जैसा राष्ट्रगीत रोमन लिपि राष्ट्रीय हो जाने पर इस तरह लिखा जाय यथा:—Tomari Pratima ghadibe Mandire Mandire" और गीता को आकर्षक रूप में इस तरह से लिखा जाय यथा—

"Dharma Kshettre Kurukshetre Shama-Vetasynuyuts—इसी तरह और भी अन्य बातें इसी तरह आकर्षक रूप से लिखी जायँगी।

देवनागरी राष्ट्रलिपि तो क्या विश्वलिपि हो सकती है ?

यह बात सत्य है कि सुभाष बाबू का कहना है कि केमालपाशा ने तुर्कों की अरबी लिपि का बहिष्कार कर उसके स्थान पर रोमन लिपि को अपना लिया; क्योंकि तुर्कों की लिपि मुद्रण के उपयुक्त न थी। परन्तु यह तथ्य हमारे मुसलमानों के लिये एक सबक है जो उर्दू लिपि चाहते हैं। उन्हें मालूम होना चाहिये कि वह यही अरबी ढंग की लिपि है जिसे वे अपने हिन्दू भाइयों पर एक अधुनातन राष्ट्रीय लिपि के नाम पर थोप रहे हैं और उसका हिन्दुओं के साथ कतई किसी तरह का कोई सम्बन्ध नहीं है। केमालपाशा ने रोमन लिपि को इसलिये अपनाया था कि तुर्कों के पास उनकी अपनी कोई आधारभूत चीज नहीं थी, जिस पर वे अपनी लिपि का विकास करते। अंदमान के लोग कौड़ियों को इकट्ठा कर उसका हार बनाकर पहनते हैं। इसलिये यह आवश्यक नहीं हैं कि कुबेर भी वैसा ही करें। हम हिन्दुओं को चाहिये कि हम अरब और युरोप के लोगों से कहें कि तुम नागरी लिपि को अपनाओ और हिन्दी भाषा आत्मसात करो। इस तरह का सुझाव उनको विशेष अव्यावहारिक नहीं प्रतीत होना चाहिये जो बड़ी आशा से मराठा लोगों को उर्दू राष्ट्रभाषा के नाते अपनाने का आग्रह करते हैं तो हमारे सारे आर्यसमाजी गुरुकुलों को आदेश देते हैं कि वे रोमन लिपि में वेदों को पढ़ें। नागरी लिपि की श्रेष्ठता वैज्ञानिक है अतः वह राष्ट्रलिपि भी हो सकती है।

× × × ×

देवनागरी लिपि के संशोधन की आवश्यकता तथा उपयुक्तता

(प्रस्तुत लेख स्वातंत्र्यवीर सावरकार जी के "नागरी लिपि शुद्धिच्या आन्दोलनाची भूमिका" में अभिव्यंजित विचारों के आधार पर तैयार किया गया है।)[१]

१—देखिये—नागरी लिपि शुद्धिच्या आन्दोलनाची आवश्यकता, पृ० ७१-७२।

आज नागरी लिपि का संशोधन क्यों ?

यद्यपि शिक्षण-सुलभता और वैज्ञानिकता—इन दोनों दृष्टियों से आज की नागरी लिपि के लेखन पद्धति में कुछ सुधार अवश्यंभावी हैं, फिर भी रोमन लिपि के साथ देवनागरी लिपि की जो स्पर्धा है, उसमें सर्वप्रथम उसका मुद्रण-क्षम होना अत्यन्त अनिवार्य है। लिपि के सामने आज लेखन का प्रश्न प्रमुख नहीं वह तो मात्र मुद्रण का ही है। रोमन लिपि विद्युत तथा बाष्पीय यंत्रों के साधनों से प्रगति पथ पर अग्रसर हो चुकी है। उसी प्रकार यांत्रिक साधनों से देवनागरी को भी वाष्पीय और विद्युत यंत्रों के अनुकूल बनकर प्रस्तुत होना पड़ेगा। संयुक्ताक्षरों की भरमार कम करनी होगी। कागज अब कोई अप्राप्य वस्तु नहीं है। टाइपराइटर, लिनोटाइप, मोनोटाइप, टंक लेखक, पंक्तिटंकक, एकटंकक, की अनिवार्यता सामने आ गई है। अत: नागरी को उसके अनुकूल भी बनना पड़ेगा। लिपि को सीखते समय उसे अल्पकाल में सीखा जाना आवश्मक है और इस इस रूप में संयुक्ताक्षर को यदि हम छोड़ भी दें तो केवल मूल अक्षरों को सीखकर ही इन्सान पढ़ना लिखना सीख जाता है। इसी के कारण मुद्रण सुलभता के लिये लिपि-सुधार आवश्यक सिद्ध हुआ।

भाषा और लिपि

मानव अपने मनोभाव विशेष प्रकार के साधनों से बोलकर अभिव्यक्त करता है जो बोली कहलाती है। इसी तरह संकेत रूप में अपने मनोभावों को व्यक्त किया जाता है यथा—नेम पल्लवी, कर पल्लवी आदि जिसे हम लिखकर बतलाते हैं तथा जिस साधन से वह लिखकर तैयार होती है वह साधन लिपि कहलाता है। लिखित विचार दूरगामी तथा चिरंतन होते हैं। अतः मानवों के विकास में लिपि की अमूल्य सहायता सिद्ध हुई है।

मानवी लिपि का विकास

मनोभावों को लिखकर प्रकट करने का प्रमुख साधन लिपि कहलाती है। किसी अर्थ से अभिप्रेरित होकर चित्र के द्वारा अंकित कर, रेखितकर, अथवा लिखित कर जो बतलाया है वह लिपि ही है। प्राचीन सिक्कों में और पुरातत्वकालीन शिलालेखों में जो कुछ स्वरूप उपलब्ध है, वही मानव की प्रथम

चित्रलिपि है। चित्रलिपि की प्रवृत्ति है—सहज चित्र को देखकर उस वस्तु का ज्ञान प्रतीत करा देना। वस्तुएँ संसार में अनेक हैं अतः हरएक को चित्रलिपि में प्रकट करना असंभव है तथा ऐसी लिपियाँ अधिक काल तक नहीं टिक सकतीं। चीन की आज प्रचलित लिपि चित्रलिपि है। उसके प्रतीकों के सहस्रों टाईप हैं। इसी कठिनाई से धीरे-धीरे मनुष्य ने यह सोचना प्रारम्भ किया कि जिन वस्तुओं का निर्देश हम कुछ शब्दों से करते हैं वे ध्वनियाँ तो सीमित हैं। अतः इन ध्वनियों के यदि प्रतीक चुन लिये जायँ तो उनकी संख्या अत्यल्प होगी। लेखन के विकास की यह क्रान्ति थी। अर्थात् इसी लिपि—चित्रलिपि से विकसित होते-होते ध्वनि लिपि का युग आया चित्र के बदले अक्षरों का जन्म हुआ। चित्रलिपि के प्रतीकों में से कुछ ध्वनियों के प्रतीक बनकर अक्षर बन गए। ये अक्षर प्रथम शिला, पर्वत या ईंटों पर खोदे जाते थे या टाँके जाते थे। इनके लेखन की क्रिया जिस साधन से होती है, उसे लेखनी कहते हैं। लेखनी यह शब्द उसी से निकला। 'लिख्' धातु से यह शब्द निकला। शंकुलिपि—इष्टिका लिपि ये सब लिपियों के रूपान्तर हैं। इन्हीं रूपों से विकसित होते-होते ध्वनि लिपि तक इसका स्वरूप बना। खर्जुरी पत्र, भूर्जपत्र, ताड़पत्र पर अक्षर लिखे जाने लगे। हाथ से लिखने के कारण इनकी आकृतियों में परिवर्तन होने लगा और होता रहा है। नागरी तथा रोमन लिपि में हम सरल रेखायें बाईं ओर से दाहिनी ओर लिखते हैं। अरबी फारसी लिपियाँ दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जाती हैं। चीनी लिपि स्तंभ जैसे ऊपर से नीचे की ओर लिखी जाती जाती है। मलयालम लिपि नीचे से ऊपर की ओर लिखी जाती है।

भारतीय बुद्धि की अद्भुत विजय नागरी वर्णमाला है

ध्वनि-लिपि के बाद का विकास पाने ध्वनियों के अनुसार—वर्णों के स्थानों के अनुसार उनका वर्गीकरण किया जाता है। संसार की प्राचीन या वर्तमान लिपियों में वर्णमाला के अक्षरों के स्थान और क्रम सूत्रबद्ध नहीं हैं जैसे कि वे नागरी लिपि में हैं। नागरी लिपि के एक अक्षर का एक ही उच्चारण होता है। अन्य लिपियों में एक अक्षर के दो-दो तीन-तीन उच्चारण होते हैं। कुछ अक्षर उच्चारित तो कुछ अक्षर अनुच्चारित भी होते हैं। यह अव्यवस्था नागरी में

नहीं है। वेदकाल जैसे प्राचीन काल से ही अत्यन्त सूत्रबद्ध वैज्ञानिक रूप में ध्वनियों का वर्गीकरण उनके कंठ, तालु आदि उद्गम स्थानों से लेकर ओष्ठ स्थानों तक हमारे ज्ञानी पूर्वजों के द्वारा किया गया। जिसका जो उच्चारण जिस स्थान से होता हो, वही नाम उस अक्षर या वर्ण को दिया गया। इस तरह ध्वनियों की सारी व्यवस्था करते हुये स्वर व्यंजनादि अक्षरों का क्रम स्थिर किया गया। ब्राह्मी लिपि काल के पूर्व से ही हमारी यह वर्णमाला विद्यमान रही है। हाथ की लिखावट के कारण भूर्जपत्र, ताडपत्र आदि पर लिखते हुए सुविधानुसार अक्षरों के रूपों में भी परिवर्तन होते गये।

प्राचीनतम भारतीय लिपि

सबसे प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी लिपि है। यह प्राक्ऐतिहासिक-कालीन उपलब्ध मिट्टी के बर्तनों पर खुदे हुये अक्षरों तथा पत्थरों पर खुदे हुये अक्षरों से सिद्ध किया जा सकता है। पाँच सौ ईसवी पूर्व से लेकर चार सौ ईसवी पूर्व तक ब्राह्मी लिपि के उत्कर्ष का काल माना जाता रहा है। आज हमारी संस्कृत निष्ठ सभी लिपियों की जननी ब्राह्मी लिपि है। इतना ही नहीं, ब्राह्मीमूलक संस्कृतनिष्ठ अन्य लिपियों का प्रसार भारत के बाहर चीन, जापान, साईवेरिया, फिलिपाइन्स और सीरिया में उपलब्ध शिलालेखों, ताम्रपत्रों से सिद्ध किया जा सकता है। काश्मीर की शारदा लिपि से लेकर सिलोन के सिंहली लिपि तक और कच्छी से ब्रह्म देश की ब्रह्मी लिपि तक भारत की सब संस्कृतनिष्ठ लिपियाँ इसी ब्राह्मी की सन्तानें हैं। इन सबमें शास्त्री पंडितों को मान्य देवनागरी लिपि है। अनेक सदियों से पंडित गणों के द्वारा सारे संस्कृत के ग्रंथ इसी लिपि में लिपिबद्ध करने की प्रथा शुरू रहने से उसे अखिल भारतीय लिपि का पद प्राप्त होता गया। संस्कृत जैसी देवभाषा मानी जाती है वैसे ही नागरी लिपि हमारी देवलिपि है। उसका देवनागरी यह नामकरण पंडितों की प्रतिष्ठा का सूचक है। काशी हमारी सांस्कृतिक राजधानी रही है। काशी में पंडितों के द्वारा देवनागरी को मान्यता मिलती रही। अतः समस्त भारत में इसका महत्व परिचय तथा प्रचार बढ़ता गया। महाराष्ट्र की तो वह पहले से

ही लिपि रही है और राष्ट्रभाषा हिन्दी की तो वह राष्ट्रलिपि मान्य की गई है ।

देवनागरी लिपि के वर्तमान अक्षर रूपों का इतिहास

देवनागरी लिपि को संप्राप्त अखिल भारतीय प्रतिष्ठा को समझकर अन्य सभी प्रगत लिपियों की शिक्षण सुलभता वैज्ञानिकता, मुद्रण, क्षमता आदि गुणों की उपयुक्ततायें इसमें आ जायँ—ऐसा हमारा प्रयत्न होना चाहिये दुनिया की सबसे प्रगतिशील रोमन लिपि से देवनागरी टक्कर ले सकती है। उसकी असमर्थताएँ मिटाकर उसे पूर्ण सक्षम बनाना पड़ेगा । ब्राह्मी लिपि काल से आज तक अक्षरों के रूपों में परिवर्तन होता रहा है । भूर्जपत्रों पर लिखते समय उनका खड़ा रूप बना और ताडपत्रों पर लिखते समय उनका गोल रूप तैयार हुआ । कागज का साधन प्राप्त हो जाने पर पहले वह थोड़ा मिलता था इस-लिए थोड़े स्थान में अधिक लिखा जाय इसलिए मात्रायें दंड, उकार आदि को आगे पीछे न लिखकर दो पक्तियों में अक्षरों के ऊपर और नीचे उनके चिन्ह देने की प्रथा चल पड़ी । आगे चलकर उसमें और अधिक बचत करने की दृष्टि से एक में दूसरा अक्षर जोड़कर लिखना शुरू हुआ । उस युग का यह लिपि संशोधन ही था । अतः नागरी के अक्षरों को सनातन समझना अवैज्ञानिक होगा । परिस्थिति के अनुसार हमारी लिपि के अक्षरों में संशोधन पुराने कालों से होते रहे हैं ।

---

७ : रोमन या देवनागरी ?

[डॉ० ए० एम० घाटगे ; पूना विश्वविद्यालय के भाषाशास्त्र विभाग के अध्यक्ष और प्रोफेसर हैं। आपका वर्णनात्मक भाषा शास्त्र तथा ऐतिहासिक भाषाशास्त्र—इन दोनों विषयों पर समान अधिकार है। इस विषय में आपकी गहरी पैठ है। आप कई भाषाओं के जानकार और मर्मज्ञ हैं । आपकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आपका दृष्टिकोण बहुत वैज्ञानिक और तर्कसंगत होता है। प्रस्तुत निबंध 'रोमन या देवनागरी' में आपने पक्षों और वादों से तटस्थ रहकर विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण उपस्थित किया है। नागरी लिपि के सम्बन्ध में आपके तर्क-संगत विचार केवल प्रशंसनीय ही नहीं अपितु तुरन्त व्यवहार्य हैं। रोमन का राग अलापने वालों को यह निबंध आँख और दिमाग खोलकर पढ़ना चाहिये। इसका मूल अंग्रेजी रूप परिशिष्ट में अवश्य पढ़िये।]

भारत में सामान्य लिपि और वर्णमाला के प्रश्न में शीघ्रता हानिकारक है

भारत में एक सामान्य लिपि और वर्णमाला का प्रश्न अपने द्रष्टव्य रूप की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। सम्पूर्ण शिक्षाप्रणाली उस पर आधारित है, और विशेषकर एक जैसे देश के लिये जो अपनी वयस्क जनता को शीघ्रातिशीघ्र साक्षरतासक्षम बनाना चाहता है, उसका महत्व और भी अधिक है। इस दृष्टि से उसका महत्व भाषा के प्रश्न से अधिक आकर्षक है। जबकि स्वाभाविक रूप से प्रत्येक व्यक्ति द्वारा एक भाषा—मातृभाषा—अनिवार्यतः सीखी जाती है, तब एक ही वर्णमाला और एक लिपि आबाल-वृद्ध सभी को सीखना है, ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण बातों को आद्यन्त सोचकर लेखन-प्रगति पर प्रभाव डालने वाले इस निर्णय को अत्यन्त सावधानी से बरतना चाहिये। इस विषय में शीघ्र निर्णय अत्यन्त भ्रामक और शिक्षा-प्रणाली के लिये बहुत ही हानिकारक हो सकता है। मानव-संस्कृति को व्यक्त करनेवाली भाषा की प्रयुक्त वर्णमाला या लिपि स्वतंत्र होती है।

यह कथन सर्वथा सत्य है कि भाषा मानव संस्कृति और उसकी सुदीर्घ परंपरा का महत्वपूर्ण अंग है। साथ ही यह भी उतना ही सत्य है कि भाषा-उसका प्रतिनिधित्व करनेवाली वर्णमाला या उसके लिये प्रयुक्त लिपि पद्धति से अपेक्षाकृत स्वतंत्र होती है, किन्तु हम किसी भाषा की वर्णमाला और प्रयुक्त लिपि में ऐसा न तो अन्तर ही कर सकते हैं और न यह ही संभव है कि किसी भाषा में प्रयुक्त लिपि-विशेष को स्थगित कर उसे दूसरी लिपि में लिखकर हम दोनों लिपियों से लाभान्वित हो सकते हैं।

देवनागरी या पेन इन्डियन अल्फाबेट और रोमन लिपि की मूलभूत कठिनाइयाँ

भारतवर्ष के लिये देवनागरी लिपि या "पेन-इन्डियन अल्फाबेट और रोमन लिपि" का सूत्र, जो बहुधा बड़े समाधानकारक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है, स्वभावतः अनेक प्रच्छन्न और मूलभूत कठिनाइयों से परिपूर्ण है, अतः उसे आसानी से स्वीकार नहीं किया जा सकता।

सामान्य लिपि के नाते रोमन का आग्रह अनुपादेय है

लिपि केवल वर्णों के आलेख रूपों से ही नहीं बनी है, जो एक युग से दूसरे युग में परिवर्तित की जा सकती है, या विभिन्न-व्यक्तियों की लेखन शैली और गतिशीलता के अनुसार लिपि में अन्तर ही हो सकता है। इस दृष्टि में तो रोमन और इटेलियन दो भिन्न लिपियाँ होंगी और इसी प्रकार घुमावदार तथा अधिक सावधानी से लिखे जाने के कारण रोमन के छोटे और बड़े अक्षरों की दो स्वतन्त्रलिपि-पद्धतियाँ मानी जायेंगी। इस दृष्टि से रोमन लिपि का उपयोग तो संभव है, किन्तु इसी दृष्टि से उसे एक सामान्य लिपि मानने का आग्रह अपनी उपादेयता और मूल्य खो देता है।

लिपि में ध्वनिग्राम और ध्वनि-संकेत में आधारभूत अंतर रहता है

लिपि में ध्वनिग्राम और ध्वनि-संकेत की भाषागत इकाइयों का आधारभूत अन्तर भी समाविष्ट रहता है, जिसे प्रतीकात्मक रूप से लिपि व्यक्त करती है। इस तरह लिपि के विभिन्न आकार और वर्णमाला की ध्वनि द्योतक लिपि-पद्धति में मूलभूत अन्तर होता है। इसीलिये वर्णमाला में अन्तर पाया जाता है। यदि किसी लिपि में वर्ण-रूप अपरिवर्तनशील और स्पष्ट रूप से सुनिश्चित

हों तो हमें उस लेखनशैली को अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि-चिह्नों की भाँति लिपि न कह कर वर्णमाला ही कहना चाहिये ।

वर्णमाला और लिपि का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है

वर्णमाला और लिपि का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, इसका पता इस बात से चलता है कि एक अथवा अन्य उपयुक्त लिपि का प्रयोग किये बिना कोई भी व्यक्ति वर्णमाला को नहीं सीख सकता । रोमन लिपि, रोमन-वर्णमाला से भिन्न वस्तु नहीं है—ऐसी बात नहीं है । यदि लिपि और वर्णमाला दो अलग-अलग वस्तुयें मान ली जायें तो वर्णमाला अक्षरात्मक या पदात्मक सकेतों के अन्तर का कोई मूल्य नहीं रह जाता ।

लिपि में स्वच्छता, सुलेखनता, सुलभता और यांत्रिक उपयोजन का महत्व है

प्रत्येक लिपि-पद्धति को दी हुई भाषा के लिये उपयुक्त आधारभूत आवश्यकताओं की परिपूर्ति करना आवश्यक है, वह जिस भाषा का प्रतिनिधित्व करना चाहती है, उसमें कम से कम उसकी सभी ध्वनियों की इकाइयों की संख्या और ध्वनिग्राम के अन्तर अवश्य होने चाहिए अन्यथा उस लिपि-पद्धति का वैज्ञानिक और व्यावहारिक मूल्य कुछ नहीं रहता और वह निरुपयोगी बन जाती है । स्वच्छता सुवाच्यता, लेखन की सुलभता और यांत्रिक उपयोजन आनुषंगिक महत्व के गुण हैं जो लिपि की बद्धमूल आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते ।

ध्वनिविज्ञान का वैज्ञानिक प्रयोग भाषागत आधारभूत विचार-विनिमय पर निर्भर है ।

ध्वनिविज्ञान की प्रगति, अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि चिह्नों का स्वरूप विकास और लेखन की दृष्टि से भाषाओं को संकुचित करने के लिए ध्वनि-विज्ञान का वैज्ञानिक प्रयोग आदि सभी भाषागत आधारभूत विचार विनिमय पर आधारित हैं । इनकी उपेक्षा विगत एक शताब्दी या इससे भी अधिक समय में अर्जित विद्वता की उपेक्षा होगी ।

रोमन या देवनागरी ?

इस संदर्भ में भारत की अधिकांश प्रमुख भाषाओं के लिए एक सामान्य

लिपि के प्रश्न को अवांछनीय समझकर छोड़ा जा सकता है क्योंकि उसमें भी वही सुविधायें उपलब्ध हो सकती हैं, जो रोमन या देवनागरी के उपयोग से संभव है। अतः उनमें से एक का चुनाव ऐसे विचारों पर आधारित होना आवश्यक नहीं है।

सभी प्रचलित भारतीय भाषाओं में वर्णमाला का क्रम समान और एकरूप है।

भारतवर्ष की अधिकांश भाषाओं के लिए उपयुक्त देवनागरी की रोमन लिपि में लिखे जाने के सम्बन्ध में दिये गये सुझावों का सार इस प्रकार है— जहाँ तक वर्णमाला के मूलभूत अंतरों का प्रश्न है, सभी प्रचलित भारतीय भाषाओं में अक्षरशः एकरूप है। सुवाच्यता, लेखन में अधिक सुगमता और यांत्रिक आयोजन की सुविधा रोमन लिपि के लाभ माने जाते हैं, जो तत्वतः सभी गौण प्रकृति के हैं, क्योंकि उनमें लिपि-पद्धति की आवश्यकताओं पर कोई विचार नहीं किया जाता। यह सब वर्णमाला और लिपि के बीच अन्तर सूचक कपोलकल्पित विभाजन रेखा के कारण है। इन दोनों में विद्यमान वास्तविक संबंध के परीक्षण मात्र से उस कठिनाई का पता चलता है, जो इस प्रस्ताव में समाहित है और उससे ही इस तथ्य का बोध होता है कि रोमन लिपि से होने वाले जो लाभ साधिकार घोषित किये गये हैं, वे कल्पनामात्र हैं, यथार्थ नहीं हैं।

भावात्मक दृष्टि से रोमन लिपि का प्रयोग असंतोषजनक है

रोमन वर्णमाला (लिपि) के उपयोग की समस्या भाषाओं के वास्तविक ध्वनि-चिह्नों का प्रतिनिधित्व करने की अपेक्षा केवल साधारण लिप्यनुवाद या लिप्यन्तरण के रूप से ही समझी गई है जो न केवल भावनात्मक दृष्टि से असन्तोष-जनक है, अपितु प्रयोग की दृष्टि से उतनी ही रुकावटें पैदा करनेवाला और अव्यवहार्य है, देवनागरी की कमियों को बतलाते हुये यह तर्क दिया जाता है कि उसमें अंग्रेजी के शब्दों यथा man के ए स्वर को, जो अधिकांश भारतीय भाषाओं में नहीं है, व्यक्त करने के लिये कोई संकेत नहीं है। दूसरी ओर रोमन लिपि भी भारतीय भाषाओं की दर्जनों आवश्यक ध्वनियों को व्यक्त करने में अक्षम है, और वह उनके लिये बिल्कुल निरुपयोगी है। देवनागरी में तमिल

की विचित्र अवृत्ताकार ध्वनि 'उ' के निश्चित संकेत का अभाव भी उसके दोषों के लिये तर्करूप में प्रस्तुत किया जाता है जो वास्तव में भाषा की ध्वन्यात्मक इकाई और ध्वनिग्रामिक इकाई के बीच विद्यमान भ्रान्ति पर आधारित है। तमिल वर्णलाला के 'रु' वर्ण देवनागरी के शब्दों के अन्त में प्रयुक्त 'उ' ध्वनि से बिलकुल मिलता-जुलता है, पर किसी के भी द्वारा इस सीमा तक सुझाव देने की संभावना नहीं है कि तमिल लिपि-पद्धति उसके ध्वन्यात्मक अन्तरों को यथोचित रूप से व्यक्त करने में असमर्थ है।

भारतीय भाषाओं के लिये रोमन लिपि से कोई लाभ नहीं

यदि रोमन लिपि में भारतीय भाषाओं को लिखने के सामान्य प्रयत्न भी किये जायँ तो रोमन लिपि का सुधार और विस्तार मान्यता के परे करना आवश्यक होगा। उसमें दन्त्य और मूर्धन्य ध्वनियों को वर्ण के नीचे अनुस्वरादि ध्वनि संकेतों से व्यक्त करना पड़ेगा अनुनासिक व्यंजनों को वर्ण के ऊपर विशिष्ट ध्वनि संकेतों द्वारा दिखलाना होगा और ऐसी ही स्थिति कुछ अन्य व्यंजनों की भी होगी। विभिन्न ऊष्म ध्वनि विभिन्न संकेतों से बतलाये जायेंगे और इस परंपरा का कोई अन्त नहीं होगा फिर यदि इन ध्वनि-चिह्नों के उपयोग की प्रणाली स्वीकृति योग्य भी हो गई और रोमन लिपि में जोड़ने योग्य हो नये वर्ण भी निर्माण हो गये तो विभिन्न देशों में प्रयुक्त लिप्यन्तरण की शैली के अनुसार यह अपने आप में कोई आसान बात नहीं होगी ऐसी हालत में नव निर्मित रोमन लिपि उन सभी सुविधाओं से रहित होगी, जिन्हें मानकर उसे सामान्य लिपि के रूप में स्वीकार किया गया है, फिर तो उसे पहचाना भी नहीं जा सकेगा। विभिन्न इकाइयाँ एक दूसरे से भ्रमात्मक रूप से समान होंगी। नवनिमित वर्णों की संख्या रोमन लिपि की परंपरागत वर्ण सूची की संख्या (२६) से बहुत ज्यादा होगी जिससे टंकन और मुद्रण भी आसान नहीं होगा। इन इकाइयों का नामकरण भी कठिन होगा। पाठकों को रेखांकित या बिन्दु चिह्नित टी या डी शिरोरेखांकित एस या बिन्दु-चिह्नित एस नीचे ऐन और न जाने क्या-क्या पढ़ना होगा। कोई भी भारतीय भाषा स्वरों के ह्रस्व और दीर्घ रूपों के अन्तर की उपेक्षा नहीं कर सकती और न तो a, I, u, पर macron

संतोषकारक है और न आ: aa ई, ii, ऊ uu, लिखना ही समीचीन है। इससे समस्या बिना हल हुये ही रह जाती है। ऐसे सब सुधारों के बाद वर्तमान सब टेलीप्रिंटर (दूर लेखक) और टाइपराइटर्स (टंकनयंत्र) बेकार हो जायेंगे और मुद्रण की व्यवस्था, यदि देवनागरी की वर्तमान मुद्रण व्यवस्था से अधिक नहीं तो कम से कम उसके बराबर अवश्य हो जायगी।

रोमन लिपि का सुझाव अवांछनीय है

ऐसी नवसंशोधित रोमन लिपि में लिखने की सुगमता बिल्कुल नष्ट हो जायगी और वास्तविक अनुभव यह बतायेगा कि जिससे कोई फायदा नहीं हुआ छोटे टाइपों (मुद्रणाक्षरों) में ध्वनि संकेत चिह्नों का उपयोग संभव नहीं होगा और सब प्रकार से मुद्रण के समय मुद्रणाक्षरों के अंगभंग की संभावना होगी। यदि प्रत्येक मुद्रणाक्षर की इकाई का प्रयोग किया गया तो मुद्रणालय में मुद्रणाक्षरों के खानों की संख्या बढ़ेगी जो देवनागरी के मुद्रणाक्षरों के लिये लगने वाले खानों के बराबर होगी और कोई फायदा नहीं होगा।

रोमन लिपि का प्रयोग काठिन्ययुक्त है।

भारतीय भाषाओं के लिये रोमन लिपियों के उपयोग से और भी अधिक कठिनाइयों और हानियों के होने की संभावना है। जब शुरू-शुरू में बच्चा रोमन लिपि को अपनी मातृभाषा के संदर्भ में विशिष्ट ध्वनिचिह्नों और उनसे सम्बद्ध ध्वनियों के अनुरूप पढ़ेगा तब उसके ध्वनिसंकेतों से सम्बन्धित उच्चारण पाश्चात्य देशों में प्रचलित ध्वनि चिह्नों से सर्वथा भिन्न होंगे और इससे आगे चलकर अँग्रेजी सीखने में वास्तविक कठिनाई होगी। एक ही संकेत चिह्न के साथ-साथ पढ़ी जाने वाली विभिन्न भाषाओं में विभिन्न ध्वनियों के संकेत देने से अकल्पित कठिनाइयाँ पैदा होंगी और इससे हमारी शिक्षण प्रणाली में दोषों के प्रदुर्भाव के बढ़ने की संभावना है।

IPA. की कल्पना और विस्तार इसी कठिनाई को हल करने के लिये किये गये थे और हमें इसी के पुन: प्रयोग की गलत राय दी गई है।

रोमन लिपि से पैदा होनेवाला दूसरा दोष यह है कि हमें रोमन लिपि में जो अभी तक विदेशी है, भारतीय भाषाओं के शब्दों के हिज्जे करने की आदत

डालिनी पड़ेगी। धर्म या क्षमा जैसे शब्दों के हिज्जे d-h-a-r-m-a या k-s- के नीचे एक विन्दु औद a-m-a के ऊपर acrvm सहित करने पड़ेंगे। इससे हमारी पढ़ाई में बहुत हानि होने की संभावना है। रोमन लिपि में भारतीय भाषाओं के शब्दों के हिज्जे का ढंग और उनके पृथक्करण की शैली स्वाभाविक नहीं है और वह अनावश्यक गुत्थियों को पैदा करती है।

रोमन लिपि का प्रयोग भारतीय भाषाओं के लिये अयोग्य है

इन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए भारत की अधिकाँश प्रमुख भाषाओं के लिये सामान्य लिपि के रूप में रोमन लिपि का प्रयोग सुझाव देने योग्य नहीं है। यह एक बिल्कुल अलग बात है कि यांत्रिक सुविधाओं की दृष्टि से देवनागरी लिपि में सुधार किये जायें या उसे सरल किया जाय ?

[त्रिवेन्द्रम, १० जुलाई १९५६; त्रावणकोर कोचीन के राजप्रमुख ने मलयालम के लब्धप्रतिष्ठित लेखक और कवियों की सहकारी पुस्तक प्रकाशन-संस्था के उद्‌घाटन की मंगल बेला में राष्ट्रीय एकता के लिये समस्त भारतीय भाषाओं को एकलिपि में लिखने का सुझाव प्रस्तुत किया था । उक्त संस्था का प्रादुर्भाव सन् १९४५ में इस दृष्टिकोण से हुआ था कि वह सामूहिक रूप से उदीयमान मलयालम लेखक और कवियों की कृतियों को प्रकाशित करेगी ।

माननीय राजप्रमुख के मूल अँग्रेजी भाषण[1] का हिन्दी अनुवाद यहाँ दिया जाता है ।]

सहकारी कार्य-पद्धति गौरवशाली है

महिलाओं और सज्जनो ! साहित्यिक-कार्यकर्त्ता-सहकारी-संघ और नेशनल बुक-स्टॉल, जो कि संघ के पथ-प्रदर्शन में कार्य-रत हैं, वास्तव में दो ऐसी महान संस्थाएँ हैं, जिनपर किसी भी मलयालम भाषा प्रेमी को गर्व हो सकता है । जब हम अतीत के साहित्यिकारों की व्यष्टि प्रधान पद्वति के साथ आधुनिक कार्य-प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो आधुनिक सहकारी कार्य-पद्धति हमारे गौरव और प्रशंसा की अधिकारिणी प्रतीत होती है ।

दो आवश्यक बातें

साहित्यिक-कार्यकर्त्ता-सहकारी-संघ के अध्यक्ष ने तथाकथित संघ की कार्य-प्रणाली और विकास के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण प्रस्तुत कर दिया है अतः इस विषय में मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना है । फिर भी मेरा यह विश्वास है कि इस अवसर पर दो आवश्यक बातों का उल्लेख करना अनावश्यक नहीं होगा । पुस्तकों और सामायिक पत्र-पत्रिकाओं ने भोजन और कपड़े की भाँति

१—टाइम्स आफ इण्डिया, ११ जुलाई १९५६, पृ० ९ ।

सामान्य जनजीवन में गौरवपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है इसलिये साहित्यिक कार्यकर्त्ताओं का यह पुनीत उत्तरदायित्व है कि वे ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन करें, जिनमें जन-साधारध के सांस्कृतिक विकास सम्बन्धी विषयों का उल्लेख हो तथा उनकी भाषा शैली सरल, स्पष्ट और धारावाहिक हो, जिनके अध्ययन से अति साधारण सामान्य बुद्धिवाले मनुष्य भी ज्ञानार्जन करने में समर्थ सिद्ध हो सकें। यह मेरा अटूट विश्वास है कि साहित्यिक कार्यकर्त्ता-सहकारी-संघ इस विषय की ओर विशेष ध्यान देगा।

भाषा के लेखन और मुद्रण में लिपि की महत्ता

किसी भी भाषा में उसकी लिपि का असाधारण महत्व होता है, और वह उस भाषा की पुस्तकों की लोकप्रियता, प्रचार और प्रसार को प्रभावित करता है। यद्यपि पाश्चात्य देशों में अनेक भाषाएँ विद्यमान हैं किन्तु सामान्यतः उन सबके लिये एक ही लिपि प्रयुक्त होती है। इससे न केवल विदेशी भाषाओं के अध्ययन में सुविधा होती है अपितु वह मुद्रण के विकास में भी अत्यधिक सहायक होता है। यह सर्वमान्य है कि मुद्रण प्रकाशन की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

समस्त भारतीय भाषाओं की एकता के लिये देवनागरी लिपि वरदान-स्वरूप है :—

भारतवर्ष में कई भाषायें प्रचलित हैं और हर एक भाषा की अपनी-अपनी लिपि है। कितना अच्छा होता यदि इन सब भारतीय भाषाओं के लिये वरदान-स्वरूप एक ही सानान्य लिपि व्यवहृत होती। इससे राष्ट्रीय चेतना और दृढ़ता में सहयोग प्राप्त होगा। यह तो सर्वविदित ही है कि हिन्दी भारत की राजभाषा है और उसने देवनागरी लिपि को अपनाया है। इस लिपि ने पहले से ही देश के कोने-कोने में कुछ अंशों तक लोकप्रियता प्राप्त की है, अतएव यह उपयुक्त होगा कि आवश्यक संशोधनों के उपरांत भारत की समस्त भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि एक सामान्य लिपि के रूप में स्वीकृत की जाय। इस सुअवसर पर मैं मलयालम भाषा-प्रेमियों से और अन्य साहित्यिक-कार्यकर्त्ताओं की विद्वन्मण्डली का ध्यान इस गम्भीर समस्या की ओर पूर्ण रूप से अर्कषित करना आवश्यक समझता हूँ।

मैं अब आपका और अधिक अमूल्य समय नहीं लेना चाहता। मैं साहित्यिक-कार्यकर्त्ता-संघ की प्रगति और उन्नति की शुभकामना करता हूँ और बड़े हर्ष के साथ संघ के सुयोग्य तत्वावधान में संचालित नेशनल बुक-स्टॉल, जो त्रिवेन्द्रम् में कार्यरत है, के उद्घाटन की घोषणा करता हूँ।

[श्री मो० सत्यनारायण, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान मंत्री रह चुके हैं। देवनागरी लिपि के देशव्यापी प्रयोग और प्रचार के सम्बन्ध में उनके विचार महत्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत लेख दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास १७ द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका हिन्दी-प्रचार-समाचार अगस्त १९५५ के पृष्ठ क्रमांक ३, ४, ५ से उद्‌धृत किया गया है।]

नागरी ही एकमात्र सामान्य लिपि

कुछ दृष्टियों से हिन्दी भाषा के प्रचार की अपेक्षा नागरी का प्रचार अधिक आवश्यक समझा जाना चाहिए। प्रचार के साथ-साथ भारत के विभिन्न भाषाओं का उत्तम साहित्य नागरी लिपि में प्राप्त होना चाहिए। आज हिन्दुस्तान में नागरी और उससे मिलने-जुलने वाली लिपियाँ भिन्न-भिन्न भाषा क्षेत्रों में प्रचलित हैं, जैसे गुजराती, पंजाबी, आसामी आदि। इनसे दक्षिण की लिपियाँ विशेष रूप से भिन्न अवश्य हैं। उड़िया, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम नागरी से स्वरूप में भिन्न हैं। उर्दू नागरी से बहुत भिन्न है; और उसका प्रचार भी नहीं हो रहा है। स्वरूप में भिन्न होने पर भी भारत की सभी भाषाओं की वर्णमाला तथा ध्वनि-पद्धति एक ही है। अंतः देश के पढ़े-लिखे लोग नागरी-लिपि सीख जाएँ, तो भारत में एक सामान्य लिपि होने का रास्ता भी खुल जायगा।

एक ही लिपि के हस्तलिखित रूपों में भिन्नता

यह कहा जाता है कि यूरोप की भाषाओं की विविधता से जो कठिनता पैदा होती है, वह बहुत हद तक उसकी सामान्य लिपि से दूर हो जाती है। अंग्रेजी, फ्रेंच, इटालियन, जर्मन तथा यूरोपिय भाषाओं का सीखना रोमन लिपि के ज्ञाताओं को आसान हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि यूरोप की सांस्कृतिक तथा साहित्यिक स्रोतों में समानता पैदा होने में भी सुविधा हो

जाती है । पारस्परिक व्यवहार में जो सहूलियत पैदा होती है, उसका मूल्य आँकने की आवश्यकता ही नहीं । यूरोपीय लिपियों की एकरूपता का भी अपना पुराना इतिहास है । उससे भी पुराना इतिहास भारतीय लिपियों का है । वर्णमाला की पद्धति में एकता के होते हुये भी लिपियों में भिन्नता कई शताब्दियों तक उनके हस्तलिखित होने के कारण ही रही । जब वे यंत्र-लिखित होने लगे, तो हस्तलिखित रूपों का ख्याल रखना आवश्यक हुआ । इसी कारण से इस समय दक्षिण तथा उत्तर भारत में लिपियों की भिन्नता अनिवार्य हो गयी ।

रोमन की अपेक्षा नागरी सरल और श्रेष्ठ

कुछ लोगों का यह मानना है कि नागरी-लिपि का पढ़ना-लिखना और छपना सरल नहीं है । उसके अक्षर भी संख्या में अधिक हैं ; यह सर्वथा गलत है । सबसे अधिक कठिन रोमन लिपि का सीखना है । उसके द्वारा लिखना-पढ़ना सीखने के लिये चार प्रकार के अक्षर सीखने पड़ते हैं । उनकी संख्या भी कुल १०४ है । सिर्फ रोमन लिपि के पढ़ सकने से ही कोई अंग्रेजी पढ़ना सीख नहीं सकता । अगर नागरी लिपि सीख लें, तो कोई भी भारतीय भाषा लिख और पढ़ सकता है । अनुभव से यह देखा गया है कि नागरी लिपि के उपयोग से पढ़ने-लिखने के समय में और छपाई तथा कागज के व्यय में काफी किफायत होगी ।

नागरी द्वारा नागरिक और सरकारी कारोबार में सुविधा

यह सिद्ध हो चुका है कि सामान्य लिपि का उपयोग देश के लिये बड़ा ही लाभकारी है । देश का प्रत्येक पढ़ा-लिखा आदमी अपनी लिपि के साथ-साथ नागरी भी जान ले तो देश के नागरिकों को सरकारी कारोबार से परिचित होने में सुविधा प्राप्त होगी । रेल, तार, डाक, यातायात, बैंक, केन्द्रीय आयकर, सूचना, प्रसार जैसे जन-सेवा के विभागों को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने में सहूलियत होगी । संसार के विभिन्न देशों से आने वाले यात्रियों को भारत के एक राष्ट्र होने का विश्वास होगा । यह सारा कार्य प्रान्तीय लिपियों के सुरक्षित होते हुये भी हो सकता है ।

सामान्य लिपि से आर्थिक बचत

सामान्य लिपि को एक अतिरिक्त लिपि के तौर पर सीखने में लोगों पर कोई भार नहीं पड़ेगा । यह समझना ठीक नहीं कि दो-दो लिपियाँ सीखना प्रान्तीय लिपिवालों के लिए मुश्किल होगा । क्या अंग्रेजी के लिए चार तरह की लिपि लोग सीख नहीं रहे हैं ? तब, क्या यह कठिन हो सकता है कि प्रान्तीय लिपि हाथ से लिखने के काम में आए और राष्ट्रीय लिपि पढ़ने के काम में आए । पढ़ने और लिखने की लिपियों में हमेशा अन्तर बना रहा है । यह अन्तरप्रान्तीय और राष्ट्रीय लिपियों में थोड़ा और रह सकता है । इससे फायदा यह होगा कि नागरी लिपि में छपी और लिखी चीज काश्मीर से कन्याकुमारी तक पढ़ी जाएगी और प्रान्तीय लिपियों के तरह-तरह के टाइप, मुद्रालेखनयंत्र तथा अन्य यंत्र बनाने और उनके द्वारा अलग छपाई के प्रबंध में जो आजकल करोड़ों रुपयों का राष्ट्रीय धन खर्च होता है, उसकी बचत होगी ।

नागरी द्वारा साक्षरता प्रचार हो

हिन्दुस्तान में आज मुश्किल से १३ फीसदी लोग साक्षर हैं, ८७ फीसदी लोग तो आज भी निरक्षर हैं । संविधान के अनुसार स्कूल जाने लायक १४ वर्ष की उम्र तक के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने का कार्य केन्द्रीय सरकार को करना है । करोड़ों बच्चे अगले वर्षों में लिखना-पढ़ना सीखने के लिए स्कूल जाएँगे । इस समय करोड़ों बालिग भी लिखना-पढ़ना सीखने के लिए लालायित हैं । इतने लोगों को पढ़ना सिखाना जरूरी है, क्योंकि शिक्षा के उत्तम सिद्धांतों के अनुसार पढ़ना पहले और लिखना पीछे होता है । इसलिए साक्षरता का प्रचार करने का काम पहले नागरी द्वारा हो जाय, तो समूचे देश में पढ़ना सीखने के लिए एक ही तरह की सुवाच्य सामग्री काम आ सकती है और इस सामग्री के बनाने में भी करोड़ों रुपयों की बचत हो सकती है ।

नागरी की व्यापकता के लिये कुछ सुझाव

जब इस प्रस्ताव को हम मान लें और शीघ्र अमल में लाना चाहें, तो यह सवाल उठ सकता है कि इसके लिए कार्यक्रम क्या हो ? इस कार्यक्रम में नीचे लिखे मुद्दे जोड़े जा सकते हैं—

१. नागरी लिपि सरल बनायी जाए, ताकि कम से कम अक्षरों में जो किसी भी हालत में १०० से अधिक न हों, वह लिखी जाय। (इस दिशा में काफी कार्य हो चुका है।)

२. जगह-जगह नागरी अक्षरों को सिखाने और उनके द्वारा अपनी प्रांतीय भाषाओं का साहित्य पढ़ने के लिए सुविधाएँ पैदा की जायँ।

३. उत्तम साहित्य, जैसे कि रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रंथ जो प्रांतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं, उन्हें, नागरी में छापकर सभी पुस्तकालयों तथा स्कूलों में रखा जाय। इनको छापने का कार्य केन्द्र सरकार या नागरी-प्रचारिणी सभा करे।

४. प्रांतीय भाषाओं के लोकप्रिय पत्र-साहित्य में कुछ स्तंभ या कुछ पृष्ठ नागरी लिपि में छापे जायँ।

५. आवश्यकता पड़ने पर इस तरह के मजमून कुछ संस्थाओं के द्वारा बनाकर दिये जा सकते हैं।

६. सरल नागरी के भिन्न-भिन्न टाइप बनाये जाएँ और आधे दाम पर प्रचार की दृष्टि से नागरी-प्रेमी प्रेसों को दे दिया जाय और इस दिशा में उनको प्रोत्साहित किया जाए।

७. केन्द्रीय सरकार के द्वारा छपनेवाला साहित्य प्रांतीय भाषा और नागरी लिपि में साथ-साथ छपाया जाय और उसका प्रचार किया जाय।

८. नागरी के मुद्रा-लेखन-यंत्र भारत-सरकार द्वारा प्रांतीय सरकारों तथा सार्वजनिक संस्थाओं को देने का प्रबंध किया जाय।

९. गैरहिन्दी प्रांतों में नागरी लिपि में तार देनेवालों को प्रोत्साहन की दृष्टि से कुछ समय तक २५% रियायत दे दी जाए।

हिन्दी प्रकृति से ही और सहज रूप से राष्ट्रभाषा हो सकती है । अँग्रेजी भाषा को और रोमन लिपि को राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के नाते इस देश में चलाना लाभदायक नहीं होगा । भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं से सम्बन्ध रखने वाली भाषा को ही राष्ट्रलिपि का रूप देना अत्यन्त अस्वाभाविक होगा । इसके साथ ही वह बहुत अव्यवहार्य होगा, क्योंकि देश में बहुत कम लोग रोमन लिपि को जानते हैं । देवनागरी लिपि को मैं रोमन लिपि की तुलना में सर्व-श्रेष्ठ मानता हूँ, इसलिये स्वाभाविक रूप से हमारी राष्ट्रभाषा की लिपि देवनागरी ही होगी ।

[मैसूर राज्य के भूतपूर्व मुख्य मंत्री श्री एस० निजलिंगप्पा के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की 'राष्ट्रभाषा' पत्रिका में दिनांक २१ जून १९४९ में प्रकाशित लेख से साभार]

परिशिष्ट

1 देवनागरी लिपि में तार

[प्रस्तुत अवतरण राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की मासिक पत्रिका "राष्ट्रभाषा," वर्ष १२, अंक ७, मई १९५३, पृष्ठ २६३-२६४ पर प्रकाशित विज्ञप्ति से उद्धृत किया गया है।]

डाक व तार विभाग ने अनेक स्थानों पर देवनागरी लिपि में तार भेजने का विशेष प्रबन्ध किया है। यह सुविधा जून १९४९ से दी जा रही है। इसके लिये तार विभाग के कर्मचारियों को विशेष रूप से शिक्षा दी जाती है।

देवनागरी तारों के सम्बन्ध में कुछ विशेष सुविधायें दी गयी हैं, जो निम्न प्रकार हैं:—तार भारत की किसी भी भाषा में दिये जा सकते हैं, यदि वे देवनागरी लिपि में हों। सम्पूर्ण क्रियायें (जैसे, जा सकता है) एक ही शब्द गिनी जाती हैं। विभक्तियों के चिह्न (जैसे, का, के, की में पर इत्यादि) पृथक शब्द नहीं गिने जाते और वे सम्बन्धित शब्दों के साथ मिलाये जा सकते हैं। प्रति दस अक्षरों अथवा इससे कम का एक शब्द गिना जाता है।

हिन्दी में बधाई के तार भी भेजे जा सकते हैं, जिसके लिये ४१ वाक्यों में में से अवसर के लिये उपयुक्त वाक्य चुना जा सकता है। उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कुछ नगरों से तार द्वारा मनीआर्डर भी हिन्दी में भेजे जा सकते हैं।

अंग्रेजी की भाँति देवनागरी में तार के संक्षिप्त पते भी रजिस्टर कराये जा सकते हैं। इनके नियम सामान्यतया वे ही हैं, जो अँग्रेजी के पतों के लिये लागू होते हैं। जिस व्यक्ति अथवा फर्म के तार का पता पहले ही अँग्रेजी में रजिस्टर हो चुका है यदि वह उसी शब्द को देवनागरी लिपि में रजिस्टर कराना चाहें तो इस अतिरिक्त रजिस्ट्री के लिये साधारण दर की केवल एक चौथाई फीस होगी; अर्थात् वर्ष भर के लिये ५) और और छः महीने के लिये ३) पेशगी देना होगा। परन्तु यदि देवनागरी लिपि में कोई दूसरा शब्द होगा, तो उसको पृथक रजिस्ट्री माना जायगा और उसके लिये सामान्य निर्धारित फीस ली जायेगी।

यह प्रणाली भारतीय भाषाओं के पत्र-पत्रिकाओं के लिये विशेष रूप से सुविधाजनक है, क्योंकि वे इससे समाचार अपनी निजी भाषा में मँगवा सकते हैं तथा अनुवाद करने का समय और परिश्रम बचा सकते हैं।

सम्प्रति यह सुविधा निम्नलिखित नगरों में उपलब्ध है—वर्धा, आगरा, अहमदनगर, अजमेर, अकोला, अलीगढ़, इलाहाबाद, अलवर, अम्बाला, अमरावती, आरा, आसनसोल, अयोध्या, बहेड़ी, बख्तियारपुर, बलिया, बनारस, बाराबंकी, बरेली, बड़ौदा, ब्यावर, बेलगाम, बरहामपुर (बंगाल); भागलपुर, भरतपुर, भावनगर, भोपाल, भुसावल, बीजापुर, बिजनौर, बीकानेर, बम्बई, भड़ौंच, बुरहानपुर, कलकत्ता, चदौसी, छपरा, डालमिया नगर, दरभंगा, देहरादून, दिल्ली, धनबाद, धौलपुर, ढौंड, धूलिया, इटावा, फैजाबाद, फरीदपुर, फतेहपुर, फिरोजाबाद, गदग, गया, गजियाबाद, गाजीपुर, गोंडा, गोरखपुर, ग्वालियर, हापुड़, हरिद्वार, हाथरस, हजारीबाग, हुबली, इन्दौर, जबलपुर, जयपुर, जलगाँव, जामनगर, जमशेदपुर, जौनपुर, झाँसी, जोधपुर, कानपुर, कराद, कटनी, खुरजा, कोल्हापुर, लहेरियासराय, लखनऊ, मानमाड़, मथुरा, मेरठ, मिदनापुर, मिर्जापुर, मुगलसराय, मुरादाबाद, मोतीहारी, मुजफ्फरपुर, नागपुर, नैनीताल, नासिक, नई दिल्ली, उरई, पचमढ़ी, पटना, पौड़ी (गढ़वाल), पिलानी, पीलीभीत, पूना, प्रतापगढ़, पुरुलिया, रामपुर, राजकोट, रामगढ़ (बिहार), राँची, रतलाम, रीवाँ, रुड़की, साँभरलेक, संडीला, सांगली, सतारा, सिकन्दराबाद, (हैदराबाद) सिवनी, शाहजहाँपुर, शोलापुर, शिमला, सोनपुर, सुलतानपुर, सुरेन्द्रनगर, टूण्डला, उज्जैन, उन्नाव, आदि। इनमें से कुछ स्थानों पर अभी प्रबन्ध हो रहा है, वहाँ भी यह सुविधा शीघ्र ही उपलब्ध हो सकेगी।

देवनागरी के तार प्रायः गन्तव्य स्थानों पर शीघ्र ही पहुँच जाते हैं। डाकतार विभाग ने जनता से अनुरोध किया है कि वह इस सुविधा से अधिकाधिक लाभ उठाये और उपयुक्त स्थानों के बीच आने-जानेवाले तार देवनागरी लिपि में ही भेजे। इस सम्बन्ध में विशेष विवरण स्थानीय तारघर से प्राप्त किया जा सकता है।

२ : नागरी अक्षर और अंक[1]

(भारतीय लोकसभा में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन द्वारा दिया गया भाषण)

मैंने कई बार पहले कहा है, कि हमारा जो शिक्षा-विधान है, उसका कार्य बहुत असंतोषजनक है। पिछले पाँच वर्षों में जो कुछ भी शिक्षा-विभाग को कर लेना था उसका सौंवा भाग भी उसने नहीं किया है। मैं बिलकुल नापतौल करके यह बात कह रहा हूँ। परन्तु जो कुछ भी हो चुका है उस पर अब हमें रोना नहीं है। हमें चाहिये कि हम आगे के लिये चलें।

इधर शिक्षा-विभाग की ओर से एक बात ऐसी की गयी है जो सहायता देने वाली नहीं बल्कि बिगाड़ पैदा करने वाली है। मैं इस समय हिन्दी टाइप-राइटर का हवाला दे रहा हूँ। इसके बारे में अभी गवर्नमेंट ने अपना अंतिम मत प्रकट नहीं किया है और मैं आशा करता हूँ कि अगर इस विषय पर विचार करके इसको सम्हालने की चेष्टा की गई तो भूल ठीक हो जायगी। शिक्षा-विभाग द्वारा हिन्दी टाइपराइटर का जो कि बोर्ड (वर्ण पट्ट) तैयार किया गया है, उसमें अक्षर तो हिन्दी के रखे गये हैं, परन्तु जो अंक, न्यूमरल्स रखे गये हैं, वे अंग्रेजी के हैं। यह बात मुझे अजीब-सी लगी है कि—

प्रतिरक्षा संगठन मंत्री (श्री त्यागी)—यह कांस्टिट्यूशन में है।

मैं इसके बारे में निवेदन करता हूँ। आपने तो वही बात दुहरा दी है जो शिक्षा-विभाग दुहराता आया है। मैं आपसे कहता आया हूँ कि कांस्टिट्यूशन (संविधान) में ऐसा नहीं है। कांस्टिट्यूशन में जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे आपके सामने हैं। उनको कुछ ध्यान से देख लें तो अच्छा हो। मैं इसको महत्वपूर्ण प्रश्न मानता हूँ, इसलिये मुझे इस पर पाँच-सात मिनट लेने पड़ेंगे। टाइपराइटर जो बनाता है वह देश भर के लिये बनाता है। यदि उसे देश भर के लिये बनाना है तो हमें चाहिये कि हम यह भी देखें कि क्या लिखावट देश में चल रही है; हमारे देश में हिन्दी बोलने वाले कितने हैं, और इन नागरी अंकों को काम में लाने वाले कितने हैं। मेरा निवेदन है कि जो लोग हिन्दी

१—हिन्दी प्रचारक, जुलाई-अगस्त १८५६ (पृ० सं० १५ से १९ तक)

बोलनेवाले हैं, उनकी संख्या लगभग १५ करोड़ है। यह संख्या उन प्रदेशों की है जहाँ कि आज हिन्दी चल रही है।

परन्तु यही अंक गुजरातियों के हैं, जिनकी संख्या लगभग ढाई-करोड़ तो है ही। यही अंक मराठी भाषियों के हैं, जिनकी सख्या लगभग तीन करोड़ की होगी ही। यही अंक हमारे भाई सरदार हुकुमसिंह और उनके सहयोगी भी काम में लाते हैं। पंजाबी भाषा में गुरुमुखी में यही अंक हैं। इनकी संख्या भी लगभग डेढ़ करोड़ तो है ही। इस तरह से इन अंकों को प्रयोग करने वाले लगभग २२ करोड़ आपको मिलेंगे। लगभग ६-७ करोड़ लोग आप ऐसे पायेंगे जो बिलकुल यही अंक तो नहीं, किन्तु इससे मिलते-जुलते अंकों का प्रयोग करते हैं। जैसे बंगाल, आसाम और उड़ीसा में। इनके अंकों का जो क्रम है वह कुछ भिन्न है, इसलिये मैं उनको छोड़ देता हूँ। लेकिन प्रश्न यह है कि आप जो टाइपराइटर बना रहे हैं, यह किसलिये बना रहे हैं; जनता के लिये ही तो ये बनेंगे ?

यहाँ पर कांस्टिट्यूशन का हवाला दिया गया है। अगर कांस्टिट्यूशन में ऐसा होता कि आगे के लिये नागरी अंकों का प्रयोग बन्द कर दिया जाता है और उसके स्थान पर अँग्रेजी अंकों का प्रयोग होगा, जिनको 'इन्टर नेशनल फार्म आफ इण्डियन न्यूमरल्ज' कहा गया है, तब वह ठीक होता जो शिक्षा-विभाग चाहता है, लेकिन ऐसा नही है। कांस्टिट्यूशन में इस सम्बन्ध में ये शब्द हैं:—

उसमें देवनागरी लिपि रखी गई है और लिपि में अक्षर और अंक दोनों सम्मिलित होते हैं। वे लिपि के दो अंग होते हैं और आपको ऐसा कहीं नहीं मिलेगा कि उसमें अन्तर किया जाय। स्क्रिप्ट के भीतर दोनों हैं। आपने देवनागरी लिपि को माना उसकी लिखावट को माना। फिर लिखा है।

अर्थात यूनियन से अफीशियल कामों के लिये-न्यूमरल्ज की यह फार्म होगी। इसके तुरन्त बाद लिखा है :—

(एक पैरा मैंने छोड़ दिया है।)

प्रोवाइडेड दैट द प्रेसिडेण्ट में ड्युरिंग द सेड पीरियड, बाई आर्डर अथराइज द यूस आफ द हिन्दी लैंग्वेज इन ऐडिशन टु द इंग्लिश लैंग्वेज ऐन्ड आफ द देवनागरी फार्म आफ न्यूमरल्स इन ऐडिशन टु द इन्टरनैशनल फार्म आफ

इन्डियन न्यूमरल्स फ़ार ऐनी आफ़ द आफिशल परपजेज आफ़ द यूनियन।

यानी हिन्दी लिखने में अंग्रेजी अंकों का भी प्रयोग हो सकता है और देव-नागरी अंकों का भी—दोनों का प्रयोग हो सकता है।

आज वस्तुस्थिति क्या है ? मैंने अभी कहा है कि इतने करोड़ों आदमियों के लिये आप टाइयराइटर बना रहे हैं। कैसा टाइपराइटर आप हमकों देंगे ? उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, राजस्थान ये सब राज्य किस टाइपराइटर पर काम करेंगे ? जिस टाइपराइटर पर इनको काम करना है, उसका की-बोर्ड (वर्ण पट्ट) आपको देना चाहिये। अगर आपको अपने कामों में हिन्दी के साथ अंग्रेजी अंकों का इस्तेमाल करना है—मैं इस प्रश्न में नहीं जाता कि वह कहाँ होगा—तो उनके लिये आपको बहुत थोड़े टाइपराइटर चाहिये। अगर आप यह तय करते हैं कि (आफिशियल परपज़ेज़ आफ दी यूनियन) के लिए आपको झख मारकर अंग्रेजी अंकों का ही प्रयोग करना है—अगर गवर्नमेंट की नीति यह हो जायगी, तो आप देखिए कि कितने टाइपराइटर आपको चाहिये।

लेकिन वास्तविकता यह है कि गवर्नमेंट की यह नीति नहीं है और इस पर मैं उनको बधाई देता हूँ। इस विषय में उन्होंने बराबर बुद्धिमानी से काम किया है। जहाँ-जहां उन्होंने हिन्दी का प्रयोग किया है। वहाँ-वहाँ उन्होंने नागरी अंकों का प्रयोग किया है।

श्री त्यागी—अभी टाइपराइटर ऐसे ही हैं।

श्री टण्डन—यह केवल टाइपराइटर का ही प्रश्न नहीं है। आप रेल-विभाग की समय सारिणी को देखिये। वह तो केवल टाइपराइटर की बदौलत नहीं बनी होगी। उसमें नागरी अंकों का प्रयोग बराबर होता है। अगर आप नया टाइप-राइटर बना कर इन नागरी अंकों को बदलना चाहें, अगर आप चाहें कि गवर्नमेंट आफ इण्डिया जनता से जितना भी संपर्क करे, उसमें अंग्रेजी अंकों का प्रयोग हो तो वह कदापि उचित नहीं है; मगर मैं समझता हूँ कि गवर्नमेंट की यह मंशा नहीं है।

कांस्टिट्यूशन के बाद, नयी मिनिस्ट्री बनने के बाद जब गवर्नमेंट आफ इण्डिया ने रेलवे का टाइमटेबुल बनाया था, तब पहले उसमें नागरी अक्षरों के

साथ अंग्रेजी अंकों का प्रयोग किया गया था। उसका नाम रखा गया था समय सूचक या समय-दर्शक। वह टाइमटेबुल किसके काम का था ? जो अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग थे, वह प्राय: अंग्रेजी का टाइम-टेबुल खरीदते थे और जो आदमी हिन्दी का टाइमटेबुल चाहते थे—देहात के आदमी साधारण आदमी—उनको हिन्दी का अंक चाहिये था। इस कारण वह कदाचित बिका भी कम। रेलवे मिनिस्ट्री से कहा भी गया कि आपने यह क्या निकाला है यह हमारे किस काम का है ? परिणाम यह हुआ कि जो समय-सारिणी कई बरसों से निकल रही है, उसमें नागरी अंकों का प्रयोग किया गया है। उसके लिये मैं गवर्नमेंट को बधाई देता हूँ। इसलिये वह दलील सही नहीं है, जिसकी त्यागी जी कल्पना कर रहे हैं। पहले उसमें अंग्रेजी अंकों का प्रयोग किया गया था, लेकिन वह बन्द कर दिया गया। समयसारिणी को नागरी अंकों के साथ निकालना पड़ा।

हमारे सामने जितने भी गवर्नमेंट आफ इण्डिया के पब्लिकेशन्स हैं, पब्लिकेशन्स डिवीजन के और इन्फार्मेशन एण्ड ब्राडकास्टिंग मिनिस्ट्री के उन सब अंकों का ही प्रयोग किया गया है। वे बुद्धिमानी की बात कर रहे हैं। वे देख रहे हैं कि उन्हें उन पब्लिकेशन्स (प्रकाशनों को) २१-२२ करोड़ आदमियों के सामने भेजना है। यह क्रम सही है और इसी को जारी रखना है। जहाँ कहीं ऐसी विशेष आवश्यकता पड़ती है, वहाँ आप इस नीति में परिवर्तन कर सकते हैं। आप भूलिये नहीं—मुझे याद है कि अंग्रेजी अंकों की व्यवस्था इसलिए की गयी थी कि ख्याल था कि शायद एकाउंटिङ्ग में, एकाउन्टेन्ट जेनरल के कार्यालय में शीघ्र हिन्दी भाषा आ जाने से कुछ कठिनाई होगी। लेकिन जन-सम्पर्क के कार्यों में आपको इन्हीं नागरी अंकों का प्रयोग करना पड़ेगा। टाइपराईटर के की-बोर्ड (वर्ण पट्ट) में आप उन अंकों को न रखें, मुझे यह बहुत गलत लगता है। इतना ही मेरा निवेदन है।

कांस्टिटयूशन के हिसाब से आप मजबूर नहीं हैं कि आप अंग्रेजी अंकों का प्रयोग करें। उसमें दोनों बातें है। आप जो चाहें कर सकते हैं। अगर आपने (मिनिस्टरों ने) नागरी को चुना तो सही किया, बुद्धिमानी की।

एक-आध बात मैं और आपसे कुछ समय लेकर कहना चाहता हूँ। मेरे सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न है। अंग्रेजी को अधिक समय तक चलाने की बात की गयी है और इस विषय में हमारे मान्य नेता श्री राजा जी ने विशेषकर अपना मत प्रकट किया। मुझे हाल में एक पुस्तक मिली है—श्री प्यारेलाल की 'महात्मा गांधी दि लास्ट फेज'। इस पुस्तक में राजा जी और गांधी जी के हिन्दी सम्बन्धी कुछ विचार हैं। मुहब्बत के साथ उन्होंने आपस में बात की है। वह बड़ी रुचिकर है और उसको मैं आपके सामने रख देना चाहता हूँ।

उसका उल्लेख १६५ पन्ने पर है, आप उसको पढ़ लीजिए। उसमें किसी फंक्शन का जिक्र है और जहाँ तक मालूम होता है, १९४५ की बात है।

"द फंकशन इटसेल्फ व्हिच हैड टेकेन गाँधीजी टु मद्रास आक्यूपाइड वन्ली अ स्माल पार्ट आफ हिज टाइम। बट इट्स फालो-अपटुक एम आफ हिज कोलीग्स बाई सरप्राइज। ही रोट लेटर्स टु श्री निवास शास्त्री, ऐण्ड डाक्टर्स जयकर ऐण्ड सप्रू, आस्किग व्हेदर इन फ्यूचर ही माइट नाट करेसपान्ड विथ देम इन द नेशनल लैंग्वेज।

देयर क्राई आफ़ इनडिपेन्डेन्स फ़ार द मासेज वुड बी ऐन इनसिन्सिअर ऐण्ड हालो क्राई; ही टोल्ड आल कन्सर्न्ड, इफ दे फेल्ड टु कल्टिवेट द हैबिट आफ स्पीकिंग ऐण्ड थिंकिंग इन द लैंग्वेज आफ द पीपुल। इट हैड टु बी नाऊ आर नेवर।

राजा जी विथ हिज इनकारिजिबिल लव आफ़ पैराडाक्स अन विटिंग्ली मेड अ फाक्स पैस व्हेन आन रिसीविंग अ स्क्राल इन देवनागरी इन द मास्टर्स ओन हैण्ड, ही लेट द फालोइंग इस्केप ग्राम हिज पेन; "योर नागरी इज़ सो इलिजिबिल दैट आइ हैव वन्ली विथ ग्रेट डिफीकल्टी गैधर्ड दैट यु विश्ड टु टेल मी।.........इट वोन्ट डू टु डिस्कार्ड व्हाट वी बोथ नो वेल ऐण्ड हैण्डिल ऐज मोडियम ऐण्ड अडाप्ट डेली बर्टेली अ डिफीकल्ट मीडियम ऐक्सेप्ट आकेज़नली ऐज़ अ जोक। आई शैल बिगिन रिप्लाइंग इफ़ यु राइट टु मी इन इलिजिबिल नागरी।"

"दिस ब्राट द फालोइंग फ़ाम द मास्टर." इफ़ वी डिसकवर्ड अ मिस्टेक, मस्ट वी कान्टीन्यू इट? वी बिगिन मेकिंग लव इन इंगलिश-अ मिस्टेक। मस्ट

इट एक्सप्रेस इटसेल्फ वन्ली बाई रिपीटिंग द इनीशियल मिस्टेक ? यु हैव द केक ऐण्ड ईट इट आलसो । लव इज़ लव अन्डर अ वेराइटी आफ़ गर्व— इविन द लवर्स आर डम्ब । प्राबेब्ली इट इज फुलेस्ट वुव्हेन इट इज़ स्पीचलेस । आई हैड थाट अन्डर इट्स जन्टिल, अनफेल्ट कम्पल्शन, यु वुड इज़िली ग्लाइड इन्टू हिन्दुस्तानी ऐण्ड दस पुट द निसेसरी फिनीशिंग टच टु योर सर्विस आफ़ हिन्दुस्तानी । बट लेट इट बी ऐज़ यु विल, नाट आई ।"

"रोट द रिपीटन्ट सिनर" रिगार्डिंग हिन्दुस्तानी आई प्लीड गिल्टी ऐण्ड आस्क फार मिटीगेशन । ओड एज (नाट यूय) बीइंग द एक्सक्यूज । बट डोन्ट आरगू फरदर । योर वेरी स्वीटनेस मेक्स मी फी न सो गिल्टी ।"

राजा जी ने अपने बुढ़ापे की बात कही थी । लेकिन जब उन्होंने यह बात कही थी तबसे वे और अधिक बूढ़े हो गये हैं । यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे देश में राजा जी जैसे महापुरुष हैं । मैं कह सकता हूँ कि मैं हृदय से राजा जी का पुजारी हूँ । परन्तु उनकी कई बातें ऐसी होती हैं, जिनमें वे गहरी भूल कर जाते हैं और मुझको ऐसा लगता है कि आज जो वह कह रहे हैं, उसमें वे गहरी भूल कर रहे हैं । मेरा निवेदन यह है कि हिन्दी के विषय में विचार करते समय हमें इस प्रकार की बातों से चौकन्ने रहना है ।

मुझे एक बात और कहनी है, और मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि हमारे प्रधान मन्त्री जी भी इस समय यहाँ मौजूद हैं । इस बात का थोड़ा-सा सम्बन्ध परराष्ट्र नीति से है ।

संसार में जितनी लिपियाँ हैं उनको जाननेवाले बड़े-बड़े लोगों का यह मत है कि नागरी लिपि सबसे अधिक सुन्दर, पूर्ण और वैज्ञानिक है ।

रक्षासंगठन मन्त्री श्री त्यागी—पेचीदा बात है ।

श्री टंडन—मैं समझता नहीं कि इस पेचीदापन पर आप नाक-भौं क्यों सिकोड़ते हैं ? अगर पेचीदा है तो समझिए, वह आपकी अक्ल के बाहर नहीं होनी चाहिये । देखिए इसमें क्या पेच आता है । अभी मैंने कहा कि इसका कुछ परराष्ट्र नीति से सम्बन्ध है । आप उस पेच को समझने की कोशिश कीजिये । मैं कहता हूँ कि यह सारे संसार का प्रश्न है, केवल भारत का ही नहीं है । संसार में जो लिपियों के जाननेवाले हुए हैं ; उनमें से कुछ की राय मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ । सर आइजक पिटमैन, जिन्होंने फोनोग्राफी अर्थात् शार्टहैण्ड (शीघ्रलिपि) निकाली, उन्होंने देवनागरी लिपि को देखकर ही उसके आधार पर उसको निकाला था । लेकिन मैं आज उस विषय में नहीं जाना चाहता । मैं केवल आपके सामने वह बात रखना चाहता हूँ जोकि उन्होंने

एक-आध बात मैं और आपसे कुछ समय लेकर कहना चाहता हूँ। मेरे सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न है। अंग्रेजी को अधिक समय तक चलाने की बात की गयी है और इस विषय में हमारे मान्य नेता श्री राजा जी ने विशेषकर अपना मत प्रकट किया। मुझे हाल में एक पुस्तक मिली है—श्री प्यारेलाल की 'महात्मा गांधी दि लास्ट फेज'। इस पुस्तक में राजा जी और गांधी जी के हिन्दी सम्बन्धी कुछ विचार हैं। मुहब्बत के साथ उन्होंने आपस में बात की है। वह बड़ी रुचिकर है और उसको मैं आपके सामने रख देना चाहता हूँ।

उसका उल्लेख १६५ पन्ने पर है, आप उसको पढ़ लीजिए। उसमें किसी फंक्शन का जिक्र है और जहाँ तक मालूम होता है, १९४५ की बात है।

"द फंकशन इटसेल्फ व्हिच हैड टेकेन गाँधीजी टु मद्रास आक्यूपाइड वन्ली अ स्माल पार्ट आफ हिज टाइम। बट इट्स फालो-अपटुक एम आफ हिज कोलीग्स बाई सरप्राइज। ही रोट लेटर्स टु श्री निवास शास्त्री, ऐण्ड डाक्टर्स जयकर ऐण्ड सप्रू, आस्किग व्हेदर इन फ्यूचर ही माइट नाट करेसपान्ड विथ देम इन द नेशनल लैंग्वेज।

देयर क्राई आफ़ इनडिपेन्डेन्स फ़ार द मासेज वुड बी ऐन इनसिन्सिअर ऐण्ड हालो क्राई; ही टोल्ड आल कन्सर्न्ड, इफ दे फेल्ड टु कल्टिवेट द हैबिट आफ स्पीकिंग ऐण्ड थिंकिंग इन द लैंग्वेज आफ द पीपुल। इट हैड टु बी नाऊ आर नेवर।

राजा जी विथ हिज इनकारिजिबिल लव आफ़ पैराडाक्स अन विटिंग्ली मेड अ फाक्स पैस व्हेन आन रिसीविंग अ स्क्राल इन देवनागरी इन द मास्टर्स ओन हैण्ड, ही लेट द फालोइंग इस्केप फ्राम हिज पेन; "योर नागरी इज़ सो इलि्जिबिल दैट आइ हैव वन्ली विथ ग्रेट डिफीकल्टी गैधर्ड दैट यु विश्ड टु टेल मी।·········इट वोन्ट डू टु डिस्कार्ड व्हाट वी बोथ नो वेल ऐण्ड हैण्डिल ऐज मोडियम ऐण्ड अडाप्ट डेली बर्रेटली अ डिफीकल्ट मीडियम ऐक्सेप्ट आकेज़नली ऐज़ अ जोक। आई शैल बिगिन रिप्लाइंग इफ़ यु राइट टु मी इन इलि्जिबिल नागरी।"

"दिस ब्राट द फालोइंग फ़ाम द मास्टर." इफ़ वी डिसकवर्ड अ मिस्टेक, मस्ट वी कान्टीन्यू इट? वी बिगिन मेकिंग लव इन इंगलिश-अ मिस्टेक। मस्ट

इट एक्सप्रेस इटसेल्फ वन्ली बाई रिपीटिंग द इनीशियल मिस्टेक ? यु हैव द केक ऐण्ड ईट इट आलसो। लव इज़ लव अन्डर अ वेराइटी आफ़ गर्ब— इविन द लवर्स आर डम्ब। प्राबेब्ली इट इज फुलेस्ट वुव्हेन इट इज़ स्पीचलेस। आई हैड थाट अन्डर इट्स जन्टिल, अनफेल्ट कम्पल्शन, यु वुड इज़िली ग्लाइड इन्टू हिन्दुस्तानी ऐण्ड दस पुट द निसेसरी फिनीशिंग टच टु योर सर्विस आफ़ हिन्दुस्तानी। बट लेट इट बी ऐज़ यु विल, नाट आई।"

"रोट द रिपीटन्ट सिनर" रिगार्डिंग हिन्दुस्तानी आई प्लीड गिल्टी ऐण्ड आस्क फार मिटीगेशन। ओड एज (नाट यूय) बीइंग द एक्सक्यूज। बट डोन्ट आरगू फरदर। योर वेरी स्वीटनेस मेक्स मी फील सो गिल्टी।"

राजा जी ने अपने बुढ़ापे की बात कही थी। लेकिन जब उन्होंने यह बात कही थी तबसे वे और अधिक बूढ़े हो गये हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे देश में राजा जी जैसे महापुरुष हैं। मैं कह सकता हूँ कि मैं हृदय से राजा जी का पुजारी हूँ। परन्तु उनकी कई बातें ऐसी होती हैं, जिनमें वे गहरी भूल कर जाते हैं और मुझको ऐसा लगता है कि आज जो वह कह रहे हैं, उसमें वे गहरी भूल कर रहे हैं। मेरा निवेदन यह है कि हिन्दी के विषय में विचार करते समय हमें इस प्रकार की बातों से चौकन्ने रहना है।

मुझे एक बात और कहनी है, और मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि हमारे प्रधान मन्त्री जी भी इस समय यहाँ मौजूद हैं। इस बात का थोड़ा-सा सम्बन्ध परराष्ट्र नीति से है।

संसार में जितनी लिपियाँ हैं उनको जाननेवाले बड़े-बड़े लोगों का यह मत है कि नागरी लिपि सबसे अधिक सुन्दर, पूर्ण और वैज्ञानिक है।

रक्षासंगठन मन्त्री श्री त्यागी—पेचीदा बात है।

श्री टंडन—मैं समझता नहीं कि इस पेचीदापन पर आप नाक-भौं क्यों सिकोड़ते हैं ? अगर पेचीदा है तो समझिए, वह आपकी अक्ल के बाहर नहीं होनी चाहिये। देखिए इसमें क्या पेच आता है। अभी मैंने कहा कि इसका कुछ परराष्ट्र नीति से सम्बन्ध है। आप उस पेच को समझने की कोशिश कीजिये। मैं कहता हूँ कि यह सारे संसार का प्रश्न है, केवल भारत का ही नहीं है। संसार में जो लिपियों के जाननेवाले हुए हैं ; उनमें से कुछ की राय मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। सर आइजक पिटमैन, जिन्होंने फोनोग्राफी अर्थात् शार्टहैण्ड (शीघ्रलिपि) निकाली, उन्होंने देवनागरी लिपि को देखकर ही उसके आधार पर उसको निकाला था। लेकिन मैं आज उस विषय में नहीं जाना चाहता। मैं केवल आपके सामने वह बात रखना चाहता हूँ जोकि उन्होंने

देवनागरी लिपि के बारे में कही है। वे कहते हैं :—

"इफइनद वर्ड वी हैब ऐसी एल्फाबेटस् द मोस्ट परफेक्ट, इट इज दोज़ हिन्दी वन्स—पिटमन।'

यह सर आइजक पिटमैन के शब्द हैं।

मैं एक राय और आपके सामने रखता हूँ। फिर मैं परराष्ट्र नीति वाली बात पर आता हूँ। प्रोफेसर मोनियर विलियम संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान थे और अंग्रेजी और हिन्दी के भी पण्डित थे। उन्होंने पुराने समय में एक पत्र "टाइम्स" में लिखा था, जिसमें नागरी लिपि के बारे में उन्होंने कहा है :—

"दिस आलथो डेफीशन्ट इन टू इम्पारटेन्ट सिम्बल्स (रिप्रेजेन्टेड इन द रोमन बाई जेड ऐण्ड एफ), इज आन द होल, द मोस्ट परफेक्ट ऐण्ड सिमेट्रि-कल आफ नोन एल्फाबेट्स...द हिन्दूज होल्ड दैट इट केम डाइरेक्टली फ्रॉम द गाड्स (व्हेन्स इट्स नेम), ऐण्ड ट्रली इट्स वन्डरफुल अडैप्टेशन टु द सिमेट्री आफ द सक्रेड संस्कृत सीम्स आलमोस्ट टु रेज इट अबव द लैवेल आफ़ ह्यूमन इनवेन्शन्स।"

यह उनकी राय है, नागरीलिपि के बारे में। इस लिपि में अक्षर और अंक दोनों ही सम्मिलित हैं।

अब मैं आपसे परराष्ट्र नीति के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ। कभी-कभी हमारे सामने अंकों को बदलने की बात आती है। मेरा इस सम्बन्ध में यह कहना है कि यदि हमने यह परिवर्तन किया तो परराष्ट्र के क्षेत्र में हम अपने को कुछ छोटा कर देंगे। इस विचार से मेरे हृदय में दर्द होता है। मैं कहना चाहता हूँ कि हमारी हजारों वर्ष पुरानी संस्कृत भाषा ने हमको संसार के सामने ऊँचा किया है।

यह ठीक है कि आज हम और आप संस्कृत भाषा बोलते नहीं और बहुत थोड़े पढ़ते हैं। लेकिन यह वास्तविकता है कि उस समय जबकि दूसरी जगहों पर बहुत कम ज्ञान और विज्ञान का विकास हुआ था, संस्कृत साहित्य ने यूरोप में हमारा सिर ऊँचा किया; जब हम और आप राजनीतिक दृष्टि से दास थे। मुझे इस विषय में अधिक नहीं कहना है।

जो विद्वान हैं वे संस्कृत साहित्य की और देवनागरी लिपि की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। यह सर्वविदित है कि श्री मैक्समूलर तो संस्कृत पर आशिक थे। वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। मेरा कहना यह है कि संस्कृत भाषा के साहित्य के कारण हमारा चारों ओर नाम हुआ है। लेकिन आज जब हम

अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को ला रहे हैं तब अक्षर तो हम देवनागरी के रखते हैं पर अंक अंग्रेजी के, यह मेरा निवेदन है, सही नहीं है। मुझे इस विषय में कोई जिद नहीं है। मैं तो चीजों को बदल देने के पक्ष में हूँ। लेकिन मेरा नम्रनिवेदन यह है कि जब हम संस्कृत के अक्षर लिखेंगे परन्तु अंक अंग्रेजी के लिखेंगे तब हमारी ऊँचाई में कुछ कमी आ जायेगी।

आज मैंने पढ़ा है कि चीनी लोग अपनी लिपि को, जो कि चित्रों द्वारा लिखी जाती है, बदलना चाहते हैं, और अपनी भाषा के लिये कोई लिपि चाहते हैं। अंग्रेजी में इस प्रकार कहा गया--

"दे डिजायर टु एल्फेबटाइज देयर लैंग्वेज।"

मैं अपने प्रधानमंत्री जी से कहना चाहता हूँ कि यह उनके लिये एक अवसर है। इस समय अपनी एम्बेसी द्वारा इस लिपि को वे चीनी लोगों के सामने रखें। इसमें कोई दबाव की तो बात नहीं है, उनका ध्यान इस ओर दिलाया जा सकता है कि हमारी संस्कृत भाषा और उनकी लिपि कितनी ऊँची है और हमारा उनका कितने प्राचीन समय से सम्बन्ध रहा है। केवल संस्कृत ही नहीं, हमारे देश की प्राचीन भाषाओं, प्राकृत और पाली द्वारा भी हमारे दोनों देशों में ज्ञान का आदान-प्रदान हुआ है। हम उनके सामने पाली लिपि रखें। हम अपनी हिन्दी लिपि उनके सामने रखें। जब वे लोग अपने वर्तमान क्रम को छोड़कर किसी दूसरी लिपि को अपनाना चाहते हैं तो उनका इस ओर ध्यान दिलाइये कि हमारे देश की लिपि पूर्ण है और इसको स्वीकार किया जा सकता है। सम्भव है कि उनको यह लिपि अंगीकार हो।

आज श्याम में यही वर्णमाला चल रही है, यह आप भूलियेगा नहीं। वर्मा में यही वर्णमाला है, लिखने में थोड़ा अन्तर है। तिब्बत में भी यही वर्णमाला है। अभी तिब्बत का बहुत-सा साहित्य हिन्दुस्तान में आया है और हम उस लिपि को देख सकते हैं। यदि ये सब बातें उनके सामने रखी जायें तो सम्भव है कि चीनी लोग इस लिपि को स्वीकार कर लें। मैं यह कहता हूँ कि अपनी संस्कृति को आगे पहुँचाने का यह यह एक रास्ता है।

हम अपने यहाँ जरा सचेत हों। यह जो हजारों वर्ष पुरानी और इतनी पूर्ण लिपि हमारे देश में है, यह हमारे लिये गौरव की बात है। अक्षर के रूप बदलते रहे हैं और उनको आप फिर भी आवश्यकता देखकर बदल सकते हैं। नागरी लिपि को बदलने के मैं कुछ रास्ते बतला सकता हूँ। लेकिन आज मेरा कहना यही है कि यदि आप अक्षर रखते हैं तो अंक भी रखें, ऐसा करने में हमारा गौरव है।

आप अपने शिक्षा-विभाग की सारंगी की खूँटी को जरा कसिये, जरा सँभालिये, खूँटी को सँभालकर स्वर मिलाइये ताकि सब तारों के स्वर आपस में मिलें। आज तमाशा यह है कि अन्य सब केन्द्रीय विभाग तो नागरी अंकों का प्रयोग कर रहे हैं, परन्तु हमारा शिक्षा-विभाग जब हिन्दी अक्षर लिखता है तब अंक अंग्रेजी के प्रयोग करता है। मैं अभी वर्धा गया तो मालूम हुआ कि मध्य प्रदेश को इस विभाग ने यह लिखकर भेजा है कि तुम अंग्रेजी अंकों का प्रयोग करो। यह कोई कांस्टीटयूशन की बात नही है। यदि केन्द्र चाहे तो अपने आफिशियल परपजेज के लिये अंग्रेजी का प्रयोग कर सकता है। मेरा विश्वास है कि इस विषय में एक दुराग्रह सा हो गया है।

इतना दुराग्रह इस बात में करके वे हिन्दी की सहायया नहीं कर रहे हैं। मेरा निवेदन है कि हम अपने घर को सँभालें, अपने शिक्षा विभाग को सँभालें। हमारा यह यत्न हो कि यह जो हमारी प्राचीन लिपि और अक हैं, उनको हम दूसरों के सामने रखें। चीन में आज इसका अवसर है और मैं इस पर जोर देना चाहता हूँ।

मैंने सोचा था कि इसके सम्बन्ध में मैं कभी प्रधानमंत्री से अलग बात करूँगा, मगर आज अवसर मिल गया और प्रधानमंत्री जी यहाँ इस समय मौजूद हैं, तो मैंने मुनासिब समझा कि यहीं पर उनसे अपनी बात कह दूँ। अगर और अधिक विस्तार में इस विषय में वे जानकारी प्राप्त करना आवश्यक समझें तो मैं फिर उनसे इस सम्बन्ध में विस्तार से निवेदन कर सकता हूँ।

मैं चाहता हूँ कि आज परराष्ट्रों में जो हमारे दूत मौजूद हैं, उनके सामने अपनी राष्ट्रभाषा और लिपि की बात रखी जाय। मेरा तो विश्वास है कि भले ही आज यह चीज सम्भव न हो, लेकिन कुछ वर्ष बाद संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को एक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त होगी। आज वहाँ पर ५ भाषाओं को मान्यता दी गई है। लेकिन वह दिन दूर नहीं है जब कि हिन्दी को वहाँ पर माना जायगा और वह दिन हमारे लिये गौरव का दिन होगा। हिन्दी को वहाँ पर मनवाना होगा। अगर आज हम अपनी लिपि को चीन को भेंट करें और इस भेंट को वे स्वीकार कर उस पर अमल करें तो मैं समझता हूँ कि एशिया भर के लिये यह अच्छा मार्ग-दर्शन का काम होगा।

---

३ : ध्वन्यात्मक लिपि

—डा० राजनारायण मौर्य, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, पूना

वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान का अध्ययन पश्चिम के देशों में काफी पहले से ही प्रारंभ हो गया था पर भारत में अभी कुछ वर्षों से प्रारंभ हुआ है : भाषा-विज्ञान के विद्यार्थी अभी तक अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि के रोमन अक्षरों का ही उपयोग करते हैं पर भारत मे भाषा-विज्ञान के भविष्य को देखते हुए लगता है कि अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि का नागरीकरण बहुत ही आवश्यक है। जिन विश्वविद्यालयों में अभी शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है और भाषा-विज्ञान के शोध-प्रबन्ध अंग्रेजी में प्रस्तुत किये जाते हैं वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि की रोमन वर्णमाला का उपयोग उपादेय है पर जहाँ शोध-प्रबन्ध हिन्दी में प्रस्तुत किये जाते हैं वहाँ रोमन वर्णमाला उपयुक्त नहीं है। वहाँ तो अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि के आधार पर निर्मित नागरी वर्णमाला ही उपयुक्त और सुविधाजनक होगी। साथ ही अग्रेजी भाषा से अपरिचित व्यक्ति को भाषा-संबंधी जानकारी प्राप्त करने के लिये भी यह बहुत लाभदायक होगी।

यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि की रोमन वर्णमाला को ही स्वीकार करन में क्या आपत्ति है जबकि उससे समस्त विश्व की ध्वन्यात्मक लिपि में एकरूपता आ सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि की रोमन वर्णमाला को स्वीकार करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। सर्वप्रथम तो यह है कि यदि विद्यार्थी अपने शोध-प्रबन्ध को हिन्दी या मराठी में लिखता है तो उसे टाइप करना या छापना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। निबंध की भाषा हिन्दी या मराठी है—जो नागरी वर्णमाला में है—और रोमन बीच-बीच में ध्वन्यात्मक लिपि के विशेष चिह्नों के के साथ उदाहरण रोमन लिपि में हैं तो वह किसी एक टंकन यंत्र पर टंकन करना असंभव है। यही कठिनाई मुद्रण की भी है। दूसरी कठिनाई यह है कि लेखक जब सम्पूर्ण पुस्तक या निबंध जब नागरी लिपि में लिखता है तो केवल ध्वनि चिह्नों को रोमन लिपि में लिखना उसके लिये काफी असुविधाजनक है। नागरी लिपि से उसका घनिष्ठ परिचय रहता है और वह उसके लिखने का अभ्यस्त रहता है इसलिये नगरी वर्णों को लिखने में उसे कोई असुविधा नहीं हो सकती।

इसके अतिरिक्त यह भी है कि नागरी लिपि मूलतः ध्वन्यात्मक हो। ध्वनि और लिपि में साम्य होता है। रोमन लिपि की ध्वनि और चिह्न में साम्य नहीं होता। उसमें पी (P) अथवा एच (H) लिखा जाता है और शब्दों में उच्चारण प अथवा ह होता है। सहज में ही रोमन लिपि के पी को प, एच को ह उच्चारण करना संभव नहीं है। इसके अलावा ख, घ, झ आदि ध्वनियों के

लिये दो अक्षरों को मिलाकर लिखना पड़ता है। अच्छा हो कि एक ध्वनि के लिये एक ही चिह्न हो।

इस समय हमारे देश में लोग इस बात पर अधिक जोर देते रहे हैं कि भारत की सभी भाषाओं की लिपि देवनागरी हो। आशा है शीघ्र ही यह कार्यान्वित भी हो जायगा। ऐसे समय में ध्वन्यात्मक लिपि का नागरीकरण बहुत ही उपयोगी होगा। सभी भारतीय भाषाओं में इसका प्रयोग होने लगेगा, जिससे भारतीय भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत कुछ एकरूपता आ जायगी। भाषा-विज्ञान संबंधी पुस्तक या शोध-प्रबन्ध किसी भी भाषा में हों पर ध्वनियों के लिए यदि सभी एक रूप को अपनाएँगे तो निश्चित ही भारतीय भाषाओं को समझने और समझाने में सुविधा होगी।

हिंदी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में हिंदी की उपभाषाओं और बोलियों से संबधित शोधकार्य प्रारंभ हो चुके हैं। उनमें कुछ ध्वनियाँ हिंदी की ध्वनियों से पृथक भी मिलती हैं। उन्हें प्रगट करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि के नागरी वर्णों का उपयोग किया जा सकता है। अभी विद्यार्थी और लेखक अपने कुछ विशिष्ट संकेतों के साथ ही वर्णों का प्रयोग करते हैं जो साधारण के लिये पढ़ना आसान नहीं होता। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में सभी ध्वनियों के चिह्नों में एकरूपता लाने के लिए विश्वविद्यालयों के तत्संबंधित प्राध्यापक और छात्र प्रयत्न करें तो अधिक अच्छा होगा। इसी दृष्टिकोण से यह अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि प्रस्तुत की जा रही है। श्रीगोलोकबिहारी धल ने अपनी 'ध्वनिविज्ञान' पुस्तक में इस चार्ट का नागरीकरण रूप दिया है जिसे मैंने उसी रूप में यहाँ रक्खा है। इस ध्वन्यात्मक लिपि में कुछ त्रुटियाँ भी हो सकती हैं अतः भाषा-विज्ञान के अध्यापक और छात्र अपना सुझाव भेजकर इस कार्य को और आगे बढ़ाने की प्रेरणा दें।

कुछ ऐसी बातें हैं जिन पर सुझाव के साथ विचार करना आवश्यक है। (१) नागरी वर्ण के वर्तमान चिह्नों के आगे पीछे, नीचे या ऊपर कोई संकेत लगाकर यदि परिवर्तन किया जाय तो अच्छा हो (२) नया वर्ण न बनाया जाय। (३) अक्षरों के सोंसे को तिरछा गोलाकट के समीपी ध्वनि का चिह्न बनाया जाय। (४) वर्तमान मुद्रण के टाइप अक्षर तथा टंकन पत्र द्वारा ही लगभग सभी ध्वनि चिह्न प्रगट हो सकें।

●

४ : देवनागरी लिपि
तथा
अंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि चिह्न

अ A   आ a: इ i   ई i: उ u   ऊ u:

ए e: ऐ Ae   ओ o: औ AO

क् k   ख् kh   ग् g   घ् gɦ   ङ् ŋ

च् c   छ् ch   ज् ɟ   झ् ɟɦ   ञ् ɲ

ट् ʈ   ठ् ʈh   ड् ɖ   ढ् ɖɦ   ण् ɳ

त् t̪   थ् t̪h   द् d̪   ध् d̪ɦ   न् n

प् p   फ् ph   ब् b   भ् bɦ   म् m

य् j   र् r   ल् l   व् v

श् ʃ   ष् ʂ   स् s   ह् ɦ

ड़् ɽ   ढ़् ɽɦ   ं m   : h   ँ ~

नोट—यह चार्ट डा० धीरेन्द्र वर्मा कृत 'हिन्दी भाषा का इतिहास' के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

—संपादक

आइ.पी.ए. चार्ट का हिन्दी संस्करण

		द्वयोष्ठ्य	दन्त्योष्ठ्य	दन्त्यवर्त्स्य	मूर्धन्य	तालुवर्त्स्य	वर्त्सतालव्य	तालव्य	कण्ठ्य	अलिजिह्व	उपालिजिह्व	काकल्य
व्यंजन	स्पर्शी	प ब		त द	ट ड			कँ गँ	क ग	क़ ग़		?
	नासिक्य	म	म	न	ण			ञ	ङ	ङ़		
	पार्श्विक संघर्षी			ल ल								
	पार्श्विक संघर्षहीन			ल	ळ			लँ				
	लुंठित			र						र		
	उत्क्षिप्त			ड़	ड़					र		
	संघर्षी	प़ ब़	फ़ व़	थ़/द़/स/ज़/र	ष ज़	श श़	श य	य य़	ख़ ग़	ख़ ग़	ह ९	ह़ ह
	संघर्षहीन सप्रवाह तथा अर्द्ध स्वर	प	व	र				य				
स्वर	संवृत अर्द्ध संवृत अर्द्ध विवृत विवृत	(ई ऊ उ) (ए ओ) (ऐं औं) (आ)						अग्र मध्य पश्च ई इ ई-ऊ ऊ उ एए अं ओओ ऐंऐ अ ओंऔं आ आआ				

नोट—(१) यह चार्ट श्री गोलोक बिहारी धल-कृत 'ध्वनि विज्ञान' के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

(२) आई० पी० ए० = अंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि।

—संपादक

देवनागरी लिपि के समर्थकों का मत है कि देवनागरी लिपि में चीनी, जापानी आदि विदेशी भाषायें लिखी जा सकती हैं और देवनागरी विश्वलिपि होने की क्षमता रखती है, किन्तु यह बड़े दुख की बात है कि भाषावादी प्रान्तीयता से अनुप्राणित हमारे देशवासी विद्वान ही हिन्दी और देवनागरी का विरोध करते हैं ।

हमें इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि आज की तरुण-पीढ़ी के समक्ष देश के राजनैतिक स्वातन्त्र्य के साथ-साथ भारत के सांस्कृतिक ऐक्य के संरक्षण का भी उत्तरदायित्व है । हमारा वर्तमान राजनैतिक वातावरण विभाजक अधिक और संयोजक कम है । ऐसी स्थिति में देश के प्रत्येक नागरिक और केन्द्रीय शासन का यह कर्त्तव्य है कि हिन्दी और देवनागरी के प्रचार, प्रसार, प्रयोग और उपयोग के लिये राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सांस्कृतिक प्रयास हो ।

यदि सात समुद्र पार बोली और लिखी जानेवाली अँग्रेजी भाषा और रोमन लिपि में भारतवर्ष के तथाकथित विद्वान पारंगत हो सकते हैं तो हिन्दी और देवनागरी में उनका साधिकार प्रवेश असंभव नहीं है । आवश्यकता है, उदार दृष्टिकोण और सच्ची राष्ट्रीय भावना की । आज केन्द्रीय शासन और प्रादेशिक सरकारों के कृपापूर्ण ध्यान को भारतीय संविधान की अधोलिखित धाराओं की ओर आकृष्ट कर हम यह निवेदन करते हैं कि "कम्पोजिट कल्चर ऑफ इण्डिया" के सम्पूर्ण तत्वों की अभिव्यक्ति के लिये हिन्दी और देवनागरी का प्रयोग अनिवार्य रूप से देश भर में किया जाना चाहिये :—

राजभाषा हिन्दी सम्बन्धी भारतीय संविधान की धाराएँ

(Part XVII, Chapter IV, Article 351.)

"It shall be the duty of Union to promote the spread of

the Hindi Language to develop it so that it may serve as a Medium of Expression for all the elements of the Composite Culture of India, and to secure its enrichment by assimilating, without interfering with its genius, the forms, style and expression used in Hindustani and in the other languages of India specified in the Eighth Schedule and by drawing whereever necessary or desirable, for its vocabulary, primarily on Sanskrit and secondarily on other languages.

Eighth Schedule (Article 344 (1) and 351.)

Languages.

1. Assamese
2. Bengali
3. Gujarati
4. Hindi
5. Kannada
6. Kashmiri
7. Malayalam
8. Marathi
9. Oriya
10. Punjabi
11. Sanskrit
12. Tamil
13. Telugu
14. Urdu

कतिपय स्वरों के लिये यदि सांकेतिक चिह्नों का प्रयोग किया जाय, तो सम्पूर्ण भारतीय भाषायें देवनागरी लिपि में लिखी जा सकती हैं। इसके प्रमाणस्वरूप उक्त १४ भाषाओं की १४ रचनाएँ यहाँ दी गयी हैं। ये रचनायें इन पंक्तियों के लेखक द्वारा सम्पादित "साधना" पत्रिका के अन्तर्भारतीय परिशिष्ट से ली गई हैं। जिन सज्जनों की रचनायें यहाँ संगृहीत की गई हैं, उनके प्रति हम अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

क्या हमारी केन्द्रीय सरकार और देश की जनता इन विविध भाषा-भाषी जनों और विविध लिपियों की एकता के लिये कोई ठोस कदम उठायेगी ?

क्या हिन्दी सही अर्थों में राष्ट्रभाषा की भाँति व्यवहृत होगी ?

क्या देवनागरी राष्ट्रलिपि के रूप में प्रयोग में लाई जा सकेगी ?

क्या भारतीयजन अँग्रेजी और रोमन लिपि की ही भाँति हिन्दी और देवनागरी लिपि को तत्परता से सीखने का शुभ संकल्प कर तदनुरूप आचरण कर सकेंगे ?

भगवानदास तिवारी

असमिया—

जनम-भूमि[1]

मेलिलों प्रथम चकु तोमार कोलाते आइ नमर आदिम पुवात ;
मुदिम आकौ चकु तोमार कोलाने आइ जीवनर शेष सन्धियात ।

× × ×

मरार पिछतो येन पाओंहि आकौ ठाइ चेनेहर शीतली कोलात ;
भागरुवा आतमाई शेषर जिरणि लइ जिराबहि तोमार छाँयात ।

× × ×

पखी है आकाशर बुकुत फुरिम उरि वाँहलम ओख बिरिखत ;
पूँवतीर लगे लगे जगाम तोभाक निते बनरिया सुवदि गीतत ।

× × ×

आकाशर तरा ह'इ रे लागि चाइ र'म सेउजीया शुवनी जेउति ;
जोनाकत मिल ह'इ बिमान पथत र'इ ओरे राति करिम आरति ।

× × ×

दुखीयार भगापँजा एकोखनि तीर्थतात एकोखनि पूण्यर आश्रम ;
मरिले पुनर आहि दुखीया देशत मोर लओं येन पुनर जनम ।

अर्थ—

(हे माँ) जन्म के प्रथम प्रभात में मैंने तुम्हारी ही गोद में पहले आँखें खोलीं ।

---

[1]राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा प्रकाशित "भारत-भारती" असमिया, पृष्ठ क्रमांक ८०-८२ से साभार ।

और जीवन की अन्तिम सन्ध्या में (मैं) फिर तुम्हारी गोद में सोकर आँखें मूँदूंगा।

मरने के बाद जैसे प्यार की ठंडी गोद में पुनः मुझे स्थान मिलेगा।

थकती हुई आत्मा आकर तुम्हारी छाया में आराम करेगी।

(मैं) पक्षी होकर आकाश की छाती पर उड़ता रहूँगा और ऊँचे पेड़ पर घोंसला बनाऊँगा।

सूर्योदय के साथ-साथ तुमको रोज जंगल के मीठे-मीठे गीतों से जगाऊँगा।

(मैं) आसमान का तारा बनकर पृथ्वी के श्यामल घने अंधकार को आँख लगाकर निरखूँगा।

(मैं) चाँदनी मे मिलकर, विमान पथ मे जाकर सारी रातभर तुम्हारी आरती उतारूँगा।

दीन का जीर्ण कुटीर एक तीर्थ, एक पुण्य का आश्रम होता है।

मैं कामना करता हूँ कि मृत्यु के बाद (मैं) फिर आकर अपने दीन देश में पुनर्जन्म प्राप्त करूँगा।

बँगला—

प्राणेश्वर !

आमार सकल अंगे तोमार परश,
लग्न हये रहिया छे रजनी दिवस।
प्राणेश्वर ! एई कथा नित्य मने आनि,
राखिव पवित्र कर मोर तनु खनि॥
मने तुमि विराजिछ हे परम ज्ञान !
एई कथा सदा स्मरि मोर सर्व ध्यान।
सर्व चिन्ता हते आमि सर्व चेष्टा करि,
सर्व मिथ्या राखिछिव दूरे परिहरि॥
हृदय रयेछे तव अचल आसन,
एई कथा मने रेखे करिव शासन।

सकल कुटिल द्वेष सर्व अमंगल,
प्रेमेर राखिव करि प्रस्फुट निर्मल ।।
सर्व कर्मे तव शक्ति एई जेने सार,
करिव सकल कर्मे तोमार प्रसार ।।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

अर्थ—हे प्राणेश्वर! तुम मेरे समस्त अंगोंको दिन रात स्पर्शित करते हो, यह बात नित्य ध्यान में रखकर मैं अपने शरीर को पवित्र रखूंगा ।

हे परम ज्ञान ! मेरे हृदय में तुम विराजमान हो। इस बात का स्मरण कर मैं अपने सम्पूर्ण ध्यान, चिन्तन और प्रयत्नों से सब असत्य (बातों) से दूर रहूँगा ।

मेरे हृदय में तुम्हारा आसन है। इस बात को मन में रखकर मैं सब कुटिल द्वेष और अमंगल पर शासन करूँगा, (तथा) तुम्हारे प्रेम को प्रस्फुटित कर निर्मल रखूंगा ।

सब कर्मों में तुम्हारी ही शक्ति है, इस तत्व को समझकर मैं अपने समस्त कर्मों से तुम्हारा ही लोक प्रकाशन करूँगा।

गुजराती

केवड़िया नो काँटो

केवड़िया नो काँटो अमने वन-वगड़ा माँ वाग्यो रे,
मुइ रे एनी म्हेक, कलेजे दव झाझेरो लाग्यो रे ।।
बावलिया नी शूल होय तो, खणी काढ़िए मूल ।
केर-थोर ना काँटो अमने, कांकरिया नी धूल ।।
आतो अणदीठा तो अंगे खटको जालिम जाग्यो रे ।
केवड़िया नो काँटो अमने वन-वगड़ा माँ वाग्यो रे ।।
ताव होय जो कड़ो टाढ़ियो, कवाथ कुलड़ी भरिये ।
वातरियो वळगाड़ होय तो, भुवो करी मंतरिये ।।

रूंवे-रूंवे पीड जेनी एतो जडे नहीं कही भांग्यो रे।
केवड़िया नो काँटो अमने वन-वगड़ा माँ वाग्यो रे।।

—श्री राजेन्द्र शाह

अर्थ—हमको केवड़े की फाँस वन-कानन में गड़ गई रे। मरी रे! उसकी महक हृदय में तीव्र दावानल की तरह लग गई रे!

(यदि) बबूल का कांटा हो तो उसे मूलतः निकाल डालें। केरथुहर का काँटा हो, तो वह हमारे लिये कंकड़-धूल के समान है। शरीर में यह तो एक अनदेखी जालिम खटकन जग गई रे! हमको केवड़े की फाँस वन-कानन में गड़ गई रे!

(यदि) जूड़ी (बुखार) का ताप हो, कड़वा काढ़ा पी लें, (और यदि) भूत-प्रेत लगें, तो जन्तर-मन्तर कर लें, (किन्तु केवड़े की फाँस लगने से) रोम-रोम में वेदना होती है। समझ में नहीं आता कि यह (फाँस) कहाँ अड़ गई रे! हमको केवड़े की फाँस वन-कानन में गड़ गई रे!

हिन्दी

वर दे, वीणा वादिनी वर दे!

वर दे, वीणा वादिनी वर दे!
प्रिय स्वतन्त्र रव, अमृत मन्त्र नव,
भारत में भर दे!

काट अन्ध उर के बन्धन-स्तर,
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष भेद-तम हर, प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे!

नव गति, नव लय, ताल छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्र रव;

नव नभ के नव विहग वृन्द की,
नव पर, नव स्वर दे !

---महाकवि 'निराला'

कन्नड़

कष्ट दिन होलसागि

कष्ट दिन होलसागि
सोग दिनवु सुखवागि
वाळुद्द गेलुवागि
इहुदेन्दु ई दिनवु
कुणियोण बा केळदि कुणियोण बा ।।

इन्दिनी दिनवेमगे
रसदोन्दु निमिणविदु
नाळि वहुदोळितल्ल
एन्दु नावरितेहेवु
कुणियोण बा केळदि कुणियोण बा ।।

अळुकुगळु मरेयुत्त
बन्नबनु कोल्लुत्त
सुखि दिनव सुखिसुत्ता
बाळिन्दु गेलुबेन्दु
कुणियोण बा केळदि कुणियोण बा ।।

होस दिनवु-बरूत लिदे
हळेदिनवु आळियुतिदे
सन्त सव सू सुतिदे
कुणियोण बा केळदि कुणियोण बा ।।

—कुमारी नारायण गौड़

अर्थ—दुख के दिन बीत गये। सुख के नये दिन आये। जीवन की राह पर जीत ही जीत है। आज का नूतन दिन शुभ है, इसलिये हे संगी! आ नाचेंगे। आ हम नाचेंगे।

आज का दिन हमारे लिये बड़ा सरस है। हम भली-भाँति जानते हैं कि हमें पल भर भी देर नहीं करना चाहिये। (इसलिये) हे संगी! आ नाचेंगे। आ हम नाचेंगे।

(हम) बीती (बातों) को बिसरा देंगे। भूत (काल) को भुला देंगे। सुख के दिन में ही सुख है, जीवन की जीत हो। (इसलिये) हे संगी! आ नाचेंगे। आ हम नाचेंगे।

नूतन दिन आ गया। प्राचीन (समय) मिट गया। सब ओर आनन्द फैला है। दुख ही म्लान हो गया है। (इसलिये) हे संगी! आ नाचेंगे। आ हम नाचेंगे।

कश्मीरी

पेशरो दी लोथ

दई दे मिगि दंदलू दराट,
तमणे दी दाली कप्पणी।
नई कार बकरी, नई माल,
दाली तेरी कुनी खाणी यो?
हंसी हंसी पूछे नंदलाल—
जोजी तेकी कुनी दितीयो?
आगे पेशरो दी लोथ,
पीछे नंदू खूनी चलया।
हंसी हंसी पूछे ठाणेदार—
किन खन किते नंदू आ?

—(कश्मीरी लोकगीत)

अर्थ—(नन्दू ने अपनी बहन से कहा)—मुझे गँड़ासा दे दे। तमणे की डाली काटना है।

(बहन ने पूछा)—न घर में बकरी है, न जानवर, तेरी डाली कौन खायगा ?

(नन्दलाल गँड़ासा लेकर प्रेयसि के घर गया)

नन्दलाल ने हँस हँस कर प्रेयसि से पूछा—तेरे सिर पर जो टोपी है, वह किसने दी है ?

(प्रेयसि ने कोई उत्तर नहीं दिया। क्रोध और संदेह के कारण नन्दलाल ने प्रेयसि पेशरो की हत्या कर दी।)

आगे पेशरो की लाश चली, पीछे खूनी नन्दलाल चला।

थानेदार ने हँस-हँसकर पूछा—नन्दू, तूने कितने खून किये ?

मलयालम

चक्रम्

चंगादि मार्कले ! पंज पिशाचि नै,
चक्रम तिरिक्य तिरिक्य नम्मल्;
जात्यासुदुर्बल माक्रिय कैकोण्ठ,
चीते नरक कलुत्तरप्पान् ॥

नम्मलै लोकैक नायकनेल पिच्चु—
नव्य सुदर्शन चक्र मिदा ॥

त्यागियामम्महात्मावाल् प्रकाशित,
माक्रिय श्री चक्रमे !
मन्दिरम् तोरूम लेशिक्क नी न्यङ्गल्कु
मंगलत्तिन्न तु मात्रम् पोरूम ॥

सुप्रभातत्तिले भास्कर बिम्बमाम्
चक्रत्तिन नूल कदिरे !

नीलुगा ! नी अनेकायिरम् नालिक
नीलुगा ! वन् मुत्तिन वेण्मैयोडे ।
कूरिरूल् कूत्तिनै कोण्डाडि मूलुन्न
कूमन्मार निन्ने वेरूक्किलेन्दो !!

—वल्लतोल नारायण मेनन

अर्थ—हे प्रिय बंधु-बांधवो ! हम अपने जन्मतः दुर्बल हाथों से ही चक्र को घुमा-घुमाकर नारकीय दुष्काल पिशाच का गला काट दें। यही हमारे लोकनायक द्वारा प्रदत्त दिव्य सुदर्शन चक्र है। त्यागी, महान महात्मा द्वारा प्रस्तुत हे श्री चक्र ! प्रत्येक घर में शोभित होकर तू हमारे लिये मंगल स्वरूप हो जा।

सुप्रभात में सूर्य बिम्ब के समान अद्‌भुत चक्र से उत्पन्न सूत्र किरण ! दीर्घ हो। निर्दोष मुक्तामय प्रभा के साथ तू कई हजार मीलों तक दीर्घ हो। भले ही घने अंधकार के पिशाच नृत्य का वर्णन करने वाले उलूकगण अपनी वाणी से तुझसे घृणा करें।

मराठी—

पसायदान

आतां विश्वात्मकें देवें। येणें वाग्यज्ञें तोषावें।
तोषोनि मज द्यावें। पसायदान हें ॥
जे खळाची व्यंकटी सांडो। तया सत्कर्मी रती वाढो ॥
भूतां परस्परें पडो मैत्र जीवांचे ॥
दुरितांचें तिमिर जावो। विश्व स्वधर्मसूर्यें पाहो।
जो जे वांछील तो तें लाहो। प्राणिजात ॥

—ज्ञानेश्वर

अर्थ—अब विश्वरूपी देव इस वाग्यज्ञ से संतुष्ट हो और संतुष्ट हो मुझे यह प्रसाद-दान दें कि खल (व्यक्तियों) की दुष्टता नष्टप्राय हो और सत्कर्मों

के प्रति उनकी प्रीति बढ़े। सभी प्राणियों में एक-दूसरे के प्रति हृदय से मैत्रीभाव बढ़े। पाप का अंधकार नष्ट हो व विश्व में स्वधर्म रूपी सूर्य का उदय हो। प्राणिमात्र जिस किसी की इच्छा करें वह उसे प्राप्त हो।

उड़िया—

माटिर माणिष[1]

यन्त्र तते कि मन्त्र देउछि, माटिर माणिष आरे
मुग्ध तोहर चित्त गहने, चिन्ति पारुन बारे?
मथा तोलि सेइ यन्त्र, ये सदा रुद्र दानवपरि
छिड़ा होइ अछि चारिपाशे, तार लुहार फउज धरि
गर्जि उठुइ थरे थरे, पुणि भीम भैरव रबै
निश्वास-धूम-उच्छ्वास तार, छाड़इ मौन नभे
देखि पारुनुकि तुरे,
चिह्नि पारुनु वन्हि शिखा, ये जलुछि ताहारि मूले।
× × ×
यन्त्र तळे त पराण नाहिं रे, मरणर तहिं घर,
दिन राति तहुँ चितार कुहेळि, हेउ अछि उत्थळ
आगामी युगर द्रष्टा मुँ आजि, डाकु अछि एइ कूळे
पतंगपरि झासदे नाहिं, दे नाहिं तार मूळे,
माटिर अंगे जन्म पाइचु, झर रे ताहरि परे
माटिर बक्शे जनम लभिबु, नव जनमान्तरे
फेरि आ पुरुब पथे
अकारणे आउ धूआँ ह नाहिं, यन्त्र धूआँर साथे।

–अरे मिट्टी के मनुष्य! यन्त्र तुझे कौन सा मन्त्र दे रहा कि तू

[1]राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा प्रकाशित "भारत भारती" उड़िया पृष्ठ क्रमांक ६६-७० से साभार।

अपने मुग्ध मन के भीतर सोच नहीं सकता ? यह जो यन्त्र चारों ओर लोहे की फौज साथ लिए भयानक दानव की तरह सर उठाकर खड़ा है और बीच-बीच में भीम भैरव नाद से गरज उठता है तथा अपने विश्वास में नीरव आकाश की ओर धुआँ छोड़ रहा है, क्या तू उसे देख नहीं सकता ? क्या तू उसके मूल में जलती हुई अग्निशिखा को पहचान नहीं सकता ?

यन्त्र के नीचे तो प्राण नहीं हैं, वहाँ मौत का घर है। वहाँ दिनरात चिता का कुहरा उठ रहा है। मैं (धरती) आगामी युग की द्रष्टा हूँ और तुझे इस किनारे पर बुला रही हूँ। तू फिर पतंग की तरह उसके नीचे मत झोंक। तूने मिट्टी से जन्म पाया है और उसी पर झर जा ; फिर दूसरे जन्म में उसी के वक्ष में (उसी की गोद में) जन्म लेगा। अपने पहले के रास्ते पर लौट आ ; यन्त्र के धुआँ के साथ नाहक और धुआँ मत बन।

पंजाबी—

डोलीदा गीत

न मैं लड़ीते न बोली नी माँ।
हुन रख लै मेरी डोली नी माँ॥

मेरी डोली नूं लगड़े हीरे नी माँ, मैंनू बिदया करन मेरे वीरे नी माँ।
रही बनके ऐन्हां दी गोली नी माँ, हुन रख लै मेरी डोली नी माँ॥
मेरी डोली दे सोहने लाचे नी माँ, मेरे काज सँवारण चाचे नी माँ।
जिहां नित खड़ाया झाली नी माँ, हुन रख लै मेरी डोली नी माँ॥
मेरा पयो पयांबिट बिट तकदाए, मुँहो कुझ बी आखन सकदाए।
जिंद जान मैं उस तो घोली नी माँ, हुन रख लै मेरी डोली नी माँ॥
मेरी डोली दे उते तारे नी माँ, मैंनू बिदया करन हुणे सारे नी माँ।
समना तो विदया होई नी माँ, हुन रख लै मेरी डोली नी माँ॥
मेरी डोली दे उते खेस नी माँ, बहु ओखा राह परदेस नी माँ।
ओये कोई न वर्दी होसी नी माँ, हुन रख लै मेरी डोली नी माँ॥

—श्री अफजल परवेज

अर्थ—हे माँ ! न तो किसी से लड़ी हूँ, न किसी से कुछ बोली ही हूँ । तू मेरी डोली को रख ले, (अर्थात् मेरी विदा मत कर ।) हे माँ ! मेरी डोली में हीरे लगे हुए हैं । मेरे भाई मुझे विदा कर रहे हैं । मैं इनकी सेविका बनकर रहूँगी । हे माँ ! तू मेरी डोली को रख ले ।

हे माँ ! मेरी डोली के पर्दे बड़े प्यारे हैं । मेरे चाचा ने काज सँवारे हैं । हे माँ ! मैं उनकी गोद में खेली हूँ । हे माँ ! तू मेरी डोली को रख ले ।

मेरे बाबुल (पिता) मेरी ओर टकटकी लगाकर देख रहे हैं । वे मुँह से कुछ बोल भी नहीं सकते । हे माँ ! मैं उनपर अपने प्राण न्यौछावर करती हूँ । हे माँ ! तू मेरी डोली को रख ले ।

हे माँ ! मेरी डोली के ऊपर तारे चमक रहे हैं । (परिवार के) सभी (लोग) मुझे विदा कर रहे हैं । मैं सब प्रियजनों से बिछुड़ रही हूँ । हे माँ ! तू मेरी डोली को रख ले ।

हे माँ ! मेरी डोली के ऊपर की चादर न्यारी है । परदेश की राह बहुत कठिन है । हाय ! वहाँ मेरा कोई हमदर्द नहीं होगा । हे माँ ! तू मेरी डोली को रख ले (मुझे विदा न कर !

संस्कृत :—

एकश्लोकी महाभारतः

आदौ पाण्डवधात्तराष्ट्र जननं लक्षागृहे दाहनम् ।
द्यूते श्री हरणं, स्वयंवरगृहे मत्स्यस्य वै वेधनम् ॥
मध्ये गोहरणं रणेऽवतरणं, सन्धि क्रिया वर्द्धनम् ।
पश्चाद् भीष्मक कौरवादि हननं, एतन्महाभारतम् ॥

अर्थ :—प्रथमतः पाण्डव और कौरवों का जन्म हुआ । (पाण्डवों का) लाक्षागृह में दहन हुआ । जुए में (पाण्डवों की) सम्पति का हरण हुआ । (पाण्डवों के वनवास काल में अर्जुन द्वारा द्रुपदसुता के स्वयंवर में) मत्स्य-वेध हुआ । इसी बीच (विराट राजा की) गायों का हरण हुआ । युद्ध की

अवतारणा हुई, सन्धि का प्रयास हुआ । तत्पश्चात् भीष्म-कौरवादि की मृत्यु हुई। यही महाभारत है।

तमिल :

विडुदलै !

विडुदलै ! विडुदलै !! विडुदलै,
परैयरुक्कु मिगु तीयर् पुलैयरुक्कुम् विडुदलै !
परवरोडु कुरुवरुक्कु मरवरक्कुम् विडुदलै !!
तिरमैकोण्ड तीमैयट्र तोळिल पुरिन्दु यावरूम।
तेरन्द कल्वि आण् मेय्दि वाळवमिन्द नाट्टिले ।।
एळैयेन्रूम आडिमैयेनरूम एवनुमिल्लै जातियिल्
इळिवु कोण्ड मनिदरेन्ब दिन्दियाविल इल्लैये ;
वालि कल्वि शल्व मेयदि मनमगिळ्न्दु कूड़िये
मनिदर यारू मारू निगर समानमाग वाळव मे ।।
मादर तम्मै यिळिवु चेय्यु मडमैयैक्लोळुत्तुवोम् ;
वैयवाळवु तन्निलेन्द वर्गेयिनुम नमक्कुले
तादरेन्र निलै मैमारि आणगळोडु पेणगलुम्
सरिनिगर् समानमाग वाळव मिन्द नाट्टिले !!

—सुब्रमण्य भारति

अर्थ—स्वतन्त्र हैं ! स्वतन्त्र हैं !! स्वतन्त्र हैं ! चमार और शूद्र, डोम भी स्वतंत्र हैं। कुंजड़ों के साथ भील कोल भी स्वतंत्र हैं । तत्परता से निर्दोष उद्योगों से (सभी) युक्त हैं। (सबको) स्वदेश में पवित्र सुशिक्षा का क्षेत्र प्राप्त है। देश में दीन और जन का नाम नहीं है। स्वदेश में एक भी दुष्प्रवृत्त नहीं रहा। इस समतामय देश में चिरायु, विद्या, वैभव से तृप्त, एकता के सूत्र में बँधे हुए सभी जन आज समान हैं। नारियों को तुच्छ समझने वाला मूर्ख ज्ञान जल चुका। स्वदेश में (अब) स्वार्थपूर्ण दुष्ट भावना नहीं रही। पुरुषों

के साथ स्त्रियाँ भी आज दासी भावना से मुक्त हो सहधर्मिणी बन जाग उठी हैं।

तेलुगु—

मंजीर[1]

एवीर गज्जल खळिवे नीवु, मंजीर !
एवीर कज्जल भाष्प धारवे ; मंजीर ।।
नीवु पारिन दारिलो इक्षुदण्डालु,
नीवु जारिन जाडलो अमृत भंडालु ।
नीवु दूकिन नेत्क माकु विद्युन्माल,
नीवु प्रकिन, प्रांथम माकु चैत्ररथमु ।।
एवीर कोरकै परुगुलेति वच्चतिवि ?
एवीर जूचि तटाकमै निळचि पोतिवि ?
ना तेलुगु निगि नीडल नडचि—
नडचि तेलुगु नाडकलु नेर्चु कोगलिगिनावु ?

—पूजाकवि दाशरथि

अर्थ—किसके पायल की ध्वनि लेकर आ रही हो मंजीर ? किसके कजरारे नेत्रों से बही हुई वाष्प धारा हो मंजीर ?

तुम जहाँ जाती हो, वहीं इक्षुदण्ड उपस्थित होते हैं । तुम जहाँ प्रवाहित होती हो, वहीं अमृत घटों का सृजन कर जाती हो। तुम जहाँ कूद पड़ती हो, वहाँ हमें विद्युत्माला प्राप्त हो जाती है । तुम जहाँ रुक जाती हो, वहाँ हमें चैत्ररथ ही मिल जाता है।

हे मंजीर ! तुम किसके लिये इस प्रकार दौड़ती आई ? किसे देखकर तुम रुक गईं और तलैया का रूप धारण कर लिया ? (क्या तुम) हमरे तेलुगु देश में दूर-दूर तक चलकर तेलुगु देश के मार्गों से परिचय प्राप्त कर रही हो ?

---

[1]**मंजीर तेलुंगाना प्रदेश की एक नदी का नाम है, जिसे सम्बोधित कर उक्त कविता लिखी गई है ।** **—सम्पादक**